जैनदर्शनसार

(द्वितीय भाग)

108 आचार्य श्री धर्मभूषण जी महाराज

सम्पादक

डॉ. नरेन्द्रकुमार जैन

डॉ. नीलम जैन

प्रकाशक

श्री दिगम्बर जैन मन्दिर समिति

कविनगर, गाजियाबाद (उ० प्र०)

108 आचार्य श्री धर्मभूषण जी महाराज
के प्रवचन एवं जैनधर्म, दर्शन, आचार विषयक
तीन भागों में निबद्ध
जैनदर्शनसार का द्वितीय भाग

सम्पादक :
डॉ. नरेन्द्रकुमार जैन, *उपाचार्य*, गाजियाबाद
डॉ. नीलम जैन, गाजियाबाद

प्रकाशक :
© श्री दिगम्बर जैन मन्दिर समिति
कविनगर, गाजियाबाद (उ०प्र०)

प्रबन्ध-संयोजक :
श्री बी० डी० जैन
II-A-128, नेहरु नगर, गाजियाबाद
फोन - 2792298

प्रथम संस्करण : सन् 2003
मूल्य तीनों भाग : 100/-

प्राप्तिस्थान :
श्री पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन मन्दिर
कविनगर, गाजियाबाद (उ०प्र०)
फोन - 2711083

●

श्री नवनीतकुमार जैन
86, ठठेर वाड़ा, मेरठ शहर
फोन - 2520073

मुद्रक :
दीप प्रिंटर्स
70ए, रामा रोड, इन्डस्ट्रियल एरिया
न्यू दिल्ली - 110015
दूरभाष : 25925099

वीतरागी ही पूज्य है

णमोकार मंत्र जैसा मन्त्र नहीं

वीतरागी जैसे देव नहीं

निर्ग्रन्थ जैसे गुरु नहीं

अहिंसा जैसा धर्म नहीं

आत्मध्यान जैसा ध्यान नहीं

•

वीतराग ही धर्म है

मिथ्यात्व का वमन

सम्यक्त्व उत्पन्न

कषायों का शमन

इन्द्रियों का दमन

आत्मा में रमण

आचार्य परम्परा
में
१०८ आचार्य श्री धर्मभूषणजी महाराज

●

परम पूज्य आचार्य १०८ श्री शान्तिसागर जी महाराज (छाणी)

परम पूज्य आचार्य १०८ श्री सूर्यसागर जी महाराज

परम पूज्य आचार्य १०८ श्री विजयसागर जी महाराज

परम पूज्य आचार्य १०८ श्री विमलसागर जी महाराज (भिण्डवाले)

परम पूज्य आचार्य १०८ श्री निर्मलसागर जी महाराज

समकालीन – परम पूज्य आचार्य १०८ श्री जयसागर जी महाराज

परम पूज्य आचार्य १०८ श्री शान्तिसागर जी महाराज (हस्तिनापुर वाले)

परम पूज्य आचार्य १०८ श्री धर्मभूषण जी महाराज

●

बाल ब्रह्मचारी, प्रशान्तमूर्ति आचार्य 108
श्री शान्तिसागरजी महाराज (छाणी)
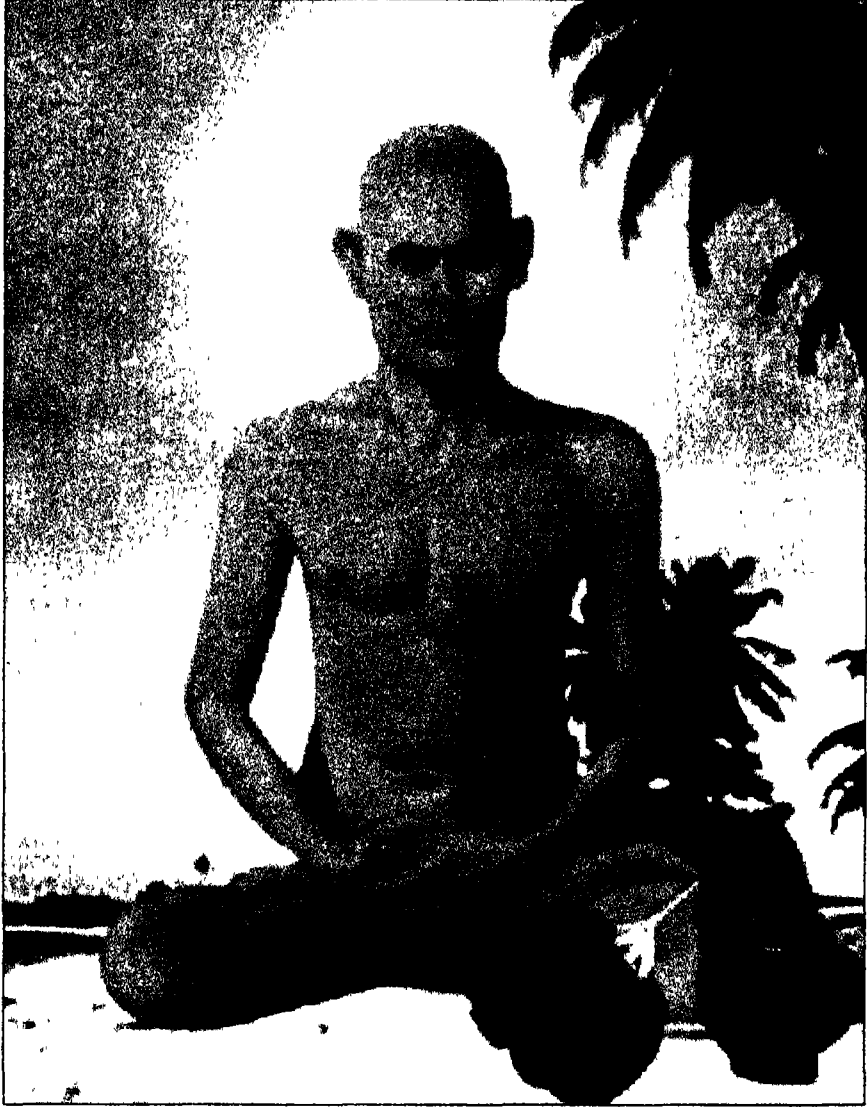
जन्म तिथि	- कार्तिकबदी एकादशी वि०सं०, 1945 (सन् 1888)	मुनि दीक्षा	- भाद्र शुक्ला 14, सन् 1923
जन्म स्थान	- ग्राम-छाणी, उदयपुर (राजस्थान)	स्थान	- सागवाड़ा (राजस्थान)
जन्म नाम	- श्री केवलदास जैन	आचार्य पद	- संन् 1926
पिता का नाम	- श्री भागचन्दजी जैन	स्थान	- गिरीडीह (झारखंड प्रान्त)
माता का नाम	- श्रीमती माणिकबाई	समाधिमरण	- 17 मई 1944 ज्येष्ठ बदी दशमी
क्षुल्लक दीक्षा	- सन् 1922 वि०सं० 1979	स्थान	- सागवाड़ा (राजस्थान)

परमपूज्य आचार्य 108 श्री सूर्यसागरजी महाराज

जन्म तिथि - कार्तिक शुक्ला नवमी वि॰सं॰ 1940 (सन् 1883)
जन्म स्थान - प्रेमसर, जिला - ग्वालियर (म॰प्र॰)
जन्म नाम - श्री हजारीलाल जैन
पिता का नाम - श्री हीरालालजी जैन
माता का नाम - श्रीमती गेंदाबाई
ऐलक दीक्षा - वि॰स॰-1981 (सन् 1924) (आ॰ शान्तिसागरजी)
स्थान - इन्दौर (मध्य प्रदेश)
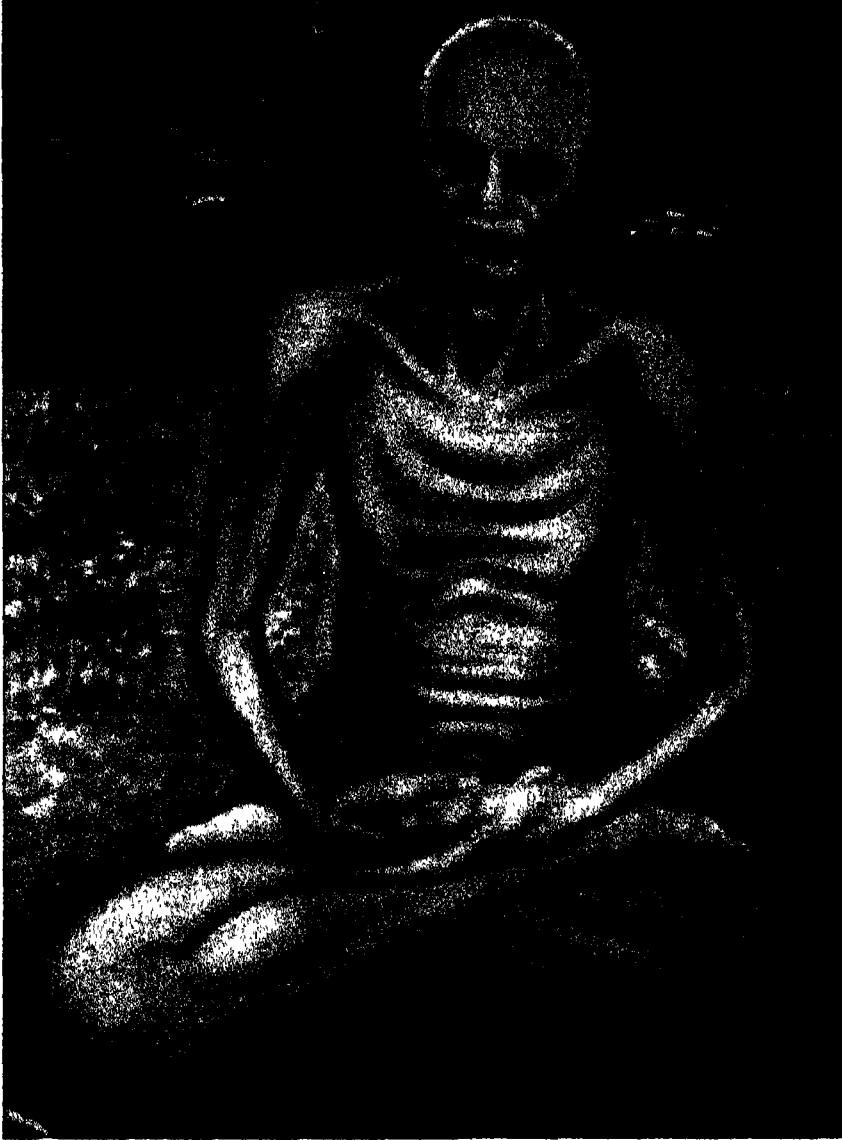
मुनि दीक्षा - 51 दिन पश्चात् आचार्य शान्तिसागरजी (छाणी)
स्थान - हाटपीपल्या, जिला - देवास (म.प्र)
आचार्य पद - वि॰ स॰ 1985 (सन् 1928)
स्थान - कोडरमा (झारखण्ड)
समाधिमरण - वि॰ स॰ 2001 (14 जुलाई 1952)
स्थान - डालमिया नगर (झारखण्ड)
साहित्य क्षेत्र में - 33 ग्रन्थों की रचना की।

108 आचार्य श्री शांतिसागर जी महाराज (हस्तिनापुर वाले)

संक्षिप्त जीवन परिचय
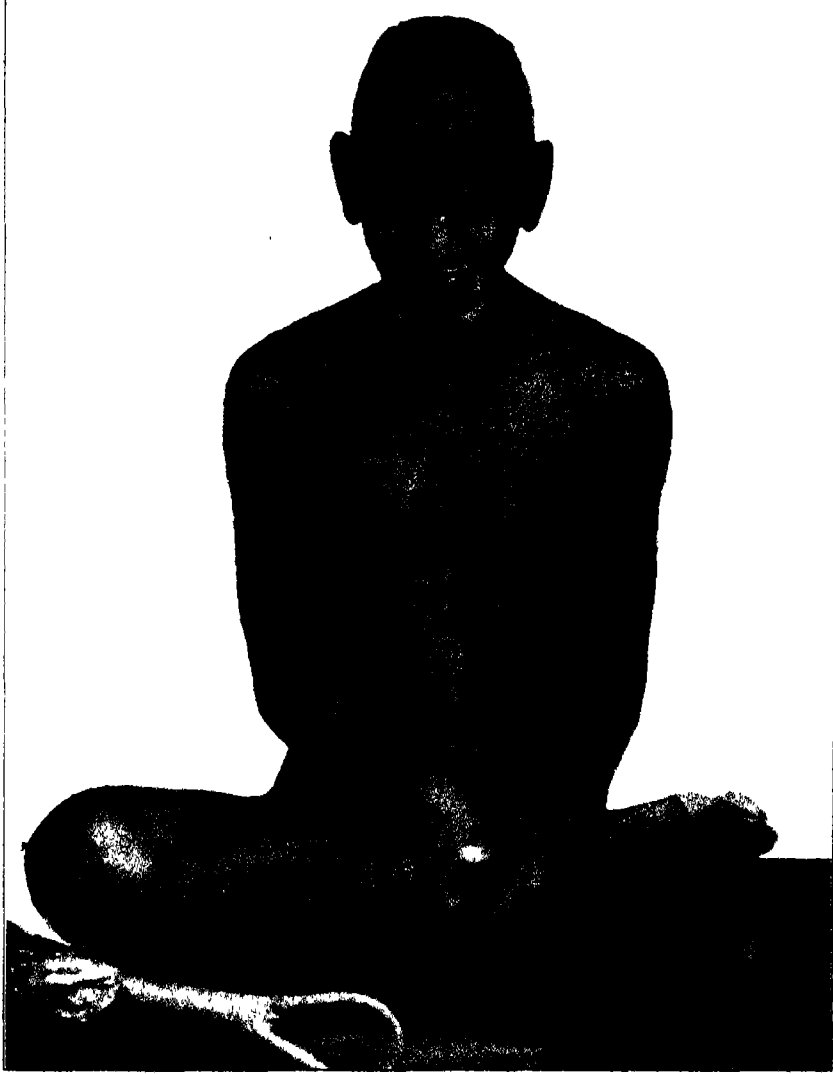
जन्म दिवस	- श्रावण शुक्ल 2, वि०स० 1972		**मुनि दीक्षा**	-	मुजफ्फरनगर में सम्वत् 2028 में आचार्य 108 श्री निर्मलसागर जी महाराज से
गृहस्थ नाम	- सुखराम				
जन्म स्थान	- ग्राम अलावडा (अलवर) राज०		**आचार्य पद**	-	दिनांक 3.11.1979 को हस्तिनापुर में आचार्य 108 श्री जयसागर जी महाराज के आशीर्वाद एवं अनुमोदन से
माता	- श्रीमती चन्दना जी				
पिता	- श्री छोटेलाल जैन				
धर्मपत्नी	- श्रीमती चन्द्रकला जैन		**समाधि**	-	सन् 1996 में, फिरोजपुर झिरका (हरियाणा)
ब्रह्मचर्य	- वि० स० 2012 में				

108 आचार्य श्री धर्मभूषण जी महाराज के संघ की आचार संहिता

1. संघ के साथ कोई आर्यिका, क्षुल्लिका व ब्रह्मचारिणी नहीं रहेगी।
2. संघ के त्यागीगण आहार व विहार के समय किसी भी प्रकार के बाज साज नहीं बजने देंगे।
3. कोई भी त्यागी अपनी जन्म-तिथि व दीक्षा-तिथि नहीं मनवायेंगे।
4. संघ के आहार के पश्चात् किसी प्रकार का प्रसाद नहीं बटेगा।
5. किसी भी संस्था या मन्दिर निर्माण के लिए, संघ का कोई भी त्यागी चंदा एकत्रित नहीं करेगा।
6. आचार्य पुष्पदन्त, भूतबली एवं कुन्दकुन्द -आम्नाय के किसी भी ग्रन्थ का (चाहे वह कहीं से भी प्रकाशित हो) निषेध नहीं किया जायेगा और न ही जिनवाणी माँ का अपमान होने देंगे।
7. अग्नि में धूप डालना, दीपक से आरती उतारना, निर्वाण दिवस के दिन किसी भी प्रकार का मीठा लड्डू चढ़वाना, सामग्री में हार-सिंगार के फूल का प्रयोग, पंचामृत एवं स्त्री द्वारा अभिषेक, भगवान को चंदन लगाना व हरे फूल एवं फल चढ़ाना, इन बातों का इस संघ में कोई समर्थन नहीं होगा।
8. कोई भी संघस्थ त्यागी वीतराग भगवान के सिवाय पद्मावती, क्षेत्रपाल व अन्य किसी भी देवी-देवताओं का किसी भी प्रकार से प्रचार-प्रसार नहीं करेगा।
9. आहारचर्या के समय किसी भी संघस्थ त्यागी का हरे सचित्त फलों से पड़गाहन नहीं होगा।
10. किसी भी संघस्थ त्यागी की दीपक आदि द्वारा आरती नहीं होगी।
11. पिच्छीधारी किसी भी त्यागी को वाहन का उपयोग करने की आज्ञा नहीं होगी।
12. संघस्थ कोई भी साधु अपने पास पिच्छी, कमण्डल व शास्त्र के अलावा अन्य किसी प्रकार का परिग्रह नहीं रखेगा।
13. रात्रि में तेल–मालिश का निषेध होगा।
14. संघ में पंखा, कूलर व हीटर, टेलीफोन, मरकरी, लाईट, एयर कंडीशन और मच्छरदानी एवं इसी प्रकार के अन्य साधनों का कोई भी त्यागी उपयोग नहीं करेगा।
15. आचार्य श्री की आज्ञा के बिना संघ में कोई कार्य नहीं होगा।
16. त्यागियों द्वारा महिलाओं से चरणस्पर्श कराना वर्जित है। सूर्यास्त के पश्चात् महिलाओं का मुनियों के पास आना वर्जित है।
17. संघ के साधुओं द्वारा नकली दाँत लगाकर आहार लेना व दातार द्वारा नकली दांत लगाकर देना दोनों वर्जित हैं।
18. संघ के कोई भी त्यागी हल्दी, टमाटर, पपीता, भिण्डी, तरबूज, पत्ती वाली वनस्पति, आड़ू, लीची व टाटरी आदि का उपयोग नहीं करेंगे व गैस व कुकर का बना भोजन नहीं लेंगे।
19. संघ का कोई भी त्यागी ऐसे मंच पर नहीं जायेगा जहां हरे फूलों का उपयोग किया गया हो।
20. संघस्थ साधुओं (मुनियों, ऐल्लक, क्षुल्लक) के केशलुञ्च का कोई समारोह नहीं होगा एवं इसकी कोई पत्रिका भी नहीं छपेगी।
21. संघ का पिच्छीधारी कोई भी साधु रथयात्रा के साथ नहीं चलेगा व संघ में जिनेन्द्र भगवान की प्रतिमा साथ नहीं रहेगी।
22. कोई भी साधु व्यक्तिगत कुटिया या मठ बनाकर नहीं रहेगा एवं सामाजिक स्थान उपलब्ध होते हुए किसी श्रावक के निवास स्थान पर नहीं ठहरेंगे।
23. संघ में कोई भी शिथिलता (जैसे-समय पर सामायिक, प्रतिक्रमण, भक्ति व स्वाध्याय न करना किसी भी प्रकार की विकथा करना) सहन नहीं होगी। अगर कोई त्यागी नियम के विपरीत क्रिया करेगा तो उसे पद छोड़कर जाना होगा।
24. समाज के पक्ष विपक्ष आदि में नहीं उलझना, स्वयं आत्मकल्याण में लगे रहना तथा समाज के लोगों को भी आत्मकल्याण के लिए प्रेरित करना।
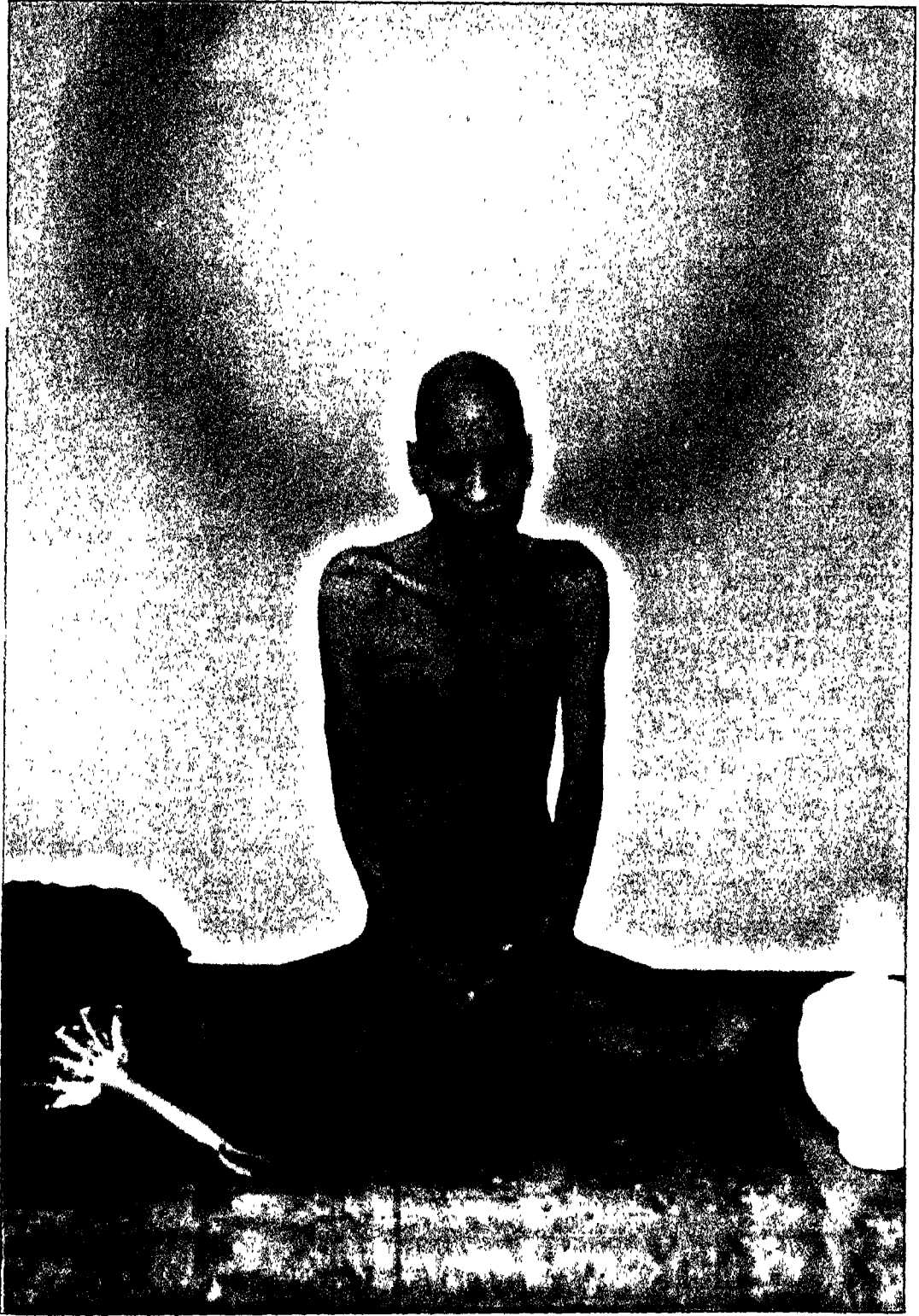
108 आचार्य श्री धर्मभूषणजी महाराज

जीवन परिचय

सभ्यता एव संस्कृति की भूमि, कौरव पाण्डवो की कर्मस्थली, भगवान ऋषभदेव की विहारस्थली, तीर्थङ्करो की कल्याणक भूमि के रूप मे प्रसिद्ध धर्मनगरी हस्तिनापुर की प्राकृतिक सुषमा का निकटस्थ साक्षी ग्राम करनावल (मेरठ) पूज्य आचार्य 108 श्री धर्मभूषण महाराज जी की पवित्र जन्म स्थली है। एक लघु शिशु को माता श्रीमती हुकमा देवी जी और पिता श्री डालचन्द्र ने 65 वर्ष पूर्व जन्म दिया था। 2 पुत्रो (श्री सलेक चन्द्र जैन एवं श्री रूपचन्द्र जैन) तथा दो पुत्रियो (श्रीमती कमला देवी एवं श्री जयमाला जैन) के साथ ही पुत्र प्रेम चन्द्र खेले, पले और बढ़े। पिताजी की आशीष छाया बहुत कम समय साथ रही। दोनों भाईयों ने ही प्रेमचन्द को पिता तुल्य वात्सल्य प्रदान किया। किसे ज्ञात था कि वह लघु शिशु एक तेजस्वी दिव्यात्मा है जो भविष्य में विश्व के कल्याण और सुरक्षा हेतु अपना सर्वस्व त्याग देगा। बाल्यावस्था से ही आप धुन के धनी, अपूर्व साहस से संयुक्त और कुछ कर दिखाने की भावना से ओतप्रोत थे। युवावस्था में भी उनकी स्वतंत्र चिन्तनधारा निष्काम साधना की ओर अग्रसर थी, दिनरात यही चिन्तन करते रहते थे कि इस अमूल्य मानव जीवन को किस प्रकार आत्मविकास के मार्ग पर अग्रसर किया जाय। माता-पिता का दिया नाम "प्रेम" उनके अन्तरग और रोम रोम मे बसा हुआ था। युवा प्रेमचन्द ने 15 वर्ष की आयु में विवाह भी किया। पत्नी शीलवती एव धर्म परायणा थी। दो सताने भी हुई पुत्र आदीश जैन और पुत्री अजना जैन। अनमने मन से व्यापार भी किया लेकिन पूर्व जनित सस्कार इस मध्य में भी उनके साथ रहे। श्रावक के षट्कर्मो का नियमित पालन करते हुए, साधुओ की वैय्यावृत्ति में आपको विशेष आनन्द आता था। पुत्री जब गर्भ मे थी तभी आजीवन ब्रह्मचर्य लेकर गृहस्थ जीवन को सांकेतिक तिलाजलि दे दी तथा 17 वर्ष की अवस्था मे ही आपने 108 आचार्य श्री विमलसागर जी महाराज से संयम ले लिया।

कपड़ा का व्यवसाय भी किया पर वणिक् वृत्ति से नहीं, मात्र गृहस्थ धर्म का पालन करने हेतु पूर्ण ईमानदारी से। गृहस्थ अवस्था में वे सदैव यही ध्यान रखते थे कि शाश्वत सुख के लिए राग से विराग की ओर बढ़ना है, अगारी से अनगारी बनना है। गृहस्थ जीवन में रहते हुए वे कर्तव्यनिष्ठ सामाजिक कार्यकर्ता भी रहे। करनावल वाले विभिन्न क्षेत्रों में प्रदत्त आपके अवदान का आज भी स्मरण कर रोमाचित हो जाते हैं। एक बार सरकारी योजना बनी कि करनावल मे स्थित तालाबों मे मछली पालन होगा, यह प्राणीमात्र के प्रति करुणा भाव रखने वाले संवदेनशील प्रेमचन्द्र जी को कैसे सहन होता कि उनकी मातृभूमि पर यह नृशस कार्य हो, उन्होंने पुरजोर विरोध किया और प्रशासन की इस योजना को निरस्त कराया। देखने में भले ही कृशकाय थे पर रहे अतुल बलशाली। एक बार गाँव में डाकू आ गए प्रेमचन्द ने अपूर्व सूझबूझ और शक्ति का परिचय दिया और डाकुओ को गाँव से बाहर खदेड़ा। न जाने

ऐसे कितने प्रसंग इनके जीवन के साथ संलग्न हैं। सच में जब व्यापार भी उत्कर्ष पर था और छोटी बेटी और बेटे किशोर भी नहीं हुए थे तभी आचार्य 108 श्री विमलसागर जी महाराज से स्वीकृत आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत का वर्षों तक निरतिचार शीलव्रत का पालन करते हुए मिति फाल्गुन सुदी दशमी वि.स. 2037 में 15 मार्च 1981 को रामपुर मनिहारान (सहारनपुर) में समाधि सम्राट आचार्य प्रवर गुरु 108 श्री शांतिसागर जी महाराज से क्षुल्लक दीक्षा ग्रहण की और आप ब्र० प्रेमचन्द से पूज्य 105 श्री क्षुल्लक कुलभूषण जी बन गए। संभवतः आचार्य श्री शांतिसागर जी (हस्तिनापुर वाले) भी भली भांति जानते थे ऐसे तेजस्वी प्रतिभा सम्पन्न व्यक्तित्व का धनी शिष्य ही मेरे कुल का अलंकरण हो सकता है, जैसे शिष्य वैसे ही गुरु और जैसे गुरु वैसे ही शिष्य। न जाने कितने वर्ष प्रेमचन्द्र जी ने छाया की भांति रहकर गुरुचरणों में व्यतीत किए थे। सुयोग्य गुरु को सुयोग्य शिष्य का मिलना सहज नहीं होता। प्रारम्भ से ही सम्पूर्ण जैन समाज को प्रसन्न और समृद्ध देखने की ही आपकी भावना रही है और अब तो पूर्णतया समाज के ही मध्य हैं।

उत्तर प्रदेश, हरियाणा, दिल्ली आदि जितने भी प्रदेशों में आचार्य श्री के चातुर्मास अथवा विहार हुए वहाँ-वहाँ उनके आशीर्वाद ने मूर्तरूप लिया है। हरियाणा प्रान्त के अम्बाला नगर में त्यागी भवन, गन्नौर मे शिखर युक्त मन्दिर, धर्मशाला, आचार्य श्री शान्तिसागर हाईस्कूल व डिग्री कालेज, औषधालय, गुहाना में जैन इण्टर कालिज, सोनीपत में त्यागी भवन, जैन पाठशाला का विकास एवं मन्दिर का जीर्णोद्धार, हांसी में भूगर्भ से प्राप्त 57 प्रतिमाएं स्थापित करने हेतु भूमि प्राप्त कर मन्दिर निर्माण, उत्तर प्रदेश में-गाजियाबाद में पक्षी चिकित्सालय एवं श्री शांतिनाथ पब्लिक स्कूल (निर्माणधीन), कैराना में त्यागीभवन, धर्मशाला एवं श्री मन्दिर जी का जीर्णोद्धार, सरधना में कुन्दकुन्द जिनवाणी भवन (शहर), कुन्दकुन्द अतिथि भवन (मण्डी), बावली में औषधालय एवं पाठशाला का विकास, छपरौली (मेरठ) में श्री दि. जैन मन्दिर जी का जीर्णोद्धार, रथ निर्माण, औषधालय, धर्मशाला, त्यागी भवन, प्राइमरी स्कूल, गर्ल्स डिग्री कालेज, रामपुर मनिहारान (सहारनपुर) में त्यागी भवन निर्माण एवं श्री सुपार्श्वनाथ दि. जैन मन्दिर का जीर्णोद्धार, नकुड (सहारनपुर) में त्यागी भवन निर्माण तथा राजधानी दिल्ली के उपनगरों-शाहदरा गली नं. 10 में त्यागी भवन, कैलाश नगर में त्यागी भवन एवं धर्मशाला निर्माण अशोक विहार फेज - 1 में त्यागी भवन का विकास, दिलशाद गार्डन में विशाल भव्य जैन मन्दिर आपकी ही पावन प्रेरणा एवं मंगल आशीष का अमृत फल है। शिक्षा के प्रति आपका अनुराग विशेष है। आपकी प्रेरणा से ही गन्नौर (हरियाणा) का विद्यालय तो भारत का वह पहला विद्यालय है जहाँ शिक्षक, विद्यार्थी और कर्मचारी विद्यालय में चमड़े का उपयोग नहीं करते।

महापुरुषों के साथ संघर्ष और उपसर्ग तो संभवतः अपनी उग्रता दिखाये बिना नहीं रहते, ब्रह्मचारी अवस्था से ही उपसर्ग आपके साथ रहे। एक बार चिलकाना में मधुमक्खियों ने भंयकर आक्रमण किया। सारा समाज दुःख में डूब गया पर आपने शान्ति से, सहजता से उपसर्ग को सहा। शारीरिक, वैचारिक किसी भी प्रकार की विपरीतता में आप धैर्य नहीं छोड़ते। आप तो अहर्निश यही सोचते हैं कि मानव मात्र के लिए ऐसी कौन सी व्यवस्था दी जाए जिससे वह भी शांति के वातावरण में जीवन यापन कर सके। ग्राम से लेकर विश्व तक के लिए शांति का सुखद वातावरण निर्मित किया जाय जिससे विषमता

की धू-धू करती ज्वालाएं शांत हो सकें। उनके अन्तरंग में एक संवेदनशील हृदय धड़कता है जिसमें करुणा का सागर हिलोरे लेता है, इसलिए तो क्षुल्लक बनकर भी वे संतुष्ट नहीं हुए और सम्पूर्णता के लिए प्रयत्नशील रहे। लंगोटी और चादर भी परिग्रह है, बोझ है, भार है यह समझकर एक दिन 108 आचार्य श्री शान्तिसागर जी महाराज (हस्तिनापुर वालों) से गन्नौर मण्डी, जिला सोनीपत (हरियाणा) में चैत्र वदी 15 सम्वत् 2051 (10 अप्रैल सन् 1994) को लंगोटी के भार से भी निर्भार होकर बन गए पूज्य मुनि 108 श्री धर्मभूषण जी महाराज और समृद्ध कर दी वह पुनीत पावन परम्परा जिसके संवाहक **श्रमणरत्न संतशिरोमणि चारित्र रत्नाकर 108 श्री शांतिसागर जी "छाणी"** आचार्य श्री सूर्यसागर जी, आचार्य श्री जयसागर जी और आचार्य श्री शांतिसागर जी (हस्तिनापुर) महाराज हैं। उर्जस्वित, पवित्र और प्राणवंत होती इस सशक्त विरासत के ही उत्तराधिकारी पट्ट शिष्य हैं **श्री आचार्य 108 श्री धर्मभूषण** जी। मुनिदीक्षा के समय इस भव्यात्मा के धर्मपिता और माता बनने का सौभाग्य मिला श्री मूलचन्द जी जैन मेरठ एवं उनकी धर्मपत्नी श्रीमती सरला देवी को। पूज्य मुनि श्री की साधना अनवरत चलती रही और मुजफ्फरनगर (उ० प्र०) में ज्येष्ठ सुदी 3 सम्वत् 2054 (8 जून 1997) को उन्हें आचार्य पद प्रदान किया गया। पश्चिमी उत्तर प्रदेश के गौरव **प्रथम आचार्य श्री धर्मभूषण जी** सम्पूर्ण भारत में आज अपनी कठोर तपश्चर्या और सैद्धान्तिकता के कारण विख्यात हैं। वस्तुतः श्रमणत्व पूज्य आचार्यश्री से धन्य हुआ है। आपके द्वारा 108 मुनि श्री ज्ञानभूषण जी को 8 जून 1997, मुजफ्फरनगर में, 108 मुनि श्री सम्यक्त्वभूषण जी को 10 मार्च 2000, मेरठ में, 108 मुनि श्री चारित्रभूषण जी को 10 मार्च 2000, मेरठ में मुनि दीक्षा प्रदान की गई। आपकी पावन प्रेरणा से श्रीमति गुणमाला जैन (अम्बाला), श्रीमति कमला जैन (रामपुर मनिहारन) सातवीं प्रतिमा के व्रत स्वीकार कर चुकी हैं तथा श्री कैलाश चन्द्र एवं रिपुदमन ब्रह्मचर्य व्रत ग्रहण कर संयम मार्ग पर अग्रसर हैं। श्री शिखर चन्द्र जैन ने आपसे ब्रह्मचर्य व्रत ग्रहण किया और अब मुनि नियमभूषण जी बनकर आपके ही संघ में विराजमान हैं। आपके द्वारा और भी अनेक गृहस्थ अपने जीवन को संयम मार्ग पर लगा रहे हैं।

चातुर्मास

क्षुल्लक अवस्था में आपके चातुर्मास सन् 1981 में अम्बाला छावनी, सन् 1982 में गोहाना (हरियाणा), सन् 1983 में गन्नौर मण्डी (हरियाणा), सन् 1984 में छपरौली (मेरठ), सन् 1985 में ग्राम बावली (मेरठ), सन् 1986 में काँधला (मुजफ्फरनगर) सन् 1987 में कैलाशनगर, (दिल्ली), सन् 1988 में सोनीपत (हरियाणा), सन् 1989 में हाँसी (हरियाणा), सन् 1990 में छपरौली (मेरठ), सन् 1991में अम्बाला छावनी, सन् 1992 में रामपुर मनिहारन (सहारनपुर), सन् 1993 में कैराना (मुजफ्फरनगर) में हुए। मुनि अवस्था में सन् 1994 में कैलाशनगर (दिल्ली), सन् 1995 में अशोक नगर (दिल्ली), सन् 1996 में रामपुर मनिहारन (सहारनपुर), सन् 1997 में कैराना (मुजफ्फरनगर), सन् 1998 में गाजियाबाद, सन् 1999 में गन्नौरमण्डी (हरियाणा), सन् 2000 में सरधना नगर, सन् 2001 में रामपुर मनिहारन (सहारनपुर) तथा सन् 2002 में गाजियाबाद नगर आपके चातुर्मास सम्पन्न कराने का गौरव प्राप्त कर चुके हैं।

आचार्यश्री की प्रमुख विशेषता है प्राणी मात्र के प्रति समभाव और सहृदयता। वे संत हैं, तुलसी ने लिखा है 'संत हृदय नवनीत समाना' नवनीत का गुण यही है कि वह स्वयं तो कोमल, स्निग्ध और शीतल है ही बाहर का जरा सा ताप मिलते ही द्रवित भी हो जाता है, इसी तरह आचार्य श्री भी सांसारिक दु:ख से दु:खी प्राणियों को देखकर उनके कल्याण के लिए द्रवित हो जाते हैं। विचारों की उर्जस्वित धारा, पवित्र चिन्तन और दृढ़ संकल्प के साथ गुरुवर ने भारत के विभिन्न प्रान्तों को अपनी चरण रज से पवित्र किया है।

जिनवाणी के प्रति आपका अनुराग अनन्य है आपकी प्रेरणा से नगर-नगर में आगम संरक्षण एवं जिनवाणी जीर्णोद्धार हुआ है आपकी प्रेरणा से आचार्य श्री सूर्यसागर जी द्वारा रचित महत्त्वपूर्ण ग्रंथ **'संयम प्रकाश'** के चार भाग तथा **'श्रावकधर्म'**, **लघु पद्मपुराण**, **जैनधर्म की प्राचीनता**, **भक्तामर स्तोत्र**, **आत्मप्रबोध** आदि ग्रंथ प्रकाशित हो चुके हैं, **प्रश्नोत्तरी**, **श्रद्धापुष्प**, **पतित से पावन कैसे बनें** और **जैन दर्शन गणित** आपकी स्वतन्त्र रचनाएं हैं।

वर्तमान में आचार्य श्री ने द्वादश वर्षीय सल्लेखना धारण की हुई है सात वर्ष शेष हैं। जिसके उत्तरोत्तर तप त्याग में वृद्धि करते हुए सम्प्रति वे श्रमणधर्म को गौरवान्वित कर रहे हैं। आचार्य श्री के संघ के सभी त्यागी निर्दोष तपश्चर्या का पालन करते हैं। पूरे संघ का चारित्र हमारे लिए अनुकरणीय है।

मूलोत्तर गुणनिष्ठ, दृढ़ चारित्र पालक, महान् साधक, दिगम्बर सन्त पूज्य आचार्यश्री का चिरकाल तक ज्ञानपिपासुओं को ज्ञानामृत का लाभ मिलता रहे ऐसी हम भावना करते हैं।

---

108 आचार्य धर्मभूषण जी महाराज द्वारा दीक्षित मुनिराजों का संक्षिप्त परिचय

108 श्री ज्ञानभूषण जी महाराज

जन्म तिथि	: 1 नवम्बर, 1962	**जन्म स्थान**	:	दिल्ली
पिता	: श्री सुखवीर सिह	**भाई**	:	तीन
माता	: श्रीमती समन्दरी देवी जैन	**बहन**	:	दो
क्षुल्लक दीक्षा	: 1993, नौगावां (अलवर)	**ब्रह्मचर्यव्रत**	:	1992
ऐलक दीक्षा	: 1996, आचार्य शान्तिसागर जी द्वारा, फिरोजपुर झिरका (गुड़गांव)			
मुनि दीक्षा	: 8 जून 1997, आचार्य धर्मभूषण जी द्वारा, मण्डी, मुजफ्फरनगर			
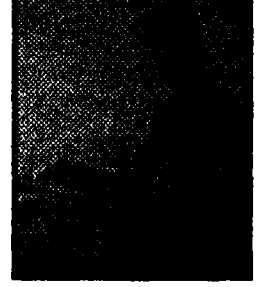
108 श्री सम्यक्त्वभूषण जी महाराज

गृहस्थ नाम	: श्री अमर चन्द्र जैन	**माता**	: श्रीमती भगवती जैन
जन्म तिथि	: सम्वत् 1990	**पिता**	: श्री आनन्दी लाल जैन
	शक् सम्वत 1885	**धर्मपत्नी**	: श्रीमती मुन्नी देवी
जन्म स्थान	: बड़ोदा कान (अलवर)	**सुपुत्र**	: श्री मुकेश जैन
शिक्षा	: बी. ए. बी. एड.	**ब्रह्मचर्यव्रत**	: 1992
भाई	: श्री सुमेरचन्द्र		
सुपुत्रियाँ	: छह		
ऐलक दीक्षा	: 10 नवम्बर 1999, आचार्य कल्याणसागर द्वारा, सिद्धक्षेत्र, सोनागिरि		
मुनि दीक्षा	: 10 मार्च 2000, आचार्य श्री धर्मभूषण जी द्वारा, मेरठ		
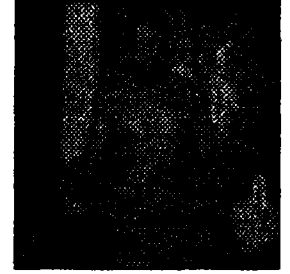
108 श्री चारित्रभूषण जी महाराज

गृहस्थ नाम	: श्री महेन्द्रकुमार जैन	**पिता**	: श्री स्व० डॉ० हरद्वारी लाल
जन्म तिथि	: 11 नवम्बर 1936	**धर्मपत्नी**	: श्रीमती राजदुलारी जैन
जन्म स्थान	: छपरौली (बागपत)	**सुपुत्र**	: तीन
शिक्षा	: सिविल इन्जीनियरिंग	**सुपुत्रियाँ**	: दो
सातवीं प्रतिमा	: 7 फरवरी 1995 आचार्य श्री विद्यानन्द जी द्वारा, ऋषभ विहार, दिल्ली		
मुनि दीक्षा	: 10 मार्च 2000, आचार्य श्री धर्मभूषण जी द्वारा, मेरठ		
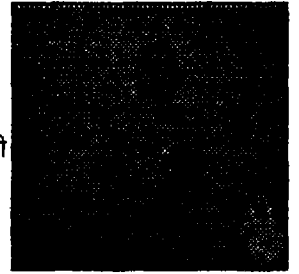
प्रकाशकीय

भारत की राजधानी दिल्ली के समीपस्थ औद्योगिक नगरी गाजियाबाद में परमपूज्य आचार्य 108 श्री धर्मभूषण जी महाराज का पावन वर्षायोग हमारे शतसहस्रपुण्यों का अमृत फल रहा। अपनी सैद्धान्तिक दृढ़ता और निर्दोष तपश्चर्या के पालन के लिए विख्यात आचार्य श्री के चरण सामीप्य में आने के पश्चात् हमने देखा संघस्थ ब्रह्मचारी गण कतिपय डायरियों में कुछ लिखते रहते हैं। एक दिन हमने पूछा ब्र० जी आप रात दिन क्या लिखा करते हैं। ब्र० जी बोले- पूज्य आचार्य श्री सदैव ज्ञान पिपासु एवं स्वाध्याय प्रेमी रहे हैं। कुछ डाँयरियाँ तो इनके द्वारा किए गए संकलन की हैं एवं कुछ हमने गुरुदेव के प्रवचनों को संग्रहीत किया है जिनको हम व्यवस्थित कर रहे हैं इनसे हमारा ज्ञानोपार्जन भी हो रहा है साथ ही आचार्य श्री के संघ के विशेष नियमों और सिद्धान्तों को लिख देने से परम्परा में भी इनका पालन होता रहेगा। हमें भी लगा ब्रह्मचारी जी बहुत महत्त्वपूर्ण कार्य कर रहे हैं। आचार्य श्री के प्रवचनों और संघ के सिद्धान्तों को तो स्थाई रूप से लिखित करके रखना ही चाहिए। हम सबने बैठकर सर्वप्रथम निर्णय लिया कि यदि इन सब प्रवचनों/संकलनों को सुव्यस्थित कराके जैन समाज, गाजियाबाद द्वारा प्रकाशित कर दिया जाय तो यह समाज के लिए बहुत उपयोगी रहेगा तथा समाज की धरोहर बन जाएगें ये ग्रन्थ। हमने पूज्य आचार्यश्री जी से अपनी भावना अभिव्यक्त की, कुछ संकोच के साथ उन्होंने यह आदेश देते हुए स्वीकृति दी "भाई देखो मैं सदैव नाम ख्याति से दूर रहा हूँ प्रकाशन ऐसा हो जिससे हमारी परम्परा व संघ की गरिमा यथावत् रहे कहीं भी ऐसा न लगे हम अपने नाम के लिए आज्ञा दे रहे हैं।" हमने उन्हें पूर्ण आश्वस्त किया। अब समस्या यह थी कि यह लगभग 2000 पृष्ठों का विशाल, अत्यधिक श्रम साध्य कार्य सैद्धान्तिक एवं प्रमाणिकता सम्पन्न कैसे हो क्योंकि यह कार्य जैनदर्शन हिन्दी संस्कृत के अध्येता के साथ जैनत्व एवं गुरुओं के लिए समर्पित विद्वानों के बिना संभव नहीं हो सकेगा। हमें भी समाधान मिल गया। इसके लिए हमने हमारे नगर में विद्यमान डॉ० नरेन्द्रकुमार जैन और डॉ० नीलम जैन से अनुरोध किया कि वे अपना अमूल्य समय हमें देकर समाज की ग्रंथ प्रकाशन की प्रबल भावना को साकार कर कृतार्थ करें। दोनों विद्वानों ने सहर्ष अपनी सहज स्वीकृति प्रदान की। हम दोनों विद्वानों के प्रति सर्वप्रथम आभार प्रकट करते हैं जिन्होंने निःस्वार्थ भाव एवं अत्यधिक निष्ठा से इस महनीय कार्य को सम्पादित कर ग्रंथों को श्लाघनीय स्वरूप प्रदान किया। एतदर्थ हम दोनों निःस्पृह विद्वद्रत्नों के अत्यन्त-कृतज्ञ एवं उनके प्रति श्रद्धावनत हैं।

आचार्य श्री की भावना है कि सरल भाषा में लिखे गये यें ग्रन्थ जन–जन तक पहुँचें और वे इनका सदोपयोग करें इसलिये इन ग्रन्थों को लागत मूल्य से आधे मूल्य पर उपलब्ध कराने का निर्णय लिया गया है। सभी दानवीरों की सूची इन ग्रन्थों के पिछले पन्नों पर छपी हुई है।

इस सुकृत्य के लिए ग्रन्थों के तीनों भागों के प्रकाशन हेतु द्रव्य प्रदान करने वाले धर्म परायण बन्धु भी श्लाघ्य हैं। धार्मिक समाज की जितनी प्रशंसा की जाय उतनी कम हैं क्योंकि उसके प्रत्यक्ष/अप्रत्यक्ष सहयोग से ही आज जैनदर्शनसार के तीनों भाग प्रकाशित होकर स्वाध्यायार्थ सम्मुख हैं।

कुशल मुद्रक श्री रवि जैन, दीप प्रिण्टर्स ने यथासमय सुन्दर छपाई में ग्रंथ मुद्रित कर हमें सौंप दिए। एतदर्थ उन्हें हमारा हार्दिक धन्यवाद।

अन्त में, सभी स्वाध्याय प्रेमी इस कृति से लाभन्वित हों, ऐसी भावना के साथ परम पूज्य आचार्य श्री के चरणों में त्रिधा नमोऽस्तु करते हुए हम अपने निवेदन पूर्ण करते हैं।

डी.के. जैन, अध्यक्ष
रवि कुमार जैन, मंत्री
श्री दि. जैन मन्दिर समिति
कविनगर (गाजियाबाद)

बी.डी.जैन
प्रबन्ध–संयोजक

सम्पादकीय

युगद्रष्टा, युगशिल्पी एवं श्रमणसंस्कृति के समर्थ संवाहक, चारित्र चूड़ामणि परम पूज्य 108 आचार्य प्रवर श्री शान्तिसागर जी 'छाणी' की गौरवमयी परम्परा के यशस्वी संवर्द्धक 108 आचार्य श्री धर्मभूषण जी महाराज वर्तमान में ऐसे गरिमामण्डित श्रमणरत्न हैं, जो अपनी कठोर निर्दोष मुनिधर्मचर्या एवं आगमसम्मत सैद्धान्तिक धर्मचर्चा से सर्वत्र विख्यात हैं। 'जे कम्मे सूरा ते धम्मे सूरा' के जीवन्तरूप आचार्य श्री गृहस्थ जीवन से अपने निरन्तर चिन्तन, मनन तथा आचरण द्वारा अपनी अन्तश्चेतना की उन गहराईयों में स्थापित रहे जहां से उनकी आत्मानुभूति परिष्कृत होकर उदात्त साधना से आत्मिक विकास के सोपानों पर उर्ध्वारोहण हेतु अनवरत गतिमान रही। स्वाध्याय, साधु संगति एवं वैयावृत्ति के पावन-परस से विकास पथ की समस्त बाधाओं एवं व्यवधानों से परे शान्ति, पवित्रता, कल्याण, सद्भावना तथा सद्विचार कोष से अक्षयदान करते हुए दिव्य एवं चरम सत्य से अनुप्राणित सद्गृहस्थ, श्रेष्ठ श्रावक की समस्त क्रियाओं के समुचित अनुपालन के साथ जीवन के परम साध्य उस अन्तर्रात्मा में रम गए, जो मानव उन्नति की पराकाष्ठा है एवं उत्तम पुरुषार्थ की चरम परिणति है।

जैनदर्शन जिन्हें सच्चा साधु, वीतरागी सन्त तथा उत्कृष्ट श्रमण कहता है, गृहस्थ प्रेमचन्द्र ने ब्र० प्रेमचन्द्र, क्षुल्लक कुलभूषण, मुनि धर्मभूषण और आचार्य धर्मभूषण ने खुली खड्ग पर नंगे पांव चलने जैसे कठोर तप के कण्टकाकीर्ण पथ को बहुत विवेक और साधना से तय किया है। शुभ्र आध्यात्म शिखर के ध्यानस्थ योगी और साधक होते हुए भी आचार्य श्री की करुणा एवं वात्सल्य सरिता का पवित्र एवं दिव्य स्रोत प्रतिपल जगतीतल पर प्रवहमान रहता है। मानवता के प्राङ्गण को अभिसिञ्चित करती हुई उनकी करुणा आशीष बनकर हरपल झलकती और छलकती है। प्रत्येक के शीष पर उनके आशीष की छत्रछाया है। समदिक् ऊर्ध्वविकास की भावनाएं उनके रोम-रोम से प्रस्फुटित होती हैं। संसार के दु:खी प्राणियों का चित्त अनायास उस ओर आकर्षित होता है। पं० दौलतराम जी कहते हैं, करुणा को धारण करके ही गुरु संसारी प्राणियों को शिक्षा देते हैं, उपदेश देते हैं 'कहे सीख गुरु करुणा धार'।

आध्यात्म शिखर पर आरूढ़ सन्त कल्पनाओं में नहीं जीता। वह एक आत्मरस में ही लीन रहता है। उसकी वह आत्मलीनता स्वयं प्रकाश रूप है, जो अपनी ही दीप्ति से दैदीप्यमान रहती है, पर का उसे भान नहीं रहता। शरीर के संयोग बने रहने तक उनके आत्मानुभव के विकीर्ण होते प्रकाश पुञ्ज से दूसरे भी प्रकाशित होते हैं। अहिंसा और अनेकान्तात्मक दृष्टि के स्पर्श से परिमार्जित उनकी स्याद्वादमयी वाणी के समक्ष व्यक्ति एकान्त और दुराग्रह का परित्याग कर वस्तुस्थिति को समझने की ओर अग्रसर होता है। शनैः शनैः उसके हृदय में उद्भूत अहिंसा, अनेकान्त और अपरिग्रह का प्रबल प्रवाह वृद्धिगत होता हुआ वीतरागता को प्राप्त करा देता है। वीतरागता की पूर्णता में शिवत्व और

आंशिकता में मोक्ष का मार्ग प्रशस्त होता है, क्योंकि ये ही त्रिरत्न हैं। अपरिग्रह सम्यग्दर्शन है, अनेकान्त सम्यग्ज्ञान का प्रतिरूप है और अहिंसा सम्यक् चारित्र है। इन त्रय-रत्नों को अपने जीवन का पाथेय बनाकर अद्यावधि आचार्य धर्मभूषण जी ने मुक्ति पथ पर बढ़ते हुए दिग्भ्रमित जीवों को वीतरागता की ओर उन्मुख किया है।

'वीतरागता' आचार्य श्री के संघ का अटल नियम है। महाव्रती मूलधारा के इसी मार्ग पर चलकर मुक्ति को प्राप्त कर सकता है। राग और हिंसा को बढ़ावा देने वाली आधुनिक भौतिकता की चकाचौंध का संघस्थ आपके किसी पर भी कोई प्रभाव दृष्टिगोचर नहीं होता। कूलर, हीटर, मच्छरदानी, फोन, मोबाईल फोन, आदि का प्रयोग संघ में पूर्णतः वर्जित है। केशलुञ्च, दीक्षा दिवस, जन्मदिन आदि का समारोह भी नहीं मनाया जाता। अनेक विद्यालय, इण्टर कालेज, डिग्री कालेज, धार्मिक पाठशालाएं, धर्मशालाएं एवं अस्पताल आचार्य श्री के आशीर्वाद से सञ्चालित हैं, परन्तु उनके नाम से कोई भी संस्था नहीं है। किसी भी संस्थान को केन्द्र बिन्दु बनाकर कभी आपने उसके लिए धनसंग्रह आदि का विकल्प नहीं बनाया, उदार भक्तों ने स्वतः ही आपके वीतराग भाव से प्रेरणा लेकर परकल्याण हेतु उन्हें समृद्ध बनाया। आप इस प्रतिबन्ध के साथ कहीं ठहरते या चातुर्मास करते हैं, जहां धूप खेवन, दीप जलाना, हवन करना, लाईट की सजावट आदि जीवों के घात होने वाली क्रियाएं नहीं होगी। कलिकाल एवं अन्यधर्मों की विकृतियों के गहराते प्रभाव से जिनभक्तों को बचाने के लिए कतिपय महाव्रतियों ने सम्प्रति इन विभिन्न क्रियाकलापों के सम्बन्ध में शिथिलता मूलक उदारता का भी परिचय दिया है, परन्तु आचार्य धर्मभूषण जी ने विषम परिस्थितियों में भी दृढ़तापूर्वक मूल सिद्धान्तों पर ही दृढ़ रहने का उपदेश दिया है।

मिथ्यात्व एवं आगम विरोधी गतिविधियों, क्रियाओं और परम्पराओं में जैनकुल दीपों की अभिलिप्तता के कारण जैन संस्कृति के सितारों के ज्ञान प्रकाश को धूमिल देख आचार्य श्री के हृदय की अजस्र करुणरसधारा आदिकवि की भांति वाणी में अधिष्ठापित हो गयी। साधु जीवन की कठिन, नियमित और संयमित दिनचर्या में उपदेश का समय सीमित है तथा इस कलिकाल में उसका प्रभाव भी स्थायी नहीं, यह जानकर वे अपनी विलक्षण स्वानुभूति को लेखनी के माध्यम से मूर्तरूप देने का प्रयत्न करते रहे। प्रारम्भ से ही आचार्य श्री स्वाध्याय रसिक, उत्कृष्ट क्षयोपशमी एवं विलक्षण धारणा शक्ति सम्पन्न रहे हैं। न जाने कितने श्लोक, गाथाएं, सवैये, भजन, दोहे आदि उनको कण्ठस्थ हैं। पूज्य 108 आचार्य श्री शान्तिसागर जी हस्तिनापुर वालों के इन सुयोग्य शिष्य ने जैसे अन्तरंग की आंख से समयपूर्व ही अनागत देख/पढ़ लिया। यही कारण है कि वे जो पढ़ते, चिन्तन करते अथवा कहीं कोई जनोपयोगी मानव मात्र को सम्यक् पथारूढ़ करने वाला सहज/सरल दृष्टान्त प्राप्त करते उसे तुरन्त नोट कर लेते और देखते देखते, चतुरनुयोग समन्वित सैद्धान्तिक, रूढिभंजक, मिथ्यात्व नाशक वह संग्रह विशाल ग्रन्थ रूप हो गया। शिष्यों का एक विशाल समुदाय अहर्निश अपने गुरु की चर्या का अन्तर्साक्षी था ही, बहु आयामी बनकर वह क्षण भी आया जब उन्होंने भावभीना निवेदन किया - **'गुरुदेव, जब से आपने सल्लेखना धारण की हमारा मोही मन भयभीत रहता है। हम रागी और लोभी प्राणी हैं, हम चाहते हैं आप अपनी धरोहर हमें सौप दें।** यह हमें ज्ञान समर्थ/सम्पन्न बनाएगी तथा चारित्र

मोहनीय के उदय से जब कभी, हमारे पग डगमगाएंगे, हमें सावधान भी रखेगी।' गुरुदेव अपनी शिष्य मण्डली की प्रार्थना को अस्वीकार नहीं कर सके और उन्होंने अपने भक्तों के अन्तरङ्ग से प्रसूत आग्रह को स्वीकार कर लिया। राग और अहमन्यता के बिना, स्वान्त:सुखाय लिपिबद्ध किया गया अनुभव/संग्रह यदि परकल्याण का कारण बन जाये तो एक सन्त के लिए इससे बढ़कर और क्या प्रसन्नता होगी।

विभिन्न स्थानों पर प्रदत्त आचार्य श्री के प्रवचन, जो अपनी ज्ञानवृद्धि के लिए उनके अन्तेवासी शिष्यों द्वारा लेखनीबद्ध कर लिये गये थे, उनको भी इस ग्रन्थनिधि के साथ संयुक्त कर लिया गया है। इस पुनीत कार्य में अग्रणी आचार्य श्री के साथ छाया की भाँति रहते ब्र० रिपुदमन प्रवचनों को व्यवस्थित रूप देते रहते। सुश्री निधि जैन मुजफ्फरनगर ने भी इस ग्रन्थ के संयोजन में महत्त्वपूर्ण सहयोग दिया है। भारत की राजधानी के समीपस्थ औद्यौगिक नगरी गाजियाबाद के मध्य स्थित कविनगर के श्री पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन मन्दिर में आचार्य श्री का पावन वर्षायोग 2002 सभी को कृत्यकृत्य कर गया। इस अवधि में ब्र० राजकुमार जैन, रघुवरपुरा, दिल्ली, बालब्रह्मचारी श्री मुकेश जैन एवं ब्र० रेणु जैन, मेरठ ने अहर्निश अथक प्रयास करते हुए समस्त विषयवस्तु को प्रेस कापी का रूप दे दिया। सौभाग्य से गाजियाबाद में अवस्थित होने के कारण हम लोग भी गुरु आशीष रूपी मेघ की शत-सहस्त्र धाराओं से अभिसिञ्चित, अभिभूत हो गये। षट्खण्डागम तुल्य इस जैनदर्शनसार ग्रन्थ के ज्ञानकोष से ज्ञानवृद्धि करते हुए अपनी अल्पज्ञता का पूर्ण अनुभव होते हुए भी 'तेरा तुझको अर्पण' की भावना से संपृक्त हो उनके व्यक्तित्व को प्रमुख मानकर विषयगत वैचारिक गम्भीरता के अनुरूप विवेचन को हम लोगों ने 'जस का तस' रखा है।

तीन भागों में विभक्त इस विशाल ग्रन्थ में आचार्य श्री ने प्राय: जैनधर्म-दर्शन की सभी सूत्र सलिलाओं को समाहित किया है। प्रथम भाग में बारह अध्याय हैं। शास्त्र मङ्गलाचरण, विभिन्न ग्रन्थों के मङ्गलाचरण, जिनवन्दना, जिनवाणी स्तुति और गुरुभक्ति के पश्चात् प्रथम अध्याय में वक्ता एवं श्रोता के स्वरूप को विभिन्न दृष्टान्तों के माध्यम से स्पष्ट किया गया है कि सच्चे वक्ता तो वीतरागी जिन-अर्हन्त ही हैं एवं लौकिक वक्ता भी वही हो सकता है जो आकर्षक व्यक्तित्व का धनी, बुद्धिमान और आचार सम्पन्न हो। श्रोता को भव्य, जिज्ञासु, आदि सापेक्षिक दृष्टि वाला होना चाहिए। 'पतित से पावन तक' द्वितीय अध्याय में मानव के प्रकार धर्म, कर्म और पुरुषार्थ पर विस्तृत प्रकाश डाला गया है। तृतीय अध्याय मिथ्यात्व से सम्बन्धित है, जिसमें मिथ्यात्व के भेद, प्रभेदादि की चर्चा पूर्वक बताया गया है कि सम्यक्त्व की प्राप्ति के लिए मिथ्यात्व को कैसे दूर करें। चतुर्थ से अष्टम अध्याय तक क्रमश: सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र का विशद वर्णन किया गया है। चतुर्थ अध्याय में सम्यग्दर्शन के चार सोपान, तत्त्वों का श्रद्धान, स्व पर की यथार्थ श्रद्धा और सम्यक्त्वाचरण के बाद यथार्थ श्रद्धान के लिए आवश्यक जीव, अजीव प्रभृति सात तत्त्वों का पंचम अध्याय में स्वतंत्र विवेचन किया गया है। सम्यक्त्व, उसके दोष तथा नि:शंक, नि:कांक्ष, निर्विचिकित्सा आदि आठ अंगों का सदृष्टान्त विवरण षष्ठ अध्याय में है।

सम्यग्ज्ञान नामक सप्तम अध्याय में सम्यग्ज्ञान का स्वरूप महत्त्व प्रयोजन और प्रमाण-नय के भेद प्रभेदादि की चर्चा के बाद, स्वाध्याय, नौ पदार्थ, स्वपर भेद विज्ञान और स्वसंवेदन ज्ञान के रूप में

सम्यग्ज्ञान के क्रमशः चार सोपानों पर विचार निबद्ध हैं। अष्टम अध्याय में सम्यक् चारित्र का स्वरूप, अणुव्रती-महाव्रती के लिए आवश्यक संयम, अणुव्रत, महाव्रत, दिग्व्रत, देशव्रत आदि के विशेष विवरण सहित सम्यक् चारित्र को अशुभ से निवृत्ति-शुभ में प्रवृत्ति, दर्शन ज्ञान की एकता, समता-शमता और आत्मा में स्थिरता इन चार सोपानों के माध्यम से स्पष्ट किया गया है। नवम अध्याय 'दिगम्बर मुनिराज' में दिगम्बरत्व का स्वरूप, अन्य मतों में दिगम्बर साधु, दिगम्बर मुनिराजों की संख्या आदि बताते हुए मुक्ति के लिए आवश्यक दिगम्बरत्व के महत्त्व का आकलन किया गया है। दशम अध्याय व्रतों से सम्बन्धित है, जिसमें अणुव्रतों और महाव्रतों का विशद विवेचन है। एकादश अध्याय में गृहस्थों के षट् आवश्यक देवपूजा, गुरूपास्ति, स्वाध्याय, संयम, तप और दान पर आचार्य श्री के विचारों का सटीक प्रतिपादन है। इसमें वर्तमान में प्रचलित कुप्रथाओं, निर्वाण लाडू, दीपक-आरती , अखण्ड ज्योति, आशिका लेना, पञ्चामृत अभिषेक आदि की समीक्षा पूर्वक जिनभक्तों को मूल-आम्नाय से संयोजन हेतु सम्यक् उपासना पद्धतियों पर गम्भीर विवेचन प्रस्तुत किया गया है। राग से वैराग्य पथ पर चलकर मुक्ति कैसे प्राप्त करें, इसका सदृष्टान्त विवेचन अन्तिम द्वादश अध्याय में है।

जैनदर्शनसार के द्वितीय भाग में सात अध्याय हैं। ग्रन्थ का प्रारम्भ प्रथम भाग की तरह शास्त्र मङ्गलाचरण और जिनवन्दना से होता है। 'प्रथम अध्याय गुणस्थान' में चौदह गुणस्थानों के स्वरूप, गुणस्थानों में जीवों की संख्या, कर्मोदय सम्बन्धी सामान्य नियम, सत्ता, काल, मरण आदि का विस्तृत विवेचन है। द्वितीय अध्याय मार्गणाओं और ठाणाओं विषयक है। बारह भावनाओं और सोलहकारण भावनाओं का मार्मिक स्पष्टीकरण तृतीय अध्याय में है। धर्म का स्वरूप, उसके उत्तम क्षमा, उत्तम मार्दव आदि दश धर्मों तथा क्षमावाणी का चतुर्थ अध्याय में प्रतिपादन मानव कल्याण के लिए अत्यन्त उपादेय है। पंचम और षष्ठ अध्यायों में क्रमशः षट् लेश्याओं और कषायों का दिग्दर्शन है। पर्व नामक सप्तम अध्याय में रक्षाबन्धन, दीपावली, भगवान महावीर जयन्ती और वीर शासन जयन्ती पर आचार्य श्री के व्याख्यान निबद्ध हैं।

मङ्गलाचरण और जिनवन्दना से 'जैनदर्शनसार' तृतीय भाग का भी प्रारम्भ होता है। इसके प्रथम अध्याय में राम, सीता, सूर और तुलसी आदि के दृष्टान्त देकर मोहनीय कर्म की विचित्रता पर प्रकाश डाला गया है। द्वितीय अध्याय में कतिपय शलाका एवं पुराण पुरुषों के चारित्र का प्रतिपादन है। ऐतिहासिक प्रमुख आचार्यों और विद्वानों के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का आंकलन तृतीय अध्याय में किया गया है। 'जैन तथा अन्य भारतीय दर्शन' नामक चतुर्थ अध्याय में स्याद्वाद, अनेकान्त, सप्तभङ्गी, द्रव्य, गुण और पर्याय आदि- जैनदर्शन के प्रमुख सिद्धान्तों के विवेचन पूर्वक न्याय, वैशेषिक, योग, चार्वाक आदि अन्य भारतीय दर्शनों का सामान्य परिचय दिया गया है। पंचम अध्याय में पंचपरमेष्ठी का स्वरूप, पांच लब्धियों, भोग से योग की ओर, ज्ञान धारा और कर्मधारा, लोक और संसार में अन्तर, योग नहीं गुप्ति शान्ति कहां, इन्द्रिय अतीन्द्रिय आनन्द में अन्तर, सप्त व्यसन, मूर्ति पूजन तथा ध्यान के स्वरूप पर आचार्य श्री के विचार निबद्ध हैं।

सम्पूर्ण ग्रन्थ के तीनों भागों के अवलोकनोपरान्त हमारे विश्वास को स्थायित्व एवं संबल मिला है कि जिनभक्तों के लिए ये भागत्रय मोक्षमार्ग में रत्नत्रय की तरह सहायक होंगे। उसमें जो भी, जिस रूप

में व्यवस्थित है, वह पूज्य आचार्य श्री की ही भाषा शैली में उनके ही प्रवचनों की लिपिबद्धता है, हम लोगों ने मात्र ग्रन्थ के बहिरङ्ग स्वरूप को ही संवारा है। वैचारिक साम्यता की किन्हीं बिन्दुओं पर हमारी अनिवार्यता नहीं है। आचार्य श्री ने हमें इस विषय में स्वतन्त्र रखा है तथा बार-बार यही आदेश दिया है कि उनकी विचारधारा और सिद्धान्तों को यथावत् ही रखना है। हम लोगों ने भी आचार्य श्री की आज्ञा का अक्षरशः पालन किया है। यह अवश्य है कि शुद्धिकरण के क्षणों में अपने दृष्टिपथ के साथ हम जब-जब पृष्ठों पर रहे हैं, आचार्य श्री के ज्ञान, चिन्तन, मनन और आचरण से अभिभूत हुए हैं। पूर्ण विश्वास है आचार्य श्री की तप:साधना की अन्त:प्रेरित दिव्य देशना से सभी उपकृत होंगे।

हम उन सभी बंधुओं के अनुगृहीत हैं जिनकी उदार सहायता के बिना ग्रंथ का कार्य पूर्ण होना असंभव था। प्रारंभ से अंत तक सहयोगी बने रहे श्री मदन लाल जैन, गांधीनगर दिल्ली, श्री बी.डी. जैन, श्री रवि जैन, श्री डी.के. जैन, गाजियाबाद, श्री देवेन्द्रकुमार जैन, सर्राफ, मेरठ इस आयोजन से इतने अभिन्न हैं कि उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट करना मात्र औपचारिकता होगी।

जिन परम पूज्य आचार्यों, विद्वानों के ग्रंथों का कृति को सुव्यवस्थित करने में सहयोग लिया गया है उनके प्रति हम नत-शीश हैं।

दीप प्रिण्टर्स के प्रबन्धक श्री मनोहर लाल जैन तथा उनके कर्मचारियों का भी हम आभार प्रकट करते हैं जिनकी सहायता से ग्रंथ की छपाई इतनी साफ और सुन्दर हो सकी।

पूर्ण सावधानी रखते हुए भी प्रमादवश कहीं सिद्धान्त, व्याकरण, वाक्य विन्यास एवं प्रूफ रीडिंग आदि से सम्बन्धित- त्रुटिंया रह गयी हों उन्हें सुधीजन हम लोगों को अल्पज्ञ समझकर क्षमा करेंगे तथा आवश्यक सुधारकर पढ़ने का कष्ट करेंगे।

– डॉ॰ नरेन्द्रकुमार जैन

महावीर जयन्ती, 2003

– डॉ॰ नीलम जैन

अनुक्रमणिका

मङ्गलाचरण

ओं नमः सिद्धेभ्यः

ओं जय जय जय, नमोस्तु! नमोस्तु!! नमोस्तु!!!
णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं।।
ओंकारं बिन्दुसंयुक्तं, नित्यं ध्यायन्ति योगिनः।
कामदं मोक्षदं चैव, ओंकाराय नमो नमः।।१।।

अविरलशब्दघनौघप्रक्षालितसकलभूतलमलकलङ्का
मुनिभिरुपासिततीर्था सरस्वती हरतु नो दुरितान्।
अज्ञानतिमिरान्धानां ज्ञानाञ्जनशलाकया
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः।।2।।

।। श्री परमगुरवे नमः, परम्पराचार्यगुरवे नमः।।

सकलकलुषविध्वंसकं, श्रेयसां परिवर्धकं, धर्मसम्बन्धकं, भव्यजीवमनः प्रतिबोधकारकमिदं शास्त्रं श्री.... नामधेयम्। अस्य मूलग्रन्थकर्तारः श्रीसर्वज्ञदेवास्तदुत्तरग्रन्थकर्तारः श्रीगणधरदेवाः प्रतिगणधरदेवास्तेषां वचोनुसारमासाद्य श्री.... आचार्येण विरचितम्। श्रोतारः सावधानतया श्रृण्वन्तु।

मङ्गलं भगवान् वीरो, मङ्गलं गौतमो गणी।
मङ्गलं कुन्दकुन्दाद्यो, जैनधर्मोऽस्तु मङ्गलम्।।
सर्वमङ्गलमाङ्गल्यं, सर्वकल्याणकारकं।
प्रधानं सर्वधर्माणां जैनं जयतुशासनम्।।

मङ्गलाचरण ''मङ्गल'' और आचरण इन दो शब्दों की सार्थक युति है। मङ्गल में दो शब्द हैं 'मं' और 'गल'। 'मं' का अर्थ है विकृति (पाप, अहंकार आदि अन्य विकारी भाव) 'गल' का अर्थ है 'गलना' अथवा नष्ट होना, जिसके आचरण करने से अथवा जिसको जीवन में धारण करने से विकृतियों का समूह विगलित होता है, पाप नष्ट हो जाते हैं जो मुक्ति के लिए उत्साह, प्रेरणा और उमंग देता है वह मङ्गलाचरण है। सभी महान् ग्रन्थों का प्रारंभ मङ्गलाचरण से होता है जिससे वे ग्रन्थ श्रोताओं, रचनाकार एवं वक्ता सभी के जीवन पथ को मङ्गलमय करने में कारण बनें तथा भवसागर पार करने में सहायक हों। मङ्गलाचरण करते ही हमारा उपयोग लौकिकता से हटकर आध्यात्मिकता की ओर मुड़ जाता है, भाव निर्मल एवं विशुद्ध होते हैं तथा मन भी एकाग्र हो जाता है।

जिन-वन्दना

जो मोह माया मान मत्सर, मदन मर्दन वीर है।
जो विपुल विघ्नों बीच में भी, ध्यान धारण-धीर है॥
जो तरण-तारण, भव-निवारण, भव जलधि के तीर है।
वे वंदनीय जिनेश तीर्थङ्कर स्वयं महावीर है॥१॥

जो राग-द्वेष विकार वर्जित, लीन आत्मध्यान में।
जिनके विराट, विशाल निर्मल, अचल केवलज्ञान में॥
युगपद् विशद सकलार्थ झलके, ध्वनित हों व्याख्यान में।
वे वर्द्धमान महान जिन, विचरें हमारे ध्यान में॥२॥

जिनका परम पावन चरित, जल निधि समान अपार है।
जिनके गुणों के कथन में गणधर न पावैं पार है॥
बस वीतराग-विज्ञान ही, जिनके कथन का सार है।
उन सर्वदर्शी सन्मति को, वंदना शतबार है॥३॥

जिनके विमल उपदेश में, सबके उदय की बात है।
समभाव समताभाव जिनका, जगत में विख्यात है॥
जिसने बताया जगत को, प्रत्येक कण स्वाधीन है।
करता न धर्ता कोई है, अणु-अणु स्वयं में लीन है॥४॥
आतम बने परमात्मा, हो शांति सारे देश में।
है देशना सर्वोदयी, महावीर के सन्देश में॥

जिनवाणीः स्तुति

वाणी सरस्वती तू जिनदेव की दुलारी, स्याद्वाद नामतेरा ऋषियों की प्राण प्यारी॥
सुर नर नरेन्द्र सब ही तेरी सुकीर्ति गावें, तुम भक्ति में मगन हो तो भी न पार पावें॥
इस गाढ़ मोहमद में हमको नहीं सुहाता, अपना स्वरूप भी तो नहीं मात याद आता॥
ये कर्म शत्रु जननी हमको सदा सताते, गतिचार माहिं हमको नित दुःख दे रुलाते॥
तेरी कृपा से माँ कुछ हम शांति लाभ करले, तुम दत्त ज्ञान बल से निज पर पिछान करले॥
हे मात तुम शरण में हम शीश को झुकावें, दो ज्ञान दान हमको जब लो न मोक्ष पावें॥
वाणी सरस्वती तू जिनदेव की दुलारी, स्याद्वाद नाम तेरा ऋषियों की प्राण प्यारी॥

भगवान महावीर के तीन सिद्धान्त

हम स्याद्वाद का डंका फिर, दुनिया में आज बजायेगें।
प्रभु वीर जिनेश्वर के गुण गा, जग से मिथ्यात्व हटायेगें॥
हठ का हम भूत भगायेंगे, अपेक्षा से समझायेगें।
अनेक गुण हैं वस्तु में, स्याद्वाद से बतलायेगें॥
है एक उमंग भरी दिल में, लहराये अहिंसा का झण्डा।
हो भव्य जीवों से भरी हुई, पृथ्वी को कर दिखलायेगें॥
परिग्रह वृत्ति को दूर भगा, आकिंचन धर्म अपनायेगें।
सिद्धान्त तीन महावीर के हैं, जन जन में हम पहुँचायेगें॥
समंतभद्र जैसा डंका, अकलंक बन आज बजायेगें।
आचार्य कुन्द-कुन्द कह गये, अध्यात्म सुमन संजोयेगें॥
जिन धर्म का बिगुल बजायेंगे, हम दूर हटा कायरता को।
सब छोड़ वृथा झगड़ों को हम, झण्डे की लाज बचायेगें॥

गुरु भक्ति का भजन

है परम-दिगम्बर मुद्रा जिनकी, वन-वन करे बसेरा।
मैं उन चरणों का चेरा, हो वंदन उनको मेरा..........।
शाश्वत सुखमय चैतन्य-सदन में, रहता जिनका डेरा॥ मैं उन......।
जहाँक्षमा मार्दव आर्जव सत् शुचिता की सौरभ महके।
संयम तप त्याग आकिंचन स्वर परिणति में प्रतिपल चहके।
है ब्रह्मचर्य की गरिमा से, आराध्य बने जो मेरा॥ मैं.........।
अन्तर-बाहर द्वादश तप से, जो कर्म-कालिमा दहते।
उपसर्ग परिषह-कृत बाधा जो, साम्य-भाव से सहते।
जो शुद्ध-अतीन्द्रिय आनन्द रस का, लेते स्वाद घनेरा॥ मैं........।
जो दर्शन ज्ञान चरित्र वीर्य तप, आचारों के धारी।
जो मन-वच-तन का आलम्बन तज, निजचैतन्य विहारी।
शाश्वत सुख दर्शक वचन-किरण से, करते सदा बसेरा॥ मैं....।
नित समता स्तुति वंदन और, स्वाध्याय सदा जो करते।
प्रतिक्रमण और प्रति-आख्यान कर, सब पापों को हरते॥
चैतन्यराज की अनुपम निधियाँ, जिनमें करें बसेरा॥ मैं....।

आचार्य कुन्दकुन्द महिमा

आचार्य कुन्दकुन्द जो भारत में न आते।
आध्यात्म समयसार कहो कौन सुनाते।।
रुचि करके कौन देता आत्मख्याति समयसार,
ऐसे अनेक ग्रन्थ भेद-ज्ञान के भण्डार।
उनके बिना हृदय में शान्ति कौन दिलाते।। आचार्य..........
जलती कषाय अग्नि सहज भाव जलाती,
कर्मों के महाबन्ध को आत्मा से कराती।
शान्ति का सहज प्याला कहो कौन पिलाते।। आचार्य..........
सम्यक्त्व बिना मोह ने भव वन में घुमाया
सम्यक्त्व बिना आत्मा को उसने सुलाया।
सम्यक्त्व बिना आत्मा की निधि कौन बताते। आचार्य..........
है जगत के संबंध कोई पार न पाया,
है सब, अनित्य, नित्य एक भी न पाया।
होता न सगा, आप जिसे अपना बताते।। आचार्य..........

सुवास पहचान रे

भैया जगवासी तूं उदासी ह्वै के जगत सौं,
एक छह महीना उपदेश मेरो मान रे।
और संकलप विकलप के विकार तजि,
बैठिके एकांत मन एक ठौर आन रे।।
तेरी घट सर तामें तूं ही ह्वै कमल वाको,
तू ही मधुकर ह्वै सुवास पहचान रे।
प्रापति न ह्वै है कछु ऐसा तू विचारत है,
सही ह्वै है प्रापति सरूप यों ही जान रे।।

— *बनारसीदास*

प्रथम अध्याय : गुणस्थान

जीव के भावों में होने वाले उतार-चढ़ाव का बोध जिससे होता है जैन सिद्धान्त में उसे गुणस्थान कहते हैं। ये गुणस्थान चौदह होते हैं। जीव के अन्तरंग में उठने वाले भाव पाँच प्रकार के होते हैं– औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक, औदयिक और पारिणामिक।

1. औपशमिक– जो गुण कर्मों के उपशम से होता है उसे औपशमिक कहते हैं।
2. क्षायिक– जो गुण कर्मों के क्षय-विनाश से प्रकट होता है उसे क्षायिक कहते हैं।
3. क्षायोपशमिक– जो गुण कर्मों के क्षय और उपशम से होता है उसे क्षायोपशमिक कहते हैं।
4. औदयिक भाव– जो गुण कर्मों के उदय से उत्पन्न होता है उसे औदयिक कहते हैं।
5. पारिणामिक– जो गुण कर्मों के उदय, उपशम क्षय और क्षयोपशम के बिना स्वभाव से ही होता है उसे पारिणामिक कहते हैं।

चूँकि जीव इन गुणों वाला होता है इसलिए आत्मा को भी गुण नाम से कहा जाता है और उस के स्थान गुणस्थान कहे जाते हैं वे चौदह हैं– मिथ्यादृष्टि, सासादन सम्यग्दृष्टि, सम्यक्-मिथ्यादृष्टि, असंयत सम्यग्दृष्टि, संयतासंयत, प्रमत्तसंयत, अप्रमत्तसंयत, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण, बादर साम्पराय, सूक्ष्म साम्पराय, उपशान्त कषाय वीतराग छद्मस्थ, क्षीणकषाय वीतराग छद्मस्थ, सयोग केवली और अयोग केवली। चूँकि ये गुणस्थान आत्मा के गुण के विकास को लेकर माने गये हैं। इसलिए इन्हें हम आत्मा की भूमिकाएँ भी कह सकते हैं।

कर्मों में सबसे प्रबल मोहनीय कर्म है। यह कर्म ही आत्मा की समस्त शक्तियों को विकृत करके न तो उसे सच्चे मार्ग का - आत्म स्वरूप का भान होने देता है और न उस मार्ग पर चलने देता है। किन्तु ज्यों ही आत्मा के ऊपर से मोह का पर्दा हटने लगता है त्यों ही उसके गुण विकसित होने लगते हैं। अत: इन गुणस्थानों की रचना में मोह के चढ़ाव और उतार का ही ज्यादा हाथ है। इनका स्वरूप संक्षेप में इस प्रकार है –

1. मिथ्यादृष्टि– मोहनीय कर्म के एक भेद मिथ्यात्व के उदय से जो जीव अपने हिताहित का विचार नहीं कर सकते अथवा विचार कर सकने पर ठीक विचार नहीं कर सकते वे जीव मिथ्यादृष्टि कहे जाते हैं। जैसे ज्वर वाले को मधुर रस भी अच्छा मालूम नहीं होता वैसे ही उन्हें भी धर्म अच्छा नहीं मालूम होता। संसार के अधिकतर जीव इसी श्रेणी के होते हैं।

जीव के एक गुणस्थान से दूसरे गुणस्थान में जाने-आने के अर्थ में गमनागमन शब्द का प्रयोग किया गया है–

गमन की अपेक्षा–

1. मिथ्यात्व गुणस्थानवर्ती जीव यदि अधिक से अधिक ऊपर के गुणस्थान में जायेगा तो वह सातवें अप्रमंतसंयत गुणस्थान तक जा सकता है अर्थात् प्रथम बार में ही वह आधे गुणस्थानों को पार कर जाता है क्योंकि कुल मिला कर गुणस्थान चौदह ही हैं और इसने प्रथम बार में ही सातवाँ गुणस्थान प्राप्त कर लिया है।

   जो सादि या अनादि मिथ्यादृष्टि होने पर भी द्रव्यलिंगी मुनिराज हो वे ही जीव अपने निजशुद्धात्मा के आश्रय करने का विशिष्ट पुरुषार्थ करने पर अप्रमत्तसंयत गुणस्थान में प्रवेश करते हैं। कोई सातिशय पुरुषार्थी जीव प्रथम समय में तो मिथ्यादृष्टि था और दूसरे समय में मिथ्यात्व कर्म तथा परिणाम का नाश करके उसी समय वह अनन्तानुबंधी चतुष्क, अप्रत्याख्यान चतुष्क और प्रत्याख्यान चतुष्क कर्मों का अनुदय रूप अभाव करके (वीतरागता व्यक्त होने से) भावलिंगी मुनिराज हो जाते हैं। तब उनके मात्र चारित्रमोहनीय में से संज्वलन कषाय चतुष्क और नव नोकषाय (कर्म तथा परिणाम) ही शेष रह जाते हैं।

2. कोई प्रथम गुणस्थानवर्ती द्रव्यलिंगी मुनिवर इस मिथ्यात्व गुणस्थान से सीधे विरताविरत गुणस्थान में भी गमन कर सकते हैं।
3. अथवा कोई द्रव्यलिंगी श्रावक प्रथम गुणस्थान से शुद्ध आत्मा के अवलंबन के बल से सीधे पाँचवे विरताविरत गुणस्थानवर्ती हो जाते हैं।
4. कोई द्रव्यलिंगी मुनिराज, द्रव्यलिंगी श्रावक अथवा अव्रती भद्र मिथ्यादृष्टि जीव मिथ्यात्व गुणस्थान से अविरत सम्यक्त्व गुणस्थान में जा सकते हैं।

आगमन-1. प्रमत्तसंयत गुणस्थानवर्ती भावलिंगी संत भी अनादि कालीन कुसंस्कारों के पुनः प्रगट होने पर विपरीत पुरुषार्थ से निज शुद्धात्मा का अवलंबन छूटने से तथा निमित्त रूप में यथायोग्य कर्मों का उदय आने से सीधे मिथ्यात्व गुणस्थान में आ सकते हैं।

2. पंचम गुणस्थानवर्ती विरताविरत श्रावक भी अपने हीन पुरुषार्थ अपराध से तथा उसी समय निमित्त रूप में यथायोग्य कर्मों के उदय से सीधे मिथ्यात्व गुणस्थान में आ जाता है।
3. क्षायिक सम्यग्दृष्टि को छोड़कर अन्य दोनों-औपशमिक तथा क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि जीव के जब श्रद्धा में विपरीतता आती है तब उसी समय मिथ्यात्व और अनन्तानुबंधी कषाय का उदय आने पर सीधे मिथ्यात्व गुणस्थान में आ जाते हैं।
4. मिश्रगुणस्थानवर्ती भी मिथ्यात्व में आ सकता है।
5. सासादन सम्यग्दृष्टि तो मिथ्यात्व गुणस्थान में आते ही हैं।

2. **सासादन सम्यग्दृष्टि–** जो जीव मिथ्यात्व कर्म के उदय को हटाकर सम्यग्दृष्टि हो जाता है वह जब सम्यक्त्व से च्युत होकर मिथ्यात्व में जाता है तो दोनों के बीच की यह श्रेणी होती है जैसे पहाड़ की चोटी से यदि कोई आदमी लुढ़के तो जब तक वह जमीन में नहीं आ जाता तब तक उसे न पहाड़ी की चोटी पर ही कहा जा सकता है और न धरा पर ही सम्यक्त्व चोटी के समान है, मिथ्यात्व धरा के समान है और गुणस्थान बीच के मार्ग के समान है। अतः जब कोई जीव आगे कहे जाने वाले चौथे गुणस्थान से गिरता है तभी वह गुणस्थान होता है। इस गुणस्थान में आने के बाद जीव नियम से पहले गुणस्थान में पहुँच जाता है।

सासादन सम्यग्दृष्टि जीव नियम से नीचे मिथ्यात्व गुणस्थान में ही गमन करता है मिश्र, अविरत सम्यक्त्व आदि ऊपर के गुणस्थानों में सासादन सम्यग्दृष्टि का गमन नहीं होता क्योंकि उसका मुख ही मिथ्यात्व की ओर हो गया है। इस कारण उसकी पर्यायगत पात्रता ही मात्र मिथ्यात्व में ही प्रवेश करने की है।

जैसे पेड़ से फल नीचे गिर रहा हो तो वह नीचे जमीन पर नियम से गिरता ही है बीच के अन्तराल से वापिस पेड़ पर नहीं जा सकता है। वैसे ही सासादन जीव सम्यक्त्व से छूट गया है, मिथ्यात्व में अभिमुख हो गया है अब सासादन से ही उपरिम गुणस्थानों में जाने का अवसर उसे नहीं है। अब तो मिथ्यादृष्टि होना ही अनिवार्य है। फिर मिथ्यात्व गुणस्थान से यथासंभव ऊपर के सर्व गुणस्थानों में पुनः पुरुषार्थ करने से गमन करना संभव है।

आगमन की अपेक्षा

1. औपशमिक सम्यग्दृष्टि प्रमत्तसंयत गुणस्थानवर्ती भावलिंगी महापुरुष सीधे सासादन सम्यक्त्व गुणस्थान में आ सकते हैं।
2. औपशमिक सम्यग्दृष्टि का देशविरत गुणस्थान से अर्थात् व्रती श्रावक अवस्था से सीधे सासादन गुणस्थान में आना बन सकता है।
3. औपशमिक सम्यग्दृष्टि का अविरत सम्यक्त्व नामक चौथे गुणस्थान से भी सासादन में आना संभव है क्योंकि औपशमिक सम्यग्दृष्टि ही सासादन सम्यक्त्वी हो सकते हैं। अन्य सम्यग्दृष्टि नहीं. यह अकाट्य नियम है।

3. **सम्यगमिथ्यादृष्टि–** जैसे दही और गुड़ को मिला देने पर दोनों का मिला हुआ स्वाद होता है उसी प्रकार एक ही काल में सम्यक्त्व और मिथ्यात्व रूप मिले हुए परिणाम को सम्यगमिथ्यादृष्टि कहते हैं।

गमन की अपेक्षा

1. सम्यमिथ्यात्वगुणस्थानवर्ती जीव ऊपर के मात्र अविरतसम्यक्त्व गुणस्थान में ही गमन करता है अन्य किसी ऊपर के गुणस्थानों में नहीं।
2. यदि सम्यगमिथ्यात्व गुणस्थान वर्ती जीव निचले गुणस्थान में गमन करता है तो वह एक मात्र मिथ्यात्व गुणस्थान में ही गमन करता है अन्य किसी नीचे के गुणस्थानों में नहीं।

आगमन– मिश्र गुणस्थान में सीधे आगमन के चार मार्ग हैं–

1. प्रमत्तसंयत गुणस्थानवर्ती भावलिंगी संत सीधे सम्यगमिथ्यात्व गुणस्थान में आ सकते हैं।
2. पंचम गुणस्थानवर्ती व्रती श्रावक का सीधे तीसरे गुणस्थान में आगमन हो सकता है।
3. चौथे अवरित सम्यक्त्व से भी मिश्र गुणस्थान में आना संभव है।

   ये तीनों तीसरे गुणस्थान में आने वाले औपशमिक अथवा क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि ही होने चाहिए। क्षायिक सम्यग्दृष्टि तीसरे गुणस्थान में नहीं आते, क्योंकि उनके पास सम्यगमिथ्यात्व दर्शनमोहनीय कर्म की सत्ता ही नहीं है।
4. सादि मिथ्यादृष्टि जिसके सम्यगमिथ्यात्व की सत्ता (अस्तित्व) हो और कदाचित उदय भी आते हों तो वह इस तीसरे गुणस्थान में आ सकता है।

4. **अंसयत सम्यग्दृष्टि–** जिस जीव की दृष्टि अर्थात् श्रद्धा समीचीन होती है उसे सम्यग्दृष्टि कहते हैं और जो जीव सम्यग्दृष्टि तो होता है किन्तु संयम नहीं पालता वह असंयत सम्यग्दृष्टि कहा जाता है। कहा भी है–

णो इंदियेसु विरदो णो जीवे थावरे तसे वापि।
जो सद्दहदि जिणुत्तं सम्माइट्ठी अविरदो सो ॥

– गो॰ जीव॰॥294॥

(जो न तो इन्द्रियों के विषयों से विरक्त है और न त्रस और स्थावर जीवों की हिंसा का ही त्यागी है, किन्तु जिनेन्द्र देव द्वारा कहे गये मार्ग का श्रद्धान करता है तथा जिसे उस पर दृढ़ आस्था है वह जीव असंयत सम्यग्दृष्टि है।)

आगे के सभी गुणस्थान सम्यग्दृष्टि के ही होते हैं।

गमन की अपेक्षा- कोई अविरत सम्यक्त्व गुणस्थानवर्ती द्रव्यलिंगी मुनिराज हो यदि वे अपने त्रिकालिक निज शुद्धात्मा का विशिष्ट पुरुषार्थ पूर्वक ध्यान करते हैं तो वे तुरन्त अगले समय में सातवें अप्रमत संयत गुणस्थान में गमन करते हैं अर्थात् भावलिंगी मुनिराज बन जाते हैं। चतुर्थ

गुणस्थान में तो एक कषाय चौकड़ी के अभाव से उत्पन्न वीतराग परिणति सहित थे और सातवें में जाते ही तीन कषाय चौकड़ी के अभाव पूर्वक व्यक्त महान वीतरागता के अपूर्व आनन्द का रसास्वादन करने लगते हैं।

2. चतुर्थ गुणस्थानवर्ती द्रव्यलिंगी मुनिराज अथवा चतुर्थगुणस्थानव्रर्ती द्रव्यलिंगी श्रावक चौथे गुणस्थान से देशविरत नामक पंचम गुणस्थान में भी गमन कर सकते हैं।

पहले से चौथे गुणस्थान में प्रवेश करना हो अथवा चौथे से ऊपर के किसी भी गुणस्थान में प्रवेश करना हो तो निज शुद्धात्मा का ज्ञान तथा ध्यान अनिवार्य है। शुद्धोपयोग पूर्वक ही चतुर्थ गुणस्थान में व इस से ऊपर के गुणस्थानों में जाना संभव है। ऐसा होने पर जहाँ जितने कर्मों का उपशम, क्षयोपशम, क्षय होना होता है वे सभी कार्य अपने आप ही हो जाते हैं।

आगमन की अपेक्षा

1. सादि या अनादि मिथ्यादृष्टि जीव मिथ्यात्व गुणस्थान से सीधे अविरत सम्यक्त्व गुणस्थान में आ सकते हैं।
2. सम्यगमिथ्यात्व गुणस्थानवर्ती जीवों का भी अविरत सम्यक्त्व गुणस्थान में गमन हो सकता है।
3. देशविरत गुणस्थान वर्ती जीवों का अपनी पुरुषार्थ-हीनता से अविरत सम्यक्त्व गुणस्थान में आना संभव है।
4. छठवें गुणस्थान वर्ती महामुनिराज भी सीधे चौथे गुणस्थान में आ सकते उपरिम गुणस्थानों से नीचे के गुणस्थानों में आये हुए मुनिराज तो तत्काल आत्माश्रित ध्यान--मग्नता का विशेष पुरुषार्थ करके सातवें अप्रमत्त संयत गुणस्थान पहुँचकर प्रचुर स्वसंवेदन रूप विशिष्ट अनुपम आनन्द का अनुभव करते हैं।

यदि सतत् प्रयत्न करने पर भी वास्तविक मुनि-दशा के योग्य छठवें सातवें गुणस्थान रूप भावलिंग की प्राप्ति नहीं होती तो स्वयं ही मुनि भेष/द्रव्यलिंग का त्याग हो इसमें विवेकी का संकोच या अपमान का अनुभव नहीं होता है। ये सर्व कार्य ज्ञानी अपने ही गुरु से विचार-विनिमय करके या आज्ञा लेकर करते हैं।

जैसे रत्नकरण्डश्रावकाचार के रचनाकार आचार्य श्री समन्तभद्र ने भस्मक रोग के कारण मुनिपद का त्याग किया था। फिर रोग-परिहार होते ही पुन: दिगम्बर दीक्षा को अंगीकार भी किया था। चौबीसवें कामदेव श्री जीवंधरकुमार के विद्यागुरु श्री आर्यनन्दी की कथा क्षत्र चूडामणि ग्रंथ द्वितीय लम्ब में प्रसिद्ध ही है। श्री आर्यनन्दी ने भी भस्मक रोग होने पर मुनि अवस्था का त्याग कर दिया था। तदनंतर भस्मक रोग से रहित होने पर पुन: मुनिपद अंगीकार करके उसी भव में मुक्ति प्राप्त की।

5 उपशम श्रेणी की अपेक्षा उपशम श्रेणी के चारों गुणस्थानों में मरण हो जाय तो सीधे चौथे में आते हैं अर्थात् मरण के अन्त समय पर्यंत तो श्रेणी का वही गुणस्थान रहता है किन्तु विग्रहगति में प्रथम समय से ही चौथा गुणस्थान हो जाता है।

5. **संयतासंयत–** जो संयत भी हो और असंयत भी हो उसे संयतासंयत कहते हैं। अर्थात् जो त्रसस्थावर हिंसा त्यागी है और यथाशक्ति अपनी शक्तियों पर भी नियंत्रण रखता है उसे संयतासंयत कहते हैं। व्रती गृहस्थ का चारित्र संयतासंयत होता है। इस गुणस्थान से आगे के गुणस्थान संयम की मुख्यता से होते हैं।

गमन की अपेक्षा

1. कोई पंचम गुणस्थानवर्ती द्रव्यलिंगी मुनिराज पहले जितना शुद्धात्मा का आश्रय ले रहे थे उससे भी विशेष अधिक रीति से निज शुद्धात्मा का आश्रय लेकर अर्थात् शुद्धोपयोग द्वारा ही अप्रमत्तविरत गुणस्थान में गमन करने से भावलिंगी मुनि हो जाते हैं।
2. भावलिंगी पंचम गुणस्थानवर्ती श्रावक हो अथवा पंचम गुणस्थानवर्ती द्रव्यलिंगी मुनिराज हों वे पाँचवे से
3. चौथे गुणस्थान में अथवा
4. तीसरे गुणस्थान में अथवा औपशमिक सम्यक्त्व के साथ हों तो
5. दूसरे गुणस्थान में अथवा परिणामों में विशेष अधःपतन करके सीधे
6. मिथ्यात्व गुणस्थान में भी गमन कर सकते हैं।

आगमन की अपेक्षा

1. प्रमतसंयत गुणस्थानवर्ती भावलिंगी मुनिराज सीधे देशविरत में आ सकते हैं।
2. चौथे गुणस्थानवर्ती द्रव्यलिंगी मुनिराज अथवा द्रव्यलिंगी श्रावक देशविरत गुणस्थान में आ सकते हैं।
3. प्रथम गुणस्थानवर्ती द्रव्यलिंगी मुनिराज अथवा द्रव्यलिंगी श्रावक भी सीधे इस देशविरत गुणस्थान में आ सकते हैं।

6. **प्रमत्तसंयत –** जो पूर्ण संयम को पालते हुए भी प्रमाद के कारण उसमें कभी-कभी कुछ असावधान हो जाते हैं उन मुनियों को प्रमत्तसंयत कहते हैं।

गमनागमन अपेक्षा

1. प्रमत्तसंयत गुणस्थानवर्ती भावलिंगी मुनिराज अपना यथायोग्य एक अन्तर्मुहूर्त काल व्यतीत करने पर हमेशा अभ्यस्त हो जाने के कारण त्रैकालिक निज सहजानन्द मय

शुद्धात्मा के ध्यान द्वारा शुद्धोपयोग प्रगट करके ऊपर के एकमेव अप्रमत्तसंयत गुणस्थान में ही गमन करते हैं अन्य अपूर्वकरण आदि गुणस्थानों में सीधे गमन नहीं करते हैं।

2. यदि छठवें से नीचे की ओर गमन करें तो अपनी पुरुषार्थ हीनता से अपने अपराध से और अन्य गुणस्थान के लिए यथायोग्य कर्मों के उदयादि से प्रमत्तसंयत गुणस्थानवर्ती भावलिंगी मुनिराज सीधे देशविरत गुणस्थान में गमन कर सकते हैं। यहाँ आते ही वे भावलिंगी मुनिराज प्रत्याख्यानावरण कषाय कर्म के उदय में पंचम गुणस्थानवर्ती द्रव्यलिंगी हो जाते हैं।

3. अन्तर्मुहूर्त पहले जो तीन कषाय चौकड़ी के अनुदय से भावलिंगी मुनिराज थे, वे ही पूर्व कुसंस्कारों की तीव्रता वश अपने परिणामों में हीनता आने से अगले अन्तर्मुहूर्त में छठवें से सीधे अप्रत्याख्यानादि कषाय कर्म के उदय में अविरत सम्यग्दृष्टि हो जाते हैं अर्थात् चतुर्थ गुणस्थानवर्ती द्रव्यलिंगी हो जाते हैं।

4. कोई छठवें गुणस्थान वर्ती सच्चे मुनिराज अपनी व्यक्त वीतरागता से च्युत होते हैं और उसी समय श्रद्धा में सम्यक् मिथ्यापना रूप परिणमित होकर मिश्र दर्शन मोहनीय कर्म के उदय के निमित्त से छठवें से सीधे तीसरे मिश्रगुणस्थान में गमन करते हैं।

5. कोई द्वितीयोपशम सम्यक्त्व सहित प्रमत्तसंयत मुनिराज चारित्र एवं सम्यग्दर्शन से च्युत होकर अनंतानुबंधी कषाय परिणाम के व्यक्त होने से तथा उसी समय अनंतानुबंधी कषाय कर्म का उदय भी आ जाने से दूसरे सासादन सम्यक्त्व गुणस्थान में गमन करते हैं।

6. कोई प्रमत्तसंयत गुणस्थानवर्ती भावलिंगी मुनिराज छठवें से सीधे मिथ्यात्व और अनन्तानुबंधी कषाय कर्म के उदय से मिथ्यात्व गुणस्थान में भी गमन करते हैं अर्थात् जो पहले समय में भावलिंगी मुनिराज थे, वे ही अपने पुरुषार्थ की विपरीतता के कारण वीतरागता रुप धर्म से च्युत हो जाने से प्रथम गुणस्थानवर्ती द्रव्यलिंगी मुनिराज हो जाते हैं।

आगमन–इस प्रमत्तसंयत गुणस्थान से आगमन मात्र अप्रमत्त संयत से ही होता है। अपूर्वकरण आदि उपरिम किसी भी गुणस्थानों से सीधे छठवें गुणस्थान में आगमन नहीं होता। नीचे के पाँचों गुणस्थानों में से भी प्रमत्तसंयत गुणस्थान में आगमन नहीं होता सातवें शुद्धोपयोग रूप अप्रमत्तसंयत गुणस्थान से ही शुभोपयोग रूप छठवें गुणस्थान में आगमन का नियम है।

7. **अप्रमत्तसंयत**– जो प्रमाद के न होने से अस्खलित संयम का पालन करते हैं ध्यान में मग्न रहते हैं ऐसे मुनियों को अप्रमत्त संयत कहते हैं।

सातवें गुणस्थान से आगे दो श्रेणियाँ प्रारम्भ होती हैं एक उपशम श्रेणी और दूसरी क्षपक श्रेणी। श्रेणी का मतलब है पंक्ति या मार्ग। जिस श्रेणी पर यह जीव कर्मों का उपशम करता है– उन्हें दबाता हुआ चढ़ता है उसे उपशम श्रेणी कहते हैं और जिस श्रेणी पर कर्मों को नष्ट करता हुआ चढ़ता है उसे क्षपक श्रेणी कहते हैं। प्रत्येक श्रेणी में चार-चार गुणस्थान होते हैं। आठवाँ, नवाँ और दसवाँ गुणस्थान उपशम श्रेणी व क्षपक श्रेणी दोनों में सम्मिलित है ग्यारहवाँ गुणस्थान मुनियों के ध्यान में क्रमश: होते हैं।

गमन की अपेक्षा

1. सातिशय अप्रमत्त संयत मुनिराज का ऊपर की ओर गमन मात्र अपूर्वकरण गुणस्थान में ही होता है।
2. स्वस्थान अप्रमत्त संयत मुनिराज का गमन नीचे प्रमत्तसंयत गुणस्थान में ही होता है।
3. यदि उपशम श्रेणी से नीचे पतन काल में कोई मुनिराज अप्रमत्त संयत गुणस्थान में आये हैं तो उनका गमन भी प्रमत्तसंयत गुणस्थान में ही होता है।
4. छठवें से सातवें में आये हों अथवा आठवें से सातवें गुणस्थान में आये हों तो भी यदि ध्यान मग्न मुनिराज का शुद्धोपयोग के काल में ही मरण हो जाता है तो उन मुनिराज का गमन विग्रहगति के समय चौथे अविरत सम्यक्त्व गुणस्थान में ही होता है।

आगमन की अपेक्षा

1. सादि या अनादि मिथ्यात्व गुणस्थानवर्ती द्रव्यलिंगी मुनिराज का मिथ्यात्व से सीधे अप्रमत्तसंयत गुणस्थान में आगमन हो सकता है।
2. अविरतसम्यक्त्व गुणस्थानवर्ती द्रव्यलिंगी मुनिराज का सीधे अप्रमत्तसंयत गुणस्थान में आगमन संभव है।
3. देशविरति गुणस्थानवर्ती द्रव्यलिंगी मुनिराज का भी सीधे सातवें अप्रमत्त संयत गुणस्थान में आगमन हो सकता है।
4. प्रमत्तसंयत गुणस्थानवर्ती भावलिंगी संतों का आगमन सातवें अप्रमत्त संयत में तो हमेशा होता ही है।
5. उपशम श्रेणी से नीचे की ओर पतन करने वाले अपूर्वकरण गुणस्थान से अप्रमत्त संयत में आना होता है।

8. **अपूर्वकरणः**- करण शब्द का अर्थ परिणाम है और जो पहले नहीं हुए है उन्हें अपूर्व कहते हैं। ध्यान में मग्न जिन मुनियों के प्रत्येक समय में अपूर्व परिणाम अर्थात् भाव होते हैं उन्हें अपूर्वकरण गुणस्थान युक्त कहा जाता है। इस गुणस्थान में न तो किसी कर्म का उपशम होता है और न क्षय होता है। किन्तु उसके लिए तैयारी होती है, जीव के भावप्रति समय उन्नत, उन्नततर होते चले जाते हैं।

गमन की अपेक्षा

1. उपशमक या क्षपक अपूर्वकरण गुणस्थानवर्ती मुनिराज ऊपर की ओर नियम से अनिवृत्तिकरण गुणस्थान में ही गमन करते हैं।
2. उपशमक अपूर्वकरण गुणस्थानवर्ती मुनिराज श्रेणी से उतरते हुए अप्रमत्त संयत गुणस्थान में ही गमन करते हैं।
3. यदि आठवें गुणस्थानवर्ती मुनिराज का आठवें गुणस्थान में मरण होता है तो तत्काल ही विग्रहगति के पहले समय में ही चौथे अविरत सम्यक्त्व गुणस्थान में ही गमन करते हैं।

आगमन की अपेक्षा

1. उपशमक अपूर्वकरण गुणस्थान में आगमन नीचे के सातवें अप्रमत्त संयत गुणस्थान से होता है।
2. उपशम श्रेणी से उतरते समय ऊपर के उपशमक अनिवृत्ति-करण गुणस्थान से भी आठवें गुणस्थान में आगमन होता है।
3. क्षपक अपूर्वकरण गुणस्थान में आगमन मात्र अप्रमत्त संयत गुणस्थान से ही होता है, ऊपर के किसी भी गुणस्थान से नहीं क्योंकि क्षपक नीचे उतरते ही नहीं वे तो नियमसे अरहन्त बनकर सिद्ध हो जाते हैं।

9. **अनिवृत्ति बादर साम्परायः**– समान समयवर्ती जीवों के परिणामों में कोई भेद न होने को अनिवृत्ति कहते हैं। अपूर्वकरण की तरह यद्यपि यहाँ भी प्रति समय अपूर्व परिणाम ही होते हैं किन्तु अपूर्वकरण में तो एक समय में अनेक परिणाम होने से समान समयवर्ती जीवों के परिणाम समान भी होते हैं और असमान भी होते हैं। परन्तु इस गुणस्थान में एक समय में एक ही परिणाम होने के कारण समान में रहने वाले सभी जीवों के परिणाम समान ही होते हैं। अपरिणामों को अनिवृत्ति करण कहते हैं और बादर साम्पराय का अर्थ स्थूल कषाय होता है। इस अनिवृत्ति करण के होने पर ध्यानस्थ मुनि या तो कर्मों को दबा देता है या उन्हें नष्ट कर देता है। यहाँ तक के सभी गुणस्थानों में स्थूल कषाय के पाये जाने के कारण गुणस्थान के नाम के साथ बादर साम्पराय जोड़ा गया है कहा है–

होंति अणियट्टिणो ते पडिसमयं जेस्सिमेक्क परिणामा।
विमलयरझाणहुयवहसिहाहिं णिद्दड्ढकम्मवणा।।

–आचार्य नेमिचन्द्र गोम्मट्टसार, जीवकाण्ड, 57

वे जीव अनिवृत्तिकरण परिणाम वाले कहलाते हैं, जिनके प्रतिसमय एक ही परिणाम होता है और जो अत्यन्त निर्मल ध्यानरूपी अग्नि की शिखाओं से कर्मरूपी वन को जला डालते हैं।

गमन की अपेक्षा

1. उपशमक अथवा क्षपक अनिवृत्तिकरण गुणस्थानवर्ती मुनिराज ऊपर की और सूक्ष्म सांपराय गुणस्थान में ही गमन करते हैं।
2. उपशम श्रेणी से उतरते समय अनिवृत्तिकरण गुणस्थानवर्ती मुनिराज उपशम अपूर्व करण गुणस्थान में ही गमन करते हैं।
3. यदि उपशमक अनिवृत्तिकरण गुणस्थानवर्ती मुनिराज का आयु क्षय के कारण मरण होता है तो विग्रहगति के समय नियम से चौथे अविरत सम्यक्त्व गुणस्थान में ही गमन करते हैं।

आगमन की अपेक्षा

1. उपशमक अनिवृत्तिकरण में आगमन नीचे के उपशमक अपूर्वकरण गुणस्थान से ही होता है।
2. उपशम श्रेणी से नीचे उतरने समय में दसवें उपशमक सूक्ष्मसांपराय गुणस्थान से इस नववें गुणस्थान में आगमन होता है।
3. क्षपक अनिवृत्तिकरण गुणस्थान में आगमन मात्र क्षपक अपूर्वकरण गुणस्थान से ही होता है।

10. **सूक्ष्मसाम्पराय**– उक्त प्रकार के परिणामों के द्वारा जो ध्यानस्थ मुनि कषाय को सूक्ष्म कर डालते हैं उन्हें सूक्ष्म साम्पराय गुणस्थान वाला कहा जाता है अथवा धुले हुए कौसुंभी वस्त्र की सूक्ष्म लालिमा के समान सूक्ष्मलोभ का वेदन करने वाले उपशमक अथवा क्षपक जीवों के यथाख्यात चारित्र से किंचित न्यून परिणामों को सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान कहते हैं।

गमन की अपेक्षा

1. उपशमक सूक्ष्मसांपराय गुणस्थानवर्ती महामुनिराज ऊपर की ओर उपशान्त मोह गुणस्थान में ही गमन करते हैं।

2. उपशम श्रेणी से उतरते समय उपशमक ही दसवें गुणस्थान से नीचे नववें अनिवृत्तिकरण गुणस्थान में ही गमन करते हैं।
3. यदि उपशमक सूक्ष्मसांपरय गुणस्थानवर्ती मुनिराज का मरण हो जाय तो विग्रहगति के समय उनका चौथे गुणस्थान में हीं गमन होता है।
4. क्षपक सूक्ष्मसांपराय गुणस्थानवर्ती महा मुनिराज क्षीणमोह गुणस्थान में ही गमन करते हैं।

आगमन की अपेक्षा

1. उपशमक सूक्ष्मसांपराय गुणस्थान में आगमन नीचे के उपशमक अनिवृत्तिकरण गुणस्थान से होता है।
2. श्रेणी से उतरते समय ऊपर के उपशान्त मोह गुणस्थान से भी सूक्ष्मसांपराय गुणस्थान में आगमन होता है।
3. क्षपक सूक्ष्मसांपराय गुणस्थान में आगमन मात्र क्षपक अनिवृत्तिकरण से ही होता है।

11. **उपशान्तकषाय वीतराग छद्मस्थ–** उपशमश्रेणी पर चढ़नेवाले के ध्यानस्थ मुनि जब उस सूक्ष्मकषाय को भी दबा देते हैं तो उन्हें उपशान्तकषाय कहते हैं अथवा निर्मल फल सहित स्वच्छ जल के समान अथवा शरद् कालीन सरोवर के जलके समान सर्व मोहनीय कर्म के उपशमन से व्यक्त होने वाली वीतराग दशा को उपशान्तमोह गुणस्थान कहते हैं।

इसमें कषाय को बिल्कुल दबा दिया जाता है अतएव कषाय का उदय न होने से इसका नाम उपशान्तकषाय वीतराग है। किन्तु इसमें पूर्ण ज्ञान और दर्शन को रोकने वाले कर्म विद्यमान रहते हैं इसलिए इसे छद्मस्थ भी कहते हैं। इसमें उपशमश्रेणी वाले मोह को धीरे-2 सर्वथा दबा देते हैं पर उसे निर्मूल नहीं कर पाते अत: जैसे किसी बर्तन में भरी हुई भाप अपने वेग से ढक्कन को गिरा देती है वैसे ही इस गुणस्थान में आने पर दबा हुआ मोह उपशम श्रेणी वाली आत्माओं को अपने वेग से नीचे की ओर गिरा देता है।

गमन की अपेक्षा

1. ग्यारहवाँ उपशान्तमोह गुणस्थान उपशमश्रेणी का अन्तिम गुणस्थान है। अत: इस गुणस्थान से आगे क्षीणमोह आदि गुणस्थानों में उपशान्तमोही मुनिराज का गमन नहीं होता है। उपशमक मुनिराज की उपशान्तमोह गुणस्थान पर्यन्त ही विकसित होने की पर्यायगत योग्यता रहती है।

   जैसे-खिलाड़ी गेद को ऊपर से ठप्पा लगाकर आकाश में उछालता है। गेद को ऊपर

से जब ठप्पा लगाते हैं तब वह गेद कितनी ऊपर आकाश में उछलेगी यह उसकी सामर्थ्य पर निश्चित होता है।

इसी प्रकार भावलिंगी मुनिराज का आन्तरिक बुद्धि पूर्वक पुरुषार्थ यही रहता है कि धारावाही रूप से शुद्धि की उत्तरोत्तर वृद्धि करते हुए पूर्णता को प्राप्त करें, परन्तु अबुद्धिपूर्वक श्रेणी आरोहण के समय अपूर्वकरण गुणस्थान के पहले समय के पुरुषार्थ के अनुसार ही यह स्वभाव से हीं निश्चित हो जाता हैं कि ये मुनिराज ऊपर के कौन से गुणस्थान तक जायेंगे। निर्णय कराने वाला कोई कर्म अथवा अन्य कोई भी नहीं है।

2. उपशान्तमोह गुणस्थानवर्ती मुनिराज यथायोग्य एक अन्तर्मुहूर्त काल पर्यन्त उपशान्त मोह गुणस्थान में पूर्ण वीतरागी तथा पूर्ण सुखी रहते हैं तदनन्तर नीचे के उपशमक सूक्ष्मसांपराय गुणस्थान में गमन करते हैं।

3. उपशमश्रेणी चढ़ते (आठवें गुणस्थान का प्रथम भाग छोड़कर) या उतरते समय उपशमक मुनिराज का किसी भी गुणस्थान में मरण संभव है अर्थात् मरण के अन्तिम समय पर्यन्त मुनिराज के श्रेणी का वही गुणस्थान रहता है जिसमें मरण होता है परन्तु मरण के पश्चात् विग्रहगति में वे उपशमक मुनिराज चौथे अविरतसम्यक्त्व गुणस्थान में ही गमन करते हैं और देवगति में ही जन्म लेते हैं।

आगमन की अपेक्षा

1. उपशान्तमोह गुणस्थान में नीचे के मात्र उपशमक सूक्ष्मसांपराय गुणस्थान से ही आगमन होता है। जैसे–आठवें, नववें और दसवें-तीनों गुणस्थानों के उपशमक और क्षपक ऐसे दो भेद होते हैं वैसे उपशान्तमोह गुणस्थान के उपशमक और क्षपक दो भेद नहीं हैं अत: उपशान्तमोह एक ही है।

12. **क्षीणकषाय वीतराग छद्मस्थ–** क्षपकश्रेणी पर चढ़ने वाले मुनि मोह को धीरे-धीरे नष्ट करते-करते जब सर्वथा निर्मूल कर डालते हैं तो उन्हें क्षीणकषाय वीतराग छद्मस्थ कहते हैं अथवा स्फटिक मणि के पात्र में रखे हुए निर्मल जल के समान सम्पूर्ण कषायों के क्षय होने से जीव के अत्यन्त निर्मल वीतरागी परिणामों को क्षीणमोह गुणस्थान कहते हैं।

सातवें गुणस्थान से आगे बढ़ने वाले ध्यानी साधु चाहे उपशम श्रेणी चढ़ें अथवा क्षपक श्रेणी चढ़ें। आठवाँ, नवाँ, दसवाँ गुणस्थान सभी प्राप्त करते हैं। अन्तर केवल आत्मविशुद्धि और आत्मबल का होता है। जिसके कारण उपशमश्रेणी वाला ग्यारहवें गुणस्थान से दबे हुए मोह

के उद्भूत हो जाने से नीचे गिर जाता है और क्षपकश्रेणी वाला मोह को सर्वथा नष्टकरके दसवें से बारहवें गुणस्थान में पहुँच जाता है। यह सब जीव के भावों का खेल है। यह नियम है कि जो जीव ग्यारहवें गुणस्थान में पहुँचता है उसका पतन निश्चित है और बारहवें गुणस्थान में पहुंचने वाला कभी नहीं गिरता बल्कि ऊपर को ही चढ़ता है।

गमन

क्षीणमोह गुणस्थानवर्ती महामुनिराज ऊपर की ओर एक तेरहवें सयोगकेवली गुणस्थान में ही गमन करते हैं।

आगमन

इस क्षीणमोह गुणस्थान में आगमन मात्र क्षपक सूक्ष्म साम्पराय गुणस्थान से ही होता है।

13. **सयोगकेवली**– समस्त मोहनीय कर्म के नष्ट हो जाने पर बारहवाँ गुणस्थान होता है। मोहनीय कर्म के चले जाने से शेष कर्मो की शक्ति क्षीण हो जाती है अत: बारहवें के अन्त में ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय इन तीनों घातिया कर्मों का नाश करके क्षीणकषाय मुनि सयोगकेवली हो जाता है ज्ञानावरण कर्म के नष्ट हो जाने से उसके केवलज्ञान प्रकट हो जाता है वह ज्ञान पदार्थों के जानने में इन्द्रिय, प्रकाश और मन वगैरह की सहायता नहीं लेता इसीलिए उसे केवलज्ञान कहते हैं और उसके होने के कारण इस गुणस्थान वाले केवली सयोग कहलाते हैं। ये केवली आत्मा के शत्रु घातिया कर्मों को जीत लेने के कारण जिन, परमात्मा, जीवन्मुक्त, अरहन्त आदिनामों से पुकारे जाते हैं। जैन तीर्थंकर इसी अवस्था को प्राप्त करके जैनधर्म का प्रवर्तन करते हैं। जगह-जगह विहार कर प्राणिमात्र को उसके हित का मार्ग बतलाते हैं और इसी कार्य में अपने जीवन के शेष दिन बिताते हैं। जब आयु अन्तर्मुहूर्त अर्थात् एक मुहूर्त कम रह जाती है तब सब व्यापार बन्द करके ध्यानस्थ हो जाते हैं। जब तक केवली के मन, वचन और काय का व्यापार रहता है तब तक वे सयोग केवली कहलाते हैं।

गमन की अपेक्षा

सकल परमात्मा जिनेन्द्र, तेरहवें गुणस्थान से नियम पूर्वक चौदहवें अयोगकेवली गुणस्थान में ही गमन करते हैं।

आगमन

मात्र क्षीणमोह गुणस्थान से ही सयोगकेवली गुणस्थान में आगमन होता है।

14. **अयोगकेवली**– जब केवली ध्यानस्थ होकर मन, वचन और काय का सब व्यापार बन्द कर देते हैं तब उन्हें अयोगकेवली कहते हैं। ये अयोगकेवली शेष बचे हुए चार अघातिया

कर्मों को भी ध्यान रूपी अग्नि के द्वारा भस्म करके समस्त कर्म और शरीर के बन्धन से छूटकर मोक्ष लाभ करते हैं।

गमन की अपेक्षा

चौदहवें अयोगकेवली गुणस्थान में सिद्ध दशा में ही गमन होता है।

आगमन

इस चौदहवें गुणस्थान में आगमन मात्र सयोगकेवली गुणस्थान से ही होता है।

गुणस्थानों में जीवों की संख्या

1. प्रथम गुणस्थान में जीवों की संख्या अनन्तानन्त है।
2. द्वितीय गुणस्थान में जीवों की संख्या पल्य के असंख्यातवें भाग प्रमाण है।
3. तृतीय गुणस्थान में जीवों की संख्या पल्य के असंख्यातवें भाग प्रमाण है।
4. चतुर्थ गुणस्थान में जीवों की संख्या पल्य के असंख्यातवें भाग प्रमाण है।
5. पंचम गुणस्थान में जीवों की संख्या पल्य के असंख्यातवें भाग प्रमाण है।
6. प्रथम गुणस्थान में मनुष्यों की अपेक्षा संख्या जगतश्रेणी के असंख्यातवें भाग प्रमाण है।
7. द्वितीय गुणस्थान में मनुष्यों की अपेक्षा संख्या बावन (52) करोड़ है।
8. तृतीय गुणस्थान में मनुष्यों की अपेक्षा संख्या एक सौ चार (104) करोड़ है।
9. चतुर्थ गुणस्थान में मनुष्यों की अपेक्षा संख्या सात सौ (700) करोड़ है।
10. पंचम गुणस्थान में मनुष्यों की अपेक्षा संख्या तेरह (13) करोड़ है।
11. छठवें गुणस्थान में जीवों की संख्या पाँच करोड़ तेरानवें लाख अठानवे हजार दो सौ छह (5, 93, 98, 206) है।
12. सातवें गुणस्थान में जीवों की संख्या दो करोड़, छियानवे लाख, निन्यानवे हजार एक सौ तीन (2, 96, 99, 103) है।
13. उपशम श्रेणी के आठवें, नवमें, दशवें, ग्यारहवें गुणस्थान में 299, 299, 299, 299 जीव हैं।
14. उपशम श्रेणी के चारों गुणस्थानों में जीवों की संख्या 1196 है।
15. क्षपकश्रेणी के आठवें, नौवे, दसवें, बारहवें गुणस्थानों में जीवों की संख्या 598, 598, 598, 598 प्रमाण है।
16. क्षपकश्रेणी के चारों गुणस्थानों में जीवों की संख्या 2392 है।

17. तेरहवें गुणस्थान में जीवों की संख्या आठ लाख अट्ठानवे हजार पाँच सौ दो (898 502) है।

18. चौदहवें गुणस्थान में जीवों की संख्या 598 है।

19. छठवें गुणस्थान से चौदहवें गुणस्थान तक जीवों की संख्या का जोड़ है–

    5, 93, 98, 206 + 2, 96, 99, 103 + 1196 + 2392 + 898 502 + 598 = 8, 99, 99, 997।

20. ये तीन कम नौ करोड़ मुनिराज भावलिंगी ही होते हैं।

21. द्रव्यलिंगी मुनिराज दूसरे, तीसरे, चौथे, पाँचवें गुणस्थान में भी होते हैं।

गुणस्थानों में बंध संबंधी सामान्य नियम

1. मिथ्यात्व की प्रधानता से 16 प्रकृतियों (मिथ्यात्व, हुंडक संस्थान, नपुंसकवेद, असंप्राप्ता सृपाटिका संहनन, एकेन्द्रिय, स्थावर, आतप, सूक्ष्म, अपर्याप्तक, साधारण द्विन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, नरकायु) का बंध होता है।

2. अनन्तानुबंधी कषाय जनित अविरति से 25 प्रकृतियों (अनन्तानुबंधी चार, स्त्यानगृद्धि निद्रा-निद्रा, प्रचला-प्रचला, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, न्यग्रोधपरिमण्डलसंस्थान, कीलितसंहनन, अप्रशस्त विहायोगति, स्त्रीवेद, नीचगोत्र, तिर्यंचगति, तिर्यंचगत्यानुपूर्वी, उद्योत, तिर्यगायु) का बंध होता है।

3. अप्रत्याख्यानावरण कषाय उदय जनित अविरति से 10 प्रकृति (अप्रत्याख्यान चार, वज्र वृषभनाराचसंहन, औदारिकशरीर, औदारिक अंगोपांग, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, मनुष्यायु आदि) का बंध होता है।

4. प्रत्याख्यानावरण कषाय उदय जनित अविरति से 4 प्रकृति (प्रत्याख्यान कषाय चार) का बंध होता है।

5. संज्वलन के तीव्र उदय जनित प्रमाद से 6 प्रकृति (अस्थिर, अशुभ, असतावेदनीय, अयशकीर्ति,, शोक आदि) का बंध होता है।

6. संज्वलन और नोकषाय के मन्द उदय से 58 प्रकृति (निद्रा, प्रचला, देवायु, तीर्थंकर, निर्माण, प्रशस्त विहायोगति, पंचेन्द्रिय, तेजस, कार्मण, आहारक, आहारक अंगोपांग, समचतुरस्र संस्थान, देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, वैक्रियिक, वैक्रियिक आंगोपांग, वर्ण, रस, गन्ध, स्पर्श, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, त्रस, बादर, पर्याप्तक, प्रत्येक, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय हास्य, रति, भय, जुगुप्सा, पुरुषवेद, संज्वलन कषाय चार, मत्यावरण आदि

पाँच, दानान्तराय आदि पाँच, चक्षु दर्शनावरण आदि चार, यश:कीर्ति, उच्चगोत्र) का बंध होता है।

7. योग से एक साता वेदनीय का बंध होता है।
8. तीर्थकर प्रकृति का बंध सम्यक्दृष्टि के चतुर्थ गुणस्थान से आठवें गुणस्थान के छठे भागतक ही होता है।
9. आहारक शरीर, आहारक आंगोपांग का बंध सातवें से आठवें गुणस्थान के छठे भाग तक ही होता है।
10. तीसरे गुणस्थान में किसी भी आयु का बंध नहीं होता हैं।

गुणस्थानों में उदय संबंधी सामान्य नियम

1. तीर्थंकर प्रकृति का उदय तेरहवें और चौदहवें गुणस्थान में ही होता है।
2. आहारक शरीर और आहारक अंगोपांग का उदय छठवें गुणस्थान में ही होता है।
3. सम्यक्मिथ्यात्व प्रकृति का उदय तीसरे गुणस्थान में ही होता है।
4. सम्यक् प्रकृति का उदय चौथे से सातवें गुणस्थान तक वेदक सम्यग्दृष्टि के ही होता है।
5. नरकगत्यानुपूर्वी का उदय दूसरे गुणस्थान में नहीं होता है।
6. चारों आनुपूर्वी का उदय चौथे गुणस्थान में होता है।
7. विग्रहगति में पहला, दूसरा और चौथा गुणस्थान ही होता है।
8. दूसरा गुणस्थान गिरते समय ही होता है।
9. दूसरे गुणस्थानवर्ती जीव मरकर नरक नहीं जाता।
10. पहला गुणस्थान एक मिथ्यात्व और चार अनन्तानुबंधी के उदय से होता है।
11. दूसरा गुणस्थान चार अनन्तानुबंधी के उदय से होता है।
12. तीसरा गुणस्थान सम्यक् मिथ्यात्व के उदय से होता है।
13. चौथा गुणस्थान सात प्रकृति (चार अनन्तानुबंधी, सम्यक् प्रकृति, मिथ्यात्व प्रकृति, सम्यगमिथ्यात्व प्रकृति) के उपशम, क्षय या एक सम्यक् प्रकृति के उदय से होता है।
14. पाँचवाँ गुणस्थान चारित्र मोहनीय की 17 प्रकृतियों (प्रत्याख्यान 4, संज्वलन 4, नोकषाय-9 के उदय से होता है।
15. छठा गुणस्थान संज्वलन और नोकषाय के तीव्र उदय से होता है।
16. संज्वलन और नोकषाय के मन्द उदय से सातवाँ गुणस्थान होता है।

17. संज्वलन और नोकषाय के मंदतम उदय से आठवाँ गुणस्थान होता है।
18. संज्वलन और नोकषाय के अति मन्द उदय से नौवाँ गुणस्थान होता है।
19. संज्वलन सूक्ष्मलोभ के उदय से दसवाँ गुणस्थान होता है।
20. मोहनीय कर्म के उपशम से ग्यारहवाँ गुणस्थान होता है।
21. मोहनीय कर्म के क्षय से बारहवाँ गुणस्थान होता है।
22. घातिया कर्म (ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय, अन्तराय) के क्षय से तेरहवाँ गुणस्थान होता है।

गुणस्थानों में सत्व संबंधी सामान्य नियम

1. तीर्थंकर की सत्ता वाला जीव दूसरे, तीसरे गुणस्थान का स्पर्श नहीं करता है।
2. आहारक शरीर और आहारक आंगोपांग की सत्ता वाला जीव दूसरे गुणस्थान का स्पर्श नहीं करता
3. बध्यमान और भुज्यमान दोनों की अपेक्षा नरकायु की सत्तावाले जीव के देशव्रत नहीं होते।
4. तिर्यंच आयु की सत्तावाले जीव महाव्रत धारण नहीं करते।
5. देवायु की सत्ता वाले जीव के क्षपकश्रेणी नहीं होती।

मूल कर्मों का गुणस्थान में बंध

1. ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय कर्म का बंध पहले से दसवें गुणस्थान तक होता है।
2. मोहनीय कर्म का बंध पहले से नौवें गुणस्थान तक होता है।
3. आयुकर्म का बंध पहले से सातवें गुणस्थान तक होता है।
4. वेदनीय कर्म का बंध पहले से तेरहवें गुणस्थान तक होता है।
5. नामकर्म, गोत्रकर्म और अन्तरायकर्म का बंध पहले से दसवें गुणस्थान तक होता है।

मूल कर्मों का गुणस्थान में उदय

1. ज्ञानावरणीय कर्म का उदय पहले से बारहवें गुणस्थान तक होता है।
2. दर्शनावरणीय कर्म का उदय पहले से बारहवें गुणस्थान तक होता है।
3. वेदनीय, आयु, नाम और गोत्रकर्म का उदय पहले से चौदहवें गुणस्थान तक होता है।
4. मोहनीय कर्मका उदय पहले से दसवें गुणस्थान तक होता है।
5. अन्तराय कर्म का उदय पहले से बारहवें गुणस्थान तक होता है।

मूल कर्मों के गुणस्थानों में सत्व

1. ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय और अन्तराय कर्म का सत्व पहले गुणस्थान से बारहवें गुणस्थान तक पाया जाता है।
2. मोहनीय कर्म का सत्व पहले गुणस्थान से ग्यारहवें गुणस्थान तक पाया जाता है।
3. वेदनीय, आयु, नाम और गोत्र कर्म का सत्व पहले गुणस्थान से चौदहवें गुणस्थान तक पाया जाता है।

मोहनीय कर्म से होने वाले गुणस्थान

1. दर्शनमोह के निमित्त से प्रथम से चतुर्थ गुणस्थान तक होते हैं।
2. चारित्रमोह के निमित्त से पंचम से द्वादश गुणस्थान तक होते हैं।
3. योग के निमित्त से 13वाँ और 14वाँ गुणस्थान होता है।

संयम मार्गणा में जीवों की संख्या

सामायिक संयमी जीवों की संख्या	89099103
छेदोपस्थापना संयमी जीवों की संख्या	89099103
परिहारविशुद्धि संयमी जीवों की संख्या	6997
सूक्ष्मसांपराय संयमी जीवों की संख्या	897
यथाख्यातसंयमी जीवों की संख्या	899997
कुल संख्या	**179106097**

गुणस्थानों का काल

1. प्रथम गुणस्थान का काल–जघन्य काल-अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट-अनादि अनन्त। (अभव्य की अपेक्षा अनादि अनन्त, भव्यकी अपेक्षा अनादिसान्त, किसी विशेष जीव की अपेक्षा सादि सान्त)
2. द्वितीय गुणस्थान का काल– जघन्य काल- एक समय, उत्कृष्ट काल- छह आवली (दोसमय से छह आवली पर्यन्त मध्य के सभी विकल्प)
3. तृतीय गुणस्थान का काल- जघन्य काल- जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट काल-उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त।
4. चतुर्थ गुणस्थान का काल- उत्कृष्ट काल-33 सागर, जघन्यकाल - अन्तर्मुहूर्त।

   औपशमिक सम्यक्त्व की अपेक्षा-उत्कृष्ट और जघन्य काल - मध्यम अन्तर्मुहूर्त।

क्षायोपशमिक सम्यक्त्व की अपेक्षा- उत्कृष्ट काल - 66 सागर जघन्य काल - अन्तर्मुहूर्त।

क्षायिक सम्यक्त्व की अपेक्षा- उत्कृष्ट काल - सादि अनन्त काल

संसारी जीव की अपेक्षा उत्कृष्ट काल - सादि अनन्त काल।

संसारी जीव की अपेक्षा उत्कृष्ट काल - आठ वर्ष एक अन्तर्मुहूर्त कम 2 कोटि पूर्व सहित 33 सागर।

5. पंचम गुणस्थान का काल-जघन्य काल-अन्तर्मुहूर्त उत्कृष्ट काल-मनुष्य की अपेक्षा-आठ वर्ष एक अन्तर्मुहर्त कम एक पूर्व कोटि वर्ष।

6. छठे गुणस्थान का काल-उत्कृष्ट काल-अन्तर्मुहूर्त जघन्य काल-एक समय।

(विशेष-छठवाँ, सातवाँ का उत्कृष्ट काल-आठ वर्ष एक अन्तर्मुहूर्त कम एक कोटि पूर्व)

7. सातवें से ग्यारहवें गुणस्थान तक (मरण की अपेक्षा) उत्कृष्ट काल - अन्तर्मुहूर्त - जघन्य काल-एक समय

8. बारहवाँ गुणस्थान का काल अन्तर्मुहूर्त है।

9. तेरहवें गुणस्थान का काल - उत्कृष्ट - आठ वर्ष आठ अन्तर्मुहूर्त कम पूर्व कोटि वर्ष प्रमाण जघन्य काल-अन्तर्मुहूर्त।

10. चौदहवें गुणस्थान का काल उत्कृष्ट एवं जघन्य काल-अन्तर्मुहूर्त।

नरकगति में उत्पन्न होने से नियम

धर्मा में- कर्म भूमियों छहों संहनन धारी असंज्ञी सरीसृप, पक्षी, सर्प, सिंह, स्त्री मच्छ और मनुष्य ही मरकर उत्पन्न होते हैं। **वंशा में**- कर्म भूमि या छहों संहनन धारी संज्ञी सरीसृप आदि ही जन्म लेते हैं। **मेघा में**- पक्षी आदि, **अंजना** में पाँच संहनन (असंप्राप्तासृपाटिका बिना) धारी सर्प आदि **अरिष्टा** में सिंह आदि **मघवी** में चार संहनन (कीलक और असंप्राप्तासृपाटिका बिना) धारी स्त्री आदि, **माघवी** में - प्रथम संहनन (वज्रवृषभनाराचसंहनन) धारी मच्छ और मनुष्य ही मरकर उत्पन्न होते हैं।

गुणस्थान में मरण

गुणस्थान	गति में उत्पन्न
प्रथम	चारों गतियों में (देवगति में नवग्रैवेयक तक)
द्वितीय	तीन गतियों में, नियम से नरक नहीं जाता।
तृतीय	इसमें मरण नहीं होता।

चतुर्थ	पूर्व में मिथ्यात्व परिणामों से जिस आयु का बन्ध किया हो बाद में सम्यक्त्व प्राप्त करने पर भी उसी में जाता है। परन्तु नरकगति में प्रथम नरक से नीचे नहीं जाता, तिर्यंच गति में भोगभूमि का तिर्यंच बनता है, कर्मभूमि का नहीं, देव गति में स्वर्ग ही जाता है। यदि किसी आयु का बन्ध नहीं हुआ है तो देवगति में ही जाता है।
पाँचवे से ग्यारहवें तक	इन गुणस्थानों में जीव मरकर देवगति में ही उत्पन्न होता है, अन्य गति में नहीं और देवगति में भी कल्पवासी देव बनता है।
अयोगकेवली गुणस्थान	पंडित-पंडित मरण कर जीव सिद्ध गति (सिद्ध शिला) को ही जाता है।

सम्यक् मिथ्यात्व (मिश्र), क्षीण कषाय, सयोगकेवली गुणस्थानों में मरण नहीं होता।

जीवों का मरण नहीं होता–

1. निवृत्यपर्याप्तक अवस्था का धारक 2. आहारक मिश्रयोग का धारी 3. क्षपकश्रेणी वाला 4. उपशमश्रेणी चढ़ने में आठवें गुणस्थान के पहले भाग वाला 5. सातवें नरक में सम्यक्त्व गुण सहित एवं 6. प्रथम उपशम सम्यक्त्व वाले जीवों का मरण नहीं होता। 7. अनन्तानुबंधी कषाय का विसंयोजन कर अन्य कषाय रूप परिणमने वाला द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टि जीव यदि मिथ्यात्व गुणस्थान को प्राप्त हो जावे तो उसका अन्तर्मुहूर्त तक मरण नहीं होता है।

देवगति में उत्पति के नियम

देशव्रती और असंयत मनुष्य तथा तिर्यंच उत्कृष्ट से अच्युत स्वर्ग पर्यन्त उत्पन्न होते हैं।

द्रव्य से निर्ग्रन्थ और भाव से असंयत, देशसंयत या मिथ्यादृष्टि ग्रैवेयक पर्यन्त उत्पन्न होते हैं। सम्यग्दृष्टि महाव्रती सर्वार्थसिद्धि पर्यन्त उत्पन्न होते हैं।

भोगभूमियां सम्यग्दृष्टि सौधर्म युगल में तथा मिथ्यादृष्टि भवनत्रिक में जन्म लेते हैं। उत्कृष्ट तापसी भवनत्रिक में चरक और परिव्राजक ब्रह्मोत्तर पर्यन्त आजीवक अच्युत पर्यन्त जन्म लेते हैं। अनुदिश, अनुत्तर से च्युत हुए जीव नारायण प्रतिनारायण नहीं होते।

सौधर्म इन्द्र की इन्द्राणी शची, लोकपाल सहित दक्षिण दिशा के सौधर्म आदि इन्द्र, लौकान्तिक देव और सर्वार्थसिद्धि के देव च्युत होने पर मनुष्य होकर मोक्ष प्राप्त करते हैं। मनुष्य गति, तिर्यंच गति और भवनत्रिक से निकले जीव तिरेसठ शलाका पुरुष नहीं बनते।

गुणस्थान में उतरने व चढ़ने के मार्ग

1. पहले से ऊपर के गमन के चार मार्ग हैं। जीव पहले से तीसरे, चौथे, पाँचवे तथा सातवें गुणस्थान में जा सकता है।

2. दूसरे गुणस्थान से नीचे की ओर गमन का एक ही मार्ग है (दूसरे से पहले में आना) दूसरे से ऊपर की ओर गमन का कोई मार्ग नहीं है।
3. तीसरे गुणस्थान में नीचे व ऊपर की ओर गमन का एक ही मार्ग है।
4. चौथे गुणस्थान से नीचे के गमन के तीन मार्ग (चौथे से तीसरे, दूसरे व पहले गुणस्थान में) और ऊपर गमन के दो मार्ग (चौथे से पाँचवे तथा सातवें गुणस्थान) हैं।
5. पाँचवे से नीचे के चार मार्ग (पाँचवे से चौथे, तीसरे, दूसरे एवं पहले गुणस्थान में) हैं और ऊपर गमन का केवल एक मार्ग है (पाँचवे से सातवें में)।
6. छठे से नीचे की ओर पाँच मार्ग और ऊपर की ओर छठे से सातवें में एक ही मार्ग है।
7. सातवें गुणस्थान (उपशम श्रेणी के सम्मुख) से नीचे की ओर दो मार्ग (सातवें से छठे में और मरण की अपेक्षा चौथे में) और ऊपर की ओर गमन का एक ही मार्ग (सातवें से आठवें में) है।
8. आठवें गुणस्थान (उपशम श्रेणी वाले) से नीचे की ओर दो मार्ग (आठवें से सातवें में तथा मरण की अपेक्षा चौथे में) और ऊपर की ओर गमन का एक ही मार्ग (सातवें से आठवाँ में) है।
9. नवमें गुणस्थान (उपशम श्रेणी वाले) से नीचे की ओर गमन के दो मार्ग (नवमें से आठवें तथा मरण की अपेक्षा चौथे में) तथा ऊपर की ओर दसवें गुणस्थान में एक ही मार्ग है।
10. दसवें गुणस्थान (उपशम श्रेणी वाले) से नीचे की ओर गमन के दो मार्ग (दसवें से नवमें में तथा मरण की अपेक्षा चौथे में) और ऊपर की ओर एक ही मार्ग (दसवें से ग्यारहवाँ में) है।
11. ग्यारहवें गुणस्थान से नीचे गमन के दो मार्ग (दसवें में तथा मरण की अपेक्षा चौथे में) तथा ऊपर का कोई मार्ग नहीं हैं।
12. सातवें गुणस्थान (क्षपक श्रेणी वाले) से ऊपर गमन का मार्ग (क्रम से आठवें, नवमें दसवें, बारहवें, तेरहवें, व चौदहवें गुणस्थान (सिद्ध) है नीचे का मार्ग नहीं हैं।

गुणस्थानों में शुद्ध परिणति

अ. राग-द्वेष परिणामों से रहित जीव के चारित्र गुण का वीतराग भाव रूप परिणमन को/वीतराग परिणाम को शुद्ध परिणति कहते हैं।

ब. कषाय के अनुदय से व्यक्त वीतराग अवस्था को शुद्ध परिणति कहते हैं।

स. जब तक साधक आत्मा की वीतरागता पूर्ण नहीं होती, तब तक साधक आत्मा में

शुभोपयोग, अशुभोपयोग और शुद्धोपयोग के साथ कषाय के अनुदय पूर्वक जो शुद्धता सदैव बनी रहती है उसे शुद्ध परिणति कहते हैं।

जैसे चौथे और पांचवे गुणस्थान में जब साधक, बुद्धिपूर्वक शुभोपयोग या अशुभोपयोग में संलग्न रहते हैं। तब इस शुद्ध परिणति के कारण ही वे जीव धार्मिक बने रहते हैं।

छठवें गुणस्थानवर्ती शुभोपयोगी मुनिराज के भी शुद्ध परिणति नियम से रहती है इस शुद्ध परिणति के कारण ही यथायोग्य कर्मों का संवर और पूर्वबद्ध कर्मों की निर्जरा भी निरन्तर होती रहती है।

अनेक स्थानों पर शुद्ध परिणति की स्थिति

1. चौथे- अविरत सम्यक्त्व गुणस्थान में मिथ्यात्व और अनन्तानुबंधी कषाय चौकड़ी के अनुदय रूप अभाव पूर्वक व्यक्त वीतरागता से जघन्य शुद्ध परिणति सतत बनी रहती है। इसी कारण युद्धादि अशुभोपयोग में संलग्न श्रावक को भी यथायोग्य संवर-निर्जरा होते हैं।
2. पाँचवे- देशविरत गुणस्थान में अनन्तानुबंधी और अप्रत्याख्यानावरण इन दो कषाय चौकड़ी के अनुदय रूप अभाव पूर्वक व्यक्त विशेष वीतरागता के कारण मध्यम शुद्ध परिणति सतत बनी रहती है। इसलिए दुकान-मकानदि अथवा घर के सदस्यों की व्यवस्था रूप अशुभोपयोग के समय बिताते हुए व्रती श्रावक को भी यथायोग्य संवर-निर्जरा होते हैं।
3. छठवें-प्रमत्तविरत गुणस्थान में अनन्तानुबंधी आदि तीन कषाय चौकड़ी के अनुदय रूप अभाव से व्यक्त वीतरागता के कारण उत्पन्न शुद्ध परिणति शुभोपयोग के साथ सदा बनी रहती है। इसी कारण अप्रमत्तविरत मुनिराज के समान ही प्रमत्तविरत मुनिराज भी भावलिंगी संत ही हैं।
4. सातवें- अप्रमत्तविरत गुणस्थान से लेकर नवमें अनिवृत्तिकरण गुणस्थान पर्यन्त के सभी भावलिंगी महामुनिराजों को तीन कषाय चौकड़ी (यथा संभव संज्वलन कषाय एवं नोकषाय) के अनुदय रूप अभाव से व्यक्त वीतरागता रूप शुद्धोपयोग सदा बना रहता है अर्थात् जब साधक को शुभ या अशुभ रूप उपयोग रहता है तब व्यक्त शुद्धता लब्ध रूप रहती है उसे ही शुद्धपरिणति कहते हैं। जब उपयोग निज शुद्धात्मा में लीन हो जाता है तब वही व्यक्त शुद्धता/वीतरागता वृद्धिगत हो जाती है उसे शुद्धोपयोग कहते हैं। व्यापार रूप शुद्धता शुद्धोपयोग कहलाता है और लब्धरूप शुद्धता शुद्धपरिणति कहलाती है।
5. दसवें- सूक्ष्मसांपराय गुणस्थान में तीन कषाय चौकड़ी और संज्वलन क्रोध, मान, माया कषायों एवं नो कषायों के उपशम या क्षय रूप अभाव से उत्पन्न वीतरागता संज्वलन सूक्ष्म लोभ कषाय कर्म के उदय काल में एक अन्तर्मुहूर्त पर्यन्त शुद्धोपयोग रूप रहती है।

6. ग्यारहवें - उपशान्तमोह गुणस्थान में और आगे के क्षीणमोह आदि चारों गुणस्थानों में एवं सिद्ध अवस्था में भी वीतरागता की पूर्णता हो गयी है। अत: इन स्थानों में उपयोग एवं परिणति ऐसा भेद नहीं रहता (मुनि भूमिका की शुद्ध परिणति विषयक स्पष्टीकरण आचार्य कुन्दकुन्द ने प्रवचनसार की गाथा 246, 247, 249 व 254 आदि (चरणानुयोग चूलिका) में पुन: पुन: किया है।

घातिकर्मों के क्षय का विवरण

कर्मों के क्षय का प्रारम्भ क्षायिक सम्यक्त्व की प्राप्ति के समय से ही हो जाता है। तीर्थंकर केवली, सामान्य केवली, अथवा श्रुत केवली के सान्निध्य में ही कर्मभूमिज मनुष्य क्षायिक सम्यक्त्व के प्राप्ति का पुरुषार्थ प्रारम्भ करता है।

1. सर्वप्रथम अध:करण, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण, परिणामों से अनन्तानुबंधी कषाय चतुष्क का विसंयोजन द्वारा क्षय हो जाता है।

2. पश्चात् यह जीव एक अन्तर्मुहूर्त काल पर्यन्त विश्राम लेता है। तदनंतर पुन: अधिकरणादि तीन करण परिणामों से मिथ्यात्व कर्म सम्यग्मिथ्यात्व कर्म रूप परिणमित हो जाता है। फिर सम्यक्मिथ्यात्व कर्म सम्यक्प्रकृति रूप परिणमित हो जाता है। तदनंतर क्रम से सम्यक् प्रकृति का क्षय हो जाता है। इस तरह दर्शनमोहनीय की तीन प्रकृति का क्षय हो जाता है। इस प्रकार सम्यक्त्व घातक सात प्रकृतियों का क्षय होता है।

   क्षायिक सम्यक्त्व का उपर्युक्त अभूत पूर्व कार्य चौथे अविरत सम्यक्त्व गुणस्थान से लेकर सातवें अप्रमत्त गुणस्थान पर्यन्त किसी भी एक गुणस्थान में त्रिकाल सहज शुद्ध निज भगवान आत्मा का आश्रय रूप पुरुषार्थ से ही होता है।

3. नववें क्षपक अनिवृत्तिकरण गुणस्थान में अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ और प्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ इन आठ कर्म प्रकृतियों का परमुख से अभाव हो जाता है अर्थात् इन आठ घाति रूप पाप प्रकृतियों का क्षपणा काल में समय-समय प्रति एक-एक पल का संज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभ व पुरुषवेद रूप कर्म में संक्रमित हो-होकर दोनों कषाय चौकड़ियों का क्षय हो जाता है।

4. तदनन्तर इस क्षपक अनिवृत्तिकरण गुणस्थान में ही दर्शनावरणकर्म के निद्रा-निद्रा, प्रचला-प्रचला, स्त्यानगृद्धि इन तीन कर्मों का क्षय हो जाता है।

5. पश्चात् नववें गुणस्थान में स्त्री वेद आदि नपुंसक वेद कर्म का द्रव्य पुरुष वेद कर्म में संक्रमित हो जाता है। तत्पश्चात् पुरुषवेद तथा हास्यादि छह (हास्य, रति, अरति, शोक,

भय, जुगुप्सा)- इन सातों कर्मो का संक्रमण संज्वलन क्रोध कषाय कर्मों में होता है। इस तरह नव नोकषायों का क्षय हो जाता है शेष बची चारित्रमोहनीय कर्मों में से मात्र संज्वलन क्रोध, मान, माया लोभ के क्षय का क्रम निम्नानुसार है-

6. नववें गुणस्थान में ही संज्वलन क्रोध कषाय कर्म का संक्रमण संज्वलन मान कषाय में होता है। तदनंतर संज्वलन मान कषाय का संक्रमण संज्वलन माया कषाय में हो जाता है और अन्त में संज्वलन माया कषाय का संक्रमण लोभ कषाय कर्म में हो जाने पर संज्वलन क्रोध मान और माया इन तीन कषायों का संक्रमण होकर क्षय हो जाता है। संज्वलन लोभ कषाय कर्म का संक्रमण नहीं होता है। संक्रमित होने के लिए यहाँ (नवमें गुणस्थान के उपान्त्य समय में) अन्य चारित्र मोहनीय कर्म की सत्ता भी शेष नहीं रही है। चारित्र मोहनीय कर्म का संक्रमण अन्य सात कर्मो से भी नहीं होता है। अत: संज्वलन लोभ कषाय कर्म का क्षय स्वमुख से ही होता है। पूर्वोक्त प्रकार नववें क्षपक अनिवृत्तिकरण गुणस्थान में ही चारित्र मोहनीय कर्म की 20 प्रकृतियों का क्षय हो जाता है।
7. दसवें गुणस्थान के प्रथम समय से ही मात्र संज्वलन लोभ कषाय कर्म सूक्ष्म लोभ रूप से उदय में आ रहा है। बादर लोभ कषाय कर्म का सूक्ष्म कृष्टि करण का कार्य नववें गुणस्थान में ही संपन्न हो गया था। दशवें गुणस्थान के अन्तिम समय में सूक्ष्मलोभ कषाय का भी क्षय हो जाता है।
8. अब बारहवें गुणस्थान के प्रथम समय से ही मोहकर्म तथा मोह परिणामों के अभाव से मुनिराज पूर्ण वीतरागी हो गये हैं। अब (मोहनीय कर्म के बिना) मात्र तीन घातिकर्मो की सत्ता शेष है। दर्शनावरणीय नौ कर्मों में से छह कर्म ही शेष हैं। उनमें से निद्रा और प्रचला-इन दो कर्मों का बारहवें क्षीणमोह गुणस्थान के उपान्त्य समय में क्षय हो जाता है।
9. क्षीणकषाय गुणस्थान के अन्तिम समय में ज्ञानावरण कर्म की मति ज्ञानावरणादि 5 प्रकृति, दर्शनावरण कर्म की चक्षुदर्शनावरणादि चार प्रकृतियाँ और अन्तराय कर्म की 5 प्रकृतियां- कुल मिलाकर 14 कर्म-प्रकृतियों का क्षय हो जाता है।

इस तरह संसार के सब जीव अपने-अपने आध्यात्मिक विकास के तारतम्य के कारण गुणस्थानों में बँटे हुए हैं। इनमें से शुरु के चार गुणस्थान तो नारकी, देव, मनुष्य और तिर्यंच सभी को होते हैं। पाँचवाँ गुणस्थान केवल समझदार पशु-पक्षियों और मनुष्यों के होता है। पाँचवें से आगे के सब गुणस्थान आत्मध्यान में लीन साधु के ही होते हैं और उनमें से प्रत्येक गुणस्थान का काल अन्तर्मुहूर्त (एक मुहूर्त से कम) होता है।

प्रश्न- परभव में जाते समय आत्मा कौन-कौन से गुणस्थानों में होता है?

उत्तर- प्रथम, द्वितीय एवं चतुर्थ गुणस्थान में जीव परभव में जाता है अर्थात् विग्रहगति में ये तीन ही गुणस्थान होते हैं।

प्रश्न- कौनसे गुणस्थान में जीव की मृत्यु नहीं होती?

उत्तर- तीसरे, बारहवें, एवं तेरहवें गुणस्थान में जीव की मृत्यु नहीं होती। पाँचवे गुणस्थान से ग्यारहवें गुणस्थान पर्यन्त के सर्व गुणस्थानों में जीव मरण कर सकता है लेकिन पाँचवे से ग्यारहवें गुणस्थान पर्यन्त के गुणस्थानों के परिणामों को साथ लेकर विग्रहगति में नहीं जाता। मरण होते ही चौथा गुणस्थान हो जाता है।

प्रश्न- संसार में किन-किन गुणस्थानों का विरह नहीं होता?

उत्तर- पहला, चौथा, पाँचवा, छठवां और तेरहवां इन गुणस्थानों का संसार में विरह नहीं होता अर्थात् इन गुणस्थानों में आत्माएं सदा मिलती ही रहती हैं।

प्रश्न- अप्रतिपाति गुणस्थान कौन-कौन से हैं?

उत्तर- बारहवां, तेरहवां चौदहवां एवं क्षपकश्रेणी का आठवॉ नववॉ और दसवॉ- ये गुणस्थान अप्रतिपाति हैं अर्थात् इन गुणस्थानों से जीव नीचे न आकर ऊपर ही ऊपर चढ़ते हैं। गिरने का नाम प्रतिपात और नहीं गिरने का नाम अप्रतिपात कहलाता है।

स्वामी समन्तभद्र ने मनुष्य को नैतिक धरातल पर प्रतिष्ठित करने के लिए बुद्धिवादी दृष्टिकोण अपनाया। उनके उस दृष्टिकोण में मानव मात्र को रुचि हो सकती है। समन्तभद्र की दृष्टि में मन की साधना, हृदय का परिवर्तन सच्ची साधना है, बाह्य आचार तो आडम्बरों से भरे हुए भी हो सकते हैं। उनकी गर्जना है कि मोही मुनि से निर्मोही गृहस्थ श्रेष्ठ है।

–डॉ॰ वासुदेवशरण अग्रवाल

द्वितीय अध्याय : मार्गणा और ठाणा

मार्गणा का स्वरूप

मार्गणा शब्द का अर्थ है अन्वेषण। जिन भावों के द्वारा अथवा जिन पर्यायों में जीव का अन्वेषण किया जावे उनका नाम 'मार्गणा' है।

मार्गणा के भेद गति, काय, योग, वेद, इन्द्रिय, कषाय, ज्ञान, संयम, दर्शन, लेश्या, भव्य, सम्यक्त्व, संज्ञा और आहार ये चौदह मार्गणायें हैं।

1. **गति मार्गणा–** गति नामकर्म के उदय से होने वाली जीव की पर्याय को गति कहते हैं। उसके चार भेद है– नरकगति, तिर्यंञ्चगति, मनुष्यगति और देवगति।

2. **इन्द्रिय मार्गणा–** इन्द्र का अर्थ आत्मा है उसके चिह्न को इन्द्रिय कहते हैं अथवा अपने-अपने विषय में अहमिन्द्रों के समान स्वतन्त्र हों उन्हें इन्द्रिय कहते हैं। उसके पाँच भेद हैं- स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और श्रोत्र। इन इन्द्रियों की अपेक्षा से ही एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रय और पंचेन्द्रिय जीव होते हैं।

3. **काय मार्गणा–** जाति नामकर्म के अविनाभावी त्रस और स्थावर नामकर्म के उदय से होने वाली आत्मा की पर्याय को जिनमत में काय कहते हैं। इसके छह भेद हैं - पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति और त्रस।

पृथ्वीकायिक नामकर्म के उदय से जिनका शरीर पृथ्वी रूप हो उसे पृथ्वीकायिक जीव कहते हैं। ऐसे ही सर्वत्र समझना। पाँच स्थावरों में बादर और सूक्ष्म भेद होते है और त्रस जीव बादर ही होते हैं।

बादर नामकर्म के उदय से जो शरीर दूसरे को रोकने वाला अथवा जो स्वयं दूसरे से रुके उसको बादर स्थूल कहते हैं। स्वयं दूसरे से न रुके उसको सूक्ष्म शरीर कहते हैं। इनमें से स्थूल शरीर आधार की अपेक्षा रखते हैं किन्तु सूक्ष्म शरीर बिना किसी अनन्तर के ही लोक में सर्वत्र अनन्तानन्त भरे हुये हैं।

वनस्पति के दो भेद हैं। प्रत्येक और साधारण। प्रत्येक के दो भेद हैं सप्रतिष्ठित और अप्रतिष्ठित जिसके आश्रित अनेक निगोदिया जीव रहते हैं उसे सप्रतिष्ठित कहते हैं और जिनके अन्य जीव नहीं हैं उसे अप्रतिष्ठित कहते हैं।

साधारण के दो भेद हैं ! नित्यनिगोद और इतर निगोद। जो अभी तक निगोद से निकलकर स्थावरकाय और त्रसकाय में आकर पुनः निगोद में गये है वे इतर निगोद कहलाते हैं। साधारण जीवों का समान ही इनका आहार होता है एक साथ ही श्वासोच्छ्वास ग्रहण होता है। जब

एक जीव मरण करता है वहाँ पर अनन्त जीवों का मरण और जहाँ पर एक जीव उत्पन्न होता है वहाँ अनन्त जीवों का उत्पाद होता है। इनकी आयु भी अन्तर्मुहूर्त मात्र ही है।

"द्रव्य की अपेक्षा से समस्त सिद्ध राशि और सम्पूर्ण अतीत काल के समयों का जितना प्रमाण है उससे अनन्तगुणे जीव एक **निगोद** शरीर में रहते है।"

पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति ये पाँच स्थावर कहलाते हैं। द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय जीव त्रस कहलाते है।

4. **योग मार्गणा**- पुद्‌गलविपाकी शरीरनामकर्म के उदय से मन, वचन, काय से युक्त जीव की जो कर्मों के ग्रहण करने में कारणभूत शक्ति है उसे योग कहते हैं। उसके पन्द्रह भेद हैं- चार मनोयोग, चार वचनयोग, सात काययोग।

चार मनोयोग ! सत्य मनोयोग, असत्य मनोयोग, उभय मनोयोग, अनुभय मनोयोग।

चार वचनयोग ! सत्य वचनयोग, असत्य वचनयोग, उभयवचनयोग, अनुभय वचनयोग

सात काययोग ! औदारिक, औदारिक मिश्र, वैक्रियक, वैक्रियक मिश्र आहारक, आहारक मिश्र और कार्माण।

5. **वेदमार्गणा**- मोहनीय कर्म के अन्तर्गत वेदकर्म के उदय से जीवों के भाववेद होता है और निर्माण नामकर्म सहित आंगोपांग नामकर्म के उदय से द्रव्यवेद होता है। देवगति और नरकगति में जो द्रव्यवेद होता है। वही भाववेद होता है। मनुष्य और तिर्यञ्च गति में कदाचित किसी जीव में विषमता भी हो जाती है। इसलिए द्रव्यवेद पुरुष होने से भाव भेद चाहे स्त्री हो, चाहे पुरुष, चाहे नपुंसक तीनों भाववेदों में से किसी से भी मुक्ति हो जाती है। वेद के तीन भेद हैं ! स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेद।

6. **कषाय मार्गणा**- जो सम्यक्त्व, देशचारित्र, सकलचारित्र आदि परिणामों को 'कषति' कषे-घाते उसे कषाय कहते हैं। कषाय के पच्चीस भेद हैं-अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ। अप्रत्याख्यानवरण क्रोध, मान, माया लोभ। प्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ। संज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभ। ये सोलह कषायें हैं। नव नो नपुसंकवेद। ये सब मिलकर पच्चीस कषायें हैं।

7. **ज्ञान मार्गणा**- जो समस्त द्रव्य और उनके गुण तथा उनकी अनेक प्रकार की पर्यायों को जाने उसको ज्ञान कहते हैं। ज्ञान के पाँच भेद हैं ! मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनः पर्ययज्ञान और केवलज्ञान। आदि के मति, श्रुत, अवधि ये ज्ञान मिथ्या भी होते हैं।

मतिज्ञान- इन्द्रिय और मन की सहायता से होने वाले ज्ञान को मति ज्ञान कहते हैं। उसके अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा ये चार भेद हैं।

श्रुतज्ञान– मतिज्ञान के विषयभूत पदार्थ से भिन्न पदार्थ के ज्ञान को श्रुतज्ञान कहते हैं। यह ज्ञान नियम से मतिज्ञान पूर्वक होता है। इस श्रुतज्ञान के अक्षरात्मक अनक्षरात्मक इस तरह अथवा शब्दजन्य और लिंगजन्य इस तरह दो भेद हैं।

अवधिज्ञान– द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की अपेक्षा से जिसका विषय सीमित हो उसे अवधि ज्ञान कहते हैं। इसके दो भेद हैं- भवप्रत्यय और गुणप्रत्यय अथवा देशावधि, परमावधि और सर्वावधि ऐसे तीन भेद भी हैं।

मन:पर्ययज्ञान– दूसरे के मन में स्थित पदार्थ जिसके द्वारा जाना जाये उस ज्ञान को मन: पर्ययज्ञान कहते हैं। यह मन:पर्ययज्ञान मनुष्य क्षेत्र में ही उत्पन्न होता है बाहर नहीं। मन: पर्ययज्ञान के दो भेद है- ऋजुमति और विपुलमति। यह मनुष्य ज्ञान ऋद्धिधारी, वर्धमान चारित्र वाले मुनियों को ही हो सकता है। सबके नहीं।

केवलज्ञान– ज्ञानावरण कर्म के पूर्णतया नष्ट हो जाने से, सम्पूर्ण, समग्र, केवल, प्रतिपक्ष रहित सर्वपदार्थों को युगपत् जानने वाला लोका-लोक प्रकाशी केवलज्ञान होता है।

8. **संयम मार्गणा–** अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह इन पाँच व्रतों को ध ारण करना, ईर्या भाषा, एषणा, आदान निक्षेपण, उत्सर्ग इन पाँच समितियों का पालन करना, क्रोधादि चार कषायों का निग्रह करना, मन, वचन, काय रूप दण्ड का त्याग तथा पाँच इन्द्रियों का जय इसको संयम कहते है। संयम के पाँच भेद है! सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धि, सूक्ष्म-सांपराय और यथाख्यातचारित्र। इनमें देशसंयम और असंयम को मिलाने से इस मार्गणा के सात भेद हो जाते हैं।

9. **दर्शन मार्गणा**- सामान्य विशेषात्मक पदार्थ के शेष अंश का ग्रहण न करके केवल, सामान्य अंश का जो निर्विकल्प रूप से ग्रहण होता है उसे दर्शन कहते हैं। इसके चार भेद हैं- चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन अवधिदर्शन और केवलदर्शन।

10. **लेश्या मार्गणा–** कषाय के उदय से अनुरंजित योग प्रवृत्ति का नाम लेश्या है यह भाव लेश्या का लक्षण है और शरीर के वर्णरूप द्रव्य लेश्या होती है।

लेश्या के छह भेद हैं- कृष्ण, नील, कापोत, पीत, पद्म और शुक्ल तथा प्रत्येक के उत्तर भेद अनेक हैं। तीव्र क्रोध करने वाला हो, वैर को न छोड़े, युद्धप्रिय, धर्म और दया से रहित हो, दुष्ट हो, जो किसी के वश में न हो, ये सब कृष्ण लेश्या के चिह्न है। काम करने में मन्द, स्वछन्द, विवेक मायाचारी, आलसी, अति निद्रालु, वंचना में दक्ष, धन लोलुपी होना, ये सब नील लेश्या के चिह्न है। दूसरे के ऊपर क्रोध करना, निन्दा करना, दु:ख देना, बैर करना, शोकाकुलित होना, दूसरे के ऐश्वर्य आदि को सहन न कर सकना, दूसरे का तिरस्कार करना, अपनी प्रशंसा करना, रण में मरने की इच्छा आदि कापोत लेश्या के चिह्न हैं। अपने कार्य-अकार्य, सेव्य-असेव्य को

समझाने वाला हो, सबके विषय में समदर्शी, दया और दान में तत्पर हो, मन, वचन, काय विषय में कोमल परिणामी हो, ये सब पीतलेश्या वाले के लक्षण हैं। दान देने वाला भद्र परिणामी, उत्तम कार्य करने के स्वभाव वाला कष्ट रूप और अनिष्ट रूप उपसर्गों को सहन करने वाला मुनिजन की पूजा में प्रीति युक्त होना ये सब पद्मलेश्या के लक्षण हैं। पक्षपात न करना, निदान को न बाँध ना, समदर्शी, इष्ट से और अनिष्ट से द्वेष न करना, स्त्री, पुत्र, मित्र आदि में स्नेह होना ये सब शुक्ल लेश्या के लक्षण हैं।

11. **भव्य मार्गणा–** जिन जीवों को अनन्तचतुष्य रूप सिद्धि होने वाली हो अथवा जो उसकी प्राप्ति के योग्य हों वे भव्य और इनसे विपरित अभव्य कहलाते हैं। कितने ही भव्य ऐसे हैं जो मुक्ति प्राप्ति के योग्य हैं परन्तु कभी नहीं होगें, जैसे विधवा सती स्त्री ने पुत्रोत्पति की योग्यता है किन्तु उसके कभी पुत्र उत्पन्न नहीं होगा। इसके सिवाय कोई भव्य ऐसे है जो नियम से मुक्त होंगे। इस तरह स्वभाव भेद के कारण भव्य दो प्रकार के हैं। जो इन दोनों स्वभावों से रहित हैं उन्हें अभव्य कहते हैं। जैसे बंध्या स्त्री को निमित्त मिलने पर भी पुत्र उत्पन्न होता है। अत: इस मार्गणा के भव्य और अभव्य दो भेद हैं।

12. **सम्यक्त्व मार्गणा–** छह द्रव्य, पाँच अस्तिकाय, नव पदार्थ, इनका जिनेन्द्र देव ने जिस प्रकार से वर्णन किया है उसी प्रकार जो श्रद्धान है उसे सम्यक्त्व कहते हैं। यह सम्यक्त्व दो प्रकार का होता है एक तो केवल आज्ञा से दूसरा अधिगम से।

मार्गणा के छह भेद– उपशम सम्यक्त्व, क्षायिक सम्यक्त्व, वेदक सम्यक्त्व, मिश्र, सासादन और मिथ्यात्व।

13. **संज्ञी मार्गणा–** नोइन्द्रियावरण कर्म के क्षयोपशम को या उससे उत्पन्न ज्ञान को संज्ञा कहते है। जिनके यह लब्धि का उपयोग रूप मन-ज्ञानविशेष पाया जाये उसको संज्ञी कहते हैं और जिनके यह मन नहीं उसको असंज्ञी कहते हैं। इन असंज्ञी जीवों के मानस ज्ञान नहीं होता है। इसलिए संज्ञी मार्गणा के संज्ञी और असंज्ञी ऐसे दो भेद होते हैं।

14. **आहार मार्गणा–** शरीर नामक नामकर्म के उदय से औदारिक, वैक्रियक, आहारक इनमें से यथासम्भव किसी भी शरीर तथा वचन और द्रव्य मन रूप बनने के योग्य नोकर्म वर्गणाओं का जो ग्रहण होता है उसको आहार कहते हैं।

जीव दो प्रकार के होते हैं, आहारक, अनाहारक । विग्रहगति को प्राप्त होने वाले चारों गति सम्बन्धी जीव प्रतर और लोकपूरण समुद्घात करने वाले सयोगकेवली, अयोग केवली, समस्त सिद्ध इतने जीव तो अनाहारक होते हैं और इनको छोड़कर शेष सभी जीव आहारक होते हैं।

समुद्घात मूल शरीर को न छोड़कर तैजस-कार्माण रूप उत्तर देह के साथ साथ जीव प्रदेशों के शरीर से बाहर निकलने को समुद्घात कहते हैं।

समुद्घात के सात भेद हैं ! वेदना, कषाय, वैक्रियक, मारणांतिक तैजस, आहारक और केवली।

इस प्रकार से संक्षेप में चौदह मार्गणाओं का वर्णन हुआ।

चौबीस ठाणा का विवेचन

चौबीस ठाणा के भेद-

1. गति	2. इन्द्रिय	3. काय	4. योग	5. वेद	6. कषाय
7. ज्ञान	8. संयम	9. दर्शन	10. लेश्या	11. भव्य	12. सम्यक्त्व
13. सैनी	14. आहारक	15. गुणस्थान	16. जीव समास	17. पर्याप्ति	18. प्राण
19. संज्ञा	20. उपयोग	21. ध्यान	22. आस्रव	23. जाति	24. कुल

चौबीस ठाणा के उत्तर भेद-

1. **गति-** चार भेद:- नरक गति, तिर्यच गति, देव गति, मनुष्य गति।
2. **इन्द्रिय-** पाँच भेद:- एकेन्द्रिय, द्विन्द्रिय, त्रिन्द्रिय चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय।
3. **काय-** छह भेद:- पृथ्वीकाय, जलकाय, अग्निकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय और त्रस काय
4. **योग-** 15 भेद:- मनोयोग (चार भेद - सत्यमनोयोग, असत्यमनोयोग, उभय मनोयोग, अनुभय मनोयोग), वचन योग (चार भेद- सत्य वचन योग, असत्य वचन योग, उभय वचन योग, अनुभय वचन योग, काययोग (सात भेद - औदारिक काययोग, औदारिक मिश्र काययोग, वैक्रियिक काययोग, वैक्रियिक मिश्रकाय योग, आहारक काययोग, आहारक मिश्र काययोग, कार्माण काययोग)
5. **वेद-** तीन भेद:- स्त्री वेद, पुरुष वेद, नपुंसक वेद।
6. **कषाय पच्चीस भेद:-** (अनन्तानुबंधी, (क्रोध, मान, माया लोभ), अप्रत्याख्यान (क्रोध मान, माया, लोभ) प्रत्याख्यान (क्रोध, मान, माया लोभ), संज्वलन (क्रोध, मान, माया, लोभ) और (नौ भेद- हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्री वेद, पुरुष वेद, नपुंसक वेद)

   अकषाय- जिनका उदय कषायों के साथ होता है या जो कषायों से प्रेरित है वे अकषाय होती हैं। इनको नो कषाय या ईषत् कषाय भी कहते हैं।
7. **ज्ञान-** आठ भेद:- कुमति, कुश्रुति, कुअवधि (विभंग), सुमति, सुश्रुति, सुअवधि, मनः पर्यय केवलज्ञान।

8. **संयम–** सात भेद:- असंयम, संयमासंयम, सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धि, सूक्ष्म सांपराय, यथाख्यात।

9. **दर्शन–** चार भेद:- चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन, केवलदर्शन।

10. **लेश्या–** छह भेद:- कृष्ण लेश्या, नील लेश्या, कापोत लेश्या, पीत लेश्या, पद्म लेश्या, शुक्ल लेश्या।

11. **भव्य–** दो भेद:- भव्य, अभव्य।

12. **सम्यक्त्व–** छह भेद:- मिथ्यात्व, सासादन, मिश्र, उपशम, वेदक, क्षायिक सम्यक्त्व।

13. **सैनी–** दो भेद:- सैनी, असैनी।

14. **आहारक–** दो भेद:- आहारक, अनाहारक।

15. **गुणस्थान–** चौदह भेद:- मिथ्यात्व गुणस्थान, सासादन गुणस्थान, मिश्र गुणस्थान अव्रत (असंयत), अविरत सम्यक्‌दृष्टि गुणस्थान, अणुव्रत (देशविरत) सम्यक्‌दृष्टि, प्रमत्त संयत गुणस्थान, अप्रमत्त संयत गुणस्थान, अपूर्वकरण गुणस्थान, अनिवृत्तिकरण गुणस्थान, सूक्ष्म सांपराय गुणस्थान, उपशान्तमोह गुणस्थान, क्षीणमोह गुणस्थान, सयोगकेवली और अयोगकेवली गुणस्थान।

16. **जीव समास–** उन्नीस भेद:- पृथ्वीकाय (दो भेद - सूक्ष्म, बादर) जलकाय (सूक्ष्म, बादर) अग्निकाय (सूक्ष्म, बादर) वायुकाय (सूक्ष्म बादर) नित्यनिगोद (सूक्ष्म, बादर) इतर निगोद (सूक्ष्म बादर) प्रत्येक वनस्पति, साधारण वनस्पतिकाय, द्विन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, सैनी पंचेन्द्रिय, असैनी पंचेन्द्रिय।

17. **पर्याप्ति–** छह भेद:- आहार, शरीर, इन्द्रिय, श्वासोच्छ्वास, भाषा, मन।

18. **प्राण–** दस भेद:- पाँच इन्द्रिय, मनोबल, वचन बल, काय बल, आयु प्राण, श्वासोच्छ्वास प्राण।

19. **संज्ञा–** चार भेद:- आहार संज्ञा, भय संज्ञा, मैथुन संज्ञा, परिग्रह संज्ञा।

20. **उपयोग–** बारह भेद:- ज्ञानोपयोग (आठ भेद) दर्शनोपयोग (चार भेद)

21. **ध्यान–** सोलह भेद:- आर्तध्यान (चार भेद-इष्ट वियोग, अनिष्ट संयोग पीड़ा चिन्तन, निदान बंध), रौद्रध्यान (चार भेद- हिंसानन्दी, मृषानन्दी चौर्यानन्दी, परिग्रहानन्दी), धर्मध्यान (चार भेद- आज्ञाविचय, अपाय विचय, विपाक विचय, संस्थान विचय) शुक्लध्यान (चार भेद- पृथक्त्ववितर्क, एकत्ववितर्क, सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाती, व्युपरतक्रियानिवर्ति)

22. **आस्रव–** सत्तावन भेद:- मिथ्यात्व (पाँच भेद एकान्त, विनय, विपरीत, संशय, अज्ञान),

अविरति (बारह भेद- छह काय के जीवों की रक्षा नहीं; पाँच इन्द्रिय और एक मन वश नहीं), कषाय (पच्चीस भेद- पूर्ववत्) योग (पन्द्रह भेद - पूर्ववत्)

23. **जाति**- चौरासी लाख:- पृथ्वीकाय- सात लाख, जलकाय- सात लाख, अग्निकाय- सात लाख, वायुकाय- सात लाख, नित्यनिगोद- सात लाख, इतर निगोद- सात लाख, वनस्पति काय- दस लाख, द्विन्द्रिय- दो लाख, त्रीन्द्रिय- दो लाख, चतुरिन्द्रिय- दो लाख, तिर्यंच- चार लाख, नरक गति- चार लाख, देव गति- चार लाख, मनुष्य गति- चौदह लाख।
अथवा

तिर्यंच- 62 लाख, एकेन्द्रिय- 52 लाख, त्रसकाय- 32 लाख, विकलत्रय-60 लाख, पंचेन्द्रिय- 26 लाख।

24. **कुल**- 199।। लाख कोटि- पृथ्वीकाय- 22 लाख कोटि, जलकाय-7 लाख कोटि अग्निकाय- 3 लाख कोटि। वायुकाय- 7 लाख कोटि, वनस्पति काय- 28 लाख कोटि, द्वीन्द्रिय - 7 लाख कोटि, त्रीन्द्रिय - 8 लाख कोटि, चतुरिन्द्रय - नौ लाख कोटि, पंचेन्द्रिय तिर्यच - 8311 लाख कोटि (जलचर - 1211 लाख कोटि, थल चर-18 लाख, नभचर- 12 लाख कोटि) नरक गति - पच्चीस लाख कोटि देवगति - 26 लाख कोटि, मनुष्य गति - 14 लाख कोटि।

अथवा

एकेन्द्रिय - 67 लाख कोटि, विकलत्रय - 24 लाख कोटि, त्रसकाय - 232 लाख कोटि, पंचेन्द्रिय - 10811 लाख कोटि, पंचेन्द्रिय तिर्यच - 4311 लाख कोटि, तिर्यच - 13411 लाख कोटि।

24 स्थानों का विशेष विवरण

नरक गति में

एक गति नरक
एक इन्द्रिय पंचेन्द्रिय
एक काय त्रस
ग्यारह योग मन 4, वचन 4, काय 3(वैक्रियिक2, कार्माण 1)
एक वेद नपुंसक
तेइस कषाय दो वेद बिना (स्त्री, पुरूष)
छह ज्ञान कुज्ञान-3 सुज्ञान-3
एक संयम असंयम
तीन दर्शन, केवलदर्शन बिना
तीन लेश्या कृष्ण, नील, कापोत
दो भव्य भव्य, अभव्य
छह सम्यक्त्व
एक सैनी सैनी
दो आहारक सभी
चार गुणस्थान 1 से 4 तक
एक जीवसमास पंचेन्द्रिय सैनी
छह पर्याप्ति सभी
दस प्राण सभी
चार संज्ञा सभी
नौ उपयोग ज्ञान 6 दर्शन 3
नौ ध्यान अति 4, रौद्र 4 धर्म
सभी आस्रव स्त्री1 1, पुरूष
इक्यावनआस्रव स्त्री1 पुरूष 1
आहारक 2 बिना
चार लक्ष जाति नरक संबधी
25 लक्ष कोटि कुल नरक संबंधी

तिर्यंच गति में

एक गति तिर्यंच
पाँच इन्द्रिय सभी
छह काय सभी
ग्यारह योग मन 4 वचन 4 काय 3
(औदायिक 2, कार्माण 1)
तीन वेद सभी
पच्चीस कषाय सभी
छह ज्ञान कुज्ञान 3 सुज्ञान 3
दो संयम संयम, असंयम

तीन दर्शन केवल दर्शन बिना
छह लेश्या सभी
दो भव्य सभी
छह सम्यक्त्व सभी
दो सैनी सभी
दो आहारक सभी
पाँच गुणस्थान 2 से पाँच तक
छह पर्याप्ति सभी
उन्नीस जीवसमास सभी

दस प्राण सभी
चार सज्ञा सभी
नौ उपयोग ज्ञान 6 दर्शन 3
ग्यारह ध्यान रौद्र 4, आर्त 4 धर्म 3
तिरप्पन आस्रव आहारक 2वैकि.2बिना

72 लाख जाति तिर्यंच एकेन्द्रिय से
13411 लाख कुल पंचेन्द्रित तक
कोटि

मनुष्यगति में

एक गति मनुष्य
एक इन्द्रिय पचेन्द्रिय
एक काय त्रस
तेरह योग वैक्रियिक द्विक बिना
तीन वेद सभी
पच्चीस कषाय सभी
आठ ज्ञान सभी
सात संयम सभी

चार दर्शन सभी
छह लेश्या सभी
दो भव्य सभी
छह सम्यक्त्व सभी
एक सैनी सभी
दो आहारक सभी
चौदह गुणस्थान सभी
एक जीवसमास सैनी पंचेन्द्रिय

छह पर्याप्ति सभी
दस प्राण सभी
चार संज्ञा सभी
बारह उपयोग सभी
सोलह ध्यान सभी
पचपन आस्रव वैक्रियिद्विक विन्स
14 लाख जाति मनुष्य संबंधी
14 लाख कोटि कुल मनुष्य संबंधी

देवगति में

एक गति देव
एक इन्द्रिय पंचेन्द्रिय
एक काय त्रस
ग्यारह योग मन 4, वचन 4, वैकि. 2
कार्माण 2
दो वेद स्त्री, पुरुषवेद
चौबीस कषाय नपुंसक वेद बिना
छह ज्ञान कुज्ञान 3 सुज्ञान 3
एक संयम असंयम

तीन दर्शन केवल दर्शन बिना
तीन लेश्या पीत, पद्म, शुक्ल
(पर्याप्त अपेक्षा)
छह लेश्या सभी (अपर्याप्त अपेक्षा)
दो भव्य सभी
छह सम्यक्त्व सभी
एक सैनी सैनी
दो आहारक सभी
चार गुणस्थान एक से चार तक

एक जीव समास सैनी पंचेन्द्रिय
छह पर्याप्ति सभी
दस प्राण सभी
चार संज्ञा सभी
नौ उपयोग कुज्ञान 3, सुज्ञान 3,
दर्शन 3
दस ध्यान आर्त 4, रौद्र 4 धर्म 2
बावन आस्रव नपुं औदा॰2
आहार बिना
4 लाख जाति - देव संबंधी
26 लक्ष कोटि कुल - देव संबंधी

एकेन्द्रिय (पाँच स्थावर) में

एक गति तिर्यंच
एक इन्द्रिय स्पर्शन
पाँच काय त्रस बिना
तीन योग औदारिक, औदारिक
मिश्र, कार्माण
एक वेद नपुंसक
तेइस कषाय स्त्री, पुरुष वेद बिना
दो ज्ञान कुमति, कुश्रुति
एक संयम असंयम
एक दर्शन अचक्षु

तीन लेश्या कृष्ण, नील, कापोत
दो भव्य सभी
एक सम्यक्त्व मिथ्यात्व
एक सैनी असैनी
दो आहारक सभी
एक गुणस्थान मिथ्यात्व
चौदह जीव समास एकेन्द्रिय संबंधी
चार पर्याप्ति भाषा, मन बिना
चार प्राण स्पर्शन, काय, आयु
श्वासोच्छ्वास

तीन उपयोग कुज्ञान 2,अचक्षु दर्शन 1
आठ ध्यान आर्त 4 रौद्र 4
अड़तीस आस्रव मिथ्यात्व 5
अविरति 7 कषाय 23
योग 3
52 लाख जाति एकेन्द्रिय संबंधी
67लाख कोटि कुल एकेन्द्रिय सं॰ ी
संबधी
चार संज्ञा सभी

दो इन्द्रिय में

एक गति तिर्यंच
एक इन्द्रिय द्विन्द्रिय
एक काय त्रस
चार योग औदा॰ 2, कार्माण,
अनुभय वचन
एक वेद नपुसक
तेइस कषाय स्त्री, पुरुष वेद बिना
दो ज्ञान कुमति, कुश्रुति
एक सयम असंयम
एक दर्शन अचक्षुदर्शन

तीन लेश्या कृष्ण, नील, कापोत
दो भव्य सभी
एक सम्यक्त्व मिथ्यात्व
एक सैनी असैनी
दो आहारक सभी
एक गुणस्थान मिथ्यात्व
एक जीव समास दो इन्द्रिय
पाँच पर्याप्ति मन बिना
चार संज्ञा सभी

छह प्राण इन्द्रिय 2, काय, वचन, आयु
श्वासोच्छ्वास
तीन उपयोग कुज्ञान 2, अचक्षु दर्शन 1
आठ ध्यान आर्त 4, रौद्र 4
चालीस आस्रव मिथ्यात्व5 अविरति 8
कषाय 23, योग 4
दो लाख जाति दो इन्द्रिय संबंधी
सात लक्ष कोटि कुल
दो इन्द्रिस संबंधी

तीन इन्द्रिय में

एक गति तिर्यंच
एक इन्द्रिय तीन इन्द्रिय
एक काय त्रस
चार योग औद॰ 2 वचन 1 कार्माणा
एक वेद नपुसक
तेइस कषाय स्त्री, पुरुष वेद बिना

तीन लेश्या कृष्ण, नील कापोत
दो भव्य सभी
एक सम्यक्त्व मिथ्यात्व
एक सैनी असैनी
दो आहारक सभी
एक गुणस्थान मिथ्यात्व

आयु, श्वासोच्छ्वास
चार संज्ञा सभी
तीन उपयोग कुज्ञान 2 अचक्षुदर्शन 1
आठ ध्यान आर्त 4 रौद्र 4
इकतालीस आस्रव मिथ्यात्व 5,
योग 4 (अविरति 9 कषाय 23

दो ज्ञान कुमति, कुश्रुति
एक संयम असंयम
एक दर्शन अचक्षुदर्शन

एक जीवसमास त्रिन्द्रिय
पांच पर्याप्ति मन बिना
सात प्राण इन्द्रिय 3, काय, वचन

दो लाख जाति त्रिन्द्रिय संबंधी
आठलक्षकोटि कुल त्रिन्द्रिय सम्बन्धी

चार इन्द्रिय में

एक गति तिर्यच
एक इन्द्रिय चतुरिन्द्रिय
एक काय त्रस
चार योग औ॰ 2 अनुभय वचन कार्माण
एक वेद नपुसक
तेइस कषाय स्त्री पुरुष वेद बिना
दो ज्ञान कुमति, कुश्रुति
एक संयम असयम

दो दर्शन चक्षु, अचक्षु
तीन लेश्या कृष्ण, नील, कापोत
दो भव्य सभी
एक सम्यक्त्व मिथ्यात्व
एक सैनी असैनी
दो आहारक सभी
एक गुणस्थान मिथ्यात्व
एक जीवसमास चतुरिन्द्रिय
पाँच पर्याप्ति मन बिना

आठ प्राण इन्द्रिय 4 काय वचन आयु, श्वासोच्छृवास
चार संज्ञा सभी
चार उपयोग ज्ञान 2 दर्शन 2
आठ ध्यान आर्त 4 रौद्र 4
व्यालीस आस्रव मिथ्यात्व 5, योग 4 अविरति 10 कषाय 23
दो लाख जाति चतुरिन्द्रिय संबंधी
नौलक्षकोटि कुल चतुरिन्द्रिय संबंधी

पंचेन्द्रिय में

चार गति सभी
एक इन्द्रिय पंचेन्द्रिय
एक काय भस
पन्द्रह योग सभी
तीन वेद सभी
पच्चीस कषाय सभी
आठ ज्ञान सभी
सात संयम सभी

चार दर्शन सभी
छह लेश्या सभी
दो भव्य सभी
छह सम्यक्त्व सभी
दो सैनी सभी
दो आहारक सभी
चौदह गुणस्थान सभी
दो जीवसमास सैनी, असैनी पंचेन्द्रिय

छह पर्याप्ति सभी
दस प्राण सभी
चार संज्ञा सभी
बारह उपयोग सभी
सोलह ध्यान सभी
सत्तावन आस्रव सभी
26लाख जातिपंचेन्द्रिय संबंधी
108।। लक्ष कोटि कुल पंचेन्द्रिय संबंधि

त्रस काय में

चार गति सभी
चार इन्द्रिय एकेन्द्रिय बिना
एक काय भस

चार दर्शन सभी
छह लेश्या सभी
दो भव्य सभी

छह पर्याप्ति सभी
दस प्राण सभी
चार संज्ञा सभी

पन्द्रह योग सभी
तीन वेद सभी
पच्चीस कषाय सभी
आठ ज्ञान सभी
सात संयम सभी

छह सम्यक्त्व सभी
दो सैनी सभी
दो आहारक सभी
चौदह गुणस्थान सभी
पाँच जीव समास भस सबंधी

बारह उपयोग सभी
सोलह ध्यान सभी
सत्तावन आस्रव सभी
32 लाख जाति त्रस संबंधी
132½ लक्ष कोटि कुल त्रस संबंधी

सत्य मन वचन में और अनुभय में

चार गति सभी
एक इन्द्रिय पंचेन्द्रिय
एक काय त्रस
एक योग स्व
तीन वेद सभी
पच्चीस कषाय सभी
आठ ज्ञान सभी
सात सयम सभी
चार दर्शन सभी

छह लेश्या सभी
दो भव्य सभी
छह सम्यक्त्व सभी
एक सैनी सैनी
एक आहारक आहारक
तेरह गुणस्थान आयोग केवली बिना
एक जीव समास पंचेन्द्रिय सैनी
छह पर्याप्ति सभी
दस प्राण सभी
चार संज्ञा सभी

बारह उपयोग सभी
पन्द्रह ध्यान व्युपरत किया निवृति बिना
तैंतालीस आस्रव मिथ्यात्व 5 अविरति 12 कषाय 25, योग 1
26 लाख जाति पंचेन्द्रिय संबंधी
108½ लक्ष कुल पंचेन्द्रिय कोटि संबंधि

असत्य मन वचन में और उभय में

चार गति सभी
एक इन्द्रिय पंचेन्द्रिय
एक काय त्रस
एक योग स्व
तीन वेद सभी
पच्चीस कषाय सभी
सात ज्ञान केवल ज्ञान बिना
सात संयम सभी
तीन दर्शन केवल दर्शन बिना

छह लेश्या सभी
दो भव्य सभी
छह सम्यक्तव सभी
एक सैनी सैनी
एक आहारक आहारक
बारह गुणस्थान सयोग केवली, अयोगकेवली बिना
एक जीव समास सैनी पंचेन्द्रिय
छह पर्याप्ति सभी

दस प्राण सभी
चार संज्ञा सभी
दस उपयोग ज्ञान 7 दर्शन 3
चौदह ध्यान अन्त के 2 शुक्ल ध्यान बिना
26 लाख जाति पंचेन्द्रिय सभी
108 1/2 लक्ष कुल पंचेन्द्रिय सभी कोटि

औदारिक काय योग में

दो गति तिर्यच मनुष्य
पाँच इन्द्रिय सभी
छह काय सभी

छह लेश्या सभी
दो भव्य सभी
छह सम्यक्त्व सभी

चार संज्ञा सभी
बारह उपयोग सभी
पन्द्रह ध्यान व्यपुरत किया निवृत्ति बिना

एक योग औदारिक काय
तीन वेद सभी
पच्चीस कषाय सभी
आठ ज्ञान सभी
सात संयम सभी
चार दर्शन सभी

दो सैनी सभी
एक आहारक आहारक
तेरह गुणस्थान अयोग केवली बिना
उन्नीस जीव समास सभी
छह पर्याप्ति सभी
दस प्राण सभी

तैतालिस आस्रव मिथ्यात्व 5 योग 1 अविरति 12 कषाय 25
76 लाख जाति तिर्यच, मनुष्य
148।। लख कुल तिर्यच, मनुष्य कोटि

औदारिक मिश्रकाययोग में

दो गति तिर्यच, मनुष्य
पाँच इन्द्रिय सभी
छह काय सभी
एक योग औपारिक मिश्र काय
तीन वेद सभी
पच्चीस कषाय सभी
छह ज्ञान विभग, मन: पर्यय बिना
दो संयम असयत यथाख्यात
चार दर्शन सभी

छह लेश्या सभी
दो भव्य सभी
चार सम्यक्त्व मिश्र, उपशम बिना
दो सैनी सभी
दो आहारक आहारक (कपाट समुद्र-घात अपेक्षा) अनाहारक
चार गुणस्थान 1/2/4/13
उन्नीस जीव समास सभी
छह पर्याप्ति सभी

सात प्राण मन, वचन, श्वास बिना
दस उपयोग ज्ञान 6 दर्शन 4
चार संज्ञा सभी
दस ध्यान आर्त 4 रौद्र 4 धर्म 1 शुक्ल 1
तैंतालीस आस्रव मिथ्यात्व 5 कषाय 25 अविरति 12 योग 1
76 लाख जाति तिर्यच, मनुष्य
148।। लक्ष कुल तिर्यच, मनुष्य कोटि

वैक्रियिक काययोग में

दो गति नरक, देव
एक इन्द्रिय पचेन्द्रिय
एक काय त्रस
एक योग स्व
तीन वेद सभी
पच्चीस कषाय सभी
छह ज्ञान कुज्ञान 3 सुज्ञान 3
एक संयम असंयम
तीन दर्शन केवल दर्शन बिना

छह लेश्या सभी
दो भव्य सभी
छह सम्यक्त्व सभी
एक सैनी सैनी
एक आहारक आहारक
चार गुणस्थान 1 से चार तक
एक जीव समास पंचेन्द्रिय
छह पर्याप्ति सभी
दस प्राण सभी

चार सज्ञा सभी
नौ उपयोग ज्ञान 6 दर्शन 3
दस ध्यान आर्त 4 रौद्र 4 धर्म 2
तैंतालीस आस्रव मिथ्यात्व 5 अविरति 12, योग 1 कषाय 25
8 लाख जाति देव, नारकी
51 लक्ष कोटि कुल देव, नारकी

वैक्रियिक मिश्रकाययोग में

दो गति देव, नारकी
एक इन्द्रिय पंचेन्द्रिय
एक काय त्रस

छह लेश्या सभी
दो भव्य सभी
पाँच सम्यक्त्व मिश्र बिना

श्वासोच्छ्वास बिना
चार संज्ञा सभी
आठ उपयोग ज्ञान 5 दर्शन 3

एक योग वैक्रियिक मिश्रकाय
तीन वेद सभी
पच्चीस कषाय सभी
पाँच ज्ञान सुज्ञान 3, कुज्ञान 2 आदि के
एक संयम असंयम
तीन दर्शन चक्षु, अचक्षु, अवधि
एक सैनी सैनी
एक आहारक आहारक
तीन गुणस्थान 1/2/4
एक जीव समास पंचेन्द्रिय
छह पर्याप्ति सभी
सात प्राण मन, वचन
नौ ध्यान आर्त 4 रौद्र 4 धर्म 1
तैंतालीस आस्रव मिथ्यात्व 5
अविरति 12 योग 1
कषाय 25
8 लाख जाति देव नरक
51 लक्ष कोटि कुल देव, नरक

आहारक व आहारक मिश्रकाययोग में

एक गति मनुष्य
एक इन्द्रिय पचेन्द्रिय
एक काय त्रस
एक योग आहारक या आहारक मिश्र
एक वेद पुरुष काय
ग्यारह कषाय सज्वलन 4 हास्य 6 वेद 1
तीन ज्ञान मति, श्रुति, अवधि
दो सयम सामायिक छेदोपस्थापना
तीन दर्शन चक्षु, अचक्षु, अवधि
तीन लेश्या पीत, पद्म, शुक्ल
एक भव्य भव्य
दो सम्यक्त्व क्षायिक, वेदक
एक सैनी सैनी
एक आहारक आहारक
एक गुणस्थान प्रमत्त
एक जीव समास सैनी पंचेन्द्रिय
छह पर्याप्ति सभी
सात प्राण स्वकीय
चार संज्ञा सभी
छह उपयोग ज्ञान 3 दर्शन 3
सातध्यान आर्त 3 धर्म 4
बारह आश्रव कषाय 11 योग 1
चौदह लाख जाति मनुष्य
14 लाख कोटि कुल मनुष्य

कार्माण काय योग में

चार गति सभी
पाँच इन्द्रिय सभी
छह काय सभी
एक योग कार्माण काय
तीन वेद सभी
पच्चीस कषाय सभी
छह ज्ञान कुअवधि, मन:पर्यय बिना
दो संयम असंयम, यथाख्यात
चार दर्शन सभी
एक लेश्या द्रव्य शुक्ल भाव 6
दो भव्य सभी
पाँच सम्यक्त्व मिश्र बिना
दो सैनी सभी
एक आहारक अनाहारक
चार गुणस्थान 1/2/4/13
उन्नीस जीव समास सभी
शून्य पर्याप्ति शून्य
सात प्राण मन, वचन, श्वास बिना
चार संज्ञा सभी
दस उपयोग ज्ञान 6 दर्शन 4
ग्यारह ध्यान आर्त 4 रौद्र 4 धर्म 2 शुक्ल 1
तैतालिस आस्रव मिथ्यात्व 5 अविरति 12 योग 1
कषाय 25
84 लाख जाति सभी
199।। लक्ष कुल कोटि कुलसभी

भाव स्त्री वेद में

तीन गति देव, मनुष्य, तिर्यच
एक इन्द्रिय पंचेन्द्रिय
एक काय त्रस
तीन दर्शन चक्षु, अचक्षु अवधि
छह लेश्या सभी
दो भव्य सभी
असैनी पंचेन्द्रिय
छह पर्याप्ति सभी
दस प्राण सभी

तेरह योग आहारक द्विक बिना
एक वेद स्त्री वेद
तेइस कषाय पुरुष, नपुंसक बिना
छह ज्ञान सुज्ञान 3, कुज्ञान 3
चार संयम असंयम, देशसंयम
सामायिक, छेदोपस्थापना

छह सम्यक्त्व सभी
दो सैनी सभी
दो आहारक सभी
नौ गुणस्थान आदि के (प्रथम से से नौवे तक)
दो जीवसमास सैनी पंचेन्द्रिय

चार संज्ञा सभी
नौ उपयोग ज्ञान 6 दर्शन 3
तेरह ध्यान अन्त 3 बिना
तेरप्पन आस्त्रव **आहारक द्विक**, स्त्रीवेद, पुरुष वेद बिना
22 लाख - जाति देव
83।। लक्ष कोटि कुल - तिर्यंच मनुष्य

पुरुष वेद में

तीन गति देव, मनुष्य, तिर्यच
एक इन्द्रिय पंचेन्द्रिय
एक काय त्रस
पन्द्रह योग सभी
एक वेद पुरुष वेद
तेइस कषाय स्त्री, नपुंसक बिना
सात ज्ञान केवल ज्ञान बिना
पाँच संयम सूक्ष्म सांपराय, यथाख्यात बिना
तीन दर्शन केवलदर्शन बिना

छह लेश्या सभी
दो भव्य सभी
छह सम्यक्त्व सभी
दो सैनी सभी
दो आहारक सभी
नौ गुणस्थान आदि के (प्रथम से नौवां गुणस्थान तक)
दो जीव समास सैनी पंचेन्द्रिय, असैनी पंचेन्द्रिय
छह पर्याप्ति सभी

दस प्राण सभी
चार संज्ञा सभी
दस उपयोग केवल ज्ञान, केवल दर्शन बिना
तेरह ध्यान अन्त के 3 बिना
पचपन आस्त्रव स्त्री, नपुंसक बिना
22 लाख जाति देव, मनुष्य तिर्यच
83।। लक्ष कोटि कुल देव, मनुष्य तिर्यच

नपुंसक वेद में

तीन गति नरक, पशु, मनुष्य
पाँच इन्द्रिय सभी
छह काय सभी
तेरह योग आहारक द्विक बिना
एक वेद नपुसक वेद
तेइस कषाय स्त्री, पुरुष वेद बिना
छह ज्ञान मन: पर्यय, केवल ज्ञान बिना
चार संयम असंयम, संयमासंयम सामायिक, छेदोपस्थापना

तीन दर्शन केवल दर्शन बिना
छह लेश्या सभी
दो भव्य सभी
छह सम्यक्त्व सभी
दो सैनी सभी
दो आहारक सभी
नौ गुणस्थान प्रथम से नौवाँ गुणस्थान तक
उन्नीस जीव समास सभी

छह पर्याप्ति सभी
दस प्राण सभी
चार संज्ञा सभी
नौ उपयोग ज्ञान 6 दर्शन 3
तेरह ध्यान अन्त के 3 बिना
त्रेपन आस्त्रव आहारक द्विक स्त्री वेद पुरुष वेद के बिना
80 लाख जाति - नरक, पशु
173।। लक्ष कोटि कुल - मनुष्य

अनन्तानुबंधी चतुष्क में

चार गति सभी
पाँच इन्द्रिय सभी

छह लेश्या सभी
दो भव्य सभी

चार संज्ञा सभी
पाँच उपयोग ज्ञान 3 दर्शन 2

छह काय सभी
तेरह योग आहारक द्विक बिना
तीन वेद सभी
दस कषाय हास्यदि 9 स्व 1
तीन ज्ञान कुज्ञान 3
एक सयम असयम
दो दर्शन चक्षु, अचक्षु

दो सम्यक्त्व मिथ्यात्व, सासादन
दो सैनी सभी
दो आहारक सभी
दो गुणस्थान मिथ्यात्व, सासादन
उन्नीस जीव समास सभी
छह पर्याप्ति सभी
दस प्राण सभी

आठ ध्यान आर्त 4, रौद्र 4
चालीस आस्रव मिथ्यात्त्व 5
अविरति 12
कषाय 10 योग 13
84 लाख जाति सभी
199।। लक्ष कोटि कुल सभी

अप्रत्याख्यान चतुष्क में

चार गति सभी
एक इन्द्रिय पचेन्द्रिय
एक काय त्रस
तेरह योग आहारक द्विक बिना
तीन वेद सभी
दस कषाय हास्यादि 9, स्व. एक
तीन ज्ञान मतिश्रुति अवधि
एक सयम असंयम
तीन दर्शन केवलदर्शन बिना

छह लेश्या सभी
एक भव्य भव्य
चार सम्यक्त्व मिश्र, उपशम,
क्षायिक, वेदक
एक सैनी सैनी
दो आहारक सभी
दो गुणस्थान 3/4
एक जीव समास संज्ञी पंचेन्द्रिय
छह पर्याप्ति सभी

दस प्राण सभी
चार संज्ञा सभी
छह उपयोग ज्ञान 3 दर्शन 3
दस ध्यान आर्त 4 रौद्र 4
धर्म 2
पैंतीस आस्त्रव अविरति 12
कषाय 10 योग 13
26 लाख जाति - देव नारकी
108।। लाख कोटि कुल मनुष्य, तिर्यंच पंचेन्द्रिय

प्रत्याख्यान चतुष्क में

दो गति मनुष्य, तिर्यच
एक इन्द्रिय पचेन्द्रिय
एक काय त्रस
नौ योग मन 4, वचन 4, औद. 1
तीन वेद सभी
दस कषाय हास्यादिर्च स्व 1
तीन ज्ञान मति, श्रुत, अवधि
एक सयम संयमासंयम
तीन दर्शन चक्षु, अचक्षु अवधि

तीन लेश्या पीत, पद्म, शुक्ल
एक भव्य भव्य
तीन सम्यक्त्व उपशम, क्षायिक
वेदक
एक सैनी सैनी
एक आहारक आहारक
एक गुणस्थान देशव्रत
एक जीवसमास सैनी पंचेन्द्रिय
छह पर्याप्ति सभी

दस प्राण सभी
चार संज्ञा सभी
छह उपयोग ज्ञान 3 दर्शन 3
ग्यारह ध्यान आर्त 4, रौद्र 4, धर्म 3
तीस आस्त्रव अविरति 11, कषाय
10 योग 9
18 लाख जाति मनुष्य तिर्यंच
57।। लक्ष कोटि कुल मनुष्य, तिर्यंच

संज्वलन त्रिक में

एक गति मनुष्य
एक इन्द्रिय पचेन्द्रिय
एक काय त्रस
ग्यारह योग मन 4, वचन 4,
औदारिक 1 आहारक 2
तीन वेद सभी

तीन दर्शन केवलदर्शन बिना
तीन लेश्या पीत पद्म शुक्ल
एक भव्य भव्य
तीन सम्यक्त्व उपशम, क्षायिक
वेदक
एक सैनी सैनी

छह पर्याप्ति सभी
दस प्राण सभी
चार संज्ञा सभी
सात उपयोग ज्ञान 4 दर्शन 3
आठ ध्यान आर्त 3 धर्म 4 शुक्ल 1
इक्कीस आस्त्रव योग 11

दस कषाय हास्यादि 9 स्व 1
चार ज्ञान केवलज्ञान बिना
तीन संयम सामायिक, छेदो–
पख्यापना, परिहार विशुद्धि

एक आहारक आहारक
चार गुणस्थान 6/7/8/9
एक जीवसमास सैनी पंचेन्द्रिय

कषाय 10
14 लाख जाति मनुष्य
14 लक्ष कोटि कुल मनुष्य

संज्वलन लोभ में

एक गति मनुष्य
एक इन्द्रिय पंचेन्द्रिय
एक काय त्रस
ग्यारह योग मन 4, वचन 4
आहारक 2, औदारिक 1
तीन शून्य वेद सभी/बेदरहित
दस कषाय हास्यादि 9, शून्य लोभ
चार संयम सामायिक, छेदोपस्था
घना, परिवार विशुद्धि,
सूक्ष्म सांचराय

तीन दर्शन केवल दर्शन बिना
तीन लेश्या पद्म, पीत, शुक्ल
एक भव्य भव्य
तीन सम्यक्त्व उपशम, क्षायिक
बेदक
एक सैनी सैनी
एक आहारक आहारक
एक जीव समास पंचेन्द्रिय

छह पर्याप्ति सभी
दस प्राण सभी
चार संज्ञा सभी
सात उपयोग ज्ञान 4 दर्शन 3
आठ ध्यान आर्त 3 धर्म 4 शुक्ल 1
इक्कीस आस्रव योग 11 कषाय 10
14 लाख जाति मनुष्य

हास्यादि षट् में

चार गति सभी
पाँच इन्द्रिय सभी
छह काय सभी
पन्द्रह योग सभी
तीन वेद सभी
बीस कषाय कोधादि 16,
वेद 3 स्व 1
सात ज्ञान केवलज्ञान बिना
पाँच संयम सूक्ष्म सांपराय,
यथाख्यात बिना

तीन दर्शन केवलदर्शन बिना
छह लेश्या सभी
दो भव्य सभी
छह सम्यक्त्व सभी
दो सैनी सभी
दो आहारक सभी
आठ गुणस्थान प्रथम से अष्ठम् तक
उन्नीस जीवसमास सभी
छह पर्याप्ति सभी

दस प्राण सभी
चार संज्ञा सभी
दस उपयोग ज्ञान 7 दर्शन 3
तेरह ध्यान आर्त 4 रौद्र 4
धर्म 4 शुक्ल 1
बावन आस्रव मिथ्यात्व 5 योग 15
कषाय 20, अविरति 12
84 लाख जाति सभी
199।। लक्ष कोटि कुलसभी

कुमति - कुश्रुति ज्ञान में

चार गति सभी
पाँच इन्द्रिय सभी
छह काय सभी

छह लेश्या सभी
दो भव्य सभी
दो सम्यक्त्व मिथ्यात्व, सासादन

चार संज्ञा सभी
तीन उपयोग ज्ञान 1 दर्शन 2
आठ ध्यान आर्त 4 रौद्र 4

तेरह योग आहारक द्विक बिना
तीन वेद सभी
पच्चीस कषाय सभी
एक ज्ञान स्व ।
एक संयम असंयम
दो दर्शन चक्षु, अचक्षु

दो सैनी सभी
दो आहारक सभी
दो गुणस्थान मिथ्यात्व, सासादन
उन्नीस जीव समास
छह पर्याप्ति सभी
दस प्राण सभी

पचपन आस्त्रव आहारक द्विक बिना
84 लाख जाति सभी
सभी 199।। लक्ष कोटि कुल सभी

कुअवधि ज्ञान में

चार गति सभी
एक इन्द्रिय पंचेन्द्रिय
एक काय त्रस
दस योग मन 4 वचन 4
औदारिक 1 वैक्रियिक 1
तीन वेद सभी
पच्चीस कषाय सभी
एक ज्ञान कुअवधि
दो दर्शन चक्षु, अचक्षु

एक संयम असंयम
छह लेश्या सभी
दो भव्य सभी
दो सम्यक्त्व मिथ्यात्व, सासादन
एक सैनी सैनी
एक आहारक आहारक
दो गुणस्थान मिथ्यात्व, सासादन
एक जीव समास सैनी पंचेन्द्रिय
छह सभी

दस प्राण सभी
चार संज्ञा सभी
तीन उपयोग ज्ञान 1 दर्शन 2
आठ ध्यान आर्त 4 रौद्र 4
बावन आस्त्रव मिथ्यात्व 5 योग 10
अविरति 12 कषाय 25
26 लाख जाति पंचेन्द्रियसभी
108।। लक्ष कोटि कुल सभी
पंचेन्द्रिय

मति श्रुति ज्ञान में

एक गति सभी
एक इन्द्रिय पंचेन्द्रिय
एक काय त्रस
पन्द्रह योग सभी
तीन वेद सभी
इक्कीस कषाय अनन्तानुबंधी
4 बिना
एक ज्ञान स्व ।
सात संयम सभी
दो दर्शन चक्षु, अचक्षु

छह लेश्या सभी
एक भव्य भव्य
तीन सम्यक्त्व उपशम, क्षायिक वेदक
एक सैनी सैनी
दो आहारक सभी
नौ गुणस्थान चौथे से बारहवें तक
एक जीव समास सैनी पंचेन्द्रिय
छह पर्याप्ति सभी
चार संज्ञा सभी

तीन उपयोग ज्ञान 1 दर्शन 2
दस प्राण सभी
चौदह ध्यान आर्त 4 रौद्र 4 धर्म 4
शुक्ल 2
अड़तालीस आस्त्रव अविरति 12 योग
15 कषाय 21
26 लाख जाति सभी पंचेन्द्रिय
108।। लक्ष कुल सभी पंचेन्द्रिय कोटि

अवधि ज्ञान में

चार गति सभी
एक इन्द्रिय पंचेन्द्रिय
एक काय त्रस

छह लेश्या सभी
एक भव्य भव्य
तीन सम्यक्त्व उपशम वेदक

दस प्राण सभी
चार संज्ञा सभी
चार उपयोग ज्ञान 1 दर्शन 3

पन्द्रह योग सभी
तीन वेद सभी
इक्कीस कषाय अनन्तानुबंधी 4 बिना
एक ज्ञान अवधिज्ञान
सात संयम सभी
तीन दर्शन केवल दर्शन बिना

क्षायिक
एक सैनी सैनी
दो आहारक सभी
नौ गुणस्थान चौथे से बारहवें तक
एक जीव समास सैनी पंचेन्द्रिय
छह पर्याप्ति सभी

चौदह ध्यान आर्त 4 रौद्र 4
धर्म 4 शुक्ल 2
अड़तालीस आस्रव अविरति 12
कषाय 21 योग 15
26 लाख जाति पंचेन्द्रिय सभी
108।। लक्ष कुल कोटि पंचेन्द्रिय सभी कोटि

मन:पर्यय ज्ञान में

एक गति मनुष्य
एक इन्द्रिय पंचेन्द्रिय
एक काय त्रस
नौ योग मन 4 वचन 4 औदारिका 1
एक वेद पुरुष
ग्यारह कषाय संज्वलन 4, पुरुष 1
हास्यादि 6
एक ज्ञान मन:पर्यय
चार संयम सामायिक, छेदोपस्थापना
सूक्ष्म सांपराय, यथाख्यात
तीन दर्शन केवल दर्शन बिना

तीन लेश्या पीत, पद्म, शुक्ल
एक भव्य भव्य
तीन सम्यक्त्व उपशम, क्षायिक वेदक
वेदक
एक सैनी सैनी
एक आहारक आहारक
सात गुणस्थान छठे से बारहवें तक
एक जीव समास सैनी पचेन्द्रिय
छह पर्याप्ति सभी
दस प्राण सभी

चार संज्ञा सभी
चार उपयोग ज्ञान 1 दर्शन 3
नौ ध्यान आर्त 3 धर्म 4,
शुक्ल 2
बीस आस्रव कषाय 11 योग 9
14 लाख जाति मनुष्य
14 लाख कोटि कुल मनुष्य

एक गति मनुष्य
एक इन्द्रिय पंचेन्द्रिय
एक काय त्रस
सात योग मन 2, वचन 2, कार्माण
1, औदारिक 2
शून्य वेद शून्य
शून्य कषाय शून्य
एक ज्ञान केवलज्ञान
एक संयम यथाख्यात

एक दर्शन केवल दर्शन
एक लेश्या शुक्ल
एक भव्य भव्य
एक सम्यक्त्व क्षायिक
एक सैनी सैनी
दो आहारक सभी
दो गुणस्थान सयोग, अयोग
एक जीव समास सैनी पंचेन्द्रिय

छह पर्याप्ति सभी
चार प्राण वचन, श्वास, आयु काय
शून्य संज्ञा शून्य
दो उपयोग ज्ञान 1 दर्शन 1
दो ध्यान अन्त के शुक्ल 2
सात आस्रव योग के
14 लाख जाति मनुष्य
14 लक्ष कोटि कुल मनुष्य

सामायिक-छेदोपस्थापना संयम में

एक गति मनुष्य
एक इन्द्रिय पंचेन्द्रिय
एक काय त्रस
ग्यारह योग मन 4, वचन 4,
औदारिक 1 आहारक 2

तीन दर्शन केवल दर्शन बिना
तीन लेश्या पीत, पद्म, शुक्ल
एक भव्य भव्य
तीन सम्यक्त्व उपशम, वेदक,
क्षायिक

छह पर्याप्ति सभी
दस प्राण सभी
चार संज्ञा सभी
सात उपयोग ज्ञान 4, दर्शन 3
आठ ध्यान आर्त 3, धर्म 4 शुक्ल 1

तीन वेद सभी
तेरह कषाय संज्वलन 4 हास्यादि 9
चार ज्ञान केवल ज्ञान बिना
एक संयम स्व

एक सैनी सैनी
एक आहारक आहारक
चार गुणस्थान छठे से नव में तक
एक जीव समास सैनी पंचेन्द्रिय

चौबीस आस्रव कषाय 13 योग 11
14 लाख जाति मनुष्य
14 लक्ष कोटि कुल मनुष्य

परिहार-विशुद्धि संयम में

एक गति मनुष्य
एक इन्द्रिय पंचेन्द्रिय
एक काय त्रस
नौ योग मन 4, वचन 4, औदारिक 1
एक वेद पुरुष
ग्यारह कषाय संज्वलन 4 पुरुष 1
हास्यादि 6
तीन ज्ञान मत्यादि
एक संयम स्व (परिहार विशुद्धि)

तीन दर्शन केवल दर्शन बिना
तीन लेश्या पीत, पद्म, शुक्ल
एक भव्य भव्य
दो सम्यक्त्व वेदक, क्षायिक
एक सैनी सैनी
एक आहारक आहारक
दो गुणस्थान प्रमत्त, अप्रमत्त
एक जीव समास सैनी पंचेन्द्रिय

छह पर्याप्ति सभी
दस प्राण सभी
चार संज्ञा सभी
छह उपयोग ज्ञान 3 दर्शन 3
सात ध्यान आर्त 3, धर्म 4
बीस आस्रव कषाय 11 योग 9
14 लाख जाति मनुष्य
14 लक्ष कोटि कुल मनुष्य

सूक्ष्म-सांपराय संयम में

एक गति मनुष्य
एक इन्द्रिय पंचेन्द्रिय
एक काय त्रस
नौ योग मन 4, वचन 4, औदारिक 1
शून्य वेद शून्य
एक कषाय संज्वलन लोभ
चार ज्ञान केवल ज्ञान बिना
एक संयम सूक्ष्म सांपराय

तीन दर्शन केवल दर्शन बिना
एक लेश्या पति पद्म, शुक्ल
दो सम्यक्त्व उपशम, क्षायिक
एक भव्य भव्य
एक सैनी सैनी
एक आहारक आहारक
एक गुणस्थान दसवाँ
एक जीव समास सैनी पंचेन्द्रिय

छह पर्याप्ति सभी
दस प्राण सभी
एक संज्ञा परिग्रह
सात उपयोग ज्ञान 4 दर्शन 3
एक ध्यान प्रथम शुक्ल
दस आस्रव संज्वलन कषाय 1
योग 9
14 लाख जाति मनुष्य
14 लक्ष कोटि कुल मनुष्य

यथाख्यात संयम में

एक गति मनुष्य
एक इन्द्रिय पंचेन्द्रिय
एक काय त्रस
ग्यारह योग मन 4, वचन 4,
कार्माण औदायिक 2
शून्य वेद शून्य

एक लेश्य शुक्ल
एक भव्य भव्य
दो सम्यक्त्व उपशम, क्षायिक
एक सैनी सैनी
दो आहारक सभी
चार गुणस्थान ग्यारहवें से

दस प्राण सभी
शून्य संज्ञा शून्य
नौ उपयोग ज्ञान 5, दर्शन 4
चार ध्यान शुक्ल 4
ग्यारह आस्रव योग 11
14 लाख जाति मनुष्य

शून्य कषाय शून्य

पाँच ज्ञान मत्यादि यथायोग्य

चार दर्शन सभी

एक संयम यथाख्यात

चौदहवें तक

एक जीव समास सैनी पंचेन्द्रिय

छह पर्याप्ति सभी

14 लक्ष कोटि कुल मनुष्य

संयमासंयम में

दो गति मनुष्य, तिर्यंच

एक इन्द्रिय पंचेन्द्रिय

एक काय त्रस

नौ योग मन 4, वचन 4 औदारिक 1

तीन वेद सभी

सत्तरह कषाय प्रत्याख्यान 4 संज्वलन 4, हास्यादि 9

तीन ज्ञान मति, श्रुत, अवधि

एक संयम संयमा संयम

तीन दर्शन केवल दर्शन बिना

तीन लेश्या पीत पद्म शुक्ल

एक भव्य भव्य

तीन सम्यक्तव उपशम, वेदक, क्षायिक

एक सैनी सैनी

एक आहारक आहारक

एक गुणस्थान देशव्रत

एक जीव समास सैनी पंचेन्द्रिय

छह पर्याप्ति सभी

दस प्राण सभी

चार संज्ञा सभी

छह उपयोग ज्ञान 3, दर्शन 3

ग्यारह ध्यान आर्त 4 रौद्र 4 धर्म 3

सैतीस आस्रव अविरति 11, योग 9, कषाय 17

18 लाख जाति मनुष्य, तिर्यंच

57।। लक्ष कोटि - कुल मनुष्य, तिर्यंच

असंयम में

चार गति सभी

पाँच इन्द्रिय सभी

छह काय सभी

तेरह योग आहारक द्विक बिना

तीन वेद सभी

पच्चीस कषाय सभी

छह ज्ञान कुज्ञान 3 सुज्ञान 3

एक संयम असंयम

तीन दर्शन केवल दर्शन बिना

छह लेश्या सभी

दो भव्य सभी

छह सम्यक्त्व सभी

दो सैनी सभी

दो आहारक सभी

चार गुणस्थान 1/2/3/4

उन्नीस जीव समास

छह पर्याप्ति सभी

दस प्राण सभी

चार संज्ञा सभी

नौ उपयोग ज्ञान 6 दर्शन 3

दस ध्यान आर्त 4, रौद्र 4, धर्म 2

पचपन आस्रव मिथ्यात्व 5 अविरति 12, कषाय 25, योग 13

84 लाख जाति सभी

199।। लक्ष कोटि कुल सभी

चक्षु-दर्शन में

चार गति सभी

दो इन्द्रिय चौइन्द्रिय, पंचेन्द्रिय

एक काय त्रस

पन्द्रह योग सभी

तीन वेद सभी

छह लेश्या सभी

दो भव्य सभी

छह सम्यक्त्व सभी

दो सैनी सभी

दो आहारक सभी

दस प्राण सभी

चार संज्ञा सभी

आठ उपयोग ज्ञान 7 दर्शन 1

चौदह ध्यान आर्त 4 रौद्र 4 धर्म 4, शुक्ल 2

पच्चीस कषाय सभी
सात ज्ञान केवलज्ञान बिना
सात संयम सभी
एक दर्शन चक्षुदर्शन

बारह गुणस्थान एक से 12 पर्यन्त
तीन जीवसमास चौइन्द्रिय, सैनी पंचेन्द्रिय, असैनी, पंचैन्द्रिय
छह पर्याप्ति सभी

सत्तावन आस्रव सभी
28 लाख जाति चौइन्द्रिय, पंचेन्द्रिय
116।। लक्ष कोटि कुल चौइन्द्रिय,पंचेन्द्रिय

अचक्षु-दर्शन में

चार गति सभी
पाँच इन्द्रिय सभी
छह काय सभी
पन्द्रह योग सभी
तीन वेद सभी
पच्चीस कषाय सभी
सात ज्ञान केवलज्ञान बिना
सात संयम सभी
एक दर्शन अचक्षुदर्शन

छह लेश्या सभी
दो भव्य सभी
छह सम्यक्त्व सभी
दो सैनी सभी
दो आहारक सभी
बारह गुणस्थान प्रथम से बारह पर्यन्त
उन्नीस जीव समास सभी
छह पर्याप्ति सभी

दस प्राण सभी
चार संज्ञा सभी
आठ उपयोग ज्ञान 7 दर्शन 1
चौदह ध्यान आर्त 4, रौद्र 4 धर्म 4, शुक्ल 2
सत्तावन आस्रव सभी
84 लाख जाति सभी
199।। लक्ष कोटि -कुल सभी

अवधि दर्शन में

चार गति सभी
एक इन्द्रिय पंचेन्द्रिय
एक काय त्रस
पन्द्रह योग सभी
तीन वेद सभी
इक्कीस कषाय अनन्तानुबंधी 4 बिना
चार ज्ञान सुज्ञान
सात संयम सभी
एक दर्शन अवधि दर्शन

छह लेश्या सभी
एक भव्य भव्य
तीन सम्यक्त्व उपशम, वेदक क्षायिक
एक सैनी सैनी
दो आहारक सभी
नौ गुणस्थान चतुर्थ से बारहवें तक
एक जीव समास सैनी पंचेन्द्रिय
छह पर्याप्ति सभी

दस प्राण सभी
चार संज्ञा सभी
पाँच उपयोग ज्ञान 4 दर्शन 1
चौदह ध्यान अन्त के शुक्ल 2 बिना
अड़तालीस आस्रव मिथ्यात्व 5, अनन्तानुबंधी 4 बिना
26 लाख जाति मनुष्य, देव
108।। लक्ष कोटि - कुल तिर्यंच, नारकी सैनी पंचेन्द्रिय

केवलदर्शन में

एक गति मनुष्य
एक इन्द्रिय पंचेन्द्री
एक काय त्रस
सात योग मन 2, वचन 2 कर्माण 1 औदारिक 2

एक संयम यथाख्यात
एक लेश्या शुक्ल
एक भव्य भव्य
एक सम्यक्त्व क्षायिक
शून्य सैनी शून्य

चार प्राण वचन 1, काय 1, आयु 1 श्वासोच्छ्वास 1
शून्य संज्ञा शून्य
दो उपयोग ज्ञान 1 दर्शन 1
दो ध्यान अन्त के 2 शुक्ल

शून्य वेद शून्य	दो आहारक सभी	सात आस्रव योग 7
शून्य कषाय शून्य	दो गुणस्थान 13, 14	14 लाख जाति मनुष्य
एक ज्ञान केवलज्ञान	एक जीव समास सैनीं पंचेन्द्री	14 लक्ष कोटि कुल मनुष्य
एक दर्शन केवल दर्शन	छह पर्याप्ति सभी	(प्रत्तर-लोक पूर्ण अपेक्षा)

कृष्ण नील कापोत लेश्या में

तीन गति देव बिना (पर्याप्त अपेक्षा)	एक लेश्या स्व (कृष्ण, नील कापोत)	चार संज्ञा सभी
पाँच इन्द्रिय सभी	दो भव्य सभी	नौ उपयोग ज्ञान 6, दर्शन 3
छह काय सभी	छह सम्यक्त्व सभी	दस ध्यान आर्त 4, रौद्र 4, धर्म 2
तेरह योग आहाकर द्विक बिना	दो सैनी सभी	
तीन वेद सभी	दो आहारक सभी	पचपन आस्रव आहारक द्विक बिना
पच्चीस कषाय सभी	चार गुणस्थान 1/2/3/4	
छह ज्ञान सुज्ञान 3 कुज्ञान 3	उन्नीस जीव समास सभी	80 लाख जाति देव बिना
एक संयम असंयम	छह पर्याप्ति सभी	173।। लक्ष कोटि कुलदेव बिना
तीन दर्शन केवल दर्शन बिना	दस प्राण सभी	

पीत पद्म लेश्या में

तीन गति देव, मनुष्य तिर्यंच	तीन दर्शन केवल दर्शन बिना	दो/एक जीव समास पीत में सैनी
एक इन्द्रिय पंचेन्द्रिय	एक लेश्या स्व (पीत, पद्म)	असैनी दोनों/पद्म में सैनी पंचेन्द्रिय
एक काय त्रस	दो भव्य सभी	छह पर्याप्ति सभी
पन्द्रह योग सभी	छह सम्यक्त्व सभी	दस प्राण सभी
तीन वेद सभी	दो/एक सैनी पीत में सैनी, असैनी दोनो/पद्म में सैनी	चार संज्ञा सभी
पच्चीस कषाय सभी		दस उपयोग ज्ञान 7 दर्शन 3
सात ज्ञान केवलज्ञान बिना	दो आहारक सभी	बारह ध्यान शुक्ल ध्यान 4 बिना
पाँच संयम सूक्ष्म सांपराय यथाख्यात बिना	सात गुणस्थान प्रथम से सातवें तक	सत्तावन आस्रव सभी
		22 लाख जाति - देव, मनुष्य
		83।। लक्ष कोटि कुल-तिर्यंच

शुक्ल लेश्या में

तीन गति देव, मनुष्य, तिर्यंच	चार दर्शन सभी	छह पर्याप्ति सभी
एक इन्द्रिय पंचेन्द्रिय	एक लेश्या शुक्ल	दस प्राण सभी
एक काय त्रस	दो भव्य सभी	चार संज्ञा सभी
पन्द्रह योग सभी	छह सम्यक्त्व सभी	बाहर उपयोग सभी

तीन वेद सभी	एक सैनी सैनी	पन्द्रह ध्यान अन्तका शुक्ल । बिना
पच्चीस कषाय सभी	दो आहारक सभ्ज्ञी	सत्तावन आस्रव सभी
आठ ज्ञान सभी	तेरह गुणस्थान प्रथम से तेरहवें तक	22 लाख जाति - देव मनुष्य
सात संयम सभी	एक जीव समास सैनी पंचेन्द्रिय	83।। लक्ष कोटि कुल तिर्यंच

भव्य में

चार गति सभी	छह लेश्या सभी	दस प्राण सभी
पाँच इन्द्रिय सभी	एक भव्य भव्य	चार संज्ञा सभी
छह काय सभी	छह सम्यक्त्व सभी	बारह उपयोग सभी
पन्द्रह योग सभी	दो सैनी सभी	सोलह ध्यान सभी
तीन वेद सभी	दो आहारक सभी	सत्तावन आस्रव सभी
पच्चीस कषाय सभी	चौदह गुणस्थान सभी	84 लाख जाति सभी
आठ ज्ञान सभी	उन्नीस जीव समास सभी	सभी 199।। लक्ष कोटि कुल सभी
सात संयम सभी	छह पर्याप्ति सभी	
चार दर्शन सभी		

अभव्य में

चार गति सभी	छह लेश्या सभी	चार संज्ञा सभी
पाँच इन्द्रिय सभी	एक भव्य अभव्य	पाँच उपयोग ज्ञान 3 दर्शन 2
छह काय सभी	एक सम्यक्त्व मिथ्यात्व	आठ ध्यान आर्त 4, रौद्र 4
तेरह योग आहारक द्विक बिना	दो सैनी सभी	पचपन आस्रव आहारक द्विक बिना
तीन वेद सभी	दो आहारक सभी	84 लाख जाति सभी
पच्चीस कषाय सभी	एक गुणस्थान मिथ्यात्व	199।। लक्ष कोटि - कुल सभी
तीन ज्ञान कुज्ञान 3	उन्नीस जीव समास सभी	
एक संयम असंयम	छह पर्याप्ति सभी	
दो दर्शन चक्षु, अचक्षु	दस प्राण सभी	

मिथ्यात्व सम्यक्त्व में

चार गति सभी	दो दर्शन चक्षु, अचक्षु	छह पर्याप्ति सभी
पाँच इन्द्रिय सभी	छह लेश्या सभी	दस प्राण सभी
छह काय सभी	दो भव्य सभी	चार संज्ञा सभी
तेरह योग आहारक द्विक बिना	एक सम्यक्त्व मिथ्यात्व	पाँच उपयोग ज्ञान दर्शन
तीन वेद सभी	दो सैनी सभी	आठ ध्यान आर्त 4 रौद्र 4

पच्चीस कषाय सभी	दो आहारक सभी	पचपन आस्रवआहारक द्विक बिना
तीन ज्ञान कुज्ञान 3	एक गुणस्थान मिथ्यात्व	84 लाख जाति सभी
एक संयम असंयम	उन्नीस जीव समास	सभी 184।। लक्ष कोटि-कुल सभी

सासादन सम्यक्त्व में

चार गति सभी	दो दर्शन चक्षु, अचक्षु	छह पर्याप्ति सभी
एक इन्द्रिय पंचेन्द्रिय	छह लेश्या सभी	दस प्राण सभी
एक कार्य त्रस	एक भव्य भव्य	चार संज्ञा सभी
तेरह योग आहारक द्विक बिना	एक सम्यक्त्व सासादन	पाँच उपयोग ज्ञान 3 दर्शन 2
तीन वेद सभी	एक सैनी सैनी	आठ ध्यान आर्त 4 रौद्र 4
पच्चीस कषाय सभी	दो आहारक सभी	पचास आस्रव मिथ्यात्व 5
तीन ज्ञान कुज्ञान 3	एक गुणस्थान सासादन	आहारक 2 बिना
एक संयम असंयम	एक जीव समास सैनी पंचेन्द्री	26 लाख जाति-108।। लक्ष कोटि मनुष्य देव नारकी, पंचेन्द्री पशु

मिश्र सम्यक्त्व में

चार गति सभी	तीन दर्शन केवल दर्शन बिना	दस प्राण सभी
एक इन्द्रिय पंचेन्द्रिय	छह लेश्या सभी	चार संज्ञा सभी
एक काय त्रस	एक भव्य भव्य	छह उपयोग ज्ञान 3 दर्शन 3
दस योग मन 4 वचन 4,	एक सम्यक्त्व मिश्र सम्यक्त्व	नौ ध्यान आर्त 4 रौद्र 4
औदारिक 1 वैक्रियिक 1	एक सैनी सैनी	धर्म 1
तीन वेद सभी	एक आहारक आहारक	तैंतालस आस्रव अविरति 12
इक्कीस कषाय अनन्तानुबंधी 4 बिना	एक गुणस्थान मिश्र	कषाय 21 योग 10
तीन ज्ञान मिश्रज्ञान	एक जीव समास सैनी पंचेन्द्रिय	26 लाख जाति -
एक संयम असंयम	छह पर्याप्ति सभी	108।। लक्ष कोटि देव नागरी पंचेन्द्री तिर्यंच- कुल मनुष्य, देव

उपशम सम्यक्त्व में

चार गति सभी	छह लेश्या सभी	दस प्राण सभी
एक इन्द्रिय पंचेन्द्रिय	एक भव्य भव्य	चार संज्ञा सभी
एक काय त्रस	एक सम्यक्त्व उपशम सम्यक्त्व	सात उपयोग ज्ञान 4 दर्शन 3
बारह योग आहारक 2 औदा. मिश्र 1 बिना	एक सैनी सैनी	तेरह ध्यान आर्त 4 रौद्र 4
तीन वेद सभी	दो आहारक सभी	धर्म 4 शुक्ल 1
इक्कीस कषाय अनन्तानुबंधी 4 बिना	आठ गुणस्थान चौथे से ग्यारहवें तक	पैंतालीस आस्रव अविरति 12

चार ज्ञान प्रथमोपशम अवधि तक
छह संयम परिहार विशुद्धि बिना
तीन दर्शन केवल दर्शन बिना

एक जीव समास सैनी पंचेन्द्री
छह पर्याप्ति सभी

कषाय 21 योग 12
26 लाख जाति 108।। लक्ष कोटि कुल - मनुष्य, देव नारकी पशु (पंचेन्द्री)

क्षयोपशम सम्यक्त्व में

चार गति सभी
एक इन्द्रिय पंचेन्द्रिय
एक काय त्रस
पन्द्रह योग सभी
तीन वेद सभी
इक्कीस कषाय अनन्तानुबंधी4 बिना
चार ज्ञान केवलज्ञान बिना
पाँच संयम सूक्ष्म सांपराय यथाख्यात बिना

तीन दर्शन केवल दर्शन बिना
छह लेश्या सभी
एक भव्य
एक सम्यक्त्व क्षयोपशम
एक सैनी सैनी
दो आहारक सभी
चार गुणस्थान 4/5/6/7
एक जीव समास सैनी पंचेन्द्री

छह पर्याप्ति सभी
दस प्राण सभी
चार संज्ञा सभी
सातउपयोग ज्ञान 4 दर्शन 3
तेरहध्यान आर्त 4 रौद्र 4 धर्म 4 शुक्ल 1
अड़तालीस आस्रवअविरति 12 कषाय 21, योग 15
108।। लक्ष कोटि कुल
मनुष्य, देव नारकी

क्षायिक सम्यक्त्व में

चार गति सभी
एक इन्द्रिय पंचेन्द्रिय
एक काय त्रस
पन्द्र4ह वेद सभी
इक्कीस कषाय अनन्तानुबंधी 4 बिना
पाँच ज्ञान 3 कुज्ञान बिना
सात संयम सभी
चार दर्शन सभी

छह लेश्या सभी
एक भव्य भव्य
एक सम्यक्त्व क्षायिक
दो आहारक सभी
11 गुणस्थान 4 से 14 तक
एक जीव समास सैनी पंचेन्द्री
छह पर्याप्ति सभी
दस प्राण सभी

चार संज्ञा सभी
नौ उपयोग ज्ञान 5 दर्शन 4
सोलह ध्यान सभी
अविरति 22 योग 15
26 लाख जाति
कुल देव मनुष्य नारकी, 108।। लक्ष कोटि पंचेन्द्री पशु।

संज्ञी में

चार गति सभी
एक इन्द्रिय पंचेन्द्रिय
एक काय त्रस
पन्द्रह योग सभी

तीन दर्शन केवल दर्शन बिना
छह लेश्या सभी
दो भव्य सभी
छह सम्यक्त्व सभी

एक जीव समास सैनी पंचेन्द्री
छह पर्याप्ति सभी
दस प्राण सभी
चार संज्ञा सभी

तीन वेद सभी
पच्चीस कषाय सभी
सात ज्ञान केवलज्ञान बिना
सात संयम सभी

एक सैनी सैनी
दो आहारक सभी
बारह गुणस्थान प्रथम से बारहवें पर्यन्त

दस उपयोग ज्ञान 7 दर्शन 3
चौदह ध्यान शुक्ल 2 बिना
सत्तावन आस्रव सभी 26 लाख जाति
देव, मनुष्य नारकी पंचेन्द्री पशु
108।। लक्ष कोटि कुल

असंज्ञी में

एक गति तिर्यंच
पाँच इन्द्रिय सभी
छह काय सभी
चार योग औदारिक 2
कार्माण 1 अनुभयवचन 1
तीन वेद सभी
पच्चीस कषाय सभी
दो ज्ञान कुमति, कुश्रुत
एक संयम असंयम

दो दर्शन चक्षु, अचक्षु
चार लेश्या कृष्ण, नील कापोत
पीत
दो भव्य सभी
एक सम्यक्त्व मिथ्यात्व
एक सैनी असैनी
दो आहारक सभी
एक गुणस्थान मिथ्यात्व
अठारह जीव समास
सैनी पंचेन्द्री बिना

पाँच पर्याप्ति मन बिना
नौ प्राण मन बिना
चार संज्ञा सभी
चार उपयोग ज्ञान 2, दर्शन 2
आठ ध्यान आर्त 4, रौद्र 4
छियालीस आस्रव मिथ्यात्व 5
अविरति 12, कषाय 25 योग 4
62 लाख जाति 13
134।। लक्षकोटि कुल असैनी तिर्यंच

आहारक में

चार गति सभी
पाँच इन्द्रिय सभी
छह काय सभी
चौदह योग कार्माण बिना
तीन वेद सभी
पच्चीस कषाय सभी
आठ ज्ञान सभी
सात संयम सभी

चार दर्शन सभी
छह लेश्या सभी
दो भव्य भव्य-अभव्य
छह सम्यक्त्व सभी
दो सैनी सभी
एक आहारक आहाकर
तेरह गुणस्थान 1 से 13 तक
उन्नीस जीव समास सभी

छह पर्याप्ति सभी
दस प्राण सभी
चार संज्ञा सभी
बारह उपयोग सभी
पन्द्रह ध्यान अन्त का शुक्ल बिना
छप्पन आस्रव कार्मण बिना
84 लाख जाति सभी
199।। लक्ष कोटि कुल सभी

अनाहारक में

चार गति सभी
पाँच इन्द्रिय सभी
छह काय सभी
एक योग कार्माण
तीन वेद सभी

चार दर्शन सभी
छह लेश्या सभी
दो भव्य सभी
पाँच सम्यक्त्व मिश्र बिना
दो सैनी सभी

छह पर्याप्ति सभी
सात प्राण मन, वचन, श्वास बिना
चार संज्ञा सभी
दस उपयोग ज्ञान 6 दर्शन 4
दस ध्यान आर्त 4, रौद्र 4 धर्म 1

पच्चीस कषाय सभी
छह ज्ञान विभंग, मन:पर्यय बिना
दो संयम असंयम, यथाख्यात

एक आहारक अनाहारक
पाँच गुणस्थान 1/2/4/13/14
उन्नीस जीव समास सभी

शुक्ल 1
तैतालीस आस्रव मिथ्यात्व 5
अविरति 12, कषाय 25 योग 1
84 लाख जाति
149।। लक्ष कोटि कुल-सभी सभी

मिथ्यात्व गुणस्थान में

चार गति सभी
पाँच इन्द्रिय सभी
छह काय सभी
तेरह योग आहारक द्विक बिना
तीन वेद सभी
पच्चीस कषाय सभी
तीन ज्ञान कुज्ञान 3
एक सयम असंयम
दो दर्शन चक्षु, अचक्षु

छह लेश्या सभी
दो भव्य सभी
एक सम्यक्त्व मिथ्यात्व
दो सैनी सभी
दो आहारक सभी
एक गुणस्थान मिथ्यात्व
उन्नीस जीव समास सभी
छह पर्याप्ति सभी
दस प्राण सभी

चार संज्ञा सभी
पाँचउपयोग ज्ञान 3 दर्शन 2
आठ ध्यान आर्त 4 रौद्र 4
पचपन आस्रव
आहारक द्विक बिना
84 लाख जाति सभी
199।। लक्ष कोटि - कुल सभी

सासादन गुणस्थान में

चार गति सभी
एक इन्द्रिय पंचेन्द्रिय
एक काय त्रस
तेरह योग आहारक द्विक बिना
तीन वेद सभी
पच्चीस कषाय सभी
तीन ज्ञान कुज्ञान 3
एक संयम असंयम
दो दर्शन चक्षु-अचक्षु

छह लेश्या सभी
एक भव्य भव्य
एक सम्यक्त्व सासादन
एक सैनी सैनी
दो आहारक सभी
एक गुणस्थान सासादन
छह पर्याप्ति सभी
दस प्राण सभी
चार संज्ञा सभी

पाँच उपयोग ज्ञान 3 दर्शन 2
आठ ध्यान आर्त 4 रौद्र 4
पचास आस्रव मिथ्यात्व 5
आहारक द्विक बिना
एक जीव समास सैनी पंचेन्द्रिय
26 लाख जाति मनुष्य देव
108।। लक्ष कोटि कुल -नारकी पंचेन्द्रीपशु

मिश्र गुणस्थान में

चार गति सभी
एक इन्द्रिय पंचेन्द्री
एक काय त्रस
दस योग मन 4, वचन 4, औदारिक 1, वैक्रियिक 1

दो दर्शन चक्षु अचक्षु
छह लेश्या सभी
एक भव्य भव्य
एक सम्यक्त्व मिश्र सम्यक्त्व
एक सैनी सैनी

दस प्राण सभी
चार संज्ञा सभी
पाँच उपयोग ज्ञान 3 दर्शन 2
नौ ध्यान आर्त 4 रौद्र 4 धर्म 1
तैंतालस आस्रव अविरति 12

तीन वेद सभी	एक आहारक आहारक	कषाय 21 योग 10
इक्कीस कषाय अनन्तानुबंधी 4 बिना	एक गुणस्थान मिश्र गुणस्थान	26 लाख जाति
तीन ज्ञान मिश्रज्ञान	एक जीव समास सैनी पंचेन्द्रिय	108।। लक्ष कोटि कुल - मनुष्य, देव, नारकी, पंचेन्द्रिय पशु
एक संयम असंयम	छह पर्याप्ति सभी	

अविरतसम्यक् गुणस्थान में

चार गति सभी	छह लेश्या सभी	दस प्राण सभी
एक इन्द्रिय पंचेन्द्री	एक भव्य भव्य	चार संज्ञा सभी
एक काय त्रस	तीन सम्यक्त्व उपशम, वेदक क्षायिक	छह उपयोग ज्ञान 3 दर्शन 3
तेरह योग आहारक द्विक बिना		दस ध्यान आर्त 4, रौद्र 4 धर्म 2
तीन वेद सभी	एक सैनी सैनी	छियालीस आस्रव अविरत 12
इक्कीस कषाय अनन्तानुबंधी बिना	दो आहारक सभी	कषाय 21, योग 13
तीन ज्ञान सुज्ञान 3	एक गुणस्थान अविरत सम्यक्	26 लाख जाति
एक संयम असंयम	एक जीव समास सैनी पंचेन्द्री	108।। लक्ष कोटि कुल -सभी पंचेन्द्री
तीन दर्शन केवल दर्शन	छह पर्याप्ति सभी	

देशविरत गुणस्थान में

दो गति पशु, मनुष्य	तीन लेश्या पीत, पद्म, शुक्ल	दस प्राण सभी
एक इन्द्रिय पंचेन्द्री	एक भव्य भव्य	चार संज्ञा सभी
एक काय त्रस	तीन सम्यक्त्व उपशम, क्षायिक वेदक	छह उपयोग ज्ञान 3 दर्शन 3
नौ योग मन 4 वचन 4 औदारिक 1		ग्यारह ध्यान आर्त 4 रौद्र 4 धर्म 3
तीन वेद सभी	एक सैनी सैनी	सैतीस आस्रव अविरति 11 योग 9 कषाय 17
सतरह कषाय अनन्तानुबंधी 4, अप्रत्याख्यान 4 बिना	एक आहारक आहारक	
तीन ज्ञान सुज्ञान 3	एक गुणस्थान देशव्रत	18 लाख जाति मनुष्य, तिर्यंच
एक संयम संयम-असंयम	एक जीव समास सैनी पंचेन्द्री	57।। लक्ष कोटि - कुल मनुष्य, तिर्यंच
तीन दर्शन केवल दर्शन बिना	छह पर्याप्ति सभी	

प्रमत्त गुणस्थान में

एक गति मनुष्य	तीन दर्शन केवल दर्शन बिना	छह पर्याप्ति सभी
एक इन्द्रिय पंचेन्द्री	तीन लेश्या पीत, पद्म, शुक्ल	दस प्राण सभी
एक काय त्रस	एक भव्य भव्य	चार संज्ञा सभी

ग्यारह योग मन 4, औदारिक 1 आहारक 2 तीन सम्यक्त्व उपशम, वेदक क्षायिक सात उपयोग ज्ञान 4 दर्शन 3

सात ध्यान आर्त 3 धर्म 4

तीन वेद सभी
एक सैनी सैनी
चौबीस आस्रव कषाय 13 योग 11

तेरह कषाय संज्वलन 4 हास्यादि 9
एक आहारक आहारक
14 लाख जाति मनुष्य

चार ज्ञान केवल ज्ञान बिना
एक गुणस्थान प्रमत्त
14 लक्ष कोटि कुल मनुष्य

तीन संयम सामायिक, छेदोपस्थाना, परिहार विशुद्धि
एक जीव समास सैनी पंचेन्द्री

अप्रमत्त गुणस्थान में

एक गति मनुष्य
एक इन्द्रिय पंचेन्द्री
एक काय त्रस
नौ योग मन 4, वचन 4, औदारिक 1
तीन वेद द्रव्य से पुरुष वेद 3
तेरह कषाय संज्वलन 4 हास्यार्दि 9
चार ज्ञान केवलज्ञान बिना
तीन संयम सामायिक, छेदोपस्थापना पना परिहार विशुद्धि

तीन दर्शन केवल दर्शन बिना
तीन लेश्या पीतपद्म शुक्ल
एक भव्य भव्य
तीन सम्यक्त्व उपशम, वेदक, क्षायिक
एक सैनी सैनी
एक आहारक आहारक
एक गुणस्थान अप्रमत्त
एक जीवसमास सैनी पंचेन्द्री

छह पर्याप्ति सभी
दस प्राण सभी
तीन संज्ञा आहार बिना
सात उपयोग ज्ञान 4 दर्शन 3
चार ध्यान धर्म 4
बाइस आस्रव कषाय 13 योग 9
14 लाख जाति मनुष्य
14 लक्ष कोटि कुल मनुष्य

अपूर्वकरण में गुणस्थान में

एक गति मनुष्य
एक इन्द्रिय पंचेन्द्रिय
एक काय त्रस
नौ योग मन 4 वचन 4 औदारिक1
तीन वेद द्रव्य से पुरुष भाव से 3
तेरह कषाय संज्वलन 4 हास्यादि 9
चार ज्ञान केवलज्ञान बिना
दो संयम सामायिक, छेदोपस्थापना

तीन दर्शन केवल दर्शन बिना
एक लेश्या शुक्ल
एक भव्य भव्य
दो सम्यक्त्व उपशम, क्षायिक
एक सैनी सैनी
एक आहारक आहारक
एक गुणस्थान अपूर्वकरण
एक जीव समास सैनी पंचेन्द्री

छह पर्याप्ति सभी
दस प्राण सभी
तीन संज्ञा आहार बिना
सात उपयोग ज्ञान 4 दर्शन 3
एक ध्यान पृथक्त्ववितर्कवीचार
बाइस आस्रव कषाय 13 योग 9
14 लाख जाति मनुष्य
14 लक्ष कोटि कुल मनुष्य

अनिवृत्तिकरण गुणस्थान में

एक गति मनुष्य
एक इन्द्रिय पंचेन्द्रिय
एक काय त्रस

3 दर्शन केवल दर्शन बिना
एक लेश्या शुक्ल
एक भव्य भव्य

छह पर्याप्ति सभी
दस प्राण सभी
दो संज्ञा मैथुन, परिग्रह

नौ योग मन 4 वचन 4 औदारिक1	दो सम्यक्त्व उपशम, क्षायिक	सात उपयोग ज्ञान 4 दर्शन 3
तीन वेद सभी	एक सैनी सैनी	एक ध्यान पृथक्त्ववितर्क वीचार
सात कषाय संज्वलन 4 वेद 3	एक आहारक आहारक	सोलह आस्रवकषाय 7 योग 9
चार ज्ञान केवलज्ञान बिना	एक गुणस्थान अनिवृत्तिकरण	14 लाख जाति मनुष्य
दो संयम सामायिक, छेदोपस्थापना	एक जीव समास सैनी पंचेन्द्री	14 लक्ष कोटि कुल मनुष्य

सूक्ष्मसांपराय गुणस्थान में

एक गति मनुष्य	तीन दर्शनकेवलदर्शन बिना	छह पर्याप्ति सभी
एक इन्द्रिय पंचेन्द्रिय	एक लेश्या शुक्ल	दस प्राण सभी
एक काय त्रस	एक भव्य भव्य	एक संज्ञा परिग्रह (सूक्ष्म लोभ)
नौ योग मन4 वचन 4 औदारिक 1	दो सम्यक्त्व उपशम, क्षायिक	सात उपयोग ज्ञान 4 दर्शन 3
शून्य वेद शून्य	एक सैनी सैनी	एक ध्यान पृथक्त्ववितर्क वीचार
एक कषाय संज्वलन (सूक्ष्म)लोभ	एक आहारक आहारक	दस आस्रव कषाय 1 योग 9
चार ज्ञान केवलज्ञान बिना	एक गुणस्थान सूक्ष्मसांपराय	14 लाख जाति मनुष्य
एक संयम सूक्ष्मसांपराय	एक जीव समास सैनी पंचेन्द्रि	14 लक्ष कोटि कुल मनुष्य

उपशान्त कषाय गुणस्थान में

एक गति मनुष्य	तीन दर्शन केवल दर्शन बिना	छह पर्याप्ति सभी
एक इन्द्रिय पंचेन्द्रिय	एक लेश्या शुक्ल	दस प्राण सभी
एक काय त्रस	एक भव्य भव्य	शून्य संज्ञा शून्य (कार्याभावत्वात्)
नौ योग मन 4, वचन 4औदारिक1	दो सम्यक्त्व उपशम, क्षायिक	सात उपयोग ज्ञान 4 दर्शन 3
शून्य वेद शून्य	एक सैनी सैनी	एक ध्यान पृथक्त्व वितर्क विचार
शून्य कषाय शून्य(उदयाभावापेक्षया)	एक आहारक आहारक	नौ आस्रव योग 9
चार ज्ञान केवलज्ञान बिना	एक गुणस्थान उपशान्त कषाय	14 लाख जाति मनुष्य
एक संयम यथाख्यात	एक जीव समास सैनी पंचेन्द्रिय	14 लक्ष कोटि कुल मनुष्य

क्षीण कषाय गुणस्थान में

एक गति मनुष्य	तीन दर्शन केवल दर्शन बिना	छह पर्याप्ति सभी
एक इन्द्रिय पंचेन्द्रिय	एक लेश्या शुक्ल	दस प्राण सभी
एक काय त्रस	एक भव्य भव्य	शून्य संज्ञा शून्य
नौ योग मन 4, वचन4, औदारिक1	एक सम्यक्त्व क्षायिक	सात उपयोग ज्ञान 4 दर्शन 3
शून्य वेद शून्य	एक सैनी सैनी	एक ध्यान एकत्ववितर्क वीचार
शून्य कषाय शून्य	एक आहारक आहारक	नौ आस्रव योग 9

चार ज्ञान केवलज्ञान बिना	एक गुणस्थान क्षीणकषाय	14 लाख जाति मनुष्य
एक संयम यथाख्यात	एक जीव समास सैनी पंचेन्द्री	14 लक्ष कोटि कुल मनुष्य

संयोग केवली गुणस्थान में

एक गति मनुष्य	एक दर्शन केवल दर्शन	चार प्राण वचन, काय, आयु श्वासोच्छ्वास
एक इन्द्रिय पंचेन्द्रिय	एक लेश्या युक्त	
एक काय त्रस	एक भव्य भव्य	शून्य संज्ञा शून्य
सात योग सत्य मन वचन 2 अनुमय 2 औदारिक 2 कार्माण 1	एक सम्यक्त्व क्षायिक	दो उपयोग केवल ज्ञान, केवल दर्शन
	शून्य सैनी शून्य	एक ध्यान सूक्ष्म क्रिया प्रतिपाती
शून्य वेद शून्य	दो आहारक सभी	सात आस्रव योग 7
शून्य कषाय शून्य	एक गुणस्थान सयोग केवली	14 लाख जाति मनुष्य
एक ज्ञान केवल ज्ञान	एक जीव समास सैनी पंचेन्द्रि(द्रव्यमन)	14 लक्ष कोटि कुल मनुष्य
एक संयम यथाख्यात	छह पर्याप्ति सभी	

अयोगकेवली गुणस्थान में

एक गति मनुष्य	एक दर्शन केवल दर्शन	छह पर्याप्ति सभी
एक इन्द्रिय पंचेन्द्रिय	शून्य लेश्या शून्य	एक प्राण आयु
एक काय त्रस	एक भव्य भव्य	शून्य संज्ञा शून्य
शून्य योग शून्य	एक सम्यक्त्व क्षायिक	दो उपयोग केवलज्ञान केवलदर्शन
शून्य वेद शून्य	शून्य सैनी शून्य	एक ध्यान व्युपरतक्रियानिवृत्ति
शून्य कषाय शून्य	एक आहारक अनाहारक	शून्य आस्रव शून्य
एक ज्ञान केवलज्ञान	एक गुणस्थान अयोग केवली	14 लाख जाति मनुष्य
एक संयम यथाख्यात	एक जीव समास सैनी पंचेन्द्रि (द्रव्यमन अपेक्षा)	14 लक्ष कोटि कुल मनुष्य

तृतीय अध्याय : भावनाएं

बारह भावनाओं का स्वरूप

जैनधर्म पवित्र भावनाओं से परिपूर्ण है। भावना धर्म का मूल है। बिना भावना के समस्त क्रियायें जड हैं। द्रव्यलिंग का भावलिंग के बिना आगमानुसार कोई महत्त्व नहीं है। पूजन विधान, द्रव्यादिक का आचरण व समस्त धार्मिक अनुष्ठान बिना तदनुरूप भाव हुए शोभा को प्राप्त नहीं होते। अत: मानवता की प्राण भावना है, बिना भाव शुद्धि के भेद विज्ञान, सुख शान्ति और वीतरागता नहीं आ सकती। **भावना भव नाशिनी, भावना भव वर्धिनी।** दूषित भावना के द्वारा संसार की वृद्धि होती है और निर्मल भावना के द्वारा संसार का नाश होता है जिस प्रकार जीव भाव करता है तुरन्त उसी प्रकार भाव बंध जाते हैं। भावों के अनुसार ही वायुमण्डल भी बन जाता है और उस सीमा में जो भी आता है उसके भाव भी वैसे ही बनने लगते हैं।

भाव अन्तरंग का दिग्दर्शक

एक चन्दन की लकड़ी का व्यापारी था। किसी समय चन्दन का भाव गिर गया उसके पास चन्दन की लकड़ी का बहुत स्टाक था वह बड़ा चिन्तित था। जब वह इसी चिन्ता में निमग्न था तभी उसने वहाँ के राजा को हाथी पर बैठे हुआ जाता देखा। अब उस व्यापारी के चित्त में एक दम से यह बात आ गई यदि यह राजा मर जाय तो चन्दन का भाव ठीक स्थिति में आ जायगा और हमको घाटा नहीं उठाना पड़ेगा जब राजा उसके सामने से निकला उस दिन उस व्यापारी को राजा के प्रति क्रोध व शत्रुता का भाव जागृत हो गया, जब कि वह उसका परम मित्र था। राजा समझ गया कि इस व्यापारी को आज हमारे प्रति कोई बात चित्त में आयी है। राजा अपने दरबार में पहुँचा। मंत्रियों को बुलाया और कहा देखो यहाँ जो अमुक व्यापारी हमारा मित्र है उसके पास जाकर गुप्त रीति से उसके मन में हमारे प्रति क्या विचार है अवगत करो क्योंकि उस व्यापारी के पास से जब कभी मैं निकला करता था तो मेरे मन में उसके प्रति कोई क्रोध भाव नहीं जागृत होता था पर दो तीन दिन से मुझे उसे देखकर क्रोध आ जाता है। उस चतुर मंत्री ने उस व्यापारी के पास पहुँच कर उसको अभय दान का आश्वासन देकर कहा कि तुम किसी तरह की चिन्ता मत करना तुम्हें कुछ न होने पायेगा तुम यह बताओ कि तुम्हारे मन में राजा के प्रति क्या विचार चल रहा है? तो उस व्यापारी ने सारी बात मंत्री से कह सुनाई। देखो मेरे यहां चन्दन की लकड़ी का बड़ा स्टॉक लगा है। चन्दन का भाव आज कल काफी गिर गया है तो इस राजा को देखकर हमारे मन में आ गया था कि यदि यह राजा मर जाय तो चन्दन की लड़की का भाव बढ़ जायेगा और हम को घाटा नहीं सहना पड़ेगा। अब वह मंत्री राजा के पास गया

और सारी बात कह सुनाई राजा ने मंत्री से कहा कि अच्छा जाओ और ऊँचे रेट पर उस व्यापारी का सारा चन्दन खरीद लाओ। मंत्री ने वैसा ही किया। फिर एक दो दिन बाद वह राजा वहीं से निकला तो उस व्यापारी के प्रति पूर्ववत् राजा को कोई क्रोध नहीं जगा। इस दृष्टान्त द्वारा सिद्ध है कि मन के विचार तार के यंत्र की तरह हैं कि तार की झंकार की तरह भावों से सब कुछ ज्ञात हो जाता है।

आचार्य उमास्वामी तत्त्वार्थसूत्र के नवमें अध्याय में कहते हैं कि– आस्रवनिरोध: संवर: ।।1।। स गुप्तिसमितिधर्मानुप्रेक्षापरीषहजयचारित्रै: ।।2।। तपसा निर्जरा च ।।3।।

कर्मों के आस्रव को रोकना संवर है, यह संवर तीन गुप्ति, पाँच समिति, दश धर्म, बारह भावना, बाइस परिषहजय और पाँच प्रकार के चारित्र से होता है। तप से निर्जरा होती है। कर्म तो निरन्तर आ रहे हैं और बंध भी रहे हैं और उदय में भी आयेंगे यदि इनसे बचना चाहते हो तो भावनाओं का चिन्तन करना चाहिए।

भावनाएं:- जैनधर्म में दो प्रकार की भावनाएं प्रसिद्ध हैं बारह भावना और सोलहकरण भावना। यहां पर सर्व प्रथम बारह भावनाओं पर विचार किया जा रहा है।

बारह भावना:- बारह भावनाओं को '**अनुप्रेक्षा**' भी कहते हैं। वस्तु स्वरूप का, सत्य स्वरूप का, स्व पर स्वरूप का, चिन्तन करना, प्रेक्षण करना अनुप्रेक्षा है।

कवि मंगतराय ने इस विषय में कहा है–

बंदू श्री अरहन्त पद, वीतराग विज्ञान।
वरणूँ बारह भावना, जग जीवन हित जान।।
कहाँ गये चक्री जिन जीता, भरत खण्डसारा।
कहाँ गये वह राम रु लक्ष्मण, जिन रावण मारा।।
कहाँ कृष्ण रुक्मणि सत भामा, अरुसंपति सगरी।
कहाँ गये वह रंग महल अरु, सुवरन की नगरी।।
नहीं रहे वह लोभी कौरव जूझ मरे रन में।
गये राज तज पांडव वन को, अग्नि लगे तन में।।
मोह-नींद से उठ रे चेतन, तुझे जगावन को।
हो दयाल उपदेश करैं, गुरु बारह भावन को।।

कवि वीतरागी श्री अरहन्त पद को नमस्कार करते हुए जगत के जीवों के कल्याण के लिए बारह भावना का वर्णन करता है। वे कहते हैं चक्रवर्ती कहाँ गये जिन्होंने सारा भरत क्षेत्र जीता था, वे राम-लक्ष्मण कहाँ गये जिन्होंने रावण जैसे अर्द्धचक्री को मारा था? वह सोने की नगरी,

रंग नगरी, रंग महल, कृष्ण रुक्मणी सत्यभामा आदि कहाँ गये? लोभी कौरव नहीं रहे जिन्होंने राज्य के लिए लड़ाईयाँ लड़ी वे शक्तिशाली पाँडव भी राज्य को छोड़कर वन को गये और वहाँ उनके तन को अग्नि ने जलाया। बन्धुओ, उठो मोह की नींद को त्याग कर उठो, देखो तुम्हें गुरु जगा रहे हैं उनका उपदेश सुनो और बारह भावनाओं का चिन्तन करो।

पाँच महाव्रत के धारी तथा संसार और विषय भोगों से विरक्त मुनिराज वैराग्य की प्राप्ति तथा दृढ़ता हेतु "वैराग्य की माता" इन बारह भावनाओं का चिन्तन बार-बार किया करते हैं। इनके चिन्तन से समतारूपी सुख प्रकाशमान होता है जैसे हवा के लगने से अग्नि प्रकाशित होती है। यह भावना परमार्थ मार्ग को दिखाने वाली है, तत्त्वों का निर्णय कराने वाली है। सम्यक्त्व को उत्पन्न करने वाली है, अशुभ ध्यान को नष्ट करने वाली है, स्वावलम्बन का पाठ पढ़ाने वाली है। संवर और निर्जरा का मुख्य और प्रबल कारण है मन की शुद्धि तथा पवित्रता के हेतु इन बारह भावनाओं को भली भांति समझना और उन पर चलना आवश्यक है।

वीतरागी मुनि उत्तम भावना भाते हैं। भावना भाते हुए जब वे आत्मा में लीन होते हैं तो उनके मुख मण्डल से अपूर्व आभा निकलती है। मुख का तेज चारों ओर फैल जाता है।

जब वीतरागी मुनि बारह भावनाओं का चिन्तन करते हुए अपनी आत्मा में लीन हो जाते हैं बादल से पानी बरसने की तरह उनकी आत्मा से कर्म झड़ने लगते हैं।

आचार्य कहते हैं कि संसार में दो प्रकार के मनुष्य होते हैं :-

1. **सरिता के समान–** जो सरिता के समान भागते हुए सागर को प्राप्त करने की आकांक्षा से भरे होते हैं अपने जीवन को धर्म से संस्कारित करके मोक्ष रूपी सागर को प्राप्त करने के लिए भागते रहते हैं। जैसा कि ऊपर वर्णन किया गया है। ऐसे लोग संसार में बहुत कम होते हैं।

2. **तालाब के समान–** जिस प्रकार तालाब का जल एक स्थान पर बन्द रह कर सड़ जाता है और गन्दगी फैलाता है उसी प्रकार कुछ लोग बहरे होते हैं जो दूसरे की न सुनकर अपनी-अपनी गाते हैं और कुमति की गन्दगी फैलाते हैं। जिनके कारण समाज की संस्कृति विकृत हो जाती है, नष्ट हो जाती है और धर्म विलीन हो जाता है।

गुरु संसार सागर से पार होने के लिए देशना देते हैं, मार्ग दर्शन करते हैं परन्तु जिस प्रकार बहरे अपनी अपनी गाथा गाते हैं दूसरे की नहीं सुनते उसी प्रकार जिनका जीवन सार हीन है भावनाओं के चिन्तन से दूर है वे भी गुरुओं की देशना नहीं सुनते।

आचार्य कहते है कि मानव जीवन एक दर्पण के समान है समय-समय पर इस दर्पण पर शुद्ध-अशुद्ध कर्मों की धूल जमती रहती है इसलिए इस दर्पण की सफाई नितान्त आवश्यक है

जो व्यक्ति दर्पण की सफाई नहीं करते उनका दर्पण-दर्पण नहीं रह जाता परमात्मा का बिम्ब उस पर बिम्बित नहीं होता। अगर परमात्मा का बिम्ब दर्पण में बिम्बित कराना है तो दर्पण को स्वच्छ करने के लिए बारह भावना का चिन्तन करना ही होगा। कहा है कि नदी की शोभा रेत से नहीं पानी से होती है, पेड़ की शोभा पत्तों से नहीं फलों से होती है, पर्वत की शोभा पत्थरों से नहीं हरे-भरे वृक्षों से होती है उसी प्रकार मनुष्य जन्म की शोभा संसार के विषय भोगों से नहीं बारह भावना के चिन्तन से होती है।

बन्धुओ, मानव ही एक मात्र ऐसा प्राणी है जिसके पास अनन्त ऊँचाईयों को छूने की तथा असीम गहराई को स्पर्श करने की अपारशक्ति है परन्तु उसकी सारी शक्तियाँ सुषुप्त हैं जब तक वह दीन बना रहेगा वह उपलब्धियों से वंचित रहेगा। मनुष्य अगर चाहे तो उसे अंधेरी रात में भी प्रकाश की ज्योति दिखाई दे सकती है और सूर्य के धवल प्रकाश में भी अंधेरी रात जैसा घना अंधकार दृष्टिगोचर हो सकता है। मानव में इतनी अद्‌भुत शक्ति है। शरीर सतह है गहराई तो आत्मा में होती है जो शरीर को अपना मानते हैं वे आत्मा को नहीं पहचानते, जानते। जो आत्मा को नहीं जानते वे उसकी गहराई को क्या जानेगें? आचार्य कहते हैं कि निधि तो गहराई में होती है, भूमि के अन्दर तथा सागर के तल में अर्थात् गहराई में ही रत्न पाये जाते हैं। जो उस गहराई में डुबकी लगायेगा वहीं रत्न प्राप्त कर पायेगा अर्थात् जो शरीर को छोड़कर आत्मा को ध्यायेगा वही रत्नत्रय रूप सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक् चारित्र को प्राप्त कर अपना कल्याण कर सकता है।

मनुष्य तीन प्रकार के होते है उत्तम, मध्यम, जघन्य। जघन्य पुरुष विघ्नों के भय से कोई कार्य प्रारम्भ नहीं करते, डरते रहते है कि यदि मैंने यह कार्य शुरु कर दिया तो इसमें तरह-तरह के व्यवधान आयंगें कि मैं इस कार्य को कैसे कर सकता हूँ।

मध्यम पुरुष कार्य का प्रारम्भ तो कर देते है परन्तु जरा सी बाधा के आते ही कार्य को छोड़ देते हैं। क्योंकि उनमें साहस नहीं होता। उत्तम पुरुष कार्य को शुरू करके पूरा करते हैं वे विघ्नों की नहीं सोचते और विघ्नों के आने पर उनका साहस के साथ मुकाबला करते हैं पीछे नहीं हटते। चाहे उनको विघ्न कितना भी सतायें। ऐसे ही पुरुष अपने जीवन में बारह भावनाओं का चिन्तन करके अनन्त सुख की सुरभि महका लेते हैं और अनन्त काल तक उस सुरभि का आनन्द लेने में तल्लीन हो जाते हैं।

बन्धुओ, आप भी अपने जीवन में बारह भावनाओं का चिंतन कर अनन्त सुख को प्राप्त करो।

बारह भावनाओं के नाम

अनित्य भावना, अशरण भावना, संसार भावना, एकत्व भावना, अन्यत्व भावना, अशुद्धि भावना, आस्रव भावना, संवर भावना, निर्जरा भावना, लोक भावना, बोधि दुर्लभ भावना और धर्म भावना ये बारह भावनाएं हैं।

1. **अनित्य भावना–** संसार, शरीर भोग, इन्द्रियों के विषय, धन, यौवन आदि सब असार हैं सदा स्थिर रहने वाले नहीं है। जैसे इन्द्रधनुष देखते-देखते नष्ट हो जाता है वैसे ही ये सब शरीर के भोग, धन यौवन आदि भी क्षणभंगुर हैं। आत्मा नित्य है, अखण्ड है, ध्रुव है ऐसा विचार बार-बार करना और आत्म-कल्याण की भावना करना अनित्य भावना है। कहा है–

(मंगतराय कृत)

सूरज चाँद छिपै निकले, ऋतु फिर फिर कर आवे।
प्यारी आयु ऐसी बीते, पता नहीं पावै।।
पर्वत पतिता नहीं सरिता जल, बह कर नहिं हटता।
सांस चलत यो घटे काइ ज्यों आरे सों कटता।
ओस बूंद ज्यों गले धूप में, वा अंजुलि पानी।
छिन छिन यौवन छीन होत है, क्या समझे प्राणी।।
इन्द्र जाल आकाश नगर सम, जग सम्पति सारी।
अथिर रूप संसार विचारो, सब नर अरु नारी।।

संसार में कोई नित्य नहीं, नित्य है तो एक आत्मा। संसार इन्द्रधनुष के समान है। भोग एवं आयु बिजली के समान हैं। इस पृथ्वी पर छह खण्ड के अधिपति भी नहीं रहे, रावण जैसे तीन खण्ड के धारी उनका भी पता नहीं रहा, जिसकी सोने की नगरी महलादि बहुत वैभव था 96 हजार रानी, 84 लाख हाथी आदि सब कुछ था वैभव था आज उनका भी कहीं पता नहीं। इस संसार में न भोग ही नित्य है और न वैभव ही नित्य है नित्य है तो सिर्फ एक आत्मा।

(श्री शिवलाल कृत)

काय कंचन कामिनी, विषय भोग सब जोय।
क्षण भंगुर संसार में, रह न सके थिर कोय।।
जेती वस्तु जहान में, छिन-छिन पलटा खाये।
जो दिखती है भोर में, सो संध्या में नाय।।

इस जग में कोई नहीं, वस्तु न ऐसी खास।
जिसमें हर दम के लिए, किया जाय विश्वास।।
लक्ष्मी संध्या की छटा, यौवन जल का फैन।
राजत अक्षि निमेष तक, जाया भ्रात बहेन।।

संसार में कोई भी वस्तु नित्य नहीं है सभी अनित्य हैं। यह सुन्दर काया धन विषय भोग कुछ भी नित्य नहीं है। ये संसार क्षणभंगुर है, पानी के बुलबुले के समान है क्षण में ये नष्ट होने वाला है। इस संसार में जो भी वस्तु है वह पलभर में नष्ट हो जाती है जो चीज प्रातः में जैसी दिखती है वह सायं होते-होते वैसी नहीं रहती। फूल प्रातः के समय कितने खुशहाल ताजे दिखते हैं किन्तु शाम होते-होते उनका रूप वैसा नहीं रहता। इस संसार में कोई भी ऐसी वस्तु नहीं है जो सदा बनी रहे जिस पर विश्वास कर लिया जाय यहाँ तो सभी वस्तुएं नष्ट होने वाली हैं अगर कोई नष्ट नहीं होता तो वह है सिर्फ एक आत्मा।

(श्री जुगलकिशोर 'युगल' कृत)

भव वन में जी भर घूम चुका, कण कण को जी भर-भर देखा।
मृगसम मृगतृष्णा के पीछे, मुझको न मिली सुख की रेखा।।
झूठे जग के सपने सारे झूठी मन की सब आशायें।
तन-जीवन-यौवन अस्थिर है क्षणभंगुर पल में मुरझायें।।

इस संसार रूपी वन में जी भरकर घूमा चारों गतियों में अनेक बार भ्रमण किया। मृगतृष्णा के समान विषय भोग की इच्छायें निरन्तर बढ़ती ही चली गयीं कही भी सुख नहीं मिला हर तरफ दुःख ही दुःख था क्योंकि कि जब तक ये संसार भ्रमण रहेगा केवल दुःख ही मिलेगा सुख है तो केवल आत्मध्यान में। मनुष्य का यह शरीर यह यौवन सब कुछ क्षणभंगुर है पलक झपकते सब कुछ नष्ट हो जाता है। नष्ट नहीं होती तो केवल आत्मां। आत्मा ही नित्य है।

(दौलतराम जी कृत)

जीवन गृह गो धन नारी, हय गय जन आज्ञा कारी।
इन्द्रिय भोग छिन थाई, सुर धनु चपला चपलाई।।

यौवन, घर, गौ, धन, स्त्री, घोड़ा, हाथी, अपनी आज्ञा मानने वाले नौकर तथा इन्द्रियों के भोग ये सब क्षणिक हैं, कोई सदा अपने पास रहना वाला नहीं है जैसे इन्द्रधनुष देखते-देखते नष्ट हो जाता है और बिजली झट से चमक कर नष्ट हो जाती है वैसे ही धन आदि का संयोग है पुण्य क्षीण होने से सब चला जाता है।

मोहक महल मणिमाल मण्डित सम्पदा षट्खण्ड की।
है शान्ति जिन तृण-सम तजी ली शरण एक खण्ड की।।
पायो अखण्डानन्द दर्शन ज्ञान वीरज ज्ञान आपने।
संसार पार उतारनी दी देशना प्रभु आपने।।

मनहर मदन तन वरन सुवरन सुमन-सुमन समान ही।
धन धान्य पूरित सम्पदा अगणित कुबेर समान थी।।
थी उरवसी सी अंगनाए संगिनी संसार की।
श्री कुन्थु जिन तृण सम तजी ली राह भवदधि पार की।।

हे चक्रधर जग जीत कर षट्खण्ड को निज वश किया।
पर आत्मा निज नित्य एक अखण्ड तुम अपना लिया।।
हे ज्ञान धन अरनाथ जिन धन धान्य को ठुकरा दिया।
विज्ञान धन आनन्द धन निज आत्मा को पा लिया।।

शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ और अरनाथ तीन पद के धारी भी नहीं ।
रहे सब कुछ छोड़कर चले गये।।
द्रव्य रूप कीर, सर्व थिर, पर जय थिर है कौन।
द्रव्य दृष्टि आपा लखो, पर जय नय करि गौन।।

जो कुछ उपजता है उसका नियम से नाश होता है। कुछ भी शाश्वत नहीं है। सर्व वस्तु सामान्य विशेष स्वरूप है। सामान्य द्रव्य को कहते हैं और विशेष गुण पर्याय को कहते हैं। द्रव्य वस्तु नित्य ही है। गुण भी नित्य है और पर्याय अनित्य है।

इसको परिणाम भी कहते हैं। जो प्राणी पर्याय को अपनी मान कर उत्पाद व विनाश में सुख दु:ख मानते हैं वह ही हर समय व्याकुल रहते हैं। उसको यह अनित्य भावना नित्य भाना चाहिए। आत्म द्रव्य तो नित्य है उपजना व विनाश होना तो पर्याय का स्वभाव है उसमें हर्ष विषाद नहीं करना चाहिए, शरीर है सो जीव पुद्गल का संयोग जनित पर्याय है। धन धान्यादिक है वह पुद्गल के प्रमाण की स्कन्ध पर्याय है सो इनका मिलना बिछुड़ना नियम से होता है जो इन पर्यायों को स्थिर मानता है सो उसका मोह जनित भाव है। हे भव्य जीवो! तुम समस्त विषयों को छोड़कर अनित्य भावना का चिंतन करो।

कहा गया है-

द्रव्य दृष्टि तै वस्तु थिर, पर्याय अथिर निहार।
उपजत विनशत देखि के, हर्ष विषाद निवार।।

तीन कमियां

एक समय एक सेठ ने विचार किया कि बहुत सुन्दर एक कोठी बनायी जाये। उसने विदेश से इंजीनियर बुलाये। मैटीरियल भी उच्च कोटि का लगाया कोठी बनकर तैयार हो गई। सेठ जी ने सभी रिश्तेदार व मित्रों को दावत दी और सबसे यह पूछने लगे कि कोठी में कोई कमी हो तो बताओ हमारे पास मैटीरियल भी है और इंजीनियर भी है जो कमी हो अभी पूर्ण करेंगे। सभी ने कहा कि इस कोठी में कोई कमी नहीं है, ऐसा मकान तो आज तक देखा ही नहीं जिससे भी सेठ जी ने पूछा सभी ने यही उत्तर दिया। कुछ समय के बाद एक साधु आ गये उनको भी भोजन के लिए घर लाये उनसे भी यही पूछा कि मेरे मकान में कमी हो तो बताओ साधु महाराज कहने लगे कि इस मकान में तीन कमियां हैं एक तो यह मकान सदा नहीं रहेगा, दूसरी कमी कि बनाने वाला भी सदा नहीं रहेगा तीसरी कमी जो इसमें रहते हैं वह भी सदा नहीं रहेंगे। सेठ जी दंग रह गये। इस प्रकार सब वस्तु अनित्य है। पर पदार्थों को क्यों नित्य मानते हो। आत्मा को ही नित्य मानो तभी संसार के दु:खों का विच्छेद होगा।

लालची का वरदान

एक सेठ था वह संसार में अपना नाम कमाने के लिए दिन रात एक न एक उपाय सोचता रहता था। उसने सोचा कि संसार में ऐसा कार्य करना चाहिए जिससे संसार में कीर्ति सर्वदा अमर रहे। अन्त में उसने हर प्रकार के पशु पक्षियों के सुवर्ण के जोड़े तैयार किये। उसकी रुचि उस कार्य में इतनी अधिक हो गयी कि उसे खाना पीना कुछ भी अच्छा नहीं लगता था निदान में उसने बैल का जोड़ा बनाना निश्चय किया और इसी चिंता में रात्रि के समय जब वह सो गया तो एक देव आकर उससे कहने लगा कि मैं तेरी इच्छा पूर्ण करने आया हूँ तुम जो चाहो उसे मैं दे सकता हूँ। वह सोचने लगा कि चाहे कितना रूपया ले लूँ उसमें से बाद में घटता ही रहेगा। अत: कोई ऐसी वस्तु माँगनी चाहिए जो हमेशा बढ़ती ही जाये। यह सोचकर उसने कहा कि हम जिस वस्तु को हाथ लगाये वह स्वर्ण हो जाये देव (तथास्तु) अर्थात् 'ऐसा ही हो' कहकर चल दिया, प्रात: काल उठकर इस सेठ ने जिसका स्पर्श किया वह ही स्वर्ण हो गया अन्त में उसने दौड़कर घर की अनेक वस्तुओं को छूकर सोना बना लिया। मारे खुशी के उसने खाने पीने की सुध नहीं ली। दोपहर हो जाने पर उसे घर के लोग समझाने लगे तब वह किसी तरह से स्नान करने को तैयार हुआ परन्तु जैसे ही पानी को हाथ लगाया कि वह सोना बन गया आखिर वह बिना स्नान के ही लौट आया और भोजन करने बैठ गया। अब क्या भोजन करने को जैसे ही

ग्रास उठाया वैसे ही वह भी सोना बन गया अब क्या भोजन करे। उसने लोगों से बताया कि हमारे मुख में दूर से कढ़ी डाल दो परन्तु जैसे ही लोगों ने कढ़ी डाली वह उसके गले के स्पर्श से सोना बनकर अटक गया और मरने लगा तब उसने तड़पते हुए देव का स्मरण किया और कहा अपना नियम वापिस ले लो तब उसके प्राण बचे।

इसलिए आत्मा का कल्याण चाहने वाले प्रत्येक व्यक्ति को चाहिए कि संसार की वस्तुओं से इच्छा हटाकर निरंजन सिद्ध भगवान के चरण कमलों में लगा दें। जिससे जन्म-मरण से मुक्त होकर अविनाशी परम पद प्राप्त हो।

सुकुमाल जब तक भोगों को नित्य मानते रहे तब तक अनेक तरह के सुखोपभोग करते रहे, परन्तु दिगम्बर मुनिराज के उपदेश का उसपर ऐसा प्रभाव पड़ा कि सभी सुख सामग्री छोड़कर वन में नंगे पांव चलकर, तपस्या करन लगे। संसार वैभव को अनित्य एवं आत्मा को नित्य मानकर वे अन्त में तीन दिन में सर्वार्थसिद्धि के देव हुए। पांडव जब तक इस वैभव को नित्य मानते रहे तो कौरवों से लड़ते रहे परन्तु जब वैभव की अनित्यता जान गये तब सभी ने जंगल में जाकर ध्यान धर लिया। उसके बैरी ने उन्हें लोहे के गहने तपा-तपा कर पहनाये फिर भी ध्यान नहीं छोड़ा क्योंकि उन्हें इन सभी से वैराग्य हो गया था। तीन भाई युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन मोक्ष गए लेकिन दो भाई नकुल और सहदेव के मन में भाई के प्रति जरा सा मोह आ गया वे मोक्ष न जाकर सर्वार्थसिद्धि में गए। अगर राज्य के मोह में लड़ते हुए मरते तो नरक में जाना पड़ता।

भरत चक्रवर्ती जब छह खण्ड जीत कर आये तो चक्र ने नगर में प्रवेश नहीं किया भरत जी विचार करने लगे कि किसे जीतना रह गया है। आदिनाथ ने बाहुबलि को पोदनपुर और 99 पुत्रों को अलग-अलग अन्य स्थानों का राज्य दिया था। भरत जी ने 100 भाइयों को दूत भेजे कि हमें नमस्कार कर अधीनता स्वीकार करें वरना युद्ध के लिए तैयार हो जाएं। बाहुबली को छोड़कर शेष 99 भाई अपने पिता आदिनाथ के पास गये कि जो राज्य हमें आपने दिया था वह भरत जी लेना चाहते हैं। आदिनाथ ने उन्हें संबोधा कि सब वैभव सम्पति अनित्य है संसार नाश वान है नित्य है, एक आत्मा ही नित्य है इससे 99 भाइयों को वैराग्य उत्पन्न हुआ और वे 99 भाई दीक्षा धारण कर गये। बाहुबलि ने कहा कि हमारे पास तो छोटी सी पोदनपुरी है और उनके पास छह खण्ड का राज्य है फिर भी उन्हें सब्र नहीं आता तो जाओ कह देना कि युद्ध की तैयारी की जाए दोनों ओर से युद्ध की तैयारी शुरू हो गई। मंत्री गण विचार कर रहे हैं कि दोनों भाई चरम शरीरी है इनका कुछ नहीं बिगड़ेगा और व्यर्थ में सेना मारी जायेगी इसलिए दोनों भाईयों का ही युद्ध होना चाहिए। मंत्रियों ने तीन युद्ध-जल युद्ध, दृष्टि युद्ध, मल्ल युद्ध निश्चित किये। तीनों युद्धों में भरत जी हार गये क्रोध में आकर भरत जी ने बाहुबलि पर चक्र चला दिया लेकिन चक्र भी बाहुबलि की तीन प्रदक्षिणा दे उनके हाथ पर आ गया अब भरत जी के पास कोई चारा

नहीं रहा इधर बाहुबलि जी को वैराग्य उत्पन्न हो गया देखो संसार की दशा। राज्य के लिए अनीति का भी विचार कर बाहुबलि जी जंगल में जाने लगे तो कुछ व्यक्ति कह रहे थे कि जंगल भी तो भरत जी के राज्य में है। बाहुबलि जी जंगल में जाकर जिनदीक्षा धारण कर ध्यान में दृढ़ हो गये। इतनी कठोर तपस्या की कि एक साल तक एक ही स्थान पर बिना हिले डुले खड़े रहे। सर्पों ने बाम्बियाँ बना ली शरीर पर बेलें चढ़ गई लेकिन केवलज्ञान नहीं हुआ चूँकि बाहुबली जी के मन में यह भाव रहा कि मैं भरत की भूमि पर खड़ा हूँ। इधर भरत जी विचार रहे हैं कि मेरे भाई खड़े हुए एक वर्ष से कठोर तपस्या कर रहे हैं अब तक केवल ज्ञान क्यों नहीं हुआ, अपनी शंका के समाधान हेतु भगवान आदिनाथ की शरण में जाकर प्रश्न करते हैं कि मेरे भाई बाहुबली जी को अब तक केवलज्ञान क्यों नहीं हुआ। भगवान की खिरी वाणी में जान पड़ा कि बाहुबली जी के मन में विकल्प है कि भरत की भूमि पर खड़ा हूँ तभी भरत बाहुबली जी के पास जाते हैं और कहते हैं हे गुरु- जब आप हमारे गुरु हो गये हो तो आपको नमस्कार है। मेरे जैसे इस पृथ्वी पर कितने चक्रवर्ती हो गये है किन्तु यह धरा किसी के साथ नहीं गई यह सब नश्वर है, अविनाशी नित्य केवल आत्मा है।

हे भव्य जीवो! जब तक इस संसारी वैभव को नित्य मानते रहोगे तब तक संसार में ही भ्रमण करते रहोगे। कल्याण चाहते हो तो प्रत्येक को अनित्य मानो नित्य है तो केवल आत्मा।

२. अशरण भावना– ऐसा विचारना कि संसार में किसी को कोई शरण नहीं है। राजा महाराजा भाई-बन्धु, कुटुम्ब-कबीला, मणि, मंत्र, यंत्र औषधि आदि कोई किसी को मृत्यु से बचाने वाला नहीं है। जैसे सिंह हिरण के बच्चे को आ दबोचता है, वैसे ही काल सबको आ दबोचता है। व्यवहार नय से तो इस जीव का अरहन्त सिद्ध साधु तथा केवली भगवान द्वारा प्रणीत जिनधर्म ही शरण है, निश्चय नय से इसका शुद्ध चिदानन्द रूप आत्मा ही शरण है। इस प्रकार चिंतन करना अशरण भावना है। स्वामी कार्तिकेय ने लिखा है–

जइ देवो वि य रक्खदि मंतो तंतो य खेत्तपालो य।
मियमाणं पि मणुस्सं तो मणुया अक्खया होंति।। का०अ०25

मनुष्य अपनी और अपने प्रियजनों की रक्षा लिए देवी-देवताओं की मनौती करते हैं। कोई महामृत्युंजय आदि मंत्रों का जाप करवाते हैं कोई टोटका करवाते हैं कोई क्षेत्रपाल को पूजते हैं, कोई राणा जी की सेवा करते है किन्तु उनकी ये सब चेष्टाएं व्यर्थ हैं क्योंकि इनमें से कोई भी मृत्यु मुख से नहीं बचा सकता यदि ऐसा होता तो सब मनुष्य अमर हो जाते किसी न किसी की

शरण में जाकर सभी अपनी प्राण रक्षा कर लेते, प्राणी सोचता है यह संसार मेरी शरण है किन्तु यहाँ रह कर कोई भी प्राणी मृत्यु से नहीं बच सकता।

(श्री शिवलाल कृत)

माता-पिता सुत भामिनी, अरु जे सुत परिवार,
काल व्याघ्र के घात से, कोउ न राखन हार॥
धर्म एक ही जगत में शरणागत प्रति पाल,
तेहि बिन रक्षा को धरे काल चक्र के जाल॥

माता-पिता पुत्र स्त्री व कुटुम्ब में जितने भी सदस्य हैं उन्हें कोई नहीं बचा सकता उन्हें तो एक न एक दिन काल का ग्रास बनना ही है। इस संसार में यदि कोई अपना है या साथ देगा तो सिर्फ धर्म ही है। इस काल के चक्र से केवल धर्म बचा सकता है अत: उसकी हमें रक्षा करना चाहिए वही अन्त में साथ देगा अथवा और कोई नहीं।

श्री जुगलकिशोर जी पूजा में लिखते हैं-

सम्राट महाबल सेनानी, उस क्षण को टाल सकेगा क्या।
अशरण मृत काया में हर्षित, निज जीवन डाल सकेगा क्या॥

बड़े से बड़ा कोई सम्राट क्यूँ न हो चाहे कोई महाबली या कोई सेनापति हो वह भी मृत शरीर में जीवन नहीं डाल सकता और न ही वह उस क्षण अर्थात् आने वाली मृत्यु के क्षण को टाल सकता है। सब रुपया, पैसा, धन, सम्पत्ति वैभव स्त्री पुत्र आदि मोही जीव भी इस मृत्यु के क्षण को टाल नहीं सकते हैं। इस संसार में कोई भी शरण देने वाला नहीं यहाँ से तो एक न एक दिन जाना ही है।

1. राजा देवता आदि लौकिक जीव शरण हैं।
2. कोट खाई आदि लौकिक अजीव शरण हैं।
3. कोट खाई आदि सहित ग्राम, नगर पर्वत आदि लौकिक मिश्र शरण हैं।
4. लोकोत्तर जीव शरण पंच परमेष्ठी अरिहन्तादि (अलौकिक) जीव शरण हैं।
5. लोकोत्तर अजीव शरण पंच परमेष्ठी के प्रति बिम्बादि अलौकिक अजीव शरण हैं।
6. लोकोत्तर मिश्र शरण धर्मोपकरण सहित साधु वर्ग अलौकिक जीवाजीव शरण हैं।

(दौलतराम जी कृत)

सुरअसुर खगाधिप जेते, मृग ज्यों हरि काल दलेते।
मणि मंत्र तंत्र बहु होई, मरते न बचावे कोई।।

जिस प्रकार हिरण को सिंह खा जाता है उसी प्रकार देव दानव और विद्याधर आदि जितने भी अपने आपको बलवान मानने वाले हैं उन सब को भी मौत के मुँह में जाना पड़ता है। मौत से बचाने के लिए मणि मंत्र तंत्र आदि दुनिया की कोई भी शक्ति समर्थ नहीं है ऐसा चिन्तन करना अशरण भावना है।

काल सिंह ने मृग चेतन को घेरा भव वन में,
नहीं बचावन हारा कोई यों समझो वन में,
मंत्र तंत्र सेना धन सम्पत्ति राज पाट छूटे,
वश नहीं चलता काल लुटेरा काय नगरी लूटे,
चक्र रत्न हलधर सा भाई काम नहीं आया,
एक तीर के लगत कृष्ण की विनश गई काया,
देव धर्म गुरु शरण जगत में और नहीं कोई,
भ्रम से फिरे भटकता चेतन यूं ही उमर खोई।

संसार में कोई भी शरण नहीं, जब भी कोई-पुण्य सामने होता है तो देव भी शरणागत हो जाता है और यदि पुण्य नहीं हो तो कुटुम्ब जन भी दुश्मन हो जाते हैं। जिस समय रावण सीता जी को उठा कर ले गया तब कोई देव नहीं आया और जब सीता जी का पुण्य उदय आया तो देवों ने अग्नि का नीर बना कर सिंहासन पर बैठाया। रामचन्द्र जी सीताजी का पता पत्तों पहाड़ों तालाबों से पूछते रहे और उन्हीं रामने गर्भवती सीता को जंगलों में छुड़वा दिया। संसार में कोई किसी का शरण नहीं है जब हिरन सिंह के बच्चों को मुँह में दबा लेता है तो उसे बचाने वाला कोई नहीं इसी प्रकार जब काल रूपी सिंह मृग रूपी चेतन को घेर लेता है उस समय उसे बचाने वाला मंत्र तंत्र कुछ भी काम नहीं करता।

आदिनाथ के गर्भ में आने से छह मास पूर्व और 9 मास गर्भ में अर्थात् पन्द्रह मास तक देव रत्नों की वर्षा करते रहे। जन्म के समय जन्म कल्याणक और तप के समय तप कल्याणक आदि मनाने स्वर्गों से दौड़े आये। लेकिन जब आदिनाथ भगवान को छह मास तक आहार नहीं मिला तब वे देव कहाँ चले गये थे। जिस प्रकार सुकौशल मुनि को उसकी माता ने बड़े प्यार के साथ पाला और कर्म के उदय आने पर उस की माता ने व्याघ्री बन कर सुकौशल मुनि को खाया, अब जरा विचार कर लो क्या संसार में कोई शरण है। जैसे एक बार मैं चिलकाना में

था। शौच के लिए जंगल में जाते समय पहाड़ी भराल (मधु मक्खियों) ने मुझ पर घोर उपसर्ग किया लेकिन बताओ क्या मेरे माता पिता और कुटुम्ब जन कोई उपसर्ग से बचाने में सहाई हुए, नहीं। दु:ख तो मुझे झेलना था उसको कोई नहीं बाँट सकता।

सारे संसार में यदि शरण है तो आत्मा ही है। जैसी आत्मा अर्हन्त भगवान की है वैसी आत्मा हमारी है। जो गुण अरहन्त भगवान की आत्मा में प्रकट हैं। वे ही गुण हमारी आत्मा में छिपे हुए हैं। अर्हन्त होने से पहले उसकी आत्मा भी हमारे समान कर्मों द्वारा मलिन और संसारी थी। हम संसारी जीव भी यदि अपनी आत्मा के कर्म रूपी मैल को उनके समान दूर कर दें तो हमारी आत्मा के गुण प्रकट होकर हमारी पर्याय भी शुद्ध हो कर अरहन्त भगवान के समान सर्वज्ञ हो जाये इसीलिए जो अरहन्त भगवान को द्रव्य रूप से गुण रूप से जानता है वह निज पर के भेद को जानता है और जो इस भेद विज्ञान को जानता है, उसका मोह संसारी पदार्थों से अवश्य छूट जाता है और उसकी लालसा अथवा राग-द्वेष नष्ट हो जाते हैं उसका मिथ्यात्त्व अवश्य जाता रहता है और जिसका मिथ्यात्व दूर हो जाता है उसका चारित्र सम्यक् चारित्र हो जाता है। जो अविनाशी सुखों और सच्ची शान्ति का स्थान है इसलिए सदा आनन्द ही आनन्द प्राप्त करने हेतु सारे संसार में व्यवहार रूप से केवल अरहन्त भगवान की शरण हैं।

एक नगर में दरिद्र ब्राह्मण के अनेक पुत्र थे सभी बहुत सुन्दर थे। उस नगर के राजा ने एक बार नगर के बाहर नदी पर पुल बनवाना आरम्भ किया परन्तु पुल ज्योंहि बन जाता है तुरन्त गिर जाता है। अनेक बार पुल बना और प्रत्येक बार स्वयं ही गिर पड़ा। राजा विस्मित और दुखी था बने हुए मजबूत पुल के गिरने का कारण उसे ज्ञात न हो सका। तब एक निमित्त ज्ञानी से राजा ने पूछा उन्होंने राजा से कहा एक देवी बलि चाहती है। राजाने सोने का बालक बनवा कर रथ में बैठा कर नगरी में घुमाया था। तब घोषणा की कि जो व्यक्ति देवी को बलि देने के लिए अपना बालक देगा उसे यह सोने का बालक दिया जायेगा। घोषणा सुनकर एक ब्राह्मण के हृदय को लोभ आ गया उसने पत्नि से सलाह की पहले तो ब्राह्मणी अपना कोई पुत्र देने को तैयार नहीं हुई किन्तु सोने का लोभ उसे आ गया और वह पुत्र देने को तैयार हो गयी। तब ब्राह्मण ने अपना आठ वर्ष का पुत्र राज्य को देना स्वीकार कर लिया। जब राजा के कर्मचारी इस लड़के को लेने के लिए आये तब वह लड़का अपने माता-पिता के पास गया और रोकर अपने बचाव के लिए कहने लगा। उसकी माँ कहने लगी बेटा यहाँ हमारे घर पर खाने पीने को भी कुछ नहीं है। तू राजा के घर खुश रहेगा तब लड़का पिता के पास पहुँचा पिता ने भी अपनी गरीबी का बहाना बनाकर उस लड़के को राज्य कर्मचारियों के साथ चले जाने को कहा। जब लड़के ने देखा माता-पिता मुझे घर में रखना नहीं चाहते तब वह प्रसन्नता से उसके साथ चला गया।

राजा ने उसे स्नान कराकर सुन्दर वस्त्र आभूषण पहनाकर रथ में बैठाया और उसकी बलि देने के लिए नदी की ओर ले चला लड़के की सुन्दरता देखकर नगर के नर-नारियों को उस पर बहुत दया आती थी किन्तु वह लड़का हँस रहा था। राजा ने उससे हँसने का कारण पूछा उसने उत्तर दिया राजा जगत में सबसे बड़ी रक्षा करने वाली माता होती है परन्तु माता ने मेरी रक्षा नहीं की। इसके बाद दूसरा रक्षक पिता होता है परन्तु वे भी सोने के लोभ में आकर मेरी रक्षा करने को तैयार नहीं हुए। उसके बाद तीसरा राजा होता है और राजा मुझे बलि देने के लिए जा रहा है। इसलिए संसार की स्वार्थ लीला देखकर मुझे हंसी आ रही है।

राजा के हृदय में उस लड़के के शब्दों का बड़ा प्रभाव पड़ा किन्तु फिर भी पुल बनाने की धुन में उसने कुछ विचार न किया। नदी पर आकर जब उस लड़के को बलि देने का समय आ गया। तब उस लड़के ने भगवान का ध्यान किया उसी समय एक देवी नदी में प्रकट हुई और उस लड़के को अभयदान दिया और राजासे कहा कि अब बलि की कोई आवश्यकता नहीं। तुम पुल बना लो अब कोई बाधा नहीं आयेगी। राजा बहुत प्रसन्न हुआ उसने उस लड़के को छाती से लगा लिया। उसके माता-पिता भी दौड़े आये और उस लड़के को अपने घर ले जाने लगे तब उस लड़के ने राजा तथा अपने माता-पिता से कहा कि आप लोगों ने तो लोभ वश आज मेरे प्राणों की बाजी लगा ही दी थी। मुझे आज तो भगवान ने बचाया है अब तो मेरा सारा जीवन भगवान के चरणों में बीतेगा इतना कहकर वह मुनि के पास एक वन में पहुँचा और दीक्षा लेकर उनका शिष्य बन गया।

भगवान नेमिनाथ के समवशरण में किसी ने प्रश्न किया कि द्वारिका के बारे में बताओ तो भगवान की वाणीखिरी कि द्वारिका का नाश बारह वर्ष बाद द्वीपायन मुनि द्वारा होगा और कृष्ण जी की मृत्यु जरत्कुमार के हाथों होगी। ऐसी बात-सुनकर कृष्ण जी ने आदेश दिया कि सारी शराब बाहर-जंगलों में गड्ढे खुदवा कर डलवा दो और जिसे अपना कल्याण करना हो वह अपना कल्याण करे जिसकी होनकार अच्छी थी वे दीक्षा लेकर जंगल में चले गये। इधर द्वीपायन मुनि और जरद्कुमार भी द्वारिका छोड़कर दूर जंगलों में चले गये जाते समय जरद्कुमार ने वह बाण जिसके द्वारा श्रीकृष्ण की मृत्यु बताई गयी थी, समुद्र में फेंक दिया। देखो भाई के मोह के कारण द्वारिका छोड़ कर जंगलों में कष्ट उठा रहे हैं इसे कहते है मोही राजा लेकिन जब समय आया तो द्वैपायन मुनि ने बारह वर्ष पूरे कर लिए लेकिन लोन का महिना भूल गये अर्थात् बारह वर्ष में चार माह लोन के भूलकर चार माह पूर्व ही आकर द्वारिका के बाहर जंगल में बैठ तपस्या करने लगे। इधर यादव कुमार जंगल में घूमने निकले तो रास्ते में उन्हें प्यास लगी एक तालाब में पानी भरा देख कर उन्होंने अपनी प्यास बुझा ली। यह तालाब वही था जिसमें श्रीकृष्ण ने शराब फिकवाई थी। कुमार उसी तालाब के पानी को पीकर उन्मत्त हो गये। जब वे घर आ रहे

थे तो मार्ग में द्वैपायन मुनि को बैठे देख कहने लगे। यह वही मुनि है जिसके द्वारा द्वारिका भस्म होगी ऐसा सोचकर कुमार उनको ईंट पत्थर मारने लगे। मुनि को क्रोध आ गया। जब कृष्ण जी को पता चला तो कृष्ण जी ने गुरुवर से क्षमा मांगी लेकिन गुरु का क्रोध खत्म नहीं हुआ और वे दो अँगुली उठा कर बोले- कृष्ण और बलदेव ही बचेंगे कृष्ण ने अपने माता-पिता को बचाना चाहा तो प्रतिदिन चलने वाले रथ भी उस दिन नहीं चले आखिर कृष्ण और बलदेव दोनों रथ खींचते हुए दरवाजे से बाहर निकले कि बीच में दरवाजा टूट गया। द्वीपायन मुनि के बायें कंधे से अग्नि का पुतला निकला जो सारी द्वारिका को भस्म कर गया अन्त में मुनि भी भस्म होकर कुगति में गये उधर जरद्कुमार भीलों पर राज्य कर रहा था एक भील की मछली के पेट से वही बाण निकला, उसने वह बाण जरद्कुमार को भेंट कर दिया जब कृष्ण जी और बलदेव जंगलों में घूमने लगे तो कृष्ण जी को प्यास लगी बलदेव कृष्ण जी के लिए पानी लेने चले गये कृष्ण लेट गये। उनके पैर में पद्म था उसे देखकर जरद् को हिरण की आँख दिखाई दी। हिरण सोचकर जरद् ने बाण मारा। कृष्ण द्वारा हाय शब्द निकलने पर जरद् कुमाार उसके पास पहुँचे और हतप्रभ रह गए। भाई तुम्हारे मोह से तो मैं 12 वर्ष से जंगलों में भटक रहा हूँ आखिर में फिर भी वही हुआ। कृष्ण बोले-तुम यहाँ से तुरन्त चले जाओ वरना तुम्हें बलदेव आकर मार डालेगा। जरद् कुमार वहाँ से चला गया इतने में बलदेव आ गया। तब तक श्रीकृष्ण जी दिवगंत हो चुके थे। देखो बलदेव जैसे मनुष्य भी अपने भाई कृष्ण को नहीं बचा सके। कृष्ण जी ने जब जन्म लिया तो कोई गीत गाने वाला नहीं था और मरे तो कोई रोने वाला नहीं था।

इसलिए भाई जब ऐसे महापुरुषों का संसार में कोई नहीं है तो हम और तुम जैसे सामान्य प्राणी का कौन शरण हो सकता है व्यवहार में देव, धर्म और गुरु ही शरण हैं निश्चय में केवल आत्मा शरण है।

एक समय की बात है कि एक राजा जंगल में घूम रहा था उसने युवा मुनिराज को तपस्या करते हुए देखा। राजाने मुनिराज से पूछा "हे स्वामी! तुमने भरपूर यौवन में दीक्षा क्यों ली, कुछ समय तो गृहस्थ अवस्था धारण करना चाहिए था। मुनिराज बोले कि संसार में कोई शरण नहीं है। राजा ने कहा कि तुम्हारी शरण में मैं हूँ तब मुनिराज ने कहा "बचपन में मेरी एक आँख खराब हो गयी थी तो मेरे माता-पिता व भाइयों ने बहुत उपचार किया लेकिन मेरी आँख को भी ठीक नहीं करा सके। उन्हीं दिनों हमारे नगर में एक साधु आये वह कहते थे कि संसार में कोई शरण नहीं है केवल धर्म शरण है, धर्म में वह बल है जो असंभव को संभव कर सकता है ऐसा विचार कर शाम को हमने सोचा कि अगर मेरी आँख बिल्कुल ठीक हो गयी तो मैं जैनेश्वरी दीक्षा धारण कर लूँगा। सुबह हमारी आँख बिल्कुल ठीक हो गयी राजन् जब मेरे माता-पिता भी मेरी आँख नहीं बचा पाये तो तुम मेरी शरण कैसे हो सकते हो राजन् संसार में

धर्म के समान कोई शरण नहीं है। चन्द्रगुप्त गुरु भक्ति में 12 वर्ष तक जंगल में रहे। देवों ने नगरी रचा दी। सो भाई गुरुकी भक्ति भी शरण है जब जब भव्य प्राणियों ने संसार की शरण छोड़कर आत्मा की शरण ली उन्होंने संसार के दुःखों से छूट कर मोक्ष प्राप्त कर लिया इसलिए व्यवहार में देव धर्म गुरु और निश्चय में आत्मा को छोड़कर और कोई शरण नहीं है।

3. **संसार भावना–** ऐसा चिन्तन करना कि चतुर्गति रूप संसार है और इसमें कहीं भी सुख नहीं है। मोक्ष में ही अतीन्द्रिय, निराबाध, अविनाशी निराकुलता रूप सुख प्राप्ति इस जीवन से होती है। मुमुक्ष विचारता है कि ऐसे परिभ्रमण से छूट कर मोक्ष का उपाय करना ही जीव का परम कर्तव्य है। निरन्तर ऐसा चिन्तन करने का नाम संसार भावना है। स्वामी कार्तिकेय ने कहा है–

संसार भावना

एक्कं चयदि सरीरं अण्णं गिण्हेदि णवणवं जीवो।
पुणु पुणु अण्णं अण्णं गिण्हदि मुंचेदि बहुवारं॥
एवं जं संसरणं णाणा देहसु होदि जीवस्स।
सो संसारो भण्णदि मिच्छ कसाएहि जुत्तस्स॥

- का॰ अनुप्रेक्षा 32, 33

जीव एक शरीर को त्यागता है और दूसरे नये शरीर को ग्रहण करता है। पश्चात् उसे भी त्याग कर दूसरा नया शरीर धारण करता है। इस प्रकार अनेक बार शरीर को ग्रहण करता है और अनेक बार शरीर को त्यागता है मिथ्यात्व कषाय आदि से युक्त जीव का इस प्रकार अनेक शरीर में जो संसरण (परिभ्रमण) होता है उसे संसार कहते हैं।

तीसरी अनुप्रेक्षा का वर्णन प्रारम्भ करते हुए ग्रन्थकार ने पहले संसार का स्वरूप बतलाया है। बार-बार जन्म लेने और मरने को संसार कहते हैं। अर्थात् जन्म और मरण चक्र में पड़कर जीव का भ्रमण करना ही संसार है। यह संसार चार गति स्वरूप है और उसका कारण मिथ्यात्व और कषाय है। मिथ्यात्व और कषाय का नाश होने पर जीव की इस संसार से मुक्ति हो जाती है। पाप कर्म के उदय से यह जीव नरक में जन्म लेता है और वहाँ पाँच प्रकार के अनेक दुखों को सहता है जिन की उपमा अन्य गतियों के दुःखों से नहीं दी जा सकती।

पाप कर्म के उदय से राजा भी मरकर विष्टा का कीड़ा होता है और उसी विषय में रति करने लगता है। मोह का महात्म्य तो देखो– विदेह देश में मिथिला नाम की नगरी थी। उसमें सुभोग नाम का राजा राज्य करता था। उसकी पत्नी का नाम मनोरमा था उन दोनों के देवरति नाम का पुत्र था एक बार देवकुरु नाम के तपस्वी आचार्य संघ के साथ मिथिला नगरी के उद्यान में आकर

ठहरे उनका आगमन सुनकर राजा सुभोग मुनियों की वन्दना करने के लिए गया और आचार्य को नमस्कार करके पूछने लगा– मुनिराज! मैं यहाँ से मरकर कहाँ जन्म लूँगा। राजा का प्रश्न सुनकर मुनिराज बोले - हे राजेन्द्र! आज से सातवें दिन बिजली के गिरने से तुम्हारी मृत्यु हो जायेगी और तुम मर कर अपने शौचालय में ही कीड़े बनोगे। हमारे इस कथन की सत्यता का प्रमाण यह है कि आज जब तुम यहाँ से जाते हुए नगर में प्रवेश करोगे तो तुम मार्ग में एक भौरें की तरह काले कुत्ते को देखोगे। मुनि के वचन सुनकर राजाने अपने पुत्र को बुलाकर उससे कहा पुत्र! आज से सातवें दिन मरकर मैं अपने ही शौचालय में कीड़ा बनूंगा। तुम मुझे मार देना पुत्र से ऐसा कहकर राजाने अपना राजपाट छोड़ दिया और बिजली गिरने के भय से जल के अन्दर बने हुए महल में छिप कर बैठ गया। सातवें दिन बिजली के गिरने से राजा की मृत्यु हो गयी और मरकर वह अपने ही शौचालय में कीड़ा हुआ। पुत्र ने जैसे ही उसे देखा और मारने को प्रवृत्त हुआ वह कीड़ा विष्ठा में घुस गया संसार की यह विचित्रता देखकर पुत्र को बड़ा आश्चर्य हुआ और वह विचारों में डूब गया संसार की यह स्थिति कितनी करुणाजनक है।

अब कहते हैं कि एक ही भव में अनेक नाते हो जाते हैं, पुत्र भी भाई होता है वह भाई देवर भी होता है, माता सौत होती है, पिता भी पति होता है। श्री शिवलाल कहते हैं–

लेकर गर्भारम्भ-से देह त्याग पर्यन्त।
जगत जीव सब दु:ख से पीड़ित है हाहन्त॥
कही कष्ट अति वृष्टि से कहिं वर्षा बिन हाय।
दु:ख भरा इस लोक में, शान्ति नहीं कहिं पाय॥
रंगमंच यह जगत है, कर्म खिलावन हार।
नाना रूप बनाय कै चेतन खेलन हार॥
कभी जीव माता बना पिता पुत्र नर नार।
भाई भगिनी बन गया, यह विचित्र संसार॥
यह संसार असार है, लेश न इसमें सार।
भटका जीव अनादि से, पाया दुख अपार॥

इसमें जीव की पर्यायों का वर्णन किया है कि जीव इस संसार में कैसे भ्रमण करता है। माता के गर्भ में आने से लेकर और मृत्यु पर्यन्त तक अर्थात् जब मनुष्य अपने इस शरीर को त्यागता है तब तक जीव कितने कष्ट उठाता है इस संसार में सभी जीव अत्यन्त दुखी हैं पीड़ित है कहीं-कहीं तो जीव अधिक वर्षा होने के कारण दु:खी है क्योंकि अधिक बरसात से बाढ़ आ जाती है, फसल नष्ट हो जाती जिनके मकान इत्यादि नहीं है वह बरसात के दिनों में दु:खी हो

जाते हैं और कहीं-कहीं वर्षा न होने से पीड़ित हैं क्योंकि वर्षा न होने से अकाल पड़ जाता, महामारियाँ फैल जाती हैं चारों ओर त्राहि-त्राहि मच जाती है। इस संसार में दु:ख के सिवाय और कुछ नहीं है कहीं भी शान्ति का वास नहीं है। यह जो संसार है एक रंगमंच की तरह है अर्थात् एक नाटक की स्टेज की तरह है जहाँ कर्म अपना खेल खिलाते हैं अनेक प्रकार के रूप बनाते हैं और जो चेतन यह कभी माता का रूप धरता है कभी पिता का तो कभी पुत्र तथा स्त्री का और कभी भाई कभी बहिन बन जाए ऐसे विचित्र संसार में खेल खेलते हैं। यह संसार असार है नाशवान है इसमें जरा भी सार नहीं है कोई महत्व नहीं है। अनादिकाल से जीव इस संसार में भटक रहा है। यह जीव चर्तुगति में अनादि कालसे परिभ्रमण कर रहा है अनेक दु:ख उठा रहा है इस संसार के दुखों का वर्णन करना अत्यन्त ही कठिन है। कहा है–

संसार महादु:ख सागर के प्रभु दु:खमय सुख आभासों में।
मुझको न मिला सुख क्षणभर भी कंचन कामिनी प्रासादों में॥

इसमें जुगलकिशोर जी कहते हैं कि ये संसार महान दुखों का सागर है। दुखों में कभी-कभी जरा सा सुख का आभास सा होता है किन्तु वह सब झूठा अभास है यहाँ तो दु:ख के सिवाय कुछ है ही नहीं। इस संसार में तो क्षणभर भी सुख नहीं है न धन में न स्त्री, पुत्र आदिक में तथा न महलों में कभी भी सुख नहीं। यह संसार तो दुखों का डेरा है। हे भव्य आत्माओ! यदि इस संसार के दु:खों से छुटकारा चाहते हो तो अब आत्मा का ध्यान करो इसके सिवाय कुछ भी कल्याणकारी नहीं है। छहढाला में दौलतराम जी लिखते हैं–

चहुँगति दुख जीव भरे हैं, परिवर्तन पंच करे हैं।
सब विधि-संसार असारा, यामै सुख नाहिं लगारा॥

यह शरीरधारी जीव मनुष्य देव, नारकी और तिर्यंच चर्तुगति रूप संसार में विभावों के द्वारा द्रव्य, क्षेत्र, काल भव और भाव रूप से पंच परिवर्तन करते हुए जन्म-मरण दु:ख भोगता हुआ अनादि काल से चला आ रहा है। इस संसार में इसके लिए कोई भी सुख देने वाली सार वस्तु नहीं है ऐसा विचार करना तीसरी संसार भावना है।

जन्म-मरण और जरा रोग से सदा दुखी रहता।
द्रव्य क्षेत्र अरू काल भाव भव परिवर्तन सहता॥
छेदन भेदन नरक पशुगति वध बंधन सहना।
राग उदय से दुख सुर गति में कहाँ सुखी रहना॥
भोग पुन्य फल हो एक इन्द्रिय क्या इसमें लाली।
कुतवाली दिन चार वही फिर खुर्पा और जाली॥

मानुष जन्म अनेक विपत्ति मय, कहीं न सुख देखा।
पंचम गति सुख मिले शुभाशुभ को मेटो लेखा।।

इस संसार में कर्म से प्रेरित होकर 84 लाख योनियों में जीव भटक रहा है। अनादि से यह जीव निगोद में रहा निगोद में एक श्वास में जीवने 18 बार जन्म मरण किया। जन्म मरण का दु:ख भी असह्य है। कुछ भाग्य का उदय आया तो एक इन्द्रिय पेड़, पौधा, हवा अग्नि जल और फल आदि बनकर कौड़ी के भाव बिका, फिर कुछ कषाय मन्द हुई तो दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय कीड़ा मकौड़ा आदि बना। वहाँ भी किसी के पैरों तले रौंदा गया किसी के हाथों से मसला गया। बार-बार बहुत ही दु:ख सहा। पुन: कुछ पुण्य का उदय आया तो पंचेन्द्रिय पशु घोड़ा बैल, भैंसा गधा कूकर शूकर बनकर भूख प्यास की बाधा सही। बोझा लादा, बोगी खींची डंडे की मार सहनी पड़ी इन दु:खों को सर्वज्ञ ही जानते हैं या वे ही जीव जानते हैं। नरकों का वर्णन करने से तो दिल काँप उठता है। भूख इतनी लगती है कि तीन लोकों का अनाज खा लूँ लेकिन खाने को एक भी दाना नहीं मिलता, प्यास इतनी लगती है कि समुद्रों का जल पी लूँ लेकिन एक भी बूंद पानी पीने को नहीं मिलती। नरकों की भूमि छूने से इतना दु:ख होता है जितना एक हजार बिच्छू एक साथ काटें तो भी उतना दु:ख नहीं होता। वृक्षों के पत्ते तलवार के समान लगते हैं। सर्दी और गर्मी इतनी पड़ती है कि सुमेरुपर्वत के समान लोहे का गोला भी पिघल जावे। दुर्गन्ध का कोई ठिकाना नहीं है। असुर कुमार जाति के देव पिछले भव की याद दिलाकर आपस में लड़ाते हैं ऐसे दु:ख अनन्त बार सहे। देवगति नरगगति से अच्छी है। भोग उपभोग की सामग्री उपलब्ध रहती है लेकिन वह भव तो सुख से बीत जाता है लेकिन आगामी भव के लिए कुछ नहीं करते इसलिए संसार चक्र भ्रमण देव गति से नहीं मिटता। मनुष्य पर्याय में तो कुछ गर्भ में ही मर जाते हैं कुछ जन्म के समय पर मर जाते हैं। कुछ गूंगे, अन्धे, बहरे, लूले बन कर और गरीब नीच चाण्डाल बन कर दु:ख सहते हैं। उत्तम कुल, उत्तम समृद्धि तथा स्वस्थ्य शरीर भी मिला तो भी कल्याण नहीं किया और संसार में भटक जाते हैं। मनुष्य भव ऐसा जंकशन है जहाँ से मोक्ष को भी पहुँचा जा सकता है। अन्यथा पंच परिवर्तन करते-करते अनादि से संसार के दुखों को भी देखते हुए जीव यह दशा हो रही है। एक व्यापारी पानी के जहाज में माल भर कर व्यापार के लिए चला उसे अपने माल पर विश्वास था कि मैं बहुत बड़ा सेठ बन जाँऊगा लेकिन मार्ग में ही तूफान आने से जहाज डूब गया। व्यापारी जहाज से उछलकर तैरता हुआ बड़ी कठिनाई से पार लगता है। जब उसे होश आता है वह सोचता है कि मैं कौन हूँ कहाँ से आया हूँ, कहाँ से चला था? यह सोचता हुआ एक रास्ते की ओर चल देता है कुछ ही दूरी पर चल पाया था कि देखता है एक काला हाथी चिंघाड़ता हुआ उसकी ओर भागा आ रहा है। वह घबरा गया और कहने लगा प्रभु तेरे बिना मेरा कौन रक्षक है। इस हाथी से बचा।

तभी आकाशवाणी हुई हे जीव! तुमने आज सब से पहले प्रभु को याद किया है तेरी रक्षा अवश्य होगी। उसे सामने एक वृक्ष दिखाई पड़ा और उछल कर उस पर लटक गया। उधर हाथी ने आकर उस वृक्ष को अपनी सूंड से पकड़कर जोर-जोर से हिलाना शुरू किया पथिक घबरा गया उसने नीचे की ओर देखा कि जिस डाल पर वह लटक रहा है उसके नीचे समुद्र के समान कुआं बना हुआ है। चारों ओर चार काले नाग और ठीक नीचे बीच में एक काला अजगर मुँह फाडे देख रहा है कि कब पथिक गिरे और हम डसें। पथिक घबरा गया उसने ऊपर की ओर देखा कि उसी डाल को दो चूहें काट रहे और एक काला और एक सफेद दोनों काटने में लग रहे हैं। अब उसे और भी चिन्ता हुई। हाथी ने फिर वृक्षों को जोर से हिलाया तभी उसके मुँह में शहद की एक बूंद आकर गिरती है और मधु मक्खी यह सोचकर कि इसने वृक्ष को हिलाया है उसके सारे शरीर पर लिपट गई तब वह चिल्ला कर प्रभु-प्रभु याद करता है उसी समय देव विमान लेकर आते हैं कि- हे पथिक यहाँ आ जाओ लेकिन इतने में पथिक के मुंह में एक और बूंद शहद की आकर गिरती है बस फिर क्या था वह पथिक उस शहद की मिठास में इतना खो गया कि मधु-मक्खियों का दुख, अजगरों का भय भूल गया। देव उसे फिर आवाज लगाते हैं कि हे पथिक! डाल को छोड़कर शीघ्र ही विमान में आ जाओ लेकिन पथिक कह रहा है कि शहद की एक बूंद और ले लूँ। एक बूंद और आ जाने पर देव उसे कहते हैं अब तो चलो वरना डाली कटने वाली है और डाल के कटते ही अजगर तुम्हें डस लेगा ऐसा कह देव ने उसका हाथ पकड़ लिया तब पथिक कहता है कि मुझे कहीं नहीं जाना है। ऐसा कह पथिक झटके से अपना हाथ छुडा लेता है। पथिक सोच रहा है कि मधु में कितना मिठास है और देखो कितना आनन्द आ रहा है वह ऐसा विचार कर ही रहा था कि हाथी जोर से वृक्ष हिलाता है चूहे डाल काट चुके थे। इसलिए डाल से गिरकर पथिक अजगर के मुंह में जा गिरा। यहाँ पर समुद्र को संसार माना है उसमें भटकते-भटकते किनारे पर लगना मनुष्य पर्याय का मिलना, हाथी काल, वृक्ष पर चढ़ना गृहस्थ धारण करना, मधु मक्खी चिपटना बच्चों का चिपटना, मधु का मिठास-भोगों का आनन्द सफेद और काला चूहा दिन और रात, देव का आना गुरु का उपदेश, सर्प चारों गतियाँ, अजगर निगोद के समान मान रहे हैं चूँकि वह भोगों में लग कर सब कुछ भूल जाता है। अत: इन भोगों को छोड़ो वरना संसार में दु:ख ही दु:ख है।

एक समय की बात है कि नारद जी घूमते-घूमते स्वर्ग में पहुँच गये वहाँ पर सुख ही सुख के आनन्द हो रहे थे नारद जी कहने लगे कि यहाँ पर तुम मध्य लोक के मनुष्यों को क्यों नहीं आने देते। स्वर्ग का इन्द्र बोला इस बार आप अवश्य अपने साथ किसी को लायें। ऐसा सोचकर नारद जी ने मध्य लोक में आकर एक बूढ़े से कहा कि तुम यहाँ पर बहुत परेशान हो चलो तुम्हें स्वर्ग के सुखों में छोड़ आऊँ बूढ़े का शरीर काँपा करता था वह बोला कि यहाँ पर तो मेरे पौत्र

प्रपौत्र आदि सब कुछ हैं उन्हें छौड़कर कहाँ जाऊँगा। मैं तो जैसा भी हूँ यहीं सुखी हूँ तब नारद जी एक धार्मिक व्यक्ति के पास पहुँचे कि भाई चलो तुम्हें स्वर्गों में छोड़ आऊँ तो वह बोला कि आप ठीक कहते हैं लेकिन मेरी शादी हो जाये तो फिर चलूँगा। कुछ दिनों बाद जब उस की शादी हो गई तब नारद जी फिर पहुँचे। भाई चलो अब छोड़ आऊँ तो वह बोला कि लड़का तो हो जाने दो। लड़का भी हो गया, नारद जी फिर उसके पास पहुँचे कि अब चलो तो वह बोला कि छोटे से लड़के को छोड़ कर कहाँ जाऊँ उसकी शादी हो जाये तो अवश्य चलेंगे। नारद जी शादी हो जाने के बाद उसके पास पहुँचे और कहा चलो भाई अब तो चलो तो फिर भी वह बोला कि पोते को तो देख लूं। कहने का तात्पर्य यह है कि धर्मी पुरुष भी संसार मोह में इतना फंसा हुआ है कि पर संबंध के मोह में दुःख उठा रहा है। जब तक पर में रमना नहीं छोड़ेगे तब तक संसार दुःख नही छूटेगा। संसार में दो प्रकार के प्राणी होते हैं। एक कबूतर जैसे दूसरे तोते जैसे। तोते को तो जब भी पिंजरा खुला मिल जाता है वह तो तभी उड़ जाता है और लौट कर नहीं आता लेकिन कबूतर सरीखे इधर उधर भटकते हुए शाम को फिर अपने स्थान पर लौट आते हैं। कबूतर जैसे प्राणी संसार में लिप्त रहते हैं। वे विचार करते रहते हैं कि अभी बहुत समय है। थोड़ा भोग लेवे फिर धर्म कर लेगें। लेकिन बुढापे में जब इन्द्रियों कमजोर हो जाती हैं तब धर्म कैसे होगा?

जैसे एक विद्यार्थी बाजार में एक पुस्तक खरीदने गया वहाँ पर वह पुस्तक 60 पैसे में मिलती थी सोचा कल तो 50 पैसे में मिलती थी फिर ले लेगें। फिर पूछने पर उसका दाम 75 पैसे हो गया। ग्राहक उसका दाम बढ़ाता चला गया एक दिन उस पुस्तक का मूल्य दो रूपये हो गया जो बाद में लेनी पड़ी। प्रतीक्षा करने के कारण मूल्य अधिक देना पड़ा। इस प्रकार जितना इन्तजार करते जायेगें कल्याण करना उतना ही महंगा होता जायेगा क्योंकि बुढ़ापे में इन्द्रियाँ कमजोर होती जाती हैं। ऐसे प्राणी कबूतर जैसे प्राणी कहलाते हैं। तोते सरीखे प्राणी तो ऐसे होते हैं कि एक सेठ के पास एक ग्वालिन अपने दूध का हिसाब करने आयी जब शाम हो गयी तो वह बोली सेठ जी मेरा घर तो बहुत दूर है और सूर्य छिपने वाला है समय बहुत थोड़ा है। ऐसा सुन कर सेठ जी विचार कर रहे हैं कि यह ठीक कहती है मेरी आत्मा का घर बहुत दूर है आयु रूपी सूर्य छिपने वाला है। समय बहुत थोड़ा है से तात्पर्य मेरी आयु बहुत थोड़ी शेष रह गयी है। ऐसा विचार कर सेठ जी दीक्षा धारण कर अपना कल्याण कर गये।

यह संसार दुःखों की खान है। संसारी सुख खाण्ड में लिपटा हुआ जहर है। तलवार की धार पर लगा हुआ मधु है। इनसे सच्चे सुख की प्राप्ति मानना विषधर के मुँह में अमृत झड़ने की आशा करना है। जिस प्रकार हिरण यह भूलकर कि कस्तूरी तो इसकी नाभि ही मैं है चतुर्दिक घूमता रहता है। उसी प्रकार प्राणी यह भूल जाता है कि अविनाशी सुख तो उसकी आत्मा का

स्वाभाविक गुण है। सुख और शान्ति की खोज सांसारिक पदार्थों में करता है यदि संसार में सुख होता तो 96 हजार स्त्रियों को भोगने वाला, 32 हजार मुकुटबद्ध राजाओं का सम्राट, जिनकी रक्षा देव करते हैं ऐसे नौ निधि 14 रत्नों का स्वामी छहखण्ड का स्वामी संसार का प्रजापति चक्रवर्ती राज सुखों को तृणवत् समझकर संसार को क्यों त्यागते। जब संसार के पदार्थों में सच्चा आनन्द नहीं तो इनकी इच्छा और मोह ममता क्यों?

चारों गतियों के जीवों की उत्कृष्ट आयु

पृथ्वीकायिक जीव की उत्कृष्ट आयु	22 हजार वर्ष
जलकायिक जीव की उत्कृष्ट आयु	सात हजार वर्ष
अग्निकायिक जीव	3 दिन
वायुकायिक जीव की	3 हजार वर्ष
प्रत्येक वनस्पति जीव	10 हजार वर्ष
इत्तर निगोद सूक्ष्म वादर	अन्तर्मुहूर्त
सूक्ष्म पृथ्वी, अप, तेज, वायु	अन्तर्मुहूर्त
दो इन्द्रिय जीव की उत्कृष्ट आयु	12 वर्ष
तीन इन्द्रिय जीव की उत्कृष्ट आयु	42 दिन
चौइन्द्रिय जीव की उत्कृष्ट आयु	6 माह
पंच इन्द्रिय जीव की उत्कृष्ट आयु	तीन पल्य
देव, नारकी जीव की उत्कृष्ट आयु	33 सागर
जघन्य	दस हजार वर्ष
पक्षियों की उत्कृष्ट आयु	72 हजार वर्ष
सर्पों की उत्कृष्ट आयु	42 हजार वर्ष
छाती से सरकने वाले अजगर की उत्कृष्ट आयु	नौ पूर्वांग

–अवगाहना–

एकेन्द्रिय चतुष्क पृथ्वी, अप, तेज वायु काय के जीवों की अवगाहना जघन्य तथा उत्कृष्ट घन अंगुल के असंख्यातवें भाग है। प्रत्येक वनस्पति की उत्कृष्ट अवगाहना युक्त कमल है। कुछ दो अधिक एक हजार योजन है।

दो इन्द्रिय शंख उत्कृष्ट अवगाहना	12 योजन लम्बा
तीन इन्द्रिय कान खजूरा अवगाहना	3 कोश
चार इन्द्रिय भ्रमर	एक योजन
पंचेन्द्रिय मगरमच्छ	एक हजार योजन
नरक ऊँचाई	पाँच सौ धनुष
भवनवासी देव असुर की अवगाहना	25 धनुष
शेष नौ की अवगाहना	10 धनुष
व्यन्तर देव की ऊँचाई	10 धनुष
ज्योतिषि देव की ऊँचाई	7 धनुष
सौधर्म ईशान देव की ऊँचाई	सात हाथ
सानत्कुमार महेन्द्र की ऊँचाई	छ: हाथ
ब्रह्म, ब्रह्मोत्तर की ऊँचाई	5 हाथ
लान्तव, कापिष्ट की ऊँचाई	5 हाथ
शुक्र, महाशुक् की ऊँचाई	4 हाथ
सतार, सहस्त्रार	3 1/2 हाथ
आरण, अच्युत	3 हाथ
ग्रैवेयक शुरु में	2 1/2 हाथ
मध्य में	2 हाथ
ऊपर में	1 1/2 हाथ
नव अनुदिश	1 हाथ
पाँच अनुत्तर	1 हाथ
मनुष्य अवसर्पिणि का पहला काल	3 कोश
अन्तिम का छठा काल में	1 हाथ

सोलह स्वर्ग में पटल 52, नव ग्रैवेयक 9 पटल, अनुदिश का एक पटल अनुत्तर विमान का एक पटल कुल 63 पटल होते हैं।

बन्धुओं अभी संसार भावना का विवेचन करते हुए आपने जाना कि संसार क्या है। जिन आत्माओं ने इस संसार भ्रमण से, जन्म-मरण रूप दु:ख से छुटकारा पाया है उन पूज्य आत्माओं के मार्ग का अनुसरण करके इस भव-सागर को पार कर शाश्वत सुख को प्राप्त करो।

४. एकत्व भावना– अपने शुभाशुभ कर्म के फल को यह जीव अकेला ही भोगता है, पुत्र, स्त्री आदि कोई भी दु:ख में साथी नहीं, ये सब अपने ही स्वार्थ के सगे हैं। आत्मा एक अकेला है। इस संसार में इस जीव का धर्म के अतिरिक्त और कोई हितैषी नहीं है निरन्तर इस प्रकार चिन्तन करना एकत्व भावना है।

(स्वामी कार्तिकेय द्वारा)

इक्को जीवो जायदि एक्को गब्भम्हिं गिण्हदे देहं।
इक्को बाल जुवाणो इक्को बुड्ढो जरा गहिओ।।

–का.अ. 74

जीव अकेला ही उत्पन्न होता है अकेला ही माता के उदर में शरीर को ग्रहण करता है, अकेला ही बालक होता है, अकेला ही जवान होता है, और अकेला ही बुढ़ापे से बूढ़ा होता है। संसार को देखते हुए भी अपने कुटुम्बी जनों से जीव का मोह नहीं छूटता। इसका कारण यह है कि जीव अपने को अभी नहीं जान सका है। जिस समय वह अपनी शुद्ध चैतन्यमय आत्मा को जानता है उसी समय उसे सभी पर वस्तुएं हेय प्रतीत होने लगेगी। अत: सब कुछ छोड़कर अपने को जानने का पूरा प्रयत्न करना चाहिए।

(श्री शिवलाल कृत)

जीव अकेला जन्मता मरे अकेला होय।
कर्मों का संचय करे सुख दुख भोगे सोय।।
सभी कुटुम्बी हर्ष से धन भोगे मन लाय।
जीव अकेला कर्म का अपराधी बन जाय।।
जीव अकेला स्वर्ग सुख भोगे अति हर्षाय।
नरकादि दुख अकेला भोगत पुनि पछताय।।
तन त्यागे जन जात जो, रहे न संग छिन एक।
किया कर्म लेकर चला पर भव प्राणी एक।।

जीव अकेला ही जन्म लेता है और अकेला ही मरता है। यह जीव जिस प्रकार के कर्म एकत्रित करता है वैसा ही भोगता है पाप कर्मों के कारण जीव को दु:ख उठाना पड़ता है और

पुण्य आस्रव के कारण वह इन्द्रिय सुख भोगता है भोग विलास में लिप्त रहता है। परिवार का यदि एक सदस्य पाप कर्म के आस्रव से यदि आजीविका करता है तो उस धन का उपयोग कुटुम्ब के सभी सदस्य बड़ा खुश होकर भोगते हैं किन्तु उस पाप आजीविका से जो पापास्रव हुआ उस कर्म को तो सिर्फ वही जीव भोगेगा जिसने किया। इसके विपरीत पुण्य आस्रव से जीव स्वर्ग का सुख भी अकेले भोगता है और नरक आदि का दुःख भी उसे अकेले ही भोगना पड़ता है इसमें कोई भी उसका साथ नहीं दे सकता और जब वह इस शरीर को त्यागता है तो भी वह अकेला ही त्यागता है उसके साथ एक क्षण भी कोई नहीं रह सकता जीव अपने कर्मों के हिसाब से भव धारण करता है इसमें कोई किसी का साथ नहीं दे सकता जीव को सब कुछ अकेला ही करना पड़ता है व सुख दुःख भोगने पड़ते हैं।

मैं एकाकी एकत्व लिए एकत्व लिए सब ही आते।
तन धन को साथी समझा था पर ये भी छोड़ चले जाते।।

मैं अकेला हूँ एक हूँ ऐसी भावना लेकर सभी जीव आते हैं। इस शरीर को, धन को जीव अपना समझ बैठते हैं किन्तु ये सब कब किसके हुए हैं ये सब एक दिन छोड़ कर चले जाते हैं जीव फिर अकेला ही रह जाता है क्योंकि जीव अकेला ही आया है और अकेला ही जायेगा।

(पं० दौलतराम जी लिखते हैं)

शुभ अशुभ करम फल जेते भोगे जिय एक ही तेते।
सुत दारा होय न सीरी, सब स्वारथ के हैं भीरी।।

अपने किये हुए शुभ कर्मों के फल को देवगति में जाकर और अशुभ कर्मों के फल को अधोगति में जाकर यह जीव अकेला ही भोगता है। स्त्री, पुत्र और कुटुम्ब के लोग तो अपने स्वार्थ के साथी हैं सब यहीं रह जाते हैं परलोक में इसके साथ कोई नहीं जाता ऐसा विचार करना चौथी एकत्व भावना है।

जन्मे मरे अकेला चेतन सुख दुख का भोगी।
और किसी का क्या एक दिन यह देह जुदा होगी।।
कमला चल तन पैड़ जाय, मरघट तक परिवारा।
अपने-अपने सुख को रोवे पिता पुत्र दारा।।
ज्यों मेले में पंथी जन मिली नेह फिरे धरते।
त्यों तरुवर पर रैन बसेरा पंछी आ करते।।

कोस कोई दो कोस कोई उड़े फिर थक-थक हारे।
जाये अकेला हंस संग में कोई न पर मारे।।

जीव अकेला ही जन्म लेता है और अकेला ही मरता है। सुख और दु:ख में कोई हिस्सेदार नहीं होता जीव को अकेले ही भोगना पड़ता है। जब कोई प्राणी मर जाता है तो स्त्रियाँ केवल दरवाजे तक ही जाती हैं और कुटुम्ब मरघट तक जाता है सब प्राणी अपने-अपने सुख को रोते हैं। कोई किसी को नहीं रोता है। स्त्री कहती है कि मेरे लिए अच्छे-अच्छे समान लाया करता था अब कौन लायेगा। पुरुष कहता है कि मेरे लिए अच्छा भोजन बनाया करती थी। पिता और पुत्र भी अपने-अपने सुखों के कारण रोते है। संसार एक मेला है। सब बिछुड़ जायेगा। जैसे एक मेला लगता है शाम को बिछुड जाता है उसी प्रकार एक वृक्ष पर पक्षी आकर बैठ जाता है और सुबह उड़ जाता है लेकिन हंस के साथ कोई नहीं जाता। ऐसे ही है संसारी प्राणियों के कोई साथ आया है न कोई साथ जायेगा। अकेले ही आत्मा आती है और अकेले ही चली जाती है संसार में जो प्राणी पाप करता है वह कुटुम्ब का पालन-पोषण करने के लिए करता है और उसकी आमदनी से सम्पूर्ण परिवार का पालन-पोषण होता है। लेकिन इस पाप का फल उसे अकेले ही भोगना पड़ता है इसका उदाहरण हमारे सामने है।

जिस समय सिकन्दर भारत से अपने देश वापिस पहुँचा तो वह बीमार हो गया। उपचार के लिए लुकमान प्रसिद्ध हकीम को बुलाया गया। हकीम जी ने नब्ज देखकर कहा कि तुम्हारा इलाज मेरे बस की बात नहीं है। सिकन्दर कहने लगा कि तुम्हारे जैसा हकीम तो दुनिया में भी नहीं है। लुकमान ने दवाई को पानी में फेंका तो सारा पानी जम गया। लुकमान बोला मेरी दवाई पानी को जमा सकती है परन्तु अब तुम्हें नहीं बचा सकती फिर सिकन्दर ने तो अपने मंत्रियों से कहा कि मुझे बचाओ तो मंत्री बोले अब आपका आयु कर्म योग पूरा हो गया है तुम्हें अब कोई नहीं बचा सकता तो सिकन्दर बोला तो इस वैभव का क्या होगा? मंत्री बोला कि हम आपको पत्र लिख कर देते हैं तुम्हें अगले भव में मिल जावेगा। सिकन्दर बोला कि यह पत्र मेरी जाँघ में सिल देना तो मंत्री बोले कि यह शरीर भी तो तुम्हारे साथ नहीं जायेगा। तब सिकन्दर को आत्मा का बोध हो जाता है और वह कहता है कि मेरे प्राण निकलने के बाद अर्थी पर लिटाते समय मेरे दोनों हाथ बाहर निकाल देना जिससे गफलत में सो रही दुनियाँ भी समझ जाये कि सिकन्दर के समान दौलत वाला प्राणी भी खाली हाथ जा रहा है। सिकन्दर ने किस प्रकार से पैसा इकट्ठा किया था लेकिन अन्तिम समय वह भी खाली हाथ ही गया।

एक और दृष्टान्त है-

एक साधु के साथ एक शिष्य रहता था साधु शिष्य से कहने लगा कि इस संसार में कोई किसी का नहीं है इसीलिए कल्याण करना चाहते हो तो संसार छोड़कर आत्मध्यान में लीन हो

जाओ। शिष्य ने कहा कि मेरी स्त्री मुझसे बहुत मोह करती है। साधु कहने लगा कि तुम घर पर जाओ और कहो कि मेरे पेट में दर्द हो रहा है कहते-कहते लेट जाना और धीरे-धीरे ऐसे बन जाना जैसे मर गये हो। शिष्य ने घर जाकर सब कुछ साधु द्वारा बताये अनुसार ही किया उसकी स्त्री बोली कि कल ही मर जाता तो अच्छा था आज त्यौहार के दिन मरा खाने के लिए पकवान आदि बना रखे थे। चलो अब तो मर ही गया। पहले रसोई में जाकर कुछ खा पी लूँ तब आस-पास खबर करूँगी और पकवान खाने रसोई में चली गयी पकवान खाकर आई तो सोचने लगी अब तो शाम हो गयी है सुबह खबर करूँगी वरना सारी रात रोना धोना पड़ेगा और आराम नहीं मिलेगा और सुबह उठकर बोली कि पहले थोड़ी चाय वगैरह पी लूँ पता नहीं कितनी देर तक रोना पड़ेगा। चाय पीने के बाद रोने बैठ गयी आस-पास की और रोने वाली आ गई कुछ देर बाद साधु भी आ गया और बोले कि मेरे पास ऐसी दवाई है कि जो इसे पी लेगा वह मर जायेगा और यह जी उठेगा। तब साधु उसकी स्त्री से कहते है कि तुम इस दवाई को पीलो तो उसकी स्त्री कहती है कि मैं तो विधवा जीवन ही गुजार लूँगी लेकिन यह दवाई नहीं पीती। तब साधु उसकी माँ से बोले कि तुम तो वृद्ध हो गयी हो तुम ही पीलो तो उसकी माँ बोली कि मेरे तो और भी पुत्र हैं। मैं नहीं मरना चाहती। सॉराश यह है कि कोई भी पीने को तैयार नहीं हुआ तो साधु बोला कि मैं पी जाऊँ तो सारे कुटुम्ब जन प्रसन्न हो गये कि हाँ महाराज आप बहुत अच्छे हो आप ही पी लो साधु ने वह दवाई पी कर कहा कि बेटा खड़े हो जाओ और देख लिया तुमने संसार में कोई भी किसी का नहीं है तभी शिष्य गुरु के साथ चल दिया।

बहुत से भाई बहन का प्यार का उदाहरण बताते हैं लेकिन सब स्वार्थ के साथी हैं। एक अच्छे घराने में एक बहन और एक भाई थे। भाई ने बहन का रिश्ता एक अच्छे घराने में किया। होनहार बलवान थी कि भाई पर दरिद्रता आती चली गई। कुछ दिन के बाद बहन ने अपने लड़के का रिश्ता ले लिया। अब बहन विचार करती है कि मेरा भाई गरीब है मैं सम्पन्न हूँ भाई के पास भात न्यौतने कैसे जाऊँ? शर्म आयेगी लेकिन लोक व्यवहार की वजह से भाई के यहाँ भात न्यौतने पहुँच गयी। अब भाई मुसीबत में फँस गया कि इनके लिए खाने का प्रबन्ध कैसे करुँ? वह गरीब बेचारा कुछ प्रबन्ध करके उन्हें भोजन कराता है और विदा कर देता है। जब शादी का समय आया तो भाई सोच रहा है कि भात में कैसे जाऊँ न तो पहनने के लिए कपड़े ही है और न भात में ले जाने के लिए कुछ है। पाँच रूपये ले कर व बहन के पास पहुँच जाता है इनके यहाँ बहुत बड़े-बड़े श्रेष्ठी आये हुए थे एक ने पूछ ही लिया कि यह कौन है तो उसकी बहन बोली यह हमारे यहां का नौकर है सभी ने उसे नौकर जान कर खूब काम कराया वह भी सोचता है कि बहन की इज्जत खराब न हो इसीलिए काम करता है। शादी समाप्त होने पर अपने घर लौट आया और विचार करता है कि सहोदरा बहन ने उसे नौकर बता दिया। कुछ दिनों तक उसे अत्यन्त दुःख रहा पुण्य का उदय आते जरा सी देर भी नहीं लगती उसका वैभव पहले के

समान हो गया अब वह फिर बहन के यहाँ जाने का विचार करता है और वह बहन को खबर कर देता है भाई अनेक प्रकार के आभूषण हीरे जवाहरात पहने हुए था तो बहन ने आस-पास समाचार भेज दिया कि मेरा भाई आ रहा है लेने चलो; सब स्त्रियाँ इकट्ठी होकर लेने जाती हैं और आरती उतारने के लिए भाई को पटरे पर खडे होने के लिए कहती हैं तो भाई कहता है कि हे बहन! आरती इन हीरे जवाहरात की उतारना, मेरे शरीर को नहीं उतारना! मेरा शरीर तो उस दिन भी यही था। जिस दिन तुमने मुझे नौकर कहा था बहन बहुत शर्मिन्दा हुई। संसार में कोई किसी का नहीं है।

इसलिए आत्मन् तू अपना एकत्व देख। इनकी भाँति तू भी इन सबसे पृथक है। सत्ताधारी भगवान आत्मा में क्यों संशय करता है। अपनी स्वतंत्रता को क्यों नहीं देखता। अब इन सबका आश्रय छोड़ पुराना इतिहास याद कर तू अनादि काल से अकेला चला आ रहा है। माना कि मार्ग में अनेक मिलें है। पर सभी तो बिछुड़ गये। एक ने भी तो साथ न दिया, अकेला ही था। अकेला ही रहा। अकेले ने ही सब दु:ख भोगे, बता क्या कुटुम्ब ने भी तेरे दु:ख को बाँटा है? नहीं बाँटा। फिर अब तू क्यों अपना सुख इनमें बाँट देना चाहता है। सर्प को दूध-पिलायेगा तो कष्ट उठायेगा। जब अकेले ही ठोकर खाई है तो अकेले ही अपने वैभव को भोग। इनके लिए तू क्यों अपनी शान्ति को लुटाता है। अपनी शान्ति का तू अकेला स्वामी है। शरीर से भी ममत्व छोड़ जो कुटुम्ब से भी ज्यादा एकमेव हो रहा है। सुख दुख अकेले ही भोगता है। कोई साथ नहीं देता। यह है एकत्व भावना।

किसी सेठ के घर में आग लग जाती है तब सेठ जल्दी से जल्दी अपने नौकर से सारे रूपये, जेवर, चाँदी, सोना कपड़े बर्तन आदि वस्तुऐं बाहर निकालने को कहता है। जब सब वस्तुऐं बाहर निकल जाती है तो एक तरफ खड़ा होकर अपने नौकर से पुन: कहता है अरे नौकरो! कोई चीज भीतर रह तो नहीं गई। एक बार और देख आओ। नौकर कहते हैं– अब कुछ बचा नहीं। परन्तु सेठ के घर का वारिस बनने वाला तुरन्त जन्मा हुआ अर्थात् पुत्र दिखाई नहीं पड़ रहा है तब चारों ओर हाहाकार मच गया कहाँ है, कहाँ है? जलते हुए घर के अन्दर बच्चा सोया हुआ है। कमरे को चारों ओर से आग ने घेर रखा है। तब सेठ हाय-2 करता हुआ कहता है मेरे असली माल को भूलकर नकली पदार्थ निकाल लाये। अरे सभी कामना व्यर्थ हो गई। ऐसा पश्चाताप करके दु:खी बना रहता है।

यही दशा इस अज्ञानी जीव की है कि जीव ने अनादिकाल से पर के लिए प्रयत्न किया पर का उद्धार किया, पर के लिए जन्म मरण किया। परन्तु जलते हुए शरीर रूपी घर में सम्यग्दर्शन, ज्ञान चरित्र रूपी बालक को निकालने की कोशिश नहीं की। अन्त में पछताते हुए अनेक योनियों में जन्म-मरण करते हुए चारों गतियों में भ्रमण किया है। भव्य जीव अब देर न करो।

जैसे एक मनुष्य के कपड़े मैले हो जावें तो मैले पानी से धोने पर उसका मैल कदापि नहीं जा सकता। उस मैल को उतारने के लिए साबुन की आवश्यकता होती है। साबुन कपड़े में लगाकर पानी में केवल छोड़ दें अथवा पानी में ठीक तरह से भीग जाये तो वह साफ हो सकता है क्योंकि साबुन को लगाना मैल को दूर करना है। पहले जो पाप रूपी मैल था वह हटा कर पुण्य रूपी मैल रह गया है। परन्तु इसमें यह हो गया कि अशुभ मैल तो हट गया और शुभ मैल रह गया है। अगर इस साबुन रूपी मैल को न हटाया जायेगा तो केवल उसमें जो पाप रूपी गन्दगी थी वह तो निकल गयी और पुण्य रूपी सुगन्ध रह गयी। अब इन दोनों को हटाना है क्योंकि इन दोनों के हटाये बिना पाप पुण्य मैल हटकर आत्मा शुद्ध स्वस्थ नहीं होती। जब वह पूर्व जन्म में किये गये पुण्य पाप का संसार वासनाओं के प्रति होने वाले निदान बन्ध रूपी भावना हटाकर केवल निर्मल वैराग्य रूपी भावना द्वारा इन दोनों को हटाने के लिए निःशल्य वृत्ति वाला बन जाता है, तब यह दोनों पाप और पुण्य रूपी मैल को हटाकर मुक्त अवस्था रूपी शरीर के अन्दर छिपी हुई आत्मा को ठीक से पहचान लेता है इसी तरह जितने व्यवहार क्रियाकाण्ड बतलाये गये हैं वे केवल निजात्मा प्राप्त करने का लक्ष्य हैं। सबसे पहले अशुभ कर्म को रोकने के लिए देव पूजा, गुरु भक्ति ध्यान, दान आदि बतलाये गये हैं।

प्रत्येक जीव में परमात्म रूप बनने की शक्ति है। भिन्न मन देखे जाते हैं। वह सब दृष्टि का भेद है। सभी मन एकत्व के मूल में व्याप्त हो रहे हैं। उस तत्व रूप वृक्ष का मूल है आत्म धर्म जो सद्भाव की सिद्धि करता है और वही धर्म प्राणियों के अनुकूल है। आडम्बरों में धर्म नहीं है धर्म आत्मा में है पर्याय दृष्टि से अनेक प्रकार की वस्तु धर्म है। निश्चय आत्मा जानना धर्म है।

इस प्रकार अनित्य, अशरण व संसार भावना के चिन्तन में संयोगों की क्षण भंगुरता, अशरणता व निरर्थकता तथा निज स्वभाव की नित्यता शरणभूतता एवं सार्थकता स्पष्ट हो जाने पर भी ज्ञानी-अज्ञानी सभी को थोड़ा बहुत विकल्प तो रह ही जाता है जड़ मूल से साफ नहीं होता इसे जड़मूल से उखाड़ने के लिए ही एकत्व एवं अन्यत्व भावना का चिन्तन करता है।

इस एकत्व और अन्यत्व भावना में अन्तर केवल अस्तिनास्ति का है। एकत्व भावना में 'मैं एक हूँ' का चिन्तन होता है जैसे पाषाण में स्वर्ण, दूध में घी, तिल में तेल मौजूद होते हुए पाषाण से स्वर्ण, दूध से घी और तिल से तेल अलग है इसी प्रकार यह आत्मा इस शरीर में विद्यमान रहती है फिर भी दोनों जुदा-जुदा है, का चिन्तन करता है।

पाषाणेषु यथा हेम, दुग्धमध्ये यथा घृतम्।
तिलमध्ये यथा तैलं, देहमध्ये यथा शिवं।।
काष्ठमध्ये यथा बह्नि, शक्तिरुपेण तिष्ठाति।
एष आत्मा शरीरेषु यो जानाति सः पण्डितः।।

हे भव्य जीवो! आप भी अपने जीवन में एकत्व भावना का चिन्तन करके अपना कल्याण करें और अपनी मनुष्य पर्याय को सफल बनावें।

5. अन्यत्व भावना– ऐसा विचार करना कि यद्यपि इस शरीर से मेरा संबंध अनादि काल से चला आ रहा है, तथापि ये सर्वथा भिन्न है, मैं इनसे भिन्न हूँ। नीर क्षीर वत् मेरा इकसा संबंध है। जब यह शरीर ही मेरा नहीं है तो फिर स्त्री, पुत्र, धन आदि सब चेतन-अचेतन पदार्थ मेरे कैसे हो सकते हैं? वे सब पर हैं। इस प्रकार पर-पदार्थों को अपने से भिन्न चिन्तन करना अपने अनन्त ज्ञान दर्शनमय शुद्ध स्वरूप आत्मा की प्राप्ति की भावना करना अन्यत्व भावना है। स्वामी कार्तिकेय ने लिखा है–

अण्णं देहं गिण्हदि जणणी अण्णा य होदि कम्मादो।
अण्णं होदि कलत्तं अण्णो वि य जायदे पुत्तो।।

- कार्तिकेयानुप्रेक्षा ८०

अपने उपार्जित कर्मों के उदय से जीव भिन्न शरीर को ग्रहण करता है। माता भी उससे भिन्न होती है, स्त्री भी भिन्न होती है और पुत्र भी भिन्न पैदा होता है। आत्मा से शरीर, स्त्री, पुत्र आदि के भिन्न चिन्तन करने को अन्यत्वानुप्रेक्षा कहते हैं। आत्मा से सभी वस्तुऐं भिन्न हैं।

(श्री शिवलाल कृत)

जीव जुदा काय जुदी काया जीवन एक।
क्षण भंगुर यह काय है जीव नित्य पुनि एक।।
काया पुद्गल पिंड है चेतन ज्ञान सरुप।
यह शरीर पुनि मूर्त है जीव अमूर्त अनूप।।
जीव अनादि काल से सहता योग वियोग।
कभी किसी से बिछुड़ता कभी किसी का योग।।
जितनी वस्तु जहान में वे सब हैं परकीय।
इनसे ममता त्याग कर ध्यावो आत्म स्वकीय।।

शरीर भी अलग है जीव भी अलग है किन्तु यह काया तो क्षणभंगुर है पल में नष्ट होने वाली है इस काया के नष्ट होते ही जीव फिर से नई काया को धारण कर लेता है। यह जो शरीर है यह मर मर कर अनेक पर्याय धारण करता है इसलिए यह मूर्त रूप है किन्तु आत्मा अमूर्त है अर्थात् यह न कभी मरती है न कभी जन्म लेती है। यह एक अवस्था में ही चलती है। शरीर पुद्गलों का पिंड स्वरूप है। 'उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्' अर्थात् द्रव्य का लक्षण सत् है सत् उत्पाद व्यय ध्रौव्य युक्त है किन्तु यह जीव ज्ञान स्वरूप है यह जीव अनादि काल से संयोग और वियोग को सहन करता आया है। कभी किसी से बिछुड़ता है तो वियोग हो गया कोई प्रियजन

मिल गया तो संयोग हो गया इस संसार में जितनी भी वस्तुऐं हैं वह पर हैं अर्थात् इन्हें अपना नहीं समझना चाहिए इनका मोह त्याग कर केवल अपनी आत्मा को ही स्व समझना चाहिए वही अपनी है और कोई वस्तु अपनी नहीं है इसलिए हे भव्य जीवो अपनी आत्मा का ही ध्यान कीजिए यही स्व है।

(श्री जुगलकिशोर जुगल कृत)

मेरे न हुए ये मैं इनसे, अति भिन्न अखण्ड निराला हूँ।
निज में पर से अन्यत्व लिए निज सम रस पीने वाला हूँ॥

ये जितने भी पर पदार्थ हैं ये कभी भी मेरे नहीं हो सकते इन से भिन्न जो आत्मा है वह ही निज है, स्व है, इस तरह स्व पर भेद पहचान ने की भावना करना ही अन्यत्व भावना है।

(श्री दौलतराम जी कृत)

जल-पय ज्यों जिय-तन मेला पै भिन्न-भिन्न नहीं भेला।
तो प्रगट जुदे धन धामा क्यों ह्वै इक मिलि सुत रामा॥

यद्यपि दूध और पानी के समान जीव और शरीर का घनिष्ठ संबंध हो रहा है फिर भी आत्मा से शरीर जुदा है तो ऐसी हालत में मकान, धन, स्त्री और पुत्र आदि स्पष्ट ही अपने से अलग हैं वे सब अपने कैसे हो सकते हैं ऐसा विचार करना पाँचवी अन्यत्व भावना है।

मोह रूप मृग तृष्णा जग में, मिथ्या जल चमके।
मृग चेतन नित भ्रम में उठ उठ दौड़े थक-थककै॥
जल नहीं पीवैं प्राण गवाये भटक भटक मरता।
वस्तु पराई माने अपनी, भेद नहीं करता।
तू चेतन और देह अचेतन, यह जड़ तू ज्ञानी।
मिले अनादि यत्न से बिछुड़े ज्यों पय अरु पानी॥
रूप तिहारा जग से न्यारा, भेद ज्ञान करना।
जो लो पौरुष थके न तोलौं उद्यम सो चरना॥

जैस मृग रेगिस्तान में सफेद रेत को देखकर पानी मानता है पानी के लिए आगे ही आगे दौड़ता रहता है। लेकिन पानी नहीं मिलता। ऐसी ही दशा हमारी है मिथ्यात्व और भोगों में सुख खोज रहे हैं लेकिन वहाँ पर सुख हो तो मिले। जैसे हिरन रेत में खूब भागता है लेकिन पानी न मिलने पर भटक-भटक कर मर जाता है उसी प्रकार हम अज्ञानता में पड़कर जब तक पर

वस्तु को अपनी मानते रहेगें अर्थात् जब तक पर को पर निज को निज नहीं मानेंगे तब तक संसार के दुःख छूट नहीं सकेंगे। जिस प्रकार दूध और पानी मिल कर एक संबंध हो रहे हैं लेकिन दूध अलग है और पानी. अलग है। इसी प्रकार आत्मा और कर्म पुद्गल का संबंध होते हुए भी आत्मा अलग है और पुद्गल अलग है। अब हमें पुरुषार्थ को जानकर पुद्गल और आत्मा को जुदा करना है। स्पर्श, रूप, रस गंध मेरे नहीं है यह मेरे से अलग अन्य हैं। मैं जब अपने में दर्शन, ज्ञान, चारित्र रूप देखता हूँ तब तो स्व-समय है और जब पुद्गल प्रदेशों में घूमता हूँ तब पर समय है। अनादि के संस्कार मुझे परेशान कर रहे हैं जैसे कि समयसार की गाथा में कहा गया है-

सुदपवरिचिदाणुभूदा सव्वस्स वि कामभोगबंधकहा।
एयत्तस्सुवलंभो णवरि ण सुलहो विहत्तस्स॥४॥

काम भोग बंध की कथा सभी जीवों को श्रुत है, परिचित है और अनुभूत है परन्तु पर पदार्थों से पृथक एकत्व की प्राप्ति सुलभ नहीं है।

पर को अपना मान बैठा, निज को पहचाना नहीं।
निज को पहचाने बिना मोक्ष पद पाना नहीं॥

जीव पर को अपना मानकर निज की शक्ति को भूलकर हिरन की तरह नाभि में कस्तूरी होते हुए भी उसकी खुशबु के कारण जंगल में दौड़ता फिर रहा है। इसी प्रकार मानव भी अपनी शान्ति स्व में होते हुए भी विषयों में खोज रहा है। हे भव्य जीवो! बताओ कि पर वस्तु मुझे सुखी दुःखी कर सकती है।

एक आलसी अफीमची नदी के किनारे वृक्ष के नीचे पड़ा था। उसे भूख लगी थी। वह सोचने लगा कि रात तो बीत ही जायेगी चलो भूखा ही सही प्रातः देखा जायेगा। इतने में एक राजा का लस्कर आया और संध्या समय जानकर वहीं पर नदी के किनारे डेरे लगा दिये, देखते ही देखते जंगल में मंगल हो गया। अब अफीमची सोचता है। अहा कितना सुन्दर नगर बसा दिया। अब कहीं जाना नहीं पड़ेगा और अब मौज से कटेगी। लेकिन प्रातः होने पर क्या देखता है कि रंग ही बदल गया है चलने की उछल कूद मच रही है तो फिर क्या था। अफीमची के प्राण ही निकलने लगे। उसने एक आदमी से पूछा क्यों किधर जा रहे हैं तो वह आदमी बोला तुम कौन हो पूछने वाले। अफीमची बोला प्रभु ने मेरे लिये तो भेजा था। वह कहता है चल-चल कौन होता है, तू। हम तो अपनी मर्जी से आये थे और अपनी मर्जी से चल दिये वह बेचारा देखता ही रह गया और रोता हुआ कह रहा है कि ये क्या हो गया। क्या ऐसी ही दशा हमारी नहीं है क्योंकि मोह ने समझ रखा है कि यह वैभव बहुत अच्छा है उसी में मस्त है लेकिन यह सब बिछुड़ जायेगा ये सब पदार्थ अन्य हैं। इन्हें अन्य ही समझ जब ही तेरा कल्याण होगा। अरे

भोले प्राणी यह सब कुछ वही तो है जो पहले भी अनेक बार मिल चुका है लेकिन हर बार नया रूप दिखाते रहे सदा तेरे बन कर आये और अन्य के बनकर चले गये और तू रोता रहा तू अब नहीं समझा इन ठगों की ठगी को। ज्ञानी जीवों की शरण में बैठे आ रहे हैं। प्रकाश पा रहें हैं अब तो देख लो आँख खोलकर स्वप्न छोड़ दो यह सब परायें हैं पृथक-पृथक अपना स्वार्थ लिये फिरते हैं ये तुझ से अन्य हैं और तू इनसे पृथक है।

आचार्य कुन्दकुन्द देव कहते हैं कि–

अहमेदं एदमहं अहमेदस्से होमि मम एदं।
अण्णं जं परदव्वं सच्चितताचित्तमिस्सं वा॥२०॥
आसि मम पुव्वमेदं अहमेदं चावि पुव्वकालम्हि।
होहिदि पुणोवि मज्झं, अहमेदं चावि होस्सामि॥
एयत्तु अंसभूदं आदवियप्पं करेदि संमूढो।
भूदत्थं जाणंतो ण करेदि दु तं असंमूढो॥२२॥

जो पुरुष अपने से अन्य पर द्रव्य–सचित्त स्त्री पुत्रादि, अचितधन धान्यादि अथवा मिश्र ग्राम नगरादि को यह समझता है कि मैं यह हूँ, यह द्रव्य मुझ स्वरूप है, मैं इनका हूँ, यह मेरा है, यह मेरा पहले था इसका मैं भी पहले था यह मेरा भविष्य में होगा, मैं भी इन का भविष्य में होऊँगा ऐसा झूठा आत्म विकल्प करता है वह कभी भी अपना कल्याण नहीं कर सकता। इस संसार में भ्रमण करता रहता है। जब तक स्व-को स्व और पर को पर नहीं मानेगा शान्ति प्राप्त नहीं हो सकती।

आज के युग में एक महात्मा गांधी ही ऐसे हुए हैं जिनकी पुकार थी कि मुझे स्वतंत्रता चाहिए। इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं चाहिए। उनका कहना था कि तीन लोक का प्रलोभन भी मेरी पुकार को दबा नहीं सकता। अंग्रेजों की सत्ता किसी भी स्थिति में मुझे स्वीकार नहीं। अंग्रेजों के बच्चे-बच्चे को मेरा देश छोड़ना पड़ेगा क्योंकि स्वतंत्रता मेरा जन्म सिद्ध अधिकार है गांधी जी की इस गर्जना का प्रभाव सारे विश्व ने देखा। यदि उनकी पुकार यह हुई होती कि मुझे सर्व विश्व पर सत्ता चाहिए तो आप ही बतलाइये कि क्या वह पुकार सच्ची होती। बस अब अपनी धन की पुकार को बदल कर सच्ची गर्जना अपना कर तू वास्तव में शान्ति का उपासक बन धन, धान्य, घर जायदाद, पुत्र, मित्र, स्त्री, विषय सामग्री वस्त्र इत्यादि मैं पहले ही त्याग बैठा हूँ मुझे शरीर भी नहीं चाहिए इसके लिए आहार की भी आवश्यकता नहीं है। मुझे अपनी शान्ति में किंचित मात्र भी बाधा सहन नहीं, तीन लोक का बड़े से बड़ा प्रलोभन भी इसको बदल नहीं सकेगा। ओह कितना बल है। इस गर्जना में और कितनी दृढ़ता है। मानों सारा विश्व काँप उठा है यह सुनकर कि अब तो यह शान्ति प्राप्त करके ही रहेगा। यदि तुझे भी शान्ति चाहिए तो पर की इच्छा छोड़ कर इसी गर्जना को उत्पन्न कर नियम से तुम्हें भी शान्ति मिलेगी। लेकिन

हमें भोग और वैभव की बातें सुनने में तो आनन्द आता है लेकिन जब आत्मा या शान्ति प्राप्त करने की बात चलती है तो नींद आ जाती है या सिर में दर्द हो जाता है।

एक स्थान पर दो सखियाँ रहती थी। एक मालिन थी दूसरी मछियारिन जब दोनों की शादी हो गयी तो दोनों अपनी-अपनी ससुराल चली गयीं। एक दिन मछियारिन का मन हुआ कि चलूँ अपनी सखी से मिल आऊँ वह अपने साथ अपना टोकरा और जाल भी ले गयी। मालिन अपनी सखी को देखकर बहुत प्रसन्न हुई। उसने सारे दिन उस की खाने की दावत की और रात्रि में सोने के लिए फूल चुन-चुन कर सेज बनाई और मछियारिन को उस सेज पर सुलाया। लेकिन मछियारन को नींद नहीं आई और सिर में दर्द हो गया मछियारन रोने लगी। तब मालिन बोली कि मैं वैद्य को बुला कर लाती हूँ। तब मछियारिन बोली-"अरी बहन जल्दी आ तेरे फूलों की बदबू से मुझे चक्कर आ रहा है। इन फूलों को जल्दी फैंक मुझे किसी डाक्टर व वैद्य की कोई आवश्यकता नहीं बस वह मेरा मछलियों को टोकरा व जाल ही सिरहाने रख दे। टोकरे व जाल की खुशबू से ही नींद आ जायेगी और दर्द भी दूर हो जायेगा।" इसी प्रकार यह जीव अनन्त कालसे इन्द्रिय सुख को सुख और आत्मिक सुख को दु:ख मान रहा है। भला इसे अब आत्मा का सुख कहाँ अच्छा लगेगा इस जीव को तो मछियारिन की भाँति टोकरी की बदबू ही अच्छी लगती है और तुम्हें आत्मा की बात में नींद आ जाती है और फिल्मों में नींद नहीं आती है। इसी तरह अन्य वस्तु, जो आत्मा से जुदा है उसे आत्मा के सुख को भूला रहे हैं अच्छा मान रहे हैं। हे भव्य जीवो! अपने को जानो ओर अन्य को छोड़ो। यही अन्यत्व भावना है।

मेरे न हुए ये, मै इनसे अति भिन्न अखण्ड निराला हूँ।
निज में पर से अन्यत्व लिए, निज सम रस पीने वाला हूँ॥

जो पस्सदि अप्पाणं अबद्ध पुट्ठं अणण्णंय णियदं।
अविसेसमसंजुत्तं तं सुद्ध णयं वियाणी हि॥१४॥

जो जीव आत्मा को अबद्ध, स्पष्ट और अनित्य नियत अविशेष तथा उपलक्षण से नियम और असंयुक्त देखता है। वह द्रव्यभाव श्रुतरूप समस्त जिनागम के रहस्य को जानता है।

मैं अबन्ध हूँ बंधा हुआ नहीं, पर हुआ नहीं।
मैं अन्य-अन्य जो संयोगी पर्याय हैं मैं नहीं॥
राग-द्वेष में एक रूप नियत हूँ फलने वाली पर्याय रहित हूँ।
दर्शन ज्ञान चारित्र आदि के जो गुण पर्याय के भेद है उनसे रहित हूँ।

राग-द्वेष की संयुक्तता से रहित हूँ इसीलिए असंयुक्त हूँ।

कि यम नियम संयम आप कियो पुनि त्याग विराग अधर्म अहो।
बनवास रहौ, मुख मौन रहे, दृढ आसन पत्रा लगाय दियो।।
संग शास्त्रन के नय धारि हिये मन मण्डन खण्डन भेद किये।
वह साधन बार अनन्त कियो तदपि कछु हाथ हाजु न पर्यो।
अब क्यों न विचारत है मन में कछु और रहा उन साधन से।
बिन सद्‌गुरु कोई न भेद लहे, मुख आग लहै कह बात करें।।

विचार करो कि यह सब अभी तक किया तथापि किंचित सुख शान्ति या धर्म तेरे हाथ में नहीं आया तुझे अभी आत्मा की नि:शंकिता नहीं हुई। जैन शासन क्या है, उसे तू अभी तक नहीं समझा उसमें कौनसा वास्तविक साधन रह गया। यह बात यहाँ आचार्य ने बताई है कि भावश्रुत को अन्तरोन्मुख करके तू अपने शुद्ध आत्मा को जान।

उदाहरण– एक थका हुआ मनुष्य कुऐं पर आकर सो गया। वह स्वप्न में देखता है कि उसने किसी दुकान पर नौकरी की, वहाँ से कुछ धन मिला उससे घर सम्पत्ति खरीद ली। फिर देखता है कि उसकी शादी हो गई और एक बच्चा भी उत्पन्न हो गया। बाद में देखता है कि बगल में एक बच्चा सोया हुआ है और दूसरे बगल में स्त्री पड़ी हुई है। अब उसकी स्त्री उससे कहती है कि थोड़ा सरक जाओ बच्चे को कष्ट हो रहा है वह थोड़ा सा सरक जाता है। वह स्त्री उससे फिर कहती है कि थोड़ा सा और सरक जाओ अन्ततोगत्वा वह थोड़ा सरकते-सरकते धड़ाम से कुऐं में गिर पड़ा। जब उसकी नींद खुली तो कुऐं में गिरा हुआ पाया। बहुत पछताने लगा। उधर से एक मनुष्य कुऐं से पानी भरने आया उसने नीचे से आवाज दी भाई कुऐं में से मुझे निकाल लो। उसने रस्सी डालकर किसी तरह उसे कुऐं में से बाहर निकाला। जब वह निकल आया तो दूसरा मनुष्य पूछता है कि हे भाई। तुम कौन हो? उसने कहा पहले तुम बताओ कि तुम कौन हो? वह बोला कि मैं एक गृहस्थ हूँ, उसने कहा कि जब मुझ एक गृहस्थ की यह दशा हुई तो तू दूसरा गृहस्थ जीवित कैसे बचा।

एक वैश्य था वह बड़ा हट्टा कट्टा था उसने एक क्षत्रिय को पटक दिया और उसकी छाती पर बैठ गया, क्षत्रिय ने पूछा भाई तू कौन है। उसने कहा कि मैं एक वैश्य हूँ। इतना कहना ही था कि झट उस क्षत्रिय को जोश आ गया और एक झटका देकर उस वैश्य की छाती पर सवार हो गया।

इस प्रकार जब तक हम पुद्‌गल द्रव्य को अपना मानते हुए अज्ञानी थे तब तक पुद्‌गल हमारे ऊपर अपना प्रभाव जमाये हुए था। और जिस काल हमारे निज स्वरूप का ज्ञान उदित हुआ तब सर्व अज्ञान के चमगादड़ विलुप्त हो गये। हम को मालूम हो गया कि हमारी आत्मा तीन लोक

का धनी है पुद्गल हमारा क्या बिगाड़ सकता है मान्यता में गलती पड़ी हुई थी। वह मिट गयी पुद्गल को पुद्गल आत्माको आत्मा जान लिया।

जैसे रेहट की चक्की आठ पहियों की चक्की होती है। उसको खींचने वाले दो बैल होते हैं और उसको चलाने वाला मनुष्य होता है। उस तरह मनुष्य है। दोनों बैल है राग-द्वेष। उससे यह अष्ट कर्मों का संसार है जिससे चतुर्गति रूप संसार में यह प्राणी भटकता है।

एक मनुष्य था वह किसी तेली का घड़ा सिर पर रखकर उसके साथ चला जा रहा था वह मनुष्य मार्ग में सोचता जाता था कि उससे प्राप्त द्रव्य में से एक मुर्गी लूँगा मुर्गी से बच्चे होगें उन्हें बेच कर बकरी खरीदूँगा बकरी के बच्चे होगें उन्हें बेचकर अपनी शादी करुँगा तदनन्तर एक मकान खरीदूँगा और उसमें ऐश से जीवन बिताऊँगा। कालान्तर में मेरे भी बच्चे होंगे और वे परस्पर खूब खेलेंगे कदाचित झगड़ेंगे भी। जब वे झगड़ते-2 मेरे पास आयेंगे तो मैं उनको यों तमाचा मारूँगा मनुष्य का हाथ लगना था कि मटकी नीचे गिर गई उसी समय तेली बोला क्योंजी तुमने हमारी मटकी फोड़ दी। तब वह क्रोध में बोला कि तुम्हारी मटकी फूटी तो क्या हुआ। यहाँ तो सारी गृहस्थी नष्ट हो गई। मनुष्य शेख चिल्लियों जैसी नाना प्रकार की कल्पनाऐं किया करता है यह सब मोह के उदय की कथा है। जहाँ मोह नहीं है वहाँ एक भी मनोरथ नहीं रह जाता अत: मोह की कथा अकथनीय और शक्ति अजेय है। पर पदार्थ में कर्तृत्व बुद्धि रखना अज्ञान है।

हे भव्यात्माओ! अभी आपके सामने विभिन्न दृष्टान्तों के माध्यम से आत्मा तथा अन्य पदार्थों में भिन्नता का विवेचन किया गया आपने जाना आत्मा भिन्न है और अन्य पदार्थ भिन्न हैं अन्य पदार्थों से आत्मा की भिन्नता का चिन्तन करके अपनी आत्मा का सामीप्य प्राप्त करके अपनी आत्मा का रस पान करके इस नर पर्याय को सफल बनाओ।

6. अशुचि भावना– ऐसा विचारना कि यह शरीर अत्यन्त अपवित्र और मलिन है। मांस, रक्त, अस्थि, चर्म आदि अपवित्र वस्तुओं का बना हुआ है। इसके संबंध से दूसरे अनेक पवित्र और सुगन्धित पदार्थ भी बड़े अपवित्र और घिनौने हो जाते हैं इस कारण यह शरीर ममत्व करने योग्य नहीं है। केवल विचार मात्र से भावना नहीं होगी। शरीर की अशुचिता पर विचार करने से यदि परिणामों में वैराग्य भाव प्रकट होता है तो भावना सत्यार्थ कहीं जाती है अन्यथा नहीं। वैराग्य की दृढ़ता को लिए हुए बार-बार ऐसा चिन्तन करना अशुचि भावना है।

सयलकुहियाण पिंडं किमि-कुल-कलियं अउव्व दुग्गंधं।
मलमुत्ताण य गेहं देहं जाणेहि असुइमयं।।

–कार्तिकेयानुप्रेक्षा, 83

इस शरीर को अपवित्र द्रव्यों से बना हुआ जानो क्योंकि यह शरीर समस्त बुरी वस्तुओं का समूह है। उदर में उत्पन्न होने वाले दो इन्द्रिय लट्, जूँ तथा निगोदिया जीवों के समूह से भरा है। अत्यन्त दुर्गन्ध मय है तथा मल और मूत्र का घर है। श्री भगवती आराधना में गाथा 1008 से शरीर की उत्पत्ति वगैरह इस प्रकार से बतलाई है– गर्भ में दस दिन वीर्य कलल अवस्था में रहता है अर्थात् गले हुए ताँबे और चाँदी को परस्पर में मिलाने से उन दोनों की जो अवस्था होती है वैसी ही अवस्था माता के रज और पिता के वीर्य के मिलने से होती है उसे ही कलल अवस्था कहते हैं। उसके पश्चात् दस दिन तक वह काला रहता है उसके पश्चात् दस दिन तक स्थिर रहता है इस प्रकार प्रथम मास में रज और वीर्य के मिलने से ये तीन अवस्थायें होती है। दूसरे मास में बुलबुल की तरह रहता है तीसरे मास में कड़ा हो जाता है चौथे मास में मांस का पिण्ड हो जाता है। पाँचवे मास में हाथ-पैर और सिर के स्थान में पाँच अंकुर फूटते हैं छठे मास में अंग और उपांग बन जाते हैं सातवें मास में चमड़ा, रोम और नाखून बन जाते हैं आठवें मास में बच्चा पेट में घूमने लगता है नवें अथवा दसवें मास में बच्चा बाहर आ जाता है। शरीर के अवयव इस प्रकार हैं–इस शरीर में 300 हड्डियाँ हैं। वे सभी मज्जा नाम की धातु से भरी हुई हैं। तीन सौ ही सन्धियाँ है। नौ सौ आयु। सात सौ शिरायें हैं। पाँच सौ मांस पेशियाँ है। शिराओं के चार समूह हैं। रक्त से भरी 16 महाशिरायें हैं। शिराओं के छह मूल हैं पीठ और उदर की दो मांस रज्जू हैं। चर्म की सात परत हैं सात कालेयक अर्थात् मांस खण्ड है। अस्सी करोड़ रोम हैं। अमाशय में सोलह आँते हैं। सात दुर्गन्ध के आश्रय हैं। तीन स्थूणा है-वात पित्त और कफ। एक सौ सात मर्म स्थान हैं नौ मलद्वार हैं, जिनसे सर्वथा मल बहता रहता है, एक अंजली प्रमाण मस्तक है। एक अंजली प्रमाण मेद है एक अंजली प्रमाण ओज है एक अंजली प्रमाण वीर्य है ये अंजलियाँ अपनी-अपनी ही लेनी चाहिए। तीन अंजली प्रमाण वसा है, तीन, अंजली प्रमाण पित्त है। 8 सेर रुधिर है। 16 सेर मूत्र है चौबीस सेर विष्टा है बीस नख हैं, 32 दांत हैं। यह शरीर कृमि, लट तथा निगोदिया जीवों से भरा हुआ है तथा रस, रुधिर, माँस, मेद, हड्डी मज्जा और वीर्य इन सात धातुओं से बना है अतः यह शरीर गन्दगी का घर है।

घृणित वस्तु संयोग से हुई काय तैयार।
अशुचि वस्तु से ही बढ़ी माता गर्भगार।।
उत्तम सुन्दर सरस भी होय भले आहार।
जाकर अन्दर काय के अशुचि होत तैयार।।
नेत्रादिक नव द्वार से झरता मैल हमेशा।
निर्मल यह नहिं बन सके करिये यत्न अशेष।।
हाड़ मांस का पींजरा, ढका चामड़ी माय।
भरी उसह दुर्गन्ध से महा घृणित यह काय।।

–शिवलाल

ये मनुष्य की काया अर्थात् जो शरीर बना है वह अत्यन्त ही घृणित वस्तुओं से बनकर तैयार हुआ है जिसे छूने से भी घृणा उत्पन्न होती है। ऐसी-ऐसी वस्तुओं से यह शरीर माता के गर्भ में बढ़ता है अर्थात् विकसित होता है जो वस्तु बाहर से देखने में सुन्दर जान पड़ती है जो भोजन बाहर से देखने में स्वादिष्ट अच्छा दिखता है वह शरीर के अन्दर जाते ही अपवित्र तथा न छूने लायक हो जाता है इस शरीर में जो नौ मल द्वार बने हैं उनसे हमेशा ही मल का आस्रव होता रहता है इस शरीर को चाहे कितना भी स्वच्छ बना लो चन्दन आदि का लेप कर लो तो भी यह शरीर पवित्र नहीं हो सकता इसमें अत्यन्त दुर्गन्ध भरी है यह शरीर अत्यन्त ही घृणित वस्तुओं से बना है और न छूने योग्य है।

जिसके श्रृंगारों में मेरा यह महंगा जीवन घुल जाता।
अत्यन्त अशुचि जड़ काया से इस चेतन का कैसा नाता॥

(जुगलकिशोर युगल)

शरीर की अपवित्रता का वर्णन किया गया है कि शरीर कितना अपवित्र है जिसे छूने मात्र से ही अपवित्र हो जाते हैं किन्तु अज्ञानी लोग उसे तरह-तरह से सजाते हैं सवांरते है सुगन्धित करते हैं उनका सारा जीवन इस अपवित्र काया को सजाने सवांरने में ही निकल जाता है यह शरीर तो जड़ है। इस अपवित्र जड़ शरीर से भला चेतन का अर्थात् आत्मा का कैसे संबंध हो सकता है अर्थात् कभी भी संबंध नहीं हो सकता है आत्मा शुद्ध है तथा यह शरीर अपवित्र है इसलिए इनका आपस में संबंध नहीं हो सकता।

एक राजा का लड़का किसी स्त्री का रूपदेख कर मोहित हो गया उसने स्त्री के पास दूती को भेजा कि राजा का लड़का तुमसे मिलना चाहता है। वह महिला बड़ी समझदार व शीलवान थी उसने विचार किया कि राजा का लड़का रूप पर मोहित हो रहा है। मैं उसे शरीर का असली रूप बना कर दिखाऊँगी तब उसे सब समझ आ जाएगा। उसने दूती को कहा कि कह देना कि 15 दिन बाद पास आना। राजा का लड़का 15 दिन बाद आया इस बीच उस महिला ने रोज थोड़ा खून निकाल कर घड़ा भर दिया। राजा का लड़का बोला कि वह रूप कहाँ चला गया तब महिला बोली कि घड़े में है घड़ा लाकर रख दिया। मक्खी भिन भिना रही थी दुर्गन्ध आ रही थी। तब राजा का लड़का बोला क्या इस मलिन शरीर को देखकर ही मैं मोहित हो रहा था उसे वैराग्य आ जाता है और दीक्षा धारण कर लेता है। इसलिए भाई तुम भी इस अशुचि शरीर पर विचार करो और कल्याण मार्ग पर लग जाओ यह है अशुचि भावना।

(श्री दौलतराम जी कृत)

पल रुधिर राधमल थैली, कीकस वसादितैं मैली।
नव द्वार बहें घिन कारी, असि देह करे किमि यारी॥

यही शरीर मांस, खून, पीव और विष्टा की थैली है तथा हाड़ चर्बी आदि से मैला है इसमें से घृणा पैदा करने वाले नौ दरवाजों द्वारा मल निरन्तर झरता रहता है ऐसे घृणास्पद शरीर से प्रेम करना उचित नहीं है ऐसा विचार करना छठवीं अशुचि भावना है।

तू नित पोखे यह सूखे ज्यों धोवै त्यों मैली।
निशदिन करे उपाय देह का, रोग दशा फैली।।
मात-पिता रज वीर्य मिलकर, बनी देह तेरी।
माँस हाड नस लहू राध की प्रकट व्याधि धेरी।।
काना पौंडा पडा हाथ यह चूसे तो रोवै।
फले अनन्त जु धर्म ध्यान की भूमि विषै बोवै।।
केशर चन्दन पुष्प सुगन्धित वस्तु देख सारी।
देह परसते होय अपावन, निशदिन मल जारी।।

यह शरीर महा अशुचि है जितना भी पुष्ट करोगे उतना ही यह घटता रहेगा जितना सफाई करोगे उतना ही मैला होता रहेगा। माता के रज और पिता के वीर्य से यह देह बनी है। मांस, हड्डी, खून और राध इसमें भरे हैं मल-मूत्र भी हर समय बहता है इस दुर्गन्ध मयी शरीर पर कितना भी इत्र फुलेल लगाये या इसे सुन्दर वस्त्र पहनावें वह भी सब गन्दा कर देता है ऐसे दुर्गन्ध मयी शरीर से कहाँ तेरा संबंध है इसे अशुचि विचार कर अर्थात् चिंतन कर अपनी आत्मा को पहचानो। अरे किस के पीछे व्याकुल बनता है क्या यह दुर्गन्धित घिनौनी वस्तु ही अच्छी लगी इन सबमें से। अरे प्रभो अपनी आत्मा को भूल गया। इतना गिर गया। तनिक तो लज्जा कर कहाँ तो तू तीन लोक का धनी अधिपति और कहां यह सुन्दर और स्वच्छ शरीर में जिसमें विष्ठा भरी है। कहीं से भी जरा सी चर्बी उतार कर तो देख मक्खियां नौंच-2 कर खा जायेगी। जिस शरीर को सुन्दर बनाने में लगे हुए हो यह तो स्वादिष्ट मिठाई मेवे और फल सभी को विष्ठा बना देता है। इस अत्यन्त घिनावनी व अशुचि देह के साथ दोस्ती जोड़कर इसकी रक्षा में अपना सर्वस्य लुटा रहा है आश्चर्य है।

स्वभावतोऽशुचिकाये रत्नत्रयपवित्रिते।
निर्जुगुप्सागुणप्रीतिर्मता निर्विचिकित्सता।।

यह शरीर मलमूत्र आदि अपवित्र वस्तुओं का पिटारा है किन्तु इसमें सम्यग्दर्शन, ज्ञान चारित्र की प्राप्ति हो जाये तो पवित्र हो जाता है। इसलिए स्वयं या रोगादिक से हुई अपवित्रता की ओर ध्यान न देकर केवल यह मनुष्य शरीर ही मोक्ष का साधक है। अन्य देवादिक शरीर नहीं। इस प्रकार मोक्ष साधक रत्नत्रय आदि सद्गुणों में प्रेम करना निर्विचिकित्सा अंग कहलाता है।

सात कुधातु भरी मलमूत्र चर्म लपेटी सो है।
अनतरदेखत या सम जगमें अवर अपावन को है॥
नव मलद्वार स्त्रवैं निशि वासर नाम लिये घिन आवे।
व्याधि उपाधि अनेक जहाँ-वहाँ कौन सुधि सुखपावें॥
पोषत तो दुख दोष करे अति सोषत दुख उपजावें।
दुर्जन देह स्वभाव बराबर मूर्ख प्रीति बढ़ावे॥
राचन जो स्वरूप न याकों विरचन जोग सही है।
यह तन पाये महा तप कीजे यामें सार यही हैं॥

आदमी का जिस्म क्या है जिसे रौदा है जहाँ।
एक मिट्टी की इमारत एक मिट्टी का मकां॥
गारा इसमें खून है अरु ईंट इसमें हड्डियाँ।
चन्द सासों का खड़ा है यह ख्याली नूर सा॥
मौत की पुर जोर आँधी इससे जब टकरायेगी।
दम के दम में यह इमारत टूट कर गिर जायेगी॥
दिपै चाम चादर मढ़ी हाड़ पींजरा देह।
भीतर या सम जगत में और नहीं घिन गेह ॥

आत्मा निर्मल है इसका स्वभाव परम पवित्र है, क्रोध मान माया लोभ राग-द्वेष चिन्ता भय खेद आदि 14 अन्तरंग तथा स्त्री, पुत्र, दास-दासी धन सम्पत्ति आदि दस प्रकार के बहिरंग परिग्रहों से शुद्ध है। शरीर महाकालीन है। इसका स्वभाव ही अपवित्र है। अनादिकाल से अनेक बार शरीर को बहुत धोया परन्तु कोयले की तरह धोने से उसकी कालिमा नष्ट नहीं हो जाती है। यदि मैंने अपनी आत्मा को कषायों और परिग्रह से रहित होकर शुद्ध कर लिया होता तो कर्म रूपी मल को दूर करके हमेशा के लिए शुद्ध चिद् रूप हो जाता।

जिन्होंने अपनी आत्मा को सांसारिक पदार्थों को मोहममता से रहित होकर शुद्ध कर लिया है वे अजर-अमर हो गये। मोक्ष प्राप्त कर लिया आवागमन के फन्दे से मुक्त हो गये। यदि मैं भी पर पदार्थों की लालसा छोड़ दूँ तो आठों कर्म नष्ट होकर सहज से अविनाशक सुखों के स्थान मोक्ष को अवश्य प्राप्त कर सकते हैं।

बन्धुओ, इस अशुचि भावना में शरीर को अपवित्रता की चर्चा की गई है। इस शरीर को कितना ही धोले यह फिर भी अपवित्र ही रहता है यह इतना अपवित्र होता है कि इसके सम्पर्क में आकर दूसरी पवित्र वस्तु भी मलिन हो जाती है आत्मा मूलतः शुद्ध, पवित्र होती है परन्तु इस

शरीर के सम्पर्क में आकर मलिन हो गई जिसके कारण संसार के चक्कर लगा रही है और जन्म-मरण रूपी दुखों से दुखित हो रही है। इसी अशुचि शरीर में आत्मा शुद्ध की जा सकती है। पहले इस शरीर में रत्नत्रय का बीजारोपण करके इसको पवित्र करते हैं क्योंकि रत्नत्रय द्वारा आत्मा शुद्ध होकर अपने में स्थिर हो जाती है। इस प्रकार अपनी आत्मा को शुद्ध बना कर अपना कल्याण करें और इस नर-पर्याय को सफल बनावें।

7. आस्रव भावना– यह विचारना कि कर्मों के आस्रव के कारण ही ये जीव चतुर्गति रूप संसार में परिभ्रमण करता है, नाना प्रकार के दु:ख भोगता है, आस्रव से कर्मबंध होता है यही संसार का मूल कारण है। आस्रव दु:खदाई है, ऐसा जानकर आस्रव के कारण मिथ्यात्व, अविरति, कषाय और योग है इनका विचार करके उनसे बचने के उपाय करने का चिन्तन करना और अपने परम वीतराग भावमें तल्लीन होना आस्रव भावना है।

मण-वयण-काय-जोया जीवे-पएसाण फंदण-विसेसा।
मोहोदएण जुत्ता विजुदा वि य आसवा होंति॥

–कार्तिकेयानुप्रेक्षा, 88

आस्रवानुप्रेक्षा को आस्रव भावना भी कहते हैं। जीव के प्रदेशों के हलन-चलन को योग कहते हैं। ये योग मोहनीय कर्म के उदय से युक्त भी रहते हैं और वियुक्त भी रहते हैं। इन योगों को ही आस्रव कहते हैं। आस्रव नाम आने का है और शरीर नामकर्म के उदय से मन, वचन, काय से युक्त जीव की जो शक्ति के आगमन में कारण है उसे योग कहते हैं। अत: योग आस्रव का कारण है योग के निमित्त से ही कर्मों का आस्रव होता है इसलिए योग को ही आस्रव कहा गया है। योग तीन है- मनोयोग, वचन योग और काय योग। मनोवर्गणा के निमित्त से आत्मा के प्रदेशों में जो हलन-चलन होता है उसे मनोयोग कहते हैं। वचन वर्गणा के निमित्त से आत्मा के प्रदेशों में जा हलन-चलन होता है उसे वचनयोग कहते हैं और कायवर्गणा के निमित्त से आत्मा के प्रदेशों में जो परिस्पंदन होता है उसे काययोग कहते हैं। मनोयोग के चार भेद सत्य मनोयोग, असत्य मनोयोग, उभय मनोयोग और अनुभय मनोयोग। वचनयोग के भी चार भेद है सत्यवचन योग, असत्यवचनयोग, उभय वचनयोग और अनुभय वचनयोग। काययोग के सात भेद है औदारिक काययोग, औदारिक मिश्रकाययोग, वैक्रियिक काययोग, वैक्रियिक मिश्रकाययोग, आहारक काययोग, आहारक मिश्रकाययोग, कार्माण काययोग। योग तेरहवें गुणस्थान तक होता है और मोहनीय कर्म का उदय दसवें गुणस्थान तक होता है अत: दसवें गुणस्थान तक योग मोहनीय कर्म के उदय से सहित होता है। किन्तु उसके आगे ग्यारहवें, बारहवें और तेरहवें गुणस्थान में जो योग रहता है वह मोहनीय कर्म के उदय से रहित होता है।

आचार्य कुन्दकुन्द देव ने समयसार में आस्रव का स्वरूप बताते हुए कहा है कि–

मिच्छतं अविरमणं कसायजोगा य सण्णसण्णा दु।
बहुविहभेया जीवे तस्सेव अणण्णपरिणामा॥164
णाणावरणादीयस्स ते दु कम्मस्स कारणं होंति।
तेसिंपि होदि जीवो य रागदोसादि भावकरो॥165
मिथ्यात्व अविरत अरुकषायें, योग संज्ञ असंज्ञ हैं।
ये विविध भेद जु जीवमें, जीव के अनन्य हि भाव हैं॥
अरु वे हि ज्ञानावरन आदिक, कर्म के कारण बनैं।
उनका कि कारण जीव बने, जो राग द्वेषादिक करैं॥

मिथ्यात्व, अविरत, कषाय और योग-यह आस्रव संज्ञ (चेतन के लिए भी हैं) और असंज्ञ (पुद्गल के विकार) भी हैं। विविध भेद वाले संज्ञ आस्रव जो कि जीव में उत्पन्न होते हैं वे जीव के ही अनन्य परिणाम हैं और असंज्ञ आस्रव ज्ञानावरण आदि कर्म के कारण (निमित्त) होते हैं और उनका भी (असंज्ञ आस्रवों के भी कर्म बंध का निमित्त होने में) राग-द्वेषादि भाव करने वाला जीव कारण (निमित्त) होता है।

आचार्य कहते हैं कि ज्ञानावरणादि कर्मों के आस्रव का (आगमन का) निमित्त कारण तो मिथ्यात्वादि कर्म के उदय रूप पुद्गल परिणाम हैं इसलिए वे वास्तव में आस्रव हैं और उनके कर्मास्रव के निमित्त भूत होने का निमित्त जीव के राग द्वेष मोह रूप (अज्ञान मय) परिणाम हैं इसलिए राग-द्वेष मोह ही आस्रव हैं। राग-द्वेष मोह जीव की अज्ञान-अवस्था में होते हैं। मिथ्यात्व सहित ज्ञान ही अज्ञान कहलाता है इसलिए मिथ्यादृष्टि के ही राग-द्वेष मोह रूप आस्रव होते हैं।

मन वचतन के शुभ अशुभ, योगों से जी जोय।
गहे शुभाशुभ कर्म को, आश्रव जानो सोय॥
एकेन्द्रिय आधीन हो, मृग खोते निज गात।
पंचेन्द्रिय आधीन जो फिर उनकी क्या बात॥

– शिव लाल

मन वचन काय के हिलने डुलने को योग कहते हैं। इसी के द्वारा आस्रव होता है। आस्रव कर्मों के आने को कहते हैं यह कर्म शुभ भी हो सकते हैं और अशुभ भी हो सकते हैं। शुभ कर्मों के आस्रव से पुण्य बन्ध बंधता है और अशुभ कर्मों के आस्रव से पाप बंध होता है जिस प्रकार हिरन, एकेन्द्रिय अर्थात् कर्णेन्द्रिय के अधीन होकर अपने शरीर को गँवा देता है और जो इन पाँचों इन्द्रियों के अधीन हो जाते हैं उनकी तो बात ही क्या है?

दिन रात शुभाशुभ भावों से मेरा व्यापार चला करता।
मानस वाणी और काया से आस्रव का द्वार खुला रहता।।

जुगलकिशोर युगल

इसमें ग्रन्थकार कहते हैं कि मन, वचन और काय के योग से जो आस्रव होता है अर्थात् जो कर्म आते हैं वह कर्म शुभ भी हो सकते हैं और अशुभ भी। इन्हीं शुभ और अशुभ कर्मों के आस्रव से जीव सुख और दु:ख भोगता है। अत: कर्मों के आने को आस्रव कहते हैं।

जो योगन की चपलाई, तातै है आश्रव भाई।
आश्रव दुखकार घनेरे, बुधिवंत तिन्है निरवेरे।।

दौलतराम

मन, वचन और काय की क्रिया के द्वारा आत्मा में जो चपलता होती है उसी से नये कर्मों का आना होता है उसे ही आस्रव कहते हैं। यह आस्रव भाव ही आत्मा के लिए दु:ख देने वाला है। अत: ज्ञानी जन इस आस्रव भाव से बचते हैं ऐसा विचार करना सातवीं आस्रव भावना है।

मन वचन काया चलत ही आते कर्म अपार।
इनको चेतन रोक लो, तब होगा कल्याण।।
ज्यों सर-जल आवत मोरी त्यों, आस्रव कर्मन को।
दर्वित जीव प्रदेश गहै जब पुद्गल भरमन को।।
भावित आस्रव भाव शुभाशुभ, निशदिन चेतन को।
पाप-पुण्य के दोनों करता, कारण बंधन को।।
पन-मिथ्यात योग-पन्द्रह, द्वादश अविरत जानो।
पंचरु बीस कषाय मिले, सब सत्तावन मानो।।
मोह भाव की ममता टारै, पर परणत खोते।
करै मोक्ष का यतन निराश्रव, ज्ञानी जन होते।।

जब शुभ योग चलता है तब शुभ आस्रव होता है जब अशुभ योग चलता है तब अशुभ आस्रव होता है शुभ आस्रव का दया, दान, पूजा आदि से तथा अशुभ आस्रव हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह आदि से होता है। आस्रव के दो भेद है- साम्परायिक आस्रव तथा ईर्या पथ आस्रव। साम्परायिक आस्रव कषाय सहित होता है। यह संसार भ्रमण का कारण है। जो पहले गुणस्थान से लेकर दसवें गुणस्थान तक रहता है। जैसे कोई प्राणी तेल लगा ले तो मिट्टी चिपक जायेगी। अगर तेल नहीं होगा तो मिट्टी नही चिपक सकती। इसी प्रकार जो आस्रव कषाय सहित

होता है वह नियम से बँधता है उसको ही साम्परायिक आस्रव कहते हैं। ईर्यापथ 14वाँ गुणस्थान में योग से रहित होता है। ईर्यापथ आस्रव में स्थिति अनुभाग बंध नहीं है इसलिए वह बंध को प्राप्त नहीं होता है।

साम्परायिक आस्रव के भेद–पाँच इन्द्रियाँ, चार कषाय, पाँच अव्रत और पच्चीस क्रियाएं। तीव्र भाव, मन्दभाव, ज्ञात भाव, अज्ञात भाव, अधिकरण और वीर्य। ये आस्रव की विशेषताएं हैं।

अधिकरण के भेद– जीव व अजीव के रूप में वें अधिकरण के भेद हैं।

जीव अधिकरण के भेद– समरम्भ, समारम्भ, आरम्भ, योग के भेद से तीन, कृत, कारित, अनुमोदना और कषाय के भेद से चार प्रकार का होता हुआ परस्पर मिलाने से कुल 108 भेद होते हैं।

अजीव अधिकरण के भेद– दो प्रकार निर्वर्तना, चार प्रकार निक्षेप दो प्रकार संयोग और तीन प्रकार निसर्ग इस प्रकार कुल 11 भेद होते हैं।

एक राजा अपने बेटे को राज्य सौंपकर दीक्षा धारण कर लिया। वह उग्र तपस्या करता रहा। एक दिन उस लड़के पर एक राजा ने चढ़ाई कर दी। उसी नगर के दो राजकुमार राजा से बने मुनि के दर्शन के लिए जा रहे थे। उन्होंने मुनि को देखकर कहा कि आप मुनि बन गये और आपके बेटे के राज्य पर किसी राजा ने आक्रमण कर दिया है। यह सुनकर मुनि को क्रोध आ गया कि यदि मैं घर होता तो देखता वह कैसे चढ़ाई करता। मेरे सामने कौन लड़ सकता था अब क्या करूँ ऐसे भाव मुनि के बन जाने से भृकुटि तन गई क्रोध से हाथ पाँव काँपने लगे। इतने में राजगृही के राजा श्रेणिक आ जाते हैं और देखते हैं कि मुनिराज तो तपस्वी हैं लेकिन क्रोध क्यों आ रहा है। इस बात का विकल्प बन जाता है तभी समवशरण में जाकर गौतम गणधर से मुनि के बारे में पूछते हैं। भगवान की वाणी खिरती है कि यदि मुनि इसी भाव में मरण कर गया तो नरक जायेगा। उसे जाकर संबोधो और खोटे भाव से हटा कर वीतराग भावों में लाओ। तभी राजा श्रेणिक जाकर मुनि महाराज को संबोधन करते हैं कि, हे स्वामी यह संसार असार है। इसमें कोई कभी न किसी का हुआ है न होगा आपका वेश भी महान् है। आप व्यर्थ ही लड़के के मोह में फंस रहे हैं। लड़का तो लड़का है यह शरीर भी कभी किसी का न हुआ ऐसा सुन मुनि महाराज के भाव वीतरागता में आ गये। पुन: राजा श्रेणिक समवशरण में पहुँच जाते हैं। तत्पश्चात् मुनि के भाव स्वर्ग व मोक्ष प्राप्ति के हो गये। भाई अशुभ आस्रव संसार का कारण है। वैसे तो शुभ-अशुभ दोनों ही आस्रव बंधन हैं। एक लोहे की बेड़ी है तो एक सोने की, मानने में अन्तर है। बंध दोनों ही हैं। दोनों आस्रवों को छोड़कर शुद्धोपयोग रक्खो तब संसार से छूट जाओगे।

मिठाई के बाबा

एक समय की बात है कि एक महिला ने व्रत् ले लिया कि तीन बाबाओं को भिक्षा देकर या खाना खिला कर ही भोजन करूँगी लेकिन पहले दिन कोई बाबा नहीं आये दूसरे और तीसरे दिन भी कोई बाबा भिक्षा हेतु नहीं आये। तब महिला विचार करने लगी कि बाजार से मिठाई के तीन बाबा खरीद लाऊँ। पहले उन्हें भोग लगा कर पूज कर भोजन कर लेंगे। वह बाजार से मिठाई के तीन बाबा खरीद लाई और सामने कार्निश पर रख दिये। उधर बच्चे स्कूल से पढ़कर लौटे तो कार्निस पर तीन मिठाई के बाबा देखे, उधर तीन बाबा भिक्षा हेतु दरवाजे पर आये। बच्चे एक मिठाई के बाबा की ओर देखते हुए कह रह है कि बड़ा बाबा मैं खाऊँगा दूसरा बोला उससे छोटा में खाऊँगा तब माँ कह रही है कि मुझे भी भूख लगी है सबसे छोटा मैं खा लूँगी। ऐसा सुनकर वे तीनों बाबा घबराये कि आज तो तीनों को खाया जाने वाला है यह सोचकर वे वहाँ से भाग लिये। कुछ आहट होने पर महिला की दृष्टि बाबाओं पर पड़ी तो वह महिला जोर से भागी और कह रही थी कि बाबाजी मैं तो तीन दिन से भूखी हूँ जरा ठहरो। इतना सुनते ही वे तीनों बाबा और जोर से भागने लगे। यद्यपि वह महिला कह रही थी कि मैं तीन दिन से भूखी हूँ जरा ठहरो, मैंने व्रत ले रखा है। लेकिन वहाँ तो बाबा ने शुरू की बात सुनी ही नहीं और भाग पड़े। तात्पर्य है कि भाव खाने का नहीं था लेकिन खिलौनों को खाने के माध्यम से आस्रव हो रहा है। इसलिए जीव संकल्पित आकार भी नहीं बनाना चाहिए और न ही जीवों के आकार के खिलौने खरीदने चाहिए। एक ही चीज से कई आस्रव होते हैं। मुनि महाराज को आहार लेते देखकर हर्ष मानने से शुभ आस्रव हो जायेगा। बहुत से दान को देखकर ईर्ष्या करते हैं। उन्हें अशुभ आस्रव होता है। जैसे एक मार्ग पर एक बहुत ही सुन्दर स्त्री का शव पड़ा हुआ था वहाँ एक साधु घूमते हुए आये उन्होंने देखा कितना सुन्दर शरीर है इसने वैसे ही खो दिया अगर इस शरीर से तपस्या करती तो कल्याण कर जाती। ऐसे विचार साधु के बार-बार बन रहे हैं। वहीं पर एक भोगी प्राणी आता है वह देख कर सोचता है कि अगर यह जीवित होती तो इसे मैं भोगता। ऐसे विचार बार-बार भोगी के बन रहे हैं। उधर एक कुत्ता भी आ जाता है वह विचार कर रहा है कि अगर यह सब लोग हट जायें तो मैं खा लूँगा। तो भाई विचार करो कि शव तो एक ही है आस्रव सबको अलग-अलग हो रहा है। साधु के तो शुभ आस्रव हो रहा है। जब हम शुद्ध उपयोग में आयेगें तो शुभास्रव हो मुक्ति का कर्म बनेगा। इसलिए हे भव्यो! आस्रव भावना का बार-बार चिन्तन करना चाहिए।

एक सुनार के पास एक व्यक्ति कुण्डल बेचने आया सुनार ने कुण्डल खरीद लिए। सुनार उन कुण्डल के कंगन बनाता है। उसी समय उसकी दुकान पर तीन आदमी आये उन तीनों के

अलग-अलग भाव बने। पहला कुण्डल खरीदना चाहता था उसे कुण्डल तोड़ते हुए देखकर बड़ा दु:ख हुआ क्योंकि वह उसी अवस्था में कुण्डल खरीद लेता तो शायद बनवाई की कीमत व समय की बचत हो जाती। वे कुण्डल बिल्कुल नये थे। दूसरे व्यक्ति को कंगन अपेक्षित थे इसलिए वह कुण्डल को टूटते देख कर खुश हुआ क्योंकि सुनार कंगन बनाकर उसका मनोरथ पूर्ण कर रहा था। सोने की चाह वाला तीसरा व्यक्ति मध्यस्थ रहा क्योंकि तीनों अवस्थाओं में सोना विद्यमान था। उपर्युक्त दृष्टान्त से एक ही द्रव्य में अवस्था विशेष से भावों की स्थिति का पता चलता है तदनुरूप कर्मास्रव होता है।

शिकारी द्वारा लटकायी गई नलकी पर बैठा तोता नलकी घूम जाने पर उतरने या स्वयं चढ़ने लगता है। यह जानकर कि अरे मैं तो नीचे गिरा नलकी को दृढ़ता से पकड़ लेता है। वह उस पर लटका रहता है परन्तु विचार करता है कि नलकी ने मुझे पकड़ लिया है पर फड़फडाता है उड़ने के लिए। पंख और पाँवों को न छोड़े तो कैसे उड़े? बस नलकी ने पकड़ लिया है हाय कोई छुडाओ बस यही दशा हमारी है। स्वयं दासता स्वीकार करके हम कहते हैं कि हाय मुझको दासता से छुडाओ।

बन्दर की मूर्खता

शिकारी के द्वारा पृथ्वी में आधी गाड़ी हुई चनों से भरी हँडिया में चनों के लालच वश बन्दर ने हाथ डाल दिये। स्वयं चनों की मुट्ठी भरे और बन्द मुट्ठी हँडिया के मुंह में से न निकल सके तो पुकार करे की हँडिया ने मुझे पकड़ लिया है कोई छुडाओ, कोई छुडाओ। यदि उस समय उसको यह कहा जाये कि मुट्ठी खोल, मुक्त है परन्तु वह मुट्ठी खोलने को कभी तैयार नहीं भले ही शिकारी उसे पकड़ ले। किसने पकड़ा उसे हँडियाँ ने या शिकारी ने, हँडिया का क्या दोष, बन्दर मुट्ठी खोलकर भाग जाये हँडिया पड़ी रहेगी। वह उसे पकड़ने पेड़ पर नहीं चढ़ेगी। बन्दर पर मैं हंस रहा हूँ पर अपनी मूर्खता हमें नहीं दिखती। शरीर, धन व कुटुम्ब आदि की सेवा स्वयं स्वीकार करके अन्य को कोस रहा हूँ।

हाय इन कर्मों ने पकड़ा है निष्कारण लोग यह कह रहे हैं, अरे किसने पकड़ा है तुझे, विचार तो सही, सेवा छोड़, कौन रोकता है तुझे। बेचारा जड़ कर्म तो निरपराध है, यह कब पकड़ते हैं तू स्वयं ही पकड़ता है।

एक रात्रि में महात्मा बुद्ध साधु गोष्ठी में बोल रहे थे। अनेक जटिल से जटिल विषय सामने आये और सुलझते गये। समय जाता प्रतीत न हुआ। सारी सभा शान्त थी केवल बुद्ध की वाणी है और नीरवता का संगीत भी। जब आधी रात हुई तो बुद्ध ने आदेश दिया कि जाओ अपना-अपना काम करो सब भिक्षु उठे और उन्होंने सोचा कि बुद्ध ने कहा है कि जाओ शक्ति

मार्ग धारण करो, ध्यान का समय है परन्तु दैव योग से वहाँ एक चोर और वैश्या भी आये थे। उनका भी ध्यान भंग हुआ चोर ने सोचा कि बुद्ध ने कहा है कि जाओ अपना चोरी का काम करो। तुम्हारी चोरी का समय हो गया है और वेश्या ने सोचा कि जाओ तुम्हारा प्रेमी आया है। कितनी विचित्र बात है कि जाओ अपना काम करो। इस एक वाक्य से तीन विभिन्न प्रतिक्रियाएँ हुई। चोर और वेश्या ने चोरी और व्यभिचार के काम को समझा, जो कि महात्मा बुद्ध का अभिप्राय नहीं था।

वस्तुत: चरणानुयोग ढाल के समान है, द्रव्यानुयोग तलवार के समान है। जैसे जीव के भाव होते हैं वैसे ही आस्रव का बंध होता है। सारांश यह है कि शरीरादि संयोगी पदार्थों में एकत्व, ममत्व एवं इन्हीं के लक्ष्य से आत्मा में उत्पन्न होने वाली रागद्वेष रूप विकल्प तरंगें भावास्रव हैं। इन्हीं भावास्रवों के निमित्त से कार्माण वर्गणाओं का कर्म रूप परिणमित होना द्रव्यास्रव है। भावास्रव व द्रव्यास्रव के अतिरिक्त मिथ्यात्व, अविरत, प्रमाद, कषाय और योग इन पाँच भेदों में भी आस्रव विभाजित किया जाता है। ये पाँचों भाव भी भाव व द्रव्य रूप से दो प्रकार के हैं।

शरीरादि संयोगों के समान आस्रव भाव भी अनित्य, अशरण, अशुचि, आत्म स्वभाव से भिन्न चतुर्गति में संसरण हेतु दु:ख रूप, दु:ख के हेतु जड़ हैं। इनसे भिन्न ज्ञानादि अनन्त गुणों का अखण्ड पिण्ड भगवान आत्मा नित्य है, परम शरण भूत है, संसार परिभ्रमण से रहित, परम पवित्र, आनन्द का कन्द है और अतीन्द्रियानन्द की प्राप्ति का हेतु है।

समयसार की गाथा 72 व 74 में आचार्य कुन्दकुन्द देव तथा इनकी टीका आत्मख्याति के 2 श्लोक 47 में आचार्य अमृतचन्द स्वामी ने जहाँ एक ओर आस्रव भावों को अध्रुव, अनित्य अशरण, अशुचि, जड़ दुख रूप एवं दुख का कारण बताया है कि दूसरी ओर भगवान आत्मा को ध्रुव नित्य, परम शरण भूत, परम पवित्र, चेतन, सुख स्वरूप एवं सुख का कारण बताया है।

मोह-राग-द्वेष रूप भाव आस्रव तत्व हैं और उनके संदर्भ में निरन्तर दिये जाने वाला चिन्तन आस्रव भावना है। ध्यान रहे की तत्त्वार्थसूत्र में आचार्य उमास्वामी ने बारह भावनाओं का वर्णन संवर तत्त्व में किया है और वहाँ अनुप्रेक्षाओं को संवर के कारणों में गिनाया है। यह कथन इस प्रकार किया गया है-

आस्रव के निरोध को संवर कहते हैं। यह संवर तीन गुप्ति, पाँच समिति, दश धर्म, बारह भावना, बाइस परिषह जय और पाँच प्रकार के चरित्र से होता है।

इस प्रकार यह ज्ञात होता है कि अनित्यादि छ: भावनाओं के चिन्तन की विषय वस्तु शरीरादि संयोग है तथा आस्रव भावना के चिन्तन की विषय वस्तु संयोगी भाव है।

मात्र आस्रव के कारणों, भेद-प्रभेदों का विचार करना आस्रव भावना नहीं है आस्रव भावना में आस्रवों के स्वरूप के साथ-साथ जिस आत्मा की पर्याय में ये मोह, राग-द्वेष रूप आस्रव भाव उत्पन्न होते हैं, फिर भी वह आत्मा इन मोह राग-द्वेष भावों से भिन्न है परम पवित्र है, ध्रुव है उस आत्मा का भी विचार होता है चिन्तन होता है; उसके साथ-साथ आस्रव भावों का चिन्तन भी इस प्रकार होता है कि जिससे आस्रव भावना का उद्देश्य, आस्रवों का निरोध, आस्रव भाव का अभाव करना है उन्हें जड़ मूल से उखाड फेंकना है यह फलीभूत हो सके। इसके लिए यह आवश्यक है कि चाहे पापास्रव हो या पुण्यास्रव हो उन्हें सम्पूर्ण हेय माने, शुभ से शुभ आस्रव के प्रति उपादेय बुद्धि, मिथ्यात्व नामक अशुभतम आस्रव भाव है, शुभ भावों में धर्म मानने वाले अज्ञानियों को यह बात कठिन लगती है, अटपटी लगती है। परन्तु ज्ञानी पुरुष तो शुभ भावों को भी मलिन ही मानते हैं। राग की चाहे जिनती भेदता का शुभ परिणाम क्यों न हो तो भी मोक्षार्थी के लिए वह मैल है, शास्त्र में पुण्य भाव को किसी जगह व्यवहार से अमृतरूप भी कहा है तथापि वह वास्तव में जहर ही है।

सारांश यह है कि आस्रव रहित शुद्ध आत्मा का चिन्तन करना ही आस्रव भावना है जिससे आत्मा का कल्याण होगा क्योंकि आस्रव से संसार है और आस्रव का रोकना संसार को रोकना है अर्थात् मोक्ष पद को पाना है।

8. संवर भावना– कर्मों के आस्रव को रोकने का नाम संवर है। संवर के कारण पंच महाव्रत, पंच समिति, तीन गुप्ति, दश लक्षण धर्म, बारह भावना, बाईस परीषह जय और पाँच प्रकार का चारित्र हैं। इनके स्वरूप का बार-बार चिन्तन करना संवर भावना है। जो जीव पाँचों इन्द्रियों तथा मन को वश में कर विषय कषायों से पराङ्मुख हो, राग-द्वेषादि रहित अपने ज्ञान-स्वभाव आत्मा में प्रवृत्ति करता है उसके संवर भावना होती है।

संवर भावना

सम्मत्तं देस-वयं महव्वयं तह जओ कसायाणं।
एदे संवर-णामा जोगा भावो तहाँ चेव।।

–कार्तिकेयानुप्रेक्षा, 95

सम्यक्त्व, देशव्रत, महाव्रत, कषायों को जीतना और योगों का अभाव ये सब संवर के नाम हैं आस्रव के रोकने को संवर कहते हैं। आस्रवानुप्रेक्षा में मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग को आस्रव कहा था। चौथे गुणस्थान में सम्यक्त्व होने पर मिथ्यात्व का निरोध हो जाता है, पाँचवें गुणस्थान में पाँच अणुव्रत, तीव गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत इस प्रकार बारह व्रत रूप देशसंयम के होने पर अविरति का एक देश से अभाव हो जाता है, छठे गुणस्थान में अहिंसादि पाँच महाव्रतों के होने पर अविरति का पूर्ण अभाव हो जाता है, सातवें गुणस्थान में अप्रमादी होने

के कारण प्रमाद का अभाव हो जाता है। ग्यारहवें गुणस्थान में 25 कषायों का उदय होने से कषायों का संवर हो जाता है और चौदहवें गुणस्थान में योगों का निरोध होने से योग का अभाव हो जाता है। अत: मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग के विरोधी होने के कारण सम्यक्त्व, देशव्रत, महाव्रत, कषायजय और योगाभाव संवर के कारण हैं। इसीलिए इन्हें संवर कहा है।

(श्री शिवलाल जी कृत)

जिस व्रत के स्वीकार से, आस्रव की सब आय।
रुक जाती तत्काल ही वह संवर कहलाय॥
डूब वटोही जाय वे, छिद्र तरी चढ़ जाय।
बन्द करे जब छिद्र को, सुख से वे तरि जाय॥
आश्रव जिस जिस कर्म की, होती छिन छिन आय।
जो रोके उन सबन को, संवर द्रव्य कहाय॥
भव हेतुक सब कर्म का, मन से सच्चा त्याग।
भाव रूप संवर वही, अस मुनियों की बाग॥

जिस व्रत के धारण करने से आस्रव नहीं होता तथा शीघ्र ही रुक जाता है वह संवर कहलाता है। आस्रव का न होना अथवा आस्रव का रोकना अर्थात् कर्मों का नहीं आने देना संवर है। जैसे नावमें छेद हो जाने से पानी आने लगता है अगर उस नाव के छेद को बन्द कर दिया जाय तो उसमें पानी आना बन्द हो जायेगा उसी प्रकार जिन परिणामों से कर्म आते हैं वे न होने पावें और उनकी जगह में उनसे उल्टे परिणाम हों तो कर्मों का आना बन्द हो जायेगा यही संवर है जिन कर्मों से आस्रव नहीं होता है अर्थात् जिन परिणामों से आस्रव नहीं होता, पुद्गल के परमाणु कर्मरूप होकर आत्मा से नहीं मिलते उसको द्रव्य संवर कहते हैं और जिन परिणामों से आस्रव नहीं होता वह भावरूप संवर कहलाता है, यही मुनियों को होता है।

(श्री जुगलकिशोर युगल कृत)

शुभ और अशुभ की ज्वाला से झुलसा है मेरा अन्तस्तल।
शीतल समकित किरणें फूटे, संवर से जागे अन्तर्बल॥

जो शुभ दान पूजा आदि पुण्यकर्म तथा झूठ असत्य आदि पाप कर्म से दूर रहकर अपनी आत्मा के अनुभव में मन लगाता है इससे नये कर्मों का आना रुक जाता है इसी को संवर कहते हैं और इसी संवर से जीव का अन्तर्बल दृढ़ होता है उसकी शक्ति में वृद्धि होती है।

आचार्य अमृतचन्द स्वामी समयसार की टीका आत्मख्याति में संवर का विवेचन करते हुए लिखते हैं कि– **संपद्यते संवर एष साक्षात् शुद्धात्मतत्वस्य किलोपलंभात्। स भेदविज्ञानत: एव तस्मात् तद्भेदविज्ञानमतीव भाव्यम्।।**

जब जीव आत्मा और कर्म को यथार्थतया भिन्न जानता है तब वह शुद्ध आत्मा का अनुभव करता है; शुद्ध आत्मा के अनुभव से आस्रव भाव रुकता है और अनुक्रम से सर्व प्रकार से संवर होता है। इसलिए भेदविज्ञान को अत्यन्त भाने का उपदेश किया है।

श्री दौलतराम

जिन पुण्य पाप नहिं कीना, आतम अनुभव चित्त दीना।
तिन ही विधि आवत रोके, संवर लहि सुख अवलोके।।

जो दान पूजादि पुण्यकर्म और झूठ व असत्य आदि पापकर्म इन दोनों से दूर रहकर अपनी आत्मा के अनुभव करने में मन लगाता है उसके नवीन कर्मों का आना रुक जाता है इसी का नाम संवर है जोकि आत्मा के लिए सुख देने वाला है ऐसा विचार करना संवर भावना है।

ज्यो मोरी में डाट लगावे, सब जल रुक जाता।
त्यों आस्रव को रोके संवर क्यों नहिं मन लाता।।
पंच महाव्रत समिति गुप्तिकर वचन काय मन को।
दश विधि धर्म परीषह बाइस बारह भावन को।।
यह सब भाव सतावन मिलकर आस्रव को खोते।
सुपन दशा से जागो चेतन कहाँ पड़े सोते।।
भाव शुभाशुभ रहित शुद्ध भावन संवर पावै।
डांट लगत यह नाव पड़ी मंझधार पार जावै।।

संवर कर्म रोकने को कहते हैं। जिस प्रकार किसी साहूकार के यहाँ प्रतिदिन मेहमान आते रहें और वह उनका बहुत स्वागत करता रहा तो उसकी सम्पत्ति घटती चली जायेगी। इसी प्रकार हम शान्ति के भण्डार हैं लेकिन शान्ति रूपी लक्ष्य को आस्रव रूपी अतिथि लूट रहे हैं। अगर तुम्हें अपनी शान्ति की सुरक्षा करनी है तो कर्म के आने को रोको। जब तुम कर्म रोकने में सफल हो जाओगे तो समझो संवर हो रहा है। जिस प्रकार कर्मों के आने के सत्तावन द्वार हैं इसी प्रकार कर्म को रोकने की सत्तावन डाट हैं सो वे सत्तावन डाट इस प्रकार हैं–पाँच महाव्रत, पाँच समिति, तीन गुप्ति, दस धर्म, बाइस परिषह, बारह भावना कुल 57 होते हैं। गृहस्थ अपने भावों के अनुसार संवर करता है। सम्यग्दर्शन होने के बाद अनन्तानुबंधी आदि का संवर करता है एक देश

अर्थात् अणुव्रती भी अपने भाव के अनुसार संवर करता है। मुनि महाव्रती हैं वह भी संवर करते हैं और अब देव गुरु की शरण में आया है तो कुछ लाभ उठा ले विकल्पों में ब्रेक लगा ले। सुबह का भूला यदि शाम को घर लौट आये तो भूलना न समझो निज वैभव का आस्रव करके उनका तिरस्कार कर दे।

जिस समय शत्रुघन व मधु का युद्ध हो रहा था वे एक दूसरे पर बाणों की बौछार कर रहे थे। मधु हाथी पर चढ़ा घायल हो गया उसे दुश्मन से लड़ते-लड़ते वैराग्य हो गया कि मेरे असली शत्रु क्रोध, मान, माया, लोभ हैं शत्रुघन नहीं, ऐसा विचार बनते ही वे हाथी से उतरे और दीक्षा धारण कर जंगल की ओर जाने लगे। ऐसा देख शत्रुघन ने भी उन्हें नमस्कार किया। इसलिए भाई अन्तरंग के शत्रु को मारो, जब तक भेद भाव रहेगा तब तक कल्याण नहीं हो सकता। कहा है–

अरि जिन महल मसान कंचन, काँच निन्दन थुति करण।
अर्घावतारण असि प्रहारण में, सदा समता धरण॥

स्वर्ण और मिट्टी समान

एक समय की बात है कि पति और पत्नि को एक साथ वैराग्य हो गया। दीक्षा लेने के लिए मुनि महाराज के पास जाते हैं। रास्ते में सोने की चीज देख कर वह पुरुष सोचने लगा कि मेरी स्त्री आ रही है कहीं उसके मन में लालच न आ जाये इसलिए इस पर मिट्टी डाल दूँ और उसने पैर से मिट्टी डाल दी। स्त्री भी पीछे से देख रही थी, कहती है कि पति देव घर पर वापस चलो अभी पूर्ण वैराग्य उत्पन्न नहीं हुआ तुमने मिट्टी पर मिट्टी डाल दी तब उसका पति बोला सोने पर मिट्टी डाली है तब वह स्त्री बोली कि जब तक सोने और मिट्टी में भेद रहेगा तक तक दीक्षा लेना व्यर्थ है। संवर तभी होता है जब समभाव होंगे। जब तक सोना व मिट्टी, महल और मसान, काँच और कंचन, रुपया और कागज में भेद भाव रहेगा तब तक संवर नहीं हो सकता संवर तो वीतराग भाव में हैं। मुनिराज तो महान होते है जो इनकी निन्दा करता है उसे नरक में जाना पड़ेगा। जो गुणगान करता है वह शुभ का बंध करता है।

पनघट पर पानी भरने वाली पनिहारिन आपस में बात करती हुई अपने शीश पर दो तीन घट रख कर चलती हैं। वे बातें करती हैं उत्तर देती है पर प्रतिपल उनका ध्यान इस बात पर केन्द्रित रहता है कि घट न गिर जाये, उन्हें सम्भालती रहती हैं, इसी प्रकार सम्यक्दृष्टि संसार में रहते हुए भी अपनी दृष्टि केवल निज आत्मा पर रखता है, उसकी संभाल में भूल नहीं करता।

नृत्य करने वाली नृत्यांगना रंगमंच पर थिरकती है नाना चेष्टाएं करती है पर संगीत तथा वाद्यों के स्वरों के साथ पैरों की लय व गति न बिगड़ जाये इसका पूरा ध्यान रखती है। जहाँ ताल

टूटता है उसके पैरों की क्रिया भी ताल टूटने का संकेत देती है। बेताल यह कभी नहीं होती। इसी प्रकार सम्यक्दृष्टि संसार में विविध चेष्टा रूप नृत्य करता है पर अपनी अन्तर आत्मा के संगीत की ध्वनि उसके भीतर गूँजती रहती है, उसे स्वप्न में भी नहीं भूलता।

जीवन का सत्य

समन्तभद्र स्वामी बड़े तार्किक आचार्य हुए हैं एक बार उन्हें भस्मक व्याधि का रोग हो गया कुछ उपाय न देख उन्होंने आचार्य महाराज के पास जाकर समाधि लेने की प्रार्थना की। आचार्य महाराज ने स्वीकृति नहीं दी बोले अभी समाधि मत लो तुमसे अभी जगत का कल्याण होगा। जाओ और किसी प्रकार अपनी क्षुधा निवृत्ति करो। वे गृहस्थ न बने और एक सुन्दर सन्यासी का रूप धर लिया। शिवकोटि राजा के यहां पहुँचे वहाँ उनके मन्दिर में प्रतिदिन प्रसाद से पुजारी बनकर अपनी क्षुधा शान्त करने लगे, राजा के यहाँ जब इसकी शिकायत पहुँची कि सारा भोग पुजारी खा जाता है। तब तत्काल ही राजा वहाँ आया और उसने कहा कि तुम इस मन्दिर के देव को नमस्कार करो या दण्ड के भागी बनो।

स्वामी जी ने कहा कि राजन् यह मस्तक ऐसा नहीं जो सब के सामने झुक जाये। राजा ने नमस्कार न करने पर कठोर दण्ड देने को कहा तब उसी समय स्वामी जी ने वृद्दृत्स्वयम्भूस्त्रोत रचकर चौबीस तीर्थंकरों का स्तवन किया। अष्टम तीर्थंकर का ज्योंही स्तवन किया त्योंही चन्द्रप्रभु की प्रतिमा प्रकट हुई जिसे देखते ही स्वामी जी का मस्तक अपने आप झुक गया इस प्रकार स्वयं रोग का निवारण किया।

आत्मा में अनन्त शक्ति है। लोग कहते हैं हम तो कुछ नहीं, कुछ नहीं, यह कहने पर तो कुछ नहीं हों। पूजन करते हो तो वह आत्मा की विशेष परिणति है, पुस्तक बाटते हो, उपवास, सामायिक प्रतिक्रमणदि करते हो। ये सब आत्मा की विशेष परिस्थितियाँ हैं।

द्रव्य सामान्य से एक रूप है विशेष से अनेक रूप है। विधि रूप भी है और निषेध रूप भी है, नित्य भी है, अनित्य भी है अब नित्य ही नित्य मान लो तो परिणमन के अभाव में अर्थ क्रिया न हो सकेगी। यही स्वयंभूस्तोत्र में वे लिखते हैं–

य एव नित्य-क्षणिकाऽऽदयो नया, मिथोऽनपेक्षाः स्व-पर प्रणाशिनः।
त एव तत्त्वं विमलस्य ते मुनेः, परस्परेक्षाः स्व-परोपकारिणः॥61

एक नय पदार्थ को नित्य ही मानता है और दूसरा उसे क्षणिक ही मानता है। ये नय यदि एक दूसरे की अपेक्षा न रखकर सर्वथा वस्तु तत्त्व का कथन करने वाले हैं तो निज और पर दोनों के नाश करने वाले बैरी हैं। इस प्रकार कुनय हैं और यदि वे ही नय एक दूसरे की अपेक्षा रखकर

कथन करने वाले हैं तो वे नियम से अपना और पर का भला करने वाले मित्र हैं। इसलिए वे सुनय संज्ञा से अभिहित हैं।

जैनधर्म में सर्वत्र एकान्त का निषेध है। इसलिए सुख शान्ति चाहने वालों को अपनी दृष्टि अनेकान्तमय बनाना चाहिए।

श्रद्धानन्द तपस्वी

बनारस में एक श्रद्धानन्द तपस्वी था। उसके रईसी ठाठ थे। एक बार एक राजा आया उसके ठाठ देखकर बड़ा विस्मित हुआ पूछने लगा महाराज परिव्राजक की क्या परिभाषा है वह समझ गया और बोला तुम जैसे गधों को कुऐ से निकाल कर मोक्ष में लगाना। राजा ने कहा बात ठीक है पर आप को यह बात शोभा नहीं देती। तपस्वी ने आवाज दी अरे कोई है? यहाँ से कान पकड़ कर निकाल दो इसको। वह बोला महाराज मैं स्वयं ही कान पकड़ लेता हूँ। दूसरे से निकलवाने की जरूरत नहीं मैं स्वयं ही निकल जाता हूँ।

राजा चार कदम गया कि तपस्वी ने उसे बुला लिया कहने लगा कि सचमुच मैं बहुत भूल में था आज से यह सारा वैभव त्यागता हूँ। उसी दिन से वह तपस्वी सब आडम्बर छोड़ सादगी से परिव्राजक का जीवन बिताने लगा।

तात्पर्य यह है कि राजा की शान्त मुद्रा का प्रभाव उस तपस्वी पर भी पड़ गया।

एक शहर में एक बड़ा धर्मात्मा सेठ था। एक दिन उसके यहां सरकार ने छापा मारा और उसका बही खाता पकड़ लिया और देखा तो सब काम सही था। यह देखकर अफसर ने सोचा कि क्या करना चाहिए जिससे इससे रूपये मिले उसने यह सोचकर चार प्रश्न किये। 1. यहाँ है आगे नहीं 2. यहाँ नहीं आगे है 3. यहाँ भी नहीं आगे भी नहीं 4. यहाँ भी है आगे भी है।

अफसर ने कहा– सेठ जी, इन प्रश्नों का उत्तर दीजिये नहीं तो आपको जुर्माना देना पड़ेगा। सेठ जी यह सुनकर घबरा गये। अफसर ने सोचा कि कहीं इसका हार्ट फेल नहीं हो जाये इसलिए आठ दिन का समय दे दिया और कहा कि सेठ जी जाओ और आठ दिन बाद आकर बता देना। यदि नहीं बताओगे तो 20 हजार रूपये जुर्माना होगा। यह सुनकर सेठ जी घर चले आये और उन्हें भूख लगनी बन्द हो गयी।

सेठानी ने पूछा आपको क्या दुख है? जो आपको भूख नहीं लगती। सेठजी ने कहा कि मुझे कोई दुख नहीं है। बल्कि ऑफिसर ने बही खाते पकड़ लिये और सही पाये परन्तु उसने प्रश्न किये और कहा कि आठ दिन में जबाव दो नहीं तो 20 हजार रूपये जुर्माना देना पडेगा। यह सुनकर सेठानी ने कहा कि सेठ जी इसका उत्तर मैं स्वयं दे दूँगी आप चिन्ता न करें आप पेट भर भोजन करें। सेठ जी बहुत खुश हुए और भोजन करने बैठ गये। वह तारीख आ गई दोनों

ने ताँगा पकड़ा और चल दिये। रास्ते में एक ब्रह्मचारी मिला सेठानी ने वन्दना की और ताँगे में बैठा लिया। एक भिखारी रोटी और पैसे मांग रहा था। सेठानी ने कहा हमारे साथ चलो हम तुम्हें खाना खिलायेंगे उसे भी तांगे में बैठा कर कचहरी में पहुँच गये।

कचहरी में पुकार हुई, दोनों सेठ और सेठानी उपस्थित गये। अफसर ने कहा- प्रश्नों का उत्तर दो। सेठानी बोली सेठ जी तो उसी दिन से बीमार पड़े हैं आप कहे तो मैं प्रश्नों का उत्तर दूँ। अफसर बोला ठीक है। सेठानी ने कहा क्या प्रश्न हैं?

पहला प्रश्न है कि यहाँ है आगे नहीं- सेठानी बोली इसका उत्तर बाद में पूंछना। दूसरा प्रश्न है कि यहाँ नहीं आगे है- यह सुनकर सेठानी ने ब्रह्मचारी को बुला कर कहा कि हजूर इसके पास यहाँ कुछ नहीं और आगे के लिए भगवान का भजन करता है। पूजा करता है। उपवास रखता है इसको सब कुछ आगे मिलेगा। यह सुनकर अफसर ने कहा कि यह सब ठीक है। तीसरा प्रश्न इस प्रकार है— यहाँ भी नहीं है और आगे भी नहीं है— सेठानी ने उस भिखारी को खड़ा करके कहा कि इसके पास यहाँ कुछ भी नहीं है। यह तो बस यह जानता है बाबा रोटी दो, लाओ बाबा पैसा दो, न तो यह भगवान की पूजा करता है और न भजन। यह सुनकर अफसर ने कहा कि यह भी ठीक है। चौथा प्रश्न इस प्रकार है यहाँ भी है और आगे भी—सेठानी ने सेठ को बुलाकर कहा कि इसके यहाँ भी है और आगे भी है। आगे के लिए दान भजन आदि करते हैं इसलिए आगे भी सब मिलेगा अफसर ने कहा यह भी ठीक है पर पहले प्रश्न का उत्तर दो। सेठानी ने कहा कि वह आप है पीछे पुण्य किया अफसर बन गये अब पुण्य नहीं करते पाप करते हो और बेकसूर सेठ को आपने दुःखी किया इसलिए तुमको आगे भी कुछ नहीं मिलेगा यह सुनकर अफसर को वैराग्य हो गया।

सारांश यह है कि संवर का अर्थ है रोकना, मार्ग अवरुद्ध करना बन्धुओ इस भावना में दृष्टान्तों के माध्यम से यह बात सिद्ध की गई है कि जब तक नये कर्मों का आना बन्द नहीं होता और पूर्वकृत कर्म कम नहीं होते तबतक आत्मा मलिन ही रहेगी। इसलिए नये कर्मों का आना रोककर पूर्व के मलिन कर्मों को कम करने का प्रयत्न कीजिये तभी स्वयं को स्वयं की प्राप्ति होगी।

9. निर्जरा भावना— पूर्व संचित कर्मों के उदय में आकर खिर जाने को निर्जरा कहते हैं। पंच महाव्रत, पाँच समिति, पंच इन्द्रिय जय तथा बारह प्रकार का तप इत्यादि कर्म निर्जरा के कारणों पर बार-बार विचार करना और समभाव रूप से सुख में लीन होकर बार-बार अपने स्वरूप की उज्ज्वलता का स्मरण करना निर्जरा भावना है।

कार्तिकेयानुप्रेक्षा में स्वामी कार्तिकेय ने निर्जरा भावना की व्याख्या करते हुए कहा है कि—

बारस-विहेण तवसा णियाण - रहियस्स णिज्जरा होदि।
वेरग्ग - भावणादो णिरहं कारस्स णाणिस्स।।१०२।।

निदान रहित निरभिमानी, ज्ञानी पुरुष के वैराग्य की भावना से अथवा वैराग्य और भावना से बारह प्रकार के तप द्वारा कर्मों की निर्जरा होती है। आत्मा से कर्मों के एक देश से झरने को निर्जरा कहते हैं। सामान्य निर्जरा तो प्रत्येक जीव के प्रति समय होती ही रहती है क्योंकि जिनकर्मों का फल भोग लिया जाता है वे आत्मा से अलग हो जाते हैं, किन्तु विशेष निर्जरा तप के द्वारा होती है। वह तप बारह प्रकार का है। अनशन, अवमौदर्य, वृत्तिपरिसंख्यान, रसपरित्याग, विविक्तशय्यासन और कायक्लेश से छह बाह्य तप और प्रायश्चि, विनय, वैयावृत्य, स्वाध्याय, व्युत्सर्ग और ध्यान ये छह अन्तरंग तप हैं। इन तपों के द्वारा निर्जरा होती है किन्तु ज्ञानी पुरुष का ही तप निर्जरा का कारण है। अज्ञानी का तप तो उल्टे कर्म बन्ध का ही कारण होता है तथा तप करके यदि कोई उसका मद करता है कि मैं बड़ा तपस्वी हूँ तो वह तप बंध का कारण होता है। अत: निरभिमानी ज्ञानी का ही तप निर्जरा का कारण होता है।

(श्री शिवलाल कृत)

जग का कारण मूल जो कर्मों की सन्तान।
उसका क्षय है निर्जरा, मुनिराज का असमान॥
जिमि सोने के मैल को आग साफ करि देत।
तिमि तप रूपी आग भी, आत्म शुद्धि कर देत॥
पाप पहाड़ों के लिए है, यह वज्र स्वरूप।
पाप रूप धन के लिए है, यह आंधी रूप॥
इस तप के सुप्रभाव से, पापों का कर नाश।
बहुत जनों ने है किया अविचल शिवपुर वास॥

इस संसार भ्रमण में पहले जो कर्म संचय किये हैं अर्थात् जो कर्मों का आस्रव हुआ है वह फल देकर चले जाते हैं। किन्तु फिर अपनी सन्तान छोड़ जाते हैं यानि दिन प्रतिदिन जो कर्मों का आस्रव होता है, उन कर्मों का थोड़ा-थोड़ा भाग नष्ट करने को निर्जरा कहते हैं। जैसे सोने का मैले आग में तपाकर साफकर लिया जाता है उसी प्रकार तप रूपी अग्नि से आत्मा शुद्ध हो जाती है। पाप रूपी पहाड़ों के लिए वह वज्र के समान है और पाप रूपी धन आँधी के स्वरूप हैं। जिस जीव ने तप के द्वारा अपने कर्मों को क्षय कर लिया उसे मोक्ष रूपी लक्ष्मी का मिलना निश्चित है।

(श्री दौलतराम जी कृत)

निज काल पाय विधि झरना, तासों निज काज न सरना।
तप करि जो कर्म खिपावै सोई शिव सुख दरसावै॥

पूर्वोपार्जित कर्मों में से कर्मों की अपनी स्थिति पूरी होने पर फल देकर जो कर्म आत्मा से पृथक होते हैं उनका नाम सविपाक निर्जरा है उससे आत्मा का कुछ भी भला नहीं हो सकता किन्तु स्थिति पूरी होने के पहले ही तपश्चरण आदि के द्वारा कर्मों का जो एक देश क्षय किया जाता है उसका नाम अविपाक निर्जरा है उससे मोक्ष प्राप्त होता है ऐसा विचार करना ही निर्जरा भावना है।

(श्री जुगलकिशोर युगल कृत)

फिर तप की शोधक वह्नि जगे, कर्मों की कड़ियाँ टूट पड़ें।
सर्वांग निजात्म प्रदेशों से, अमृत के निर्झर फूट पड़ें॥

जब तप की अग्नि प्रज्वलित होती है तो कर्म अपने आप क्षय हो जाते हैं और आत्मा शुद्ध स्वरूप रह जाता है तभी वह आत्मा उर्ध्व गमन स्वभाव होने से तीनों लोकों के ऊपर विराजमान होता है तब ऐसा प्रतीत होता है मानों चारों और अमृत के झरने फूट रहे हों।

ज्यों सरवर जल रुका सूखता तपन पडे भारी।
संवर रोके कर्म निर्जरा है सोखन हारी॥
उदय भोग सविपाक समय, पल जाय आम डाली।
दूजी है अविपाक पकावे, पाल विषै माली॥
पहली सबके होय नहीं कुछ सरे काम तेरा।
दूजी करे जु उद्यम करके मिटे जगत फेरा॥
संवर सहित करो तप प्राणी मिले मुक्ति राणी।
इस दुलहिन की यही सहेली, जाने सब ज्ञानी॥

एक बार इन कर्मों का तिरस्कार करके देख कहाँ जाते हैं। ये तिरस्कृत होकर कब तक पड़े रहेंगे। ये तेरे द्वार पर भूखे नंगे में भी आखिर चले जायेंगे। यदि तू इनसे जल्दी अपना संग छुड़ाना चाहता है तो इससे अच्छी बात और क्या हो सकती है। एक बार अपने पूरे पराक्रम की गर्जना पूरे जोर से कर कि मैं चैतन्य हूँ। सत् चित् आनन्द और ब्रह्म परमेश्वर। आओ कौन आता है। सामने आज साक्षात् बनकर आया हूँ। समस्त संस्कारों को शुद्ध करके इन के साथ शान्ति के व्यवहार या बल पर शान्ति शस्त्र के द्वारा प्रहार कर मैं क्षण भर में भस्म कर डालूँगा।

निर्जरा के विषय में आचार्य अमृतचन्द स्वामी समयसार की टीका आत्मख्याति में कहते हैं–
तद्ज्ञानस्यैव सामर्थ्यं विरागस्यैव वा किल, यत्कोऽपि कर्मभिः कर्मभुंजानोऽपि न बध्यते॥

वास्तव में वह सामर्थ्य ज्ञान अथवा विराग को ही है कि कोई (सम्यग्दृष्टि जीव) कर्मों को भोगता हुआ भी कर्मों से नहीं बंधता। यह अज्ञानी को आश्चर्य उत्पन्न करता है और ज्ञानी उसे

यथार्थ जानता है। आचार्य कहते हैं कि जिस प्रकार एक वैद्य विष को भोगता है परन्तु मरण को प्राप्त नहीं होता उसी प्रकार ज्ञानी पुरुष (जिसने अपनी आत्मा को जान लिया है) पुद्गल कर्म के उदय को भोगता है परन्तु बन्ध को प्राप्त नहीं होता।

निर्जरा दो प्रकार की होती है। 1. सविपाक निर्जरा 2. अविपाक निर्जरा।

सविपाक निर्जरा– सविपाक निर्जरा तो सभी प्राणियों के होती है। कर्म समय पर रस देकर चले जाते हैं। जैसे आम का फल स्वयंमेव पक कर गिर जाता है।

अविपाक निर्जरा– तपस्या के द्वारा होती है उसे सम्यक् दृष्टि से लेकर जिनेन्द्र भगवान तक करते हैं वही निर्जरा कार्यकारी है।

तपस्या से निर्जरा होती है और संवर भी होता है। तप बारह प्रकार का बताया है। छह प्रकार का बाह्य तप और छह प्रकार का अन्तरंग तप।

बाह्य तप के छह भेद– अनशन, अवमौदर्य, वृत्तिपरिसंख्यान, रसपरित्याग, विविक्तशय्यासन कायक्लेश।

अन्तरंग तप के छह भेद– प्रायश्चित, विनय, वैयावृत्य, स्वाध्याय, व्युत्सर्ग और ध्यान।

सम्यग्दृष्टि, श्रावक, विरत, अनन्तानुबन्धिवियोजक, दर्शनमोहक्षपक, उपशमक, उपशान्तमोह, क्षपक, क्षीणमोह और जिन ये दस स्थान अनुक्रम से असंख्येय गुण निर्जरावाले होते हैं।

भरत चक्रवर्ती घर में रहते हुए भी सब वैभव को भोगते हुए कर्मों की निर्जरा करते हैं और अन्तर्मुहूर्त्त में मुनिव्रत धारण कर ही केवलज्ञान प्राप्त करते हैं।

इसलिए बाहर से चाहे हम मुनि बने रहे या श्रावक; लेकिन बिना वीतरागता के निर्जरा हो नहीं सकती।

एक रानी का बाग था। रानी बाग को हरा भरा रखती थी वह बाग को सुन्दर रखने की शौकीन थी। एक बार जब वह बीमार हो गई तो अपने लड़के से बोली जब तक मैं ठीक होऊँ तब तक तुम बगीचे की देखभाल तथा सफाई रखना हरा भरा बनाये रखना। बालक सब पत्तों को झाड़ता पोंछता साफ करता रहा रोज ही यह क्रिया करता रहा लेकिन बाग सूख गया। माता जी बोली कभी जड़ों में पानी दिया था कि नहीं। लड़का बोला माता जी जड़ों में तो पानी कभी नहीं दिया अरे! यह बगीचा कैसे हरा भरा रहता ठीक यही बात हम और आप अपने लिए सोचे कि हम सदैव इस शरीर को झाड़ने पोंछने और तेल इत्र वगैरह लगाने में लगे रहे। लेकिन हमने कभी आत्मा को पानी नहीं दिया तो आत्मा के सूखने से शरीर भी सूख जायेगा अरे! हम कभी आत्मा के बारे में सोचें। त्याग का मार्ग तो अपना लिया परन्तु त्याग के मर्म को नहीं जाना। आत्म स्वरूप में लीन न होवें और ऊपरी त्याग करने की क्रिया करते रहे या त्यागी पने का ढोंग रचते

रहे। तब सोचो आत्म उपवन हरा भरा रह सकता है। वस्तुतः ऊपरी दिखावे से कर्मों की निर्जरा नहीं होगी। सबसे पहले आपको अपना लक्ष्य शुद्ध करना होगा या बनाना होगा। अपने को शुद्ध उत्तम तपश्चरण में लगाना होगा। तभी इस अनादि संसार अर्थात् कर्म की निर्जरा होगी इसलिए त्याग के माध्यम से आत्मा को तपाओ तभी कल्याण होगा। आत्मा की शुद्धि करने से कल का पापी आज का भगवान बन सकता है।

एक दिगम्बर मुनि एकान्त निर्जन वन में एक पेड़ के नीचे ध्यानस्थ बैठे थे उनके मुख मण्डल से अपूर्व आभा निकल रही थी। चेहरे का तेज चारों ओर फैल रहा था। परम उत्कृष्ट साधना से चेहरा सूर्य को मात दे रहा था। वहीं से एक राजा शिकार खेलने जा रहा था। लेकिन राजा काफी चिंतित और परेशान था उसके अन्तरंग की चिन्ता चेहरे पर स्पष्ट रूप से झलक रही थी। राज्य की चिन्ताओं से वह इतना अधिक घिर गया था कि उसने विचार किया कि वह अपना आत्मघात ही कर ले। इसी बीच उसकी दृष्टि उस साधु पर पड़ गई जो एक वृक्ष के नीचे ध्यानस्थ बैठे थे। उनके चेहरे की आभा देखकर राजा हैरान हो गया कि इस नग्न साधु के पास कुछ भी नहीं है लेकिन इतने अधिक आनन्द की दशा इनके आँखों में है। अपने साथी से कहा कि मैं इस अनोखे भिखारी से मिलना चाहता हूँ। राजा रथ से उतरकर साधु के पास गया और उसने साधु महाराज से कहा कि मैं बाह्य में आपके पास कुछ भी नहीं देख रहा हूँ। लेकिन आपकी प्रसन्न मुखाकृति को देखकर ऐसा लगता है कि मेरे पास कुछ भी नहीं है। भौतिक दृष्टि से सब कुछ होने पर भी मरने की सोचता हूँ। ऐसा कहकर राजा रोने लगा और उसने कहा कि क्या कोई रास्ता सम्भव है? जिससे मैं आपकी शाँति और आनन्द प्राप्त कर सकूं।

मुनि महाराज ने मुस्कुराते हुए सहज ही मधुर शब्दों में कहा– हे राजा! बहुत ही सीधा व सरल उपाय है कही भी भटकने की जरूरत नहीं है मात्र अपनी आँखों को खोल कर देखने की जरूरत है यदि एक बार आत्मा से मिलने की प्यास का जन्म हो जाये तो परिवर्तन हो सकता है किन्तु बड़े ही भाग्यशाली हो जो तुम्हें दिखाई पड़ गया कि तुम खाली हो तुम्हारे भीतर कुछ भी नहीं है क्योंकि बहुत कम आत्माओं को अपने खाली पन का अहसास हो सकता है उनके भीतर एक क्रान्ति भी पैदा हो जाती है। आपके पास बाहर क्या है इसका कुछ मूल्य नहीं आपके भीतर क्या है इसका भी मूल्य नहीं है आपके भीतर के ज्ञान का मूल्य है। यदि यह सम्पत्ति नहीं है तो उसे प्राप्त करने की अभीप्सा, आकांक्षा पैदा होना चाहिए जिनके भीतर अन्दर के जगत को देखने की आकांक्षा पैदा नहीं होती वे संसार में सबसे बड़े दरिद्र हैं। वे दुःख में ही अपने जीवन को समाप्त कर देते हैं। उनके जीवन में किसी प्रकार की उपलब्धि नहीं हो पाती। उनका जीवन किसी भी निष्कर्ष पर नहीं पहुँचता वे व्यर्थ जीते हैं और व्यर्थ ही समाप्त हो जाते हैं। जिस प्रकार सरिता सागर की ओर दौड़ती रहती है सरिता के अन्दर सागर में मिलने की

महत्वाकांक्षा काम करती है वैसे ही मानव के अन्दर अपने सत्य को अपने भीतर की सम्पदा प्राप्त करने की महत्वाकांक्षा सतत् करना चाहिए। जो जीवन में धर्म को पाने की आकांक्षा को जन्म नहीं देते उनका जीवन तालाब के समान बनकर नष्ट हो जाता है। वह सरिता के समान सागर तक नहीं पहुँचता।

नन्दीमित्र बहुत अच्छे कुल का था लेकिन अशुभ कर्म के उदय से बहुत दरिद्र था। प्रतिदिन जंगल में जाकर लकड़ी काट कर लाता था और उन लकड़ियों को बेच कर अपना पेट पालता था। कुछ कभी शेष बच जाता तो वस्त्रादि खरीद लेता। एक दिन वन में से निकलते समय उसने दिगम्बर मुनिराज देखे। तपस्या के कारण उनका शरीर सूख गया था। नन्दीमित्र ने पहले कोई साधु नहीं देखा था अत: उनके विषय में कुछ ज्ञान नहीं था इस कारण मुनि महाराज को देखकर उसे बहुत दया आई। उसने अपने मन में सोचा कि मैं तो संसार में अपने आप को सबसे गरीब समझता था परन्तु मुझसे भी गरीब इस संसार पर में पड़े हुए हैं। देखो यह बेचारा मुनि कितना गरीब है इसके पास पहनने को एक लंगोटी भी नहीं है बेचारे को कुछ खाने पीने को भी नहीं मिलता इसकी तो हड्डियाँ भी दिखाई दे रही हैं। बेचारा मुझसे भी गरीब है। बेचारे नन्दीमित्र के हृदय में उस मुनि के प्रति दया भाव जाग गये और वह अपनी लकड़ी काटना भी भूल गया और उन मुनि महाराज के पास बैठ गया पर मुनि महाराज चल दिये। वह सोचने लगा देखूँ कि इस बेचारे को कोई रोटी भी देता है या नहीं। ऐसा विचार कर उनके पीछे हो लिया और विचारने लगा कि यदि इनको किसी ने कुछ खाने को नहीं दिया तो आज मैं ही इसको भोजन करा दूँगा। चाहे मुझे भूखा रहना पड़े। मुनि महाराज पिच्छी कमण्डल लिए धीरे-धीरे जंगल से निकल कर नगर मे घुसे तो मुनि महाराज को आते देखकर कुछ श्रावक अपने-अपने द्वार पर अपने हाथों में नारियल और कलश लेकर खड़े हो गये। वे जिस द्वार के सामने से निकले उसी द्वार के स्त्री पुरुष सम्मान के साथ तथा बड़ी विनय से मुनि महाराज को नमस्कार करते और कहते मुनि महाराज ठहरिये हमारे यहाँ भोजन शुद्ध है। मुनि महाराज उनकी ओर देखते और अपने वृत्ति परिसंख्यान में कमी देखते और आगे बढ़ जाते। नन्दीमित्र महाराज को धनाढ्य मनुष्य के द्वारा आदर व सम्मान होता देखकर आश्चर्य चकित हुआ कि इनको मैं भूखा व दरिद्र समझता था। इनकी सेवा तो सभी सेठ साहुकार करते हैं। वह फिर भी किसी के घर भोजन नहीं करता क्या इसे भूख नहीं है। अच्छा देखूँ आज किस तरह किसके घर में भोजन करेगा ऐसा सोच कर वह मुनि महाराज के साथ ही चलता रहा। अन्त में एक द्वार पर मुनि महाराज रुक गये वहाँ अपनी विधि देखकर उस घर में भोजन लेने चले गये नन्दीमित्र भी उनके साथ उस घर में चला गया घर वालों ने सोचा कि यह महाराज का सेवक होगा मुनिराज ने वहाँ नवधा भक्ति पूर्वक आहार लिया। वे तो आहार लेकर वन में चले गये और घर वालों ने नन्दीमित्र को भक्तिपूर्वक भोजन

कराया भोजन करके नन्दीमित्र बहुत सन्तुष्ट हुआ। उसने सोचा कि ऐसा भोजन तो मैंने अब तक नहीं खाया मैं व्यर्थ में लकड़ी काट कर बोझ ढोता हूँ इतना कड़ा परिश्रम करके भी मुझे रूखा सूखा ही भोजन मिलता है क्यों न जंगल में मुनि महाराज के पास रहूँ, उनकी देखभाल सेवा सुश्रूषा करुँ और इनके साथ ही बढ़िया भोजन किया करूँ यह सोचकर वह जंगल में पहुँचा और मुनि महाराज के पास ही रहने लगा। महाराज ने अपने दिव्यज्ञान से जान लिया कि यह निकट भव्य है इसकी होनहार अच्छी है। नन्दीमित्र रोज महाराज के साथ जाकर डटकर भोजन कर आता। भोजन करके वन में जाकर महाराज के पास जा बैठता। एक दिन महाराज का उपवास हो गया। अत: वह भोजन के लिए नहीं गये तब नन्दीमित्र ने महाराज से कहा अपना पिच्छी कमण्डल हमें दे दीजिये। जिससे मैं भोजन कर आऊँ मुनि महाराज ने कहा कि तू अपने कपड़े उतार दे। नन्दीमित्र ने अपने कपड़े उतार दिये और पिच्छी कमण्डल लेकर नगर की ओर चल दिया नगर में भक्त श्रावकों ने उसे नवीन दीक्षित मुनि समझकर भक्तिपूर्वक आहार कराया भोजन करके नन्दीमित्र वन में मुनिराज के पास आया और पिच्छी कमण्डल मुनिराज के पास रख दिये जब वह कपड़े पहनने के लिए कपड़ों की ओर बढ़ा तो मुनिराज ने कहा कि नन्दीमित्र यह क्या करता है तुझे यह नहीं मालूम कि अब तेरी उम्र सिर्फ तीन दिन की रह गई है। तीन दिन में अपनी आत्मा को इतना सुन्दर कर डाल कि उसे संसार में जन्म मरण न करना पड़े सावधान हो जा अब तेरा एक एक क्षण अमूल्य है।

मुनि महाराज का उपदेश सुनकर तथा अल्प आयु जानकर नन्दीमित्र ने विधिपूर्वक दीक्षा धारण कर ली। आत्मस्वरूप समझ कर आत्मध्यान में मग्न हो गये। अटल आत्मा के ज्ञान द्वारा मोहनीय कर्म आदि का क्षय करके तीन दिन में ही मुक्ति प्राप्त कर ली।।

यशोधर मुनि के गले में मरा हुआ साँप डालते समय राजा श्रेणिक ने सातवें नरक की आयु का बंध किया, किन्तु तत्पश्चात् वह संभल गया और भगवान महावीर का भक्त बनकर धर्म आराधना करता रहा जिससे उसकी आयु घटकर पहले नरक की 84 हजार वर्ष रह गई। इसी कारण भाग्य से बड़ा पुरुषार्थ उद्यम माना जाता है। कर्मों का नाश, मुक्ति की प्राप्ति भाग्य से नहीं उद्यम से होती है। सम्यक् ज्ञान, सम्यक् चारित्र भाग्य से नहीं आत्मा के उद्यम से होता है। इस आत्मा का महान वैभव आत्मा अपने उद्यम से पाया करती है। यही निर्जरा भावना है इसके चिन्तन से आत्मा का कल्याण होगा।

फिर तप की शोधक वह्नि जगे, कर्मों की कड़ियाँ टूट पड़े।
सर्वांग निजात्म प्रदेशों से, अमृत के निर्झर फूट पड़े।।

इस प्रकार निर्जरा भावना से कर्मों की कड़ियाँ टूटेंगी और आपका कल्याण होगा।

10. लोक भावना– उर्ध्वलोक, मध्यलोक अधोलोक इन तीन लोकों के स्वरूप का बार-बार चिन्तन करना लोक भावना है। लोक भावना से संसार परिभ्रमण की दशा ज्ञात होती है और संसार परिभ्रमण से छूटकर मोक्ष प्राप्ति की अभिलाषा होती है।

कार्तिकेयानुप्रेक्षा में स्वामी कार्तिकेय लोक भावना का विवेचन करते हुए कहते हैं कि–

सव्वाया समणंतं तस्स य बहु-मज्झ संठिओ लोओ।
सो केण वि णेव कओ ण य धरिओ हरि-हरादीहिं।।

यह समस्त आकाश अनन्त प्रदेशी है उसके ठीक मध्य में भले प्रकार से लोक स्थित है उसे किसी ने बनाया नहीं है और न हरि, हर वगैरह उसे धारण ही किये हुए हैं। लोक का क्षेत्रफल सात राजू का घन अर्थात् 143 घन राजू प्रमाण है। अत: आकाश के बीचों बीच 343 घन राजू क्षेत्र में यह जगत स्थित है। उसे चारों ओर से घनोदधि, घनवात और तनुवात नाम की तीन वायु घेरे हुए हैं। वे ही लोक को धारण करती हैं। त्रिलोकसार ग्रन्थ में लिखा है कि– आकाश के असंख्यात प्रदेश वाले मध्य भाग में लोकाकाश- जितने आकाश में लोक स्थित है आकाश का उतना भाग, असंख्यात प्रदेशी है, इसका दूसरा अर्थ इस प्रकार भी किया है– आठ गौ के स्तन के आकार के आकाश के मध्य प्रदेश जिस भाग में पाये जाते हैं उस भाग में आशय यह है कि लोक के ठीक मध्य में सुमेरु पर्वत के नीचे गौ के स्तन के आकार के आठ प्रदेश स्थित हैं। जिस भाग में वे प्रदेश स्थित हैं वही लोक का मध्य है और लोक के मध्य में प्रदेश स्थित हैं। अन्य दार्शनिक मानते हैं कि यह जगत महेश्वर वगैरह का बनाया हुआ है और विष्णु आदि देवता उसे धारण किऐ हुए हैं। उनका निराकरण करने के लिए ग्रंथकार कहते हैं कि इस जगत को न किसी ने बनाया है और न कोई उसे धारण किये हुए है। वह अकृत्रिम है और वायु उसको धारण किये हुए है।

त्रिलोकसार में लोक का स्वरूप इस प्रकार बतलाया है कि– सर्व आकाश अनन्त प्रदेशी है, उसके बहुमध्य देश भाग में लोक है। वह असंख्यात प्रदेशी है और जगत श्रेणी के घन प्रमाण 343 राजु है।

(श्री शिवलाल कृत)

इस जग के संस्थान का, करना सदा विचार।
लोक भावना है यही, धर्म बढावन हार।।
लोकभावना के लिए तत्त्वज्ञान यदि पाय।
मन बाहर जावे नहीं अन्दर थिर हो जाय।।

लोक के स्वरूप का इस तरह विचार करना कि वह कितना बड़ा है उसमें कौन कौन जगह हैं और किस-किस जगह क्या-क्या रचना है और उसमें संसार परिभ्रमण की हालत मालूम करना। यह तत्त्वज्ञान आवश्यक है क्योंकि जीव का मन बाहर भटके नहीं और अपनी आत्मा में ही स्थिर हो जाये।

(श्री जुगलकिशोर युगल कृत)

हम छोड़ चले यह लोक, तभी लोकान्त विराजे क्षणमें जा।
निज लोक हमारा वासा हो, शोकान्त बने फिर हमको क्या।।

(श्री दौलतराम जी कृत)

किन हू न करौ न धरै को, षट् द्रव्य मयी न हरै को।
सो लोक माहिं बिन समता, दु:ख सहै जीव नित भ्रमता।।

इस लोक (दुनिया) का न तो कोई बनाने वाला है और न कोई इसे बिगाड़ ही सकता है और न ही कोई इसका रक्षक है यह तो जीव अजीव आदि छह द्रव्यों का समूह रूप अनादि से स्वयं सिद्ध है ऐसे इस लोक में यह अज्ञानी प्राणी इष्टानिष्ट कल्पना रूप विषमता के द्वारा जन्म मरण करता हुआ आ रहा है और दु:ख पा रहा है।

लोक अलोक आकाश माँहि, थिर निराधार जानो।
पुरुष रूपकर कटी भये षट् द्रव्यन सो मानो।।
इसका कोई न करता हरता, अमिट अनादी है।
जीव रु पुद्गल नाचे, यामै कर्म उपाधी है।।
पाप पुण्य सो जीव जगत में नित सुख दुख भरता।
अपनी करनी आप भरै शिर औरन के धरता।।
मोह कर्म को नाश मेट कर सब जग की आसा।
निज पद में थिर होय लोक के शीश करो वासा।।

जैनदर्शन ईश्वर को सृष्टिकर्ता क्यों नहीं मानता इस संबंध में पाठकों की जानकारी के लिए यहाँ पर तर्क व प्रमाण संगत विचार उपस्थित किये जाते हैं। जैनदर्शन कहता है कि ईश्वर को जगत का कर्ता मानना सिवाय कल्पना के कोई भी प्रमाण नहीं है। उल्टे पदार्थों के स्वभाव और परम्परा यह सिद्ध करती है कि यह सब कुछ अनादि और अनन्त है। अलबत्ता पदार्थों की अवस्थाओं में उपादान और निमित्त कारणों से कभी समान और कभी असमान परिवर्तन होते रहते

हैं। किन्तु यह कभी भी संभव नहीं हो सकेगा कि सभी पदार्थ कभी भी समूल नष्ट हो जायें कभी बिना अपने उपादान के कारण के पैदा हो जायें यद्दि ईश्वर को ही सबका उपादान समझा जायेगा तो सब पदार्थ सचेतन ही उससे पैदा हो सकेंगे न कि असंख्य अचेतन पदार्थ। जबकि उपादान के अनुरुप ही कार्यों की उत्पत्ति होती है। यदि ईश्वर के सिवाय कोई अन्य उपादान माना जायेगा तो उसकी उत्पत्ति कैसे हुई? इस प्रकार प्रश्न उठते ही चले जायेंगे। अन्त में जिसे भी अनुत्तर माना जायेगा, उसे नित्य स्वीकार करना पड़ेगा। फिर जगत को ही नित्य स्वीकार करने की कौन सी बाधा है। इसके अतिरिक्त न तो ईश्वर को किसी ने जगत की रचना करते देखा है और न बीज वृक्ष या गर्भस्थ मनुष्यादि प्राणियों की सन्तान परम्परायें ईश्वर को सृष्टि का कर्ता सिद्ध करती हैं क्योंकि सृष्टि के प्रारम्भ में पुरुष और स्त्री के संयोगों के बिना पुरुषों की उत्पत्ति और बीज बिना वृक्षों की उत्पत्ति होना और वह भी निराकार ईश्वर से नितान्त भ्रामक है। यह लोक किसी का बनाया हुआ नहीं है। यह लोक तीन बातवलय के आधार पर टिका है। तीनों बातवलयों में घनोदधि वातवलय जल और वायु का घेरा, गौमूत्र के वर्ण के समान घन वातवलय स्थूल वायु का घेरा मूंग के समान वर्ण वाला, तनुवातवलय सूक्ष्म वायु का घेरा अनेक तरह के रंगवाला है ये तीनों वातवलय एक प्रकार की हवायें हैं।

लोक के नीचे के भाग में एक-एक वलय बीस-बीस हजार योजन मोटा है। इस प्रकार तीनों वातवलय की मोटाई 60 हजार योजन है। सातवें नरक के दोनों तरफ पार्श्वभाग से ऊपर मध्यलोक तक 7 योजन, 5 योजन व 4 योजन क्रम से हैं अर्थात् पहला घनोदधि सात योजन मोटा, दूसरा घनवात वलय पाँच योजन और तीसरा तनु वातवलय चार योजन मोटा जानना चाहिए। आगे मध्यलोक के दोनों पार्श्व भाग में पाँच योजन, चार योजन और तीन योजन के क्रम से तीनों वात वलयों की मोटाई है। पाचवें ब्रह्म स्वर्ग के दोनों पार्श्व भाग में तीनों वातवलय क्रम से सात योजन, पाँच योजन, चार योजन क्रम से मोटे हैं। ब्रह्म स्वर्ग से ऊपर जाते हुए लोक के अन्तिम भाग के दोनों पार्श्व भाग तीनों वातवलयों की मोटाई क्रम से पाँच योजन, चार योजन, तीन योजन कुल बारह योजन है। इस प्रकार लोक के ऊपर घनोदधि वातवलय दो कोस, घनवातवलय एक कोस और तनुवातवलय पन्द्रह से पचहत्तर घनुष प्रमाण हैं। यह तीन लोक इन्हीं तीन वातवलयों के आधार पर खड़ा है, अनादि है। किसी ने मापा नहीं है, छः द्रव्यों से भरा हुआ है।

इस लोक में रत्नप्रभा रत्नों जैसी, शर्करा प्रभा कंकर जैसी, वालुका प्रभा रेत जैसी, पंक प्रभा जैसी, धूम प्रभा धुऐं जैसी, तमः प्रभा अंधेरे जैसी और महातमः प्रभा घोर अंधेरे जैसी क्रम से ये सात भूमियाँ धर्मा, वंशा, मेघा, अंजना, अरिष्टा, मघवी और माघवी रुढिनाम वाली हैं।

पहली पृथ्वी के तीन भाग हैं– खर भाग 16 हजार योजन मोटाई, पंक भाग 84 हजार योजन मोटाई, अब्हुल भाग 80 हजार योजन मोटाई कुल 1 लाख 80 हजार योजन मोटी पृथ्वी

है इसमें 30 लाख नरक हैं। इस पृथ्वी के पंक भाग में राक्षसों और असुर कुमार देवों के भवन हैं तथा शेष भवनवासियों के भवन खर भाग में एक-एक चैत्यालय सहित स्थित हैं। शेष पृथ्वियाँ क्रमश: 32 हजार योजन मोटी तथा 25 लाख बिल, 28 हजार योजन मोटी तथा 15 लाख बिल, 24 हजार योजन मोटी तथा 10 लाख बिल, 20 हजार योजन मोटी तथा 3 लाख बिल, 16 हजार योजन मोटी तथा पाँच कम एक लाख बिल, 8 हजार योजन मोटी तथा 5 बिल वाली पृथ्वियाँ हैं। ये बिल (नरक) गोल, त्रिकोण, चोकोर आदि अनेक आकार के हैं। ये नरक प्रत्येक पृथ्वी में पहली से छठवीं पृथ्वी तक एक-एक हजार योजन ऊपर-नीचे छोड़कर बीच में स्थित हैं। इस प्रकार कुल 84 लाख नारकियों के बिल हैं जिसमें से 82,25,000 बिलों में उष्ण (गर्मी) तथा 1,75,000 बिलों में शीत अथवा सर्दी है।

चित्रा पृथ्वी (पृथ्वी तल) से लेकर निगोद से नीचे तीनों वातवलय के अन्त भाग तक अध ोलोक कहलाता है। जो सात राजू प्रमाण है। चित्रा पृथ्वी के जम्बूद्वीप के बीचों बीच एक लाख चालीस योजन ऊँचा सुमेरु पर्वत है जो कि एक हजार योजन तो चित्रा पृथ्वी के अन्दर तथा शेष पृथ्वी के ऊपर है। बस यही एक लाख चालीस योजन ऊँचाई मध्य लोक की है। सुमेरु पर्वत से एक बाल का अन्तराल छोड़कर पहला स्वर्ग है। इसके ऊपर वातवलय तक ऊर्ध्व लोक है। इसमें सौधर्म-ऐशान, सानत्कुमार-माहेन्द्र, ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर, लान्तव-कापिष्ठ, शुक्र-महाशुक्र, शतार-सहस्रार, आनत-प्राणत, आरण-अच्युत सोलह स्वर्ग जोड़े के रूप में तथा इसके ऊपर अधो ग्रैवेयक, मध्य ग्रैवेयक, उपरिम ग्रैवेयक, नौ अनुदिश और पाँच अनुत्तर विमान हैं। अन्त में ईषत् प्राग्भार भूमि है इस भूमि के अन्त तक ऊर्ध्वलोक कहलाता है। ईषत् प्राग्भार भूमि में मनुष्य लोक प्रमाण 45 लाख योजन की चन्द्र के आकार समान सिद्धशिला है।

मध्य लोक में चित्रा पृथ्वी पर जम्बूद्वीप आदि तथा लवणसमुद्र आदिक असंख्यात द्वीप और समुद्र हैं। चित्रा पृथ्वी के बीचों बीच एक लाख योजन व्यास तथा 316227 योजन, 3 कोश, 128 धनुष 13 अंगुल से कुछ अधिक परिधि एवं 7905694150 योजन घनाकार क्षेत्र वाला जम्बू द्वीप है। इस जम्बूद्वीप में सात क्षेत्र, एक मेरु, दो कुरु, जम्बू और शाल्मली नामक दो वृक्ष, छह कुलाचल, कुलाचलों पर स्थित छह सरोवर, चौदह महानदियाँ, बारह विभंगा नदियाँ, बीस वक्षार गिरि, चौंतीस राजधानी, चौतीस रूप्याचल चौतीस वृषभाचल, अडसठ गुफायें, चार गोलाक गिरी और तीन हजार सात सौ चालीस विद्याधर राजाओं के नगर हैं। इस द्वीप से दूना प्रमाण धातकीखण्ड का है और धातकीखण्ड के समान क्षेत्र तथा पर्वतादि वाला पुष्करार्द्ध द्वीप है। जम्बूद्वीप में एक लाख 40 योजन ऊँची (1000 योजन जमीन के अन्दर, 99000 योजन जमीन के ऊपर तथा 40 योजन की चूलिका) सुमेरु पर्वत है तथा धातकी एवं पुष्करार्द्ध द्वीप में चार मेरु 84 हजार योजन ऊंचे हैं। ये सभी मेरु 1000 योजन जमीन के अन्दर हैं। इसके चारों तरफ

लवण समुद्र हैं, लवण समुद्र के चारों और धातकी खण्ड है। धातकी खण्ड के चारों तरफ कालोदधि समुद्र है उसके चारों तरफ पुष्करवर द्वीप है पुष्करवर द्वीप के मध्य में मानुषोत्तर पर्वत है। मानुषोत्तर पर्वत तक ही मनुष्यों का आविर्भाव पाया जाता है। अढ़ाईद्वीप को मनुष्यलोक भी कहते हैं इसका व्यास 45 लाख योजन है। मानुषोत्तर पर्वत को मनुष्य नहीं लांघ सकते इसके आगे देवों का आवागमन रहता है। मानुषोत्तर पर्वत की ऊँचाई 1721 योजन, गहराई 430 योजन 1 कोस तथा विस्तार मूल में 1022 योजन, मध्य में 723 योजन तथा ऊपर में 424 योजन तथा परिधि 14236713 योजन है। इसका आकार भीतर की ओर छिन्न तट टांकी से कटे हुए के समान तथा बाह्य भाग पिछली ओर से क्रम से ऊँचा उठता हुआ भीतर की ओर मुखकर बैठे हुए सिंह के समान है। पुष्करवर द्वीप से आगे पुष्करवर समुद्र है।

पुष्करवर समुद्र को वारुणीवर द्वीप, वारुणीवर द्वीप को वारुणीवर समुद्र, वारुणी वर समुद्र को क्षीरवर द्वीप, तथा क्षीरवर द्वीप को क्षीरोदधि समुद्र घेरे हुए हैं। इसी क्षीरोदधि समुद्र के जल से भगवान का अभिषेक होता है तथा भगवान के केश पगारे जाते हैं। इसके बाद क्रमश: घृतवर द्वीप, घृतवर समुद्र, इक्षुवर द्वीप, इक्षुवर समुद्र तथा नन्दीश्वर द्वीप हैं। यहाँ पर चारों दिशाओं में 13-13 कुल 52 चैत्यालय हैं। कार्तिक, फाल्गुन, आषाढ़ की अठाई पर्वों में देव पूजन आदि करने आते हैं। इसके आगे क्रमवार नन्दीवर समुद्र, अरुणवर द्वीप, अरुण सागर, अरुणोदभास द्वीप, अरुणोदभास समुद्र, कुण्डलवर द्वीप, कुण्डलवर समुद्र, शंखवर द्वीप, शंखवर समुद्र, रुचिकवर द्वीप, रुचिकवर समुद्र घेरे हुए हैं। तेरहवें रुचिकवर द्वीप में 56 कुमारियाँ देवियाँ निवास करती हैं और तीर्थंकर की माता की सेवा करती हैं या करने आती हैं। इस द्वीप की चारों दिशाओं में चार प्राकृतिक चैत्यालय हैं इन से आगे मध्य लोक में चैत्यालय नहीं हैं। क्रमवार द्वीप और समुद्र चारों ओर से दूने-दूने विस्तार से घेरे हुए हैं।

अढ़ाईद्वीप अर्थात् जम्बूद्वीप, धातकीखण्ड व पुष्करार्द्धद्वीप में सूर्य और चन्द्रमा सुमेरु पर्वत के चारों ओर चक्कर लगाते रहते हैं तथा अढ़ाईद्वीप से बाहर जो सूर्य और चन्द्रमा हैं वे स्थिर हैं। जम्बूद्वीप में दो सूर्य, दो चन्द्रमा, लवण समुद्र में चार सूर्य, चार चन्द्रमा धातकीखण्ड में बारह सूर्य व बारह चन्द्रमा, कालोदधि समुद्र में 42 सूर्य व 42 चन्द्रमा पुष्करार्द्ध में 72 सूर्य व 72 चन्द्रमा चक्कर लगाते रहते हैं इस प्रकार अढ़ाईद्वीप में कुल 132 सूर्य और 132 चन्द्र हैं। ये सभी चन्द्र व सूर्य ग्रह नक्षत्र, तारा आदि के साथ सुमेरु पर्वत के चारों ओर चक्कर लगाते हैं इसी से रात और दिन तथा ऋतु परिवर्तन होता रहता है।

प्रत्येक चन्द्रमा के अठासी ग्रह, अठाईस नक्षत्र, 66975 कोडाकोडी तारे होते हैं इनके विमान तीन प्रकार के होते हैं। इन्द्रक, श्रेणीबद्ध और प्रकीर्णक। प्रत्येक चन्द्रमा के विमान से 12000 प्रमाण अतिशय शीतल एवं मन्द किरणें निकलती है तथा सूर्य के विमान से भी 12000 प्रमाण

किरणें निकलती हैं। चन्द्र विमान के तल से राहु विमान का ध्वज दण्ड 20 धनुष 3 हाथ 8 अंगुल नीचे है। 15 दिन में पूर्णिमा आती है और राहु अपनी गति विशेष के कारण चन्द्र विमान को पूर्ण आच्छादित करता है जिसके कारण चन्द्र ग्रहण होता है। इसी प्रकार सूर्य विमान के तल से केतु विमान का ध्वज दण्ड 20 धनुष 3 हाथ और 8 अंगुल नीचे है। गति विशेष के कारण केतु विमान छह मास में अमावश्या के अन्त में अलग-अलग सूर्य बिम्बों को आच्छादित करते हैं। जिससे सूर्य ग्रहण होता है। स्वर्गों में तीनों प्रकार के कुल चौरासी लाख सत्तानवे हजार तेईस (84, 97023) विमान हैं।

जम्बूद्वीप में जम्बूवृक्ष (जामुन का वृक्ष), धातकीखण्ड में आँवले का वृक्ष तथा पुष्करार्द्ध द्वीप में कमल नाम को सार्थक करते हैं ये सभी पृथ्वीकायिक हैं। जम्बूवृक्ष का प्रमाण मूल में 1 कोश चौड़ा, स्कन्ध 2 योजन ऊँचा गहराई 2 कोश, शाखायें 8 योजन तक फैली हुई, पृथ्वीकाय, महास्कन्ध नील मणिका, शाखा हीरा की, पत्तियाँ चाँदी की तथा फल फूल अंकुर मणि मय बने हैं।

नन्दीश्वरद्वीप से आगे अरुणवर द्वीप तथा अरुणवर समुद्र से ले कर ब्रह्मलोक के अन्त तक अंधकार ही अंधकार है। अन्तिम द्वीप स्वयंभूरमण द्वीप के मध्य में चूड़ी के आकार वाला स्वयंप्रभ पर्वत है। मानुषोत्तर पर्वत और स्वयंप्रभ पर्वत के मध्य जघन्य भोग भूमि के तिर्यंचों के समान तिर्यंच तथा स्वयंप्रभ पर्वत के आगे कर्मभूमिज तिर्यंचों के समान तिर्यंच रहते हैं। क्योंकि इनमें असंख्यात तिर्यंच देशव्रती (संयतासंयत) भी होते हैं। ऊपर कथित द्वीपसमुद्र तथा पर्वतों पर किन्नर आदि व्यन्तर देव यथायोग्य निवास करते हैं। तीनों लोक में अकृत्रिम चैत्यालय होते हैं जहाँ देव वन्दना, पूजन करते हैं। इनकी संख्या इस प्रकार है–1. ऊर्ध्वलोक-8497023 चैत्यालय, 2. अधोलोक–7 करोड़ 72 लाख चैत्यालय मध्यलोक- पंचमेरु संबंधित-80, वक्षारगिरि संबंधित-80, गजदन्त-20, कुलाचलदेव 30 देव कुरु, उत्तरकुरु संबंधित-10, इक्ष्वाकार पर्वत-4, मानुषोत्तर-4, कुण्डलवर द्वीप-4, रुचिकवर द्वीप-4, नन्दीश्वर द्वीप-52 विजयार्द्धपर्वत संबंधि त-170 कुल योग 458 चैत्यालय।

जम्बूद्वीप छह कुलाचलों द्वारा सात क्षेत्रों में विभाजित है। भरतक्षेत्र, हेमवत् क्षेत्र, हरिवत् क्षेत्र, विदेह क्षेत्र, रम्यक क्षेत्र, हैरण्यवत् क्षेत्र, ऐरावत क्षेत्र। भरत क्षेत्र के छः खण्ड हैं। एक आर्य खण्ड और पाँच मलेच्छ खण्ड। जम्बूद्वीप का 190वाँ भाग भरत क्षेत्र है। आज जितनी दुनिया का पता है अर्थात् एशिया, यूरोप, अफ्रीका, अमेरिका, आदि सभी आर्य खण्ड के ही हिस्से हैं। हम सभी इसी आर्य खण्ड में रहते हैं। इसी आर्य खण्ड में अयोध्या नगरी है जहाँ पर तीर्थंकरों का जन्म होता है। जम्बूद्वीप में 3 कर्मभूमि तथा 4 (चार) भोगभूमियाँ है। भरत और ऐरावत क्षेत्रों में

उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी रूप छह कालों द्वारा परिवर्तन होता रहता है। इसी भरतक्षेत्र के बीच में पच्चीस योजन ऊँचा रजतमय विजयार्ध पर्वत है जिस का विस्तार पचास योजन है। विजयार्द्ध पर्वत से दक्षिण दिशा के बीच अयोध्या नगरी है और विजयार्द्ध पर्वत से उत्तर दिशा में और शुद्ध हिमवान् पर्वत से दक्षिण दिशा में गंगा-सिन्धु नदियों तथा मलेच्छ खण्डों के बीच में एक योजन ऊँचा और पचास योजन लम्बा जिनालय सहित सुवर्ण रत्नमय वृषभ पर्वत है। इस पर्वत पर चक्रवर्ती अपनी प्रशस्ति लिखते हैं।

आज तक लौकान्तिक देव, इन्द्र, इन्द्र की शचि, नौ अनुदिश, पाँच अनुत्तर को छोड़कर सभी जगह अनन्त वार जन्म लिया, लेकिन अपना निजलोक जो आत्मा है उसे नहीं पहचाना। जीव व पुद्‌गल का संबंध हो रहा है। स्वभाव को छोड़कर विभाव में जाने से पाप और पुण्य के कारण सुख और दुख भोग रहा। आज हम लोक और निज लोक को जान सकते हैं। आज अपनी महिमा को भूल कर कुऐं में बैठे मेंढक की भाँति क्यों इसमें भयभीत हो रहे हैं, इस कुऐं से बाहर देख कितना बड़ा विश्व है। देख इसमें सर्वज्ञ ईश्वर का निवास देख, इसमें एक अद्वैत ब्रह्म देख, अगर तुमने उस निज आत्मा को देख लिया और उसको जान कर लीन हो गये तो एक दिन सारे लोक का स्वामी बन बैठेगा। बाहर से नहीं उस ज्ञान को पाने का रास्ता अपने में तथा एक मनुष्य भव है। लेकिन जब तक बाहरी लोक को देख रहा है, भटक रहा है। जिस दिन निज को देखेगा तो कल्याण हो जायेगा।

यह जीवन बीता जा रहा है और बीता हुआ समय वापिस नहीं आता। जैसे पर्वत से गिरने वाली नदी का जीवन नीचे ही लुढ़क जाता है अत: शीघ्रता करो इस तपश्चरण को पाने के लिए अन्यथा सारा जीवन यों ही व्यर्थ में व्यतीत हो जायेगा और अन्त में पछतावा ही हाथ लगेगा।

समय के फेर से एक सेठ गरीब हो गया, वह अनपे मित्र राजा के पास पहुँचा कि महाराज मैं दिनों के फेर के कारण गरीब हो गया हूँ कृपया कर आप मुझे कुछ धन दे दीजिए। राजा बोला तुम कल दो बजे से चार बजे तक हीरा जवाहरात के खजाने में चले जाना और दो घण्टों में जितना भी हीरा जवाहरात ले जा सको ले जाना। उसने अपने पहरेदारों को सूचना दे दी। साथ में उन्हें यह बता दिया गया कि समय पूरा हो जाने पर तुरन्त सेठ को बाहर निकाल देना अगले दिन वह सेठ हीरों के खजाने में पहुँचा अन्दर पहुँच कर देखता है कि वहाँ बहुत सुन्दर-सुन्दर खिलौने रखे हैं इसलिए मन में आया कि अभी तो समय बहुत काफी है पहले कुछ खिलौने देख लूँ फिर तो हीरे जवाहरात लेकर चल देंगे इसमें कोई विशेष समय नहीं लगेगा इस प्रकर खिलौने देखते ही देखते सारा समय व्यतीत कर दिया। पहरेदार ने उसे तुरन्त पकड़कर बाहर निकाल दिया वह एक भी रत्न न उठा पाया सेठ फिर पछताता हुआ राजा के पास गया और बोला कि आज

तो हमारा खजाने में जाना ही बेकार हो गया। खेल-खिलौने में लग कर ही सारा समय खो दिया। कृपया आप मुझे धन दे दीजिये। राजा ने कहा कल फिर इसी समय सोने के खजाने में जाकर जितना चाहो ले जाना। सेठ दूसरे दिन सोने के खजाने में पहुँचा तो क्या देखता है कि सुन्दर-सुन्दर घोड़े बंधे हुए हैं, उनमें एक काला घोड़ा बड़ा ही सुन्दर था। वह सेठ घुड़सवारी का बड़ा ही शौकीन था और वह उस काले घोड़े पर बैठकर घूमने लगा इस प्रकार दो घण्टे का समय व्यतीत हो गया और पहरेदार ने उसे पकड़ कर बाहर निकाल दिया। फिर राजा के पास पहुँचा। मैं तो आज भी वहाँ से कुछ न ला सका सारा समय घुड़सवारी में निकल गया। फिर राजा ने एक मौका देते हुए कहा कि कल तुम चाँदी के खजाने में जाना और जितनी चाँदी ले सको ले आना। सेठ तीसरे दिन चाँदी के खजाने में पहुँचा और देखता है कि गोरखधन्धे का खेल हो रहा है। कुछ छल्ले एक दूसरे में फंसे हुए हैं। छल्ले को सेठ ने छू लिया और उसे सुलझाने में लग गया पहरेदार ने समय पूरा होने पर उसे बाहर निकाल दिया। सेठ राजा के पास पहुँचा महाराज आज भी मेरा समय गोरखधन्धे में व्यर्थ चला गया। कुछ न ला सका। कृपया मुझे फिर से एक बार मौका दीजिये। राजा ने कहा तुम्हें यह अन्तिम अवसर दिया जा रहा है। इसके बाद अवसर नहीं मिलेगा। कल तुम ताँबे के खजाने में जाना और जितना ले सको ले आना।

चौथे दिन सेठ फिर पहुँचा और देखता है कि वहाँ पर सुन्दर, स्प्रिंगदार, गद्देदार, सुकोमल पलंग बिछे हुए हैं। सोचा कि देखे दो-चार मिनट कैसा लगता है? ज्यों ही लेटा उसे नींद आ गई। समय व्यतीत हो गया और चपरासी ने बाहर निकाल दिया। जैसे सेठ ने सारे श्रम किये पर खेल-खिलौने में और पलंग पर लेटकर सारा समय खो दिया। लाभ कुछ न पा सका। इसी प्रकार यह सांसारिक प्राणी भी इस दुर्लभ मानव जीवन की चार अवस्थाएं बिता देता है। लाभ कुछ भी नहीं मिलता। बचपन खेल-खिलौने में, कुमार काल वाहनों के चढ़ने में, यौवन अवस्था शादी होने पर गोरखधन्धे में बीत जाता है। उसमें ही उलझा रहता है और वृद्धा अवस्था पलंग पर लेटा-लेटा सारा समय बिता देता है। इस प्रकार कुछ भी प्राप्त नहीं कर पाता। इसलिए इस दुर्लभ शरीर को पाकर शक्ति अनुसार तप को स्वीकार करना चाहिए।

जिस प्रकार कुछ बात पित्त कफ आदि का प्रकोप न हो। परिणामों में उज्ज्वलता बनी रहे और तप से उत्साह बढ़ता रहे ऐसा प्रयत्न करना चाहिए। बालक वृद्ध और धनी, निर्धन, सबल और निर्बल आदि सभी को यथाशक्ति तप अवश्य करना चाहिए, तप से इस जीवन का कल्याण है। काम, निद्रा, प्रमाद आदि को नष्ट करने वाला ही तप है और संवर निर्जरा का प्रधान कारण ही तप है। तप का अचिंत्य प्रभाव है। त्रैलोक्य में तप के समान कोई उत्तम वस्तु नहीं है। यही लोक भावना है इसका चिन्तन करना चाहिए। इस लोक को छोड़कर आत्मा अथवा निज लोक का अनुकरण करो तभी कल्याण होगा।

हम छोड़ चले यह लोक, तभी लोकान्त विराजे क्षण में जा।
निज लोक हमारा वासा हो, शोकान्त बने फिर हम को क्या॥

सोलह स्वर्गों में 52 पटल, ग्रैवेयक में 9 पटल, नौ अनुदिश का एक पटल तथा पाँच अनुत्तर का एक पटल कुल 63 पटल होते हैं। इनके ऊपर मोक्ष अर्थात् सिद्धशिला है।

11. बोधिदुर्लभ भावना– मनुष्य जन्म प्राप्त करना बड़ा कठिन और दुर्लभ है मनुष्य जन्म पाकर इसको विषय-भोगों में खो देना और आत्मसाधना न करना महा मूर्खता है। ऐसे अमूल्य मनुष्य जन्म को पाकर यथार्थ ज्ञान की प्राप्ति करना चाहिए। यथार्थ ज्ञान दुर्लभ है ऐसा यथार्थ ज्ञान महान् तपस्वियों तथा मुनियों ने अपनी आत्मा में ही सिद्ध किया है कहा है–

धन कन कंचन राज सुख, सबै सुलभ कर जान।
दुर्लभ है संसार में एक यथारथ ज्ञान।

इस प्रकार यथार्थ ज्ञान की दुर्लभता का बार-बार चिन्तन करना बोधिदुर्लभ भावना है।

जीवो अणंत-कालं बसइ णिगोएसु आइ-परिहीणो।
तत्तो णिस्सरिदूणं पुढवी-कायादिओ होदि।।

यह जीव अनादि काल से लेकर अनन्तकाल तक तो निगोद में रहता है वहाँ से निकल कर पृथ्वीकाय आदि में जन्म लेता है। अंगुल के असंख्यातवें भाग क्षेत्र में जो अनन्त जीवों का स्थान दे होता है, उसे निगोद कहते हैं। निगोदिया जीवों को साधारण जीव भी कहते हैं क्योंकि एक निगोदिया शरीर में बसने वाले अनन्त जीवों का आहार, श्वासोच्छ्वास वगैरह साधारण होता है अर्थात् उन सब जीवों का एक शरीर होता है, एक साथ सब आहार ग्रहण करते हैं एक साथ सब श्वास लेते हैं और एक साथ ही मरते और जन्म लेते हैं। निगोद के दो भेद हैं– नित्य निगोद और चतुर्गति निगोद। जो जीव अनादिकाल से निगोद में पड़े हुए हैं वे नित्य निगोदिया कहे जाते हैं और जो त्रस पर्याय प्राप्त करके निगोद में जाते हैं उन्हें चतुर्गति निगोदिया कहते हैं। नित्य निगोद में तो जीव अनादिकाल से अनन्त काल तक रहता है। गोम्मटसार में कहा है– ऐसे अनन्त जीव हैं जिन्होंने त्रस पर्याय प्राप्त नहीं कि उनके भावकर्म बहुत निविड होते हैं इसलिए वे निगोद को नहीं छोड़ते। नित्य निगोद से निकलने के विषय में दो मत पाये जाते हैं। एक मत के अनुसार तो नित्य निगोदिया जीव सदा निगोद में ही रहता है और वहाँ से नहीं निकलता। दूसरे मत के अनुसार जब तक उसके भावकर्म निविड रहते हैं तब तक नहीं निकलता। भावकर्म के कुछ शिथिल होते ही निकल आता है। स्वामी कार्तिकेय का मत भी यही जान पड़ता है। अत: वे कहते हैं कि प्रथम तो जीव का अनन्त काल निगोद में बीतता है। वहाँ से निकलकर वह पृथ्वीकाय वगैरह में जन्म लेता है। अत: वह अज्ञानी का अज्ञानी ही बना रहता है।

पांचराजू
१ राजू
त्रसनाली
सिद्धशिला
इषत् प्रभार पृथ्वी
अनुत्तर
अनुदिश
ग्रैवेयक
आरण्य
अच्युत
आनत
प्राणत
शतार
सहस्त्रार
शुक्र
महाशुक्र
लान्तव
कापिष्ट
ब्रह्मा
ब्रह्मोत्तर
महेन्द्र
ऐशान
सौधर्म
ज्योतिषिक लोक ११० योजन
मध्य लोक
७ योजन
५ योजन
४ योजन
३ यो0
५ यो0
खरभाग
पंकभाग
अब्बहुल
रत्नप्रभा
शर्करा
बालुका
पंकप्रभा
धूमप्रभा
तम: प्रभा
महातम!
तनुवात वालय
घनवालवकप
घनोदधिवात वलय
३½ राजू
३½ राजू
७ राजू
७ राजू
निगोद
२०००० यो0
२०००० यो0
२०००० यो0
सात राजू
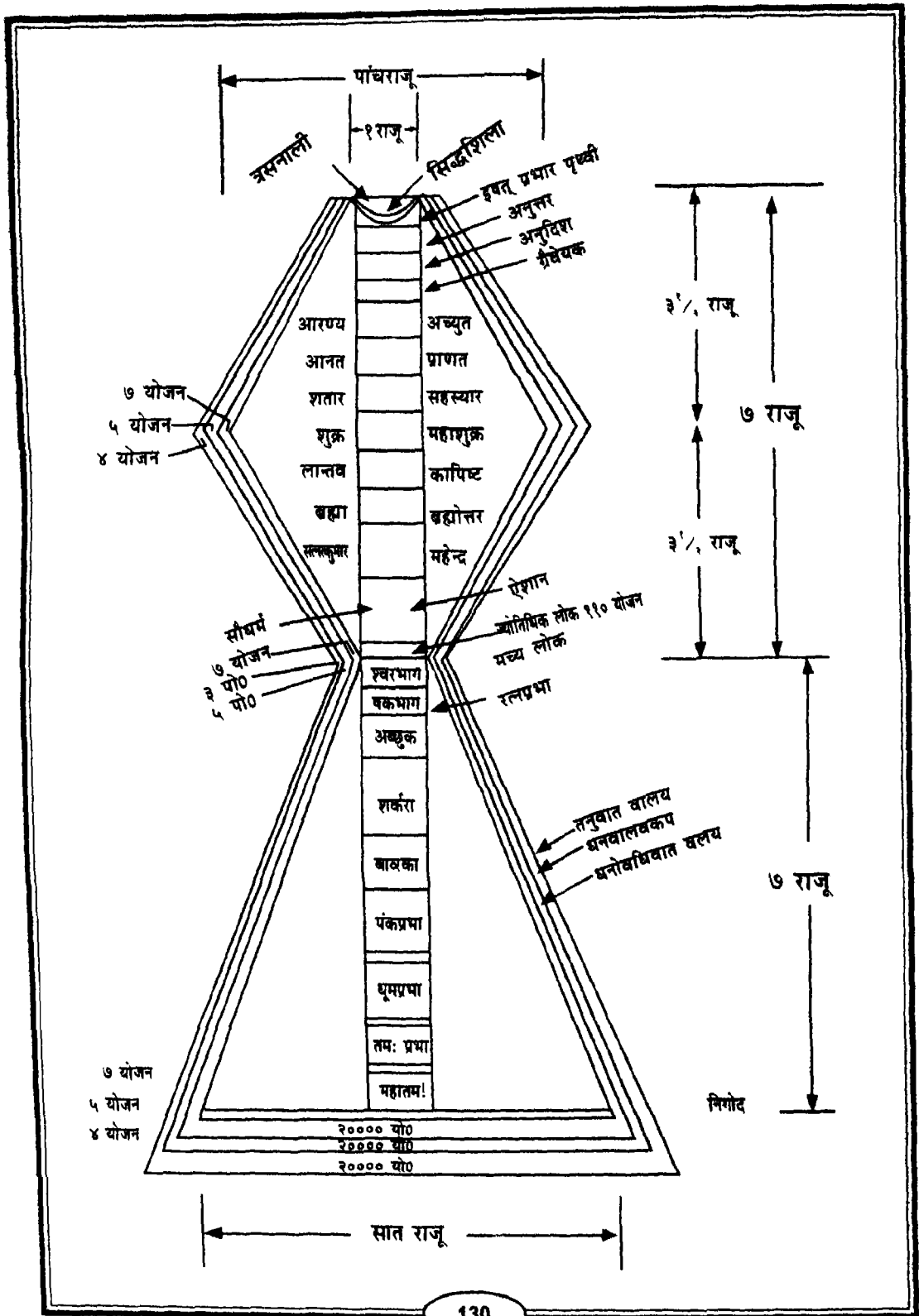
(श्री शिवलाल कृत)

रत्न तीन सम्यक्त्व पुनि, ज्ञान बोधिका अर्थ।
साधन मिलना धर्म का, कहीं होत यह अर्थ॥
यहां ज्ञान ही मुख्य है, अन्य अर्थ है गौण।
ज्ञान बिना सद्धर्म को, पहचानेगा कौन॥
बोधि रत्न दोउ तुल्य है, इनमें धर्म समान।
रत्नों में द्युति मुख्य है, मुख्य बोधि में ज्ञान॥
पड़ अगाध भवकूप में, भटकत फिरे हमेशा।
बोधि रत्न पावै कहाँ, जहं माया का देश॥

रत्नत्रय (सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक् चारित्र) को धारण करना ही ज्ञान कहा गया है। इसके बिना ज्ञान अधूरा है, चाहे जीव कितनी भी धर्म साधना कर ले यदि उसे रत्नत्रय की प्राप्ति नहीं हुई तो वह ज्ञान सम्यक् नहीं कहलाता है। यहाँ सम्यक् ज्ञान ही मुख्य है अन्य सब प्रकार के धर्म को गौण कहा गया है वैसे तो बोधि और रत्नत्रय दोनों ही धर्म समान हैं किन्तु सभी रत्नों में रत्नत्रय ही मुख्य रत्न है। जीव इस संसार रूपी गहरे कुऐं में भटकता रहता है इस मोह माया में उसे कुछ भी याद नहीं रहता। मनुष्य देह बड़ी कठिनाई से प्राप्त हुई है। इसको न खोना चाहिए और रत्नत्रय को धारण करना चाहिए।

(श्री जुगलकिशोर युगल कृत)

जागे मम दुर्लभ बोधि प्रभो, दुर्नय तम सत्वर टल जावे।
बस ज्ञाता दृष्टा रह जाऊँ मद मत्सर मोह विनस जावे॥

जैसे समुद्र में गिरा हुआ रत्न पाना अत्यन्त दुर्लभ है, उसी प्रकार संसार समुद्र में भटके हुए को मनुष्य जन्म का पाना अत्यन्त दुर्लभ है, ऐसा निश्चित करके तुम मिथ्यात्व और कषाय को छोड़ कर बस ज्ञाता और दृष्टा बन जाओ और यही हमारी आत्मा का स्वभाव है।

(श्री दौलतराम जी कृत)

अन्तिम ग्रीवक लौं की हद, पायो अनन्त विरियाँ पद।
पर सम्यग्ज्ञान न लाध्यौ, दुर्लभ निज में मुनि साधौ॥

अनादि काल से उसने अनन्त बार नव ग्रैवेयक के अहमिन्द्र पद को भी प्राप्त कर लिया किन्तु समीचीन ज्ञान एक बार भी इसे प्राप्त नहीं हुआ। अति कठिनाई से प्राप्त होने वाले

सम्यग्ज्ञान को तो निर्ग्रन्थ वीतरागी रागी साधु ही अपनी आत्मा में प्राप्त कर पाते हैं ऐसा विचार करना ग्यारहवीं बोधिदुर्लभ भावना है।

सार नर देह सब कारज कौ जोग येह।
यह तो विख्यात बात बेदन मैं बँचै है।
तामैं तरुनाई धर्म से वन को समै भाई।
सेये तव विषै जैसे माखी मधु रचै है।।
मोहमद भोये धन-रामाहित रोज रोये।
यौंही दिन खोये खाय कोदौं जिम मचै हैं।
अरे सुन बौरे! अब आये सीस धीरे अजौं।
सावधान होरे नर नरक सौं बचै हैं।।

शास्त्रों में कही गई यह बात अत्यन्त प्रसिद्ध है कि मनुष्य देह ही सर्वोत्तम है, यही समस्त अच्छे कार्यों के योग्य है, उससे भी इसकी युवावस्था धर्म सेवन का सर्वश्रेष्ठ समय होता है परन्तु हे भाई! ऐसे समय में तुम विषय सेवन में इस प्रकार लिप्त रहे, मानों कोई मक्खी शहद में लिप्त हो। हे भाई! मोह रूपी मदिरा में डूब कर तुम निरन्तर कंचन और क्रामिनी के लिए रोते रहे- अपार कष्ट सहते रहे और अपने अमूल्य दिनों को तुमने व्यर्थ ही इस प्रकार खो दिया, मानो कोदों खाकर मस्त हो रहे हो। अरे नादान! सुनो अब तो सिर के बाल सफेद हो गये हैं इसलिए सावधान होकर आत्मकल्याण कर लो ताकि नरकादि कुगतियों से बच सको।

दुर्लभ है निगोद से थावर, अरुत्रस गति पानी।
नरकाया को सुरपति तरसे सो दुर्लभ प्राणी।।
उत्तम देश सुसंगति दुर्लभ, श्रावक कुल पाना।
दुर्लभ सम्यक् दुर्लभ संयम, पंचम गुण ठाना।।
दुर्लभ रत्नत्रय आराधन, दीक्षा का धरना।
दुर्लभ मुनिवर को व्रत पालन शुद्धभाव करना।
दुर्लभ तै दुर्लभ है चेतन, बोधिज्ञान पावे।
पाकर केवलज्ञान नहीं फिर, इस भाव में आवे।।

अनादि से यह जीव निगोद में रहा वहाँ एक बार में 18 बार जन्म मरण किया। वहाँ से निकलना दुर्लभ है लेकिन कुछ पुण्य उदय से त्रस पर्याय पायी। त्रस नाली में दो हजार सागर से कुछ अधिक समय घूमने को मिला। उसमें भी कभी दो इन्द्रिय, त्रिन्द्रिय, चौइन्द्रिय, पंचेन्द्रिय हुआ, असैनी हुआ। पुण्य के उदय से पंचेन्द्रिय सैनी हुआ। लेकिन वहां भी पूर्ण संयम नहीं धारण कर

सका। नरकाया को स्वर्ग के देव भी तरसते हैं। इन दो हजार सागर के समय में 48 भव मिले जिसमें 16 भव स्त्रीपर्याय के 24 भव नपुंसक पर्याय और 8 भव पुरुषपर्याय के मिलते हैं। इसलिए पर्याय धारण करके बड़ी दुर्लभता से पुरुष पर्याय मिली इसे पाकर भोगों में गवाँ दिया और चेतन ये सोने चाँदी की धूल अनन्त बार मिली। सुन्दर से सुन्दर रूप भी मिला स्वर्ग की देवागंना के सुख भी मिले और कहाँ तक कहा जाय। चक्रवर्ती, नारायण, प्रतिनारायण, बलभद्र भी बने। भाई! बिना आत्मा की अनुभूति में भटकता फिरा। मनुष्य पर्याय पाकर दुर्लभता से सम्यक् भाव होते हैं। सम्यक् भाव होने पर संयम भाव होना दुर्लभ है। संयम भाव में प्रथम कोटि का श्रावक बनना दुर्लभ है। श्रावक के तीन भेद हैं। 1. पाक्षिक 2. नैष्ठिक 3. साधक।

इनमें पाक्षिक श्रावक बनना दुर्लभ है उससे दुर्लभ है नैष्ठिक श्रावक और नैष्ठिक श्रावक से दुर्लभ है साधक का बनना। साधक क्षुल्लक को कहते हैं। इससे दुर्लभ है मुनिव्रत धारण करना। मुनि या श्रावक मनुष्य पर्याय में ही बन सकता है। महाव्रत का पालन करना कर्मों को काट कर मोक्ष पाना दुर्लभ है। मनुष्य पर्याय पाकर संयम जरूर धारण करना चाहिए वरना दो हजार सागर से कुछ अधिक समय पूर्णकर फिर निगोद जाना पड़ेगा।

धन कण कंचन राज सुख, सबै सुलभ कर जान।
दुर्लभ है संसार में एक यथारथ ज्ञान।।

एक समय की बात है कि ब्रह्मा जी आयु बाँट रहे थे। सबसे पहले गधे से कहा तुम्हारी आयु चालीस साल निश्चित कर दी। कम बोझा ढोना, कभी चारा मिल जाय तो खा लेना अन्यथा भूखे रहना। गधा बोला मुझे तो बीस साल आयु चाहिए। ब्रह्मा जी ने बीस साल अपने पास रिजर्व कर लिए और गधे को बीस साल दे दी। इसके बाद कुत्ते से कहा तुम्हारी आयु चालीस साल और काम मालिक की निगरानी करना समय पर किसी ने टुकड़ा डाल दिया तो खा लिया अन्यथा नहीं, सभी की ताड़ना सहना। कुत्ता बोला मेरी चालीस साल आयु ज्यादा है बीस साल कर दीजिए। ब्रह्माजी ने बीस साल रिजर्व में रखकर बीस साल आयु कुत्ते को दे दी। अब उल्लू का नम्बर आया उल्लू से भी ब्रह्मा जी ने यही कहा कि तुम्हारी आयु चालीस साल और काम आँख बन्दकर बैठे रहना। तब उल्लू बोला चालीस साल तो ज्यादा है मुझे तो बीस साल ही दे दो। तब ब्रह्मा जी ने फिर बीस साल रिजर्व में रखकर बीस साल उल्लू को दे दिये। अन्त में मनुष्य से कहा कि तुम्हारी आयु चालीस साल और कोठी बंगले कूलर में, पंखों में तथा सुन्दर स्त्रियों के भोग भोगना, रबड़ी, मलाई, दूध, घी, मेवा, मिष्ठान खूब खाना। सबसे उत्तम है संयम धारण करना। यह सब चालीस साल की आयु में कर सकते हो तब मनुष्य बोला कि चालीस साल कम है। तब ब्रह्मा जी बोले कि मेरे पास बीस साल गधे की, बीस साल कुत्ते की और बीस साल उल्लू की आयु रखी है वह तुझे दे देते हैं। वैसे वास्तविक आयु तो मनुष्य की चालीस साल परन्तु तृष्णा

वश मनुष्य चालीस से साठ साल तक गधे की तरह बोझा ढोकर जीवन बिताता है दिनरात कुटुम्ब की सेवा करना, बोझा ढोना, समय पर भोजन मिलना। इसके आगे 20 साल कुत्ते की आयु जैसी आयु है। सारे परिवार की रक्षा करना, सब की ताड़ना सहना, कभी टुकड़ा मिल गया तो मिल गया नहीं तो भूखा भौकता रहा और 80 साल के बाद उल्ले की आयु जैसी आयु है। उल्लू की तरह आँखे बन्द कर बैठा रहता है। इस प्रकार मनुष्य की वास्तविक आयु चालीस साल है जिसमें समीचीन पुरुषार्थ कर मनुष्य अपना कल्याण कर सकता है। बाकी तो गधा, कुत्ता, उल्लू का जीवन जीना होता है।

दृष्टान्त– श्रीमान् श्रेष्ठी वीर्य सागरदत्त की धर्म पत्नी सागरदत्ता की कोख से कन्यारत्न ने जन्म लिया पिता ने नाम रखा सरला, वास्तव में वह सरला ही थी। जब वह पाँच साल की हुई तो गुरुकुल में शिक्षा के लिए भेज दिया जब सरला शिक्षित होकर घर पर आयी और माता-पिता को नमस्कार करके विनय सहित माता के पास बैठ गई उसके हृदय में धर्म की भावना, विनय शीलता कूट-कूट कर भरी थी। यद्यपि वह शरीर से अभी बालिका थी परन्तु विचारों में प्रौढ़ और गम्भीर थी। उसकी गम्भीर और शान्त मुद्रा को सागरदत्त बार-बार देखता था परन्तु उसके नेत्र तृप्त नहीं हो रहे थे। उसकी युवावस्था को देखकर उसके हृदय में सरला की शादी करने के विचार उत्पन्न हुए। ठीक ही है लड़की कितनी भी सुन्दर, विनय शील मन मोहक क्यों न हो उसको दूसरे को देना ही पड़ता है। चक्रवर्ती की लड़की को भी दूसरे के घर जाना पड़ता है।

सागरदत्त ने अपनी प्यारी पुत्री का विवाह रामदत्त के साथ कर दिया। जब प्यारी पुत्री जन्म देने वाली माता-पिता को छोड़कर जाने लगी तो उसका दिल मातृ-पितृ प्रेम के वियोग से भर आया। नेत्रों से अश्रु विन्दु टपकने लगे। उसका मन विषयवासना को धिक्कारने लगा रह-रहकर हृदय में लहरे उठने लगी। अहो सरला के लिए माता-पिता को छोड़कर कहाँ जाना पड़ रहा है वे ही महिलायें धन्य हैं जिन्होंने चन्दना, अनन्तमति आदि के समान विषय वासनाओं पर लात मार कर आत्म कल्याण किया। मैं सब कुछ जानती हूँ फिर भी मोह के वशीभूत होकर दुख की गति में गिरने जा रही हूँ। क्यों कि शादी करना तो वरवादी है एक कवि कहता है:–

फूलो-फलो फिर रहयो, आज हमारो विवाह।
मूर्ख गाय बजाय के, बेड़ी पहरन जाय।।

विवाह के बन्धन में बंध जाना पराधीनता है। दुख का कारण है। परन्तु चारित्र मोहनीय कर्म के उदय से यह प्राणी संयम के मार्ग में चलने के लिए समर्थ नहीं है इसलिए अनर्गल प्रवृत्ति को रोकने के लिए तथा पंचेन्द्रिय के विषयों की प्रवृत्ति को सीमित करने के लिए विवाह करने का आदेश है। कुछ क्षण विचार कर संसार की असारता को जानने वाली सरला ने माता-पिता के चरण स्पर्श करके नमस्कार किया। माता पिता ने आनन्दांश्रु के साथ पुत्री को छाती से लगाकर मस्तक पर हाथ फेर कर मस्तक का चुम्बन किया।

माता-पिता की सत् शिक्षा- बेटी बूढ़े माता-पिता को छोड़कर पराये घर की रानी बनने जा रही है वहाँ सभल-सभल कर रहना। अपने विनय, नम्र और सद् व्यवहार के द्वारा माता-पिता समझकर ससुर और सास को प्रसन्न करना और ननद को अपनी बहन समझना, देवर को भाई साहब कर दुलार करना अपने से बड़ी जेठानी का सत्कार करना। अपने घर में कभी कलह नहीं करना पति की सेवा करना क्योंकि सच्चरित्र महिलाओं के लिए पति की सेवा के बराबर कोई दूसरा योग्य कार्य नहीं है।

पति भक्त नारियाँ अनायास सर्व सिद्धान्तों को प्राप्त कर लेती है इसलिए बेटी स्वप्न में भी पति का अनादर नहीं करना प्रात: काल उठकर उनके चरणों में नमस्कार किया करना और रात्रि के समय उनके चरणों को दबाकर सोना। पति की आय के अनुसार व्यय करना। घर पर आये अतिथि का सत्कार करना। प्यारी पुत्री अपने व्यवहार से सबको प्रसन्न करना।

देव पूजा, गुरु की उपासना, स्वाध्याय, संयम, तप और दान ये गृहस्थ के षट् आवश्यक हैं। उनका पालन करना, अपने शील और संयम का पालन करने के लिए सीता, अंजना, चन्दना, अनन्त मति बनना।

जिस प्रकार नमक के बिना भोजन की, आँख के बिना मुख की, न्याय के बिना राज्य की, सत्य के बिना कंठकी, दान के बिना हाथ की, सूर्य के बिना दिन की चन्द्रमा के बिना रात की, सुगन्ध के बिना फूल की और पुत्र के बिना कुल की शोभा नहीं है उसी प्रकार शील के बिना नारी की शोभा नहीं है। तलवार की शोभा ढाल से है नारी की शोभा शील के श्रृंगार से है। यदि तू अपने शील व संयम को सुरक्षित रखेगी तो देव तेरी चरणों की धूल को मस्तक पर चढ़ा कर कृत्य-कृत्य हो जायेंगे।

सरला के पिता ने भी पुत्री को धर्मोपदेश और सत शिक्षा दी और कहा कि बेटी कभी घर की बात मत करना। सास व ससुर की सेवा अपने सिर पर धारण करना। कटु वचनों के द्वारा किसी का दिल न दुखाना, माता-पिता की आज्ञा को शिरोधार्य करके सरला अपनी ससुराल में चली गयी उसके घर में प्रवेश करते ही घर का वातावरण स्वर्ग के समान बन गया। उसने अपने सद्व्यवहार से सबको अपना बना लिया। यद्यपि घर में सांसारिक भोगों की कमी नहीं थी पंचेन्द्रिय के सब विषय सुलभ थे। परन्तु घर के सारे सदस्य धार्मिक क्रिया में अनभिज्ञ थे। निश दिन पंचेन्द्रिय भोगों में लीन रहते थे। उनकी इस प्रकार की क्रिया से सरला का मन खेद खिन्न हो गया।

उसके उपायविचय नामक धर्मध्यान की भावना जागृत हुई अर्थात् यह संसारी प्राणी अन्याय मार्ग को छोड़कर सन्मार्ग में कैसे लग जावे। इस प्रकार का चिन्तन करती हुई सरला का प्रयत्न चालू था। सर्व प्रथम उसे कुछ कठिनाई का सामना करना पड़ा। परन्तु धीरे-धीरे उसने अपने पति,

जिठानी, जेठ को धार्मिक बना लिया। उसकी सास अभी जिनधर्म के तत्त्वों में संशयालु थी और ससुर को धर्म का नाम विष के समान प्रतीत होता था।

एक दिन उस सेठ के घर पर दिगम्बर मुनिराज का आगमन हुआ। साधु महाराज को आते देखकर सरला ने उनका पड़गाहन कर लिया तथा बड़ी भक्ति से आहार देकर अपने को धन्य मानने लगी। मुनि महाराज की युवावस्था और चेहरे के तेज से सरला के हृदय में कई प्रश्न उठ आये। उसने धर्म भाव से पूछा मुनिवर अभी तो सवेरा ही है इतनी जल्दी क्यों कि? बाल मुनि ने उसकी धार्मिक रुचि देखकर उत्तर दिया बहन मुझे काल का पता नहीं चला।

ससुर अभी दुकान से लौटे ही थे। मुनिराज को घर में देखकर प्रथम तो क्रोध आया फिर कौतुक वश वे किवाड़ के पीछे जाकर खड़े-खड़े इनका वार्तालाप सुनने लगे, दोनों की बात सुनकर उनका दिमाग चक्कर खा गया। उसने मन ही मन सोचा दोनों कितने मूर्ख हैं सूर्य सिर पर चढ़ आया है और बहु कह रही है अभी तो सवेरा ही है तथा इसका गुरु उत्तर दे रहा है कि मुझे समय का पता नहीं चला।

दोनों के प्रश्नोत्तर अभी चल रहे थे। मुनिराज ने सरला से पूछा बहन! तुम्हारे पति की उम्र कितनी है। सरला ने कहा 5 वर्ष। पुन: पूछा तुम्हारी जेठानी की आयु कितनी है? उत्तर मिला दो वर्ष। तुम्हारे जेठ की कितनी आयु है? एक साल फिर मुनिराज ने पूछा तेरी सास की कितनी आयु है। सरला ने आत्मविश्वास के साथ कहा कि वे तो अभी झूले में ही झूल रही हैं। पुन: मुनिराज ने कहा तुम्हारे ससुर की कितनी आयु है तो उत्तर मिला कि उनका तो अभी जन्म नहीं हुआ। मुनिराज ने पूछा- बहन! ताजा खाते हो कि बासी? सरला ने कहा गुरुदेव! हम लोग बासी खाते हैं और भूखे सोते हैं। इन दोनों की असंगत वार्तालाप सुनकर सेठ के हृदय मे तूफान उठ गया। एक-2 शब्द उसे शूल के समान चुभने लगे। उसे यह बात बहुत बुरी लगी कि प्रतिदिन मेवा मिष्ठान बनते हैं और बहु कह रही है हम तो बासी खा रहे हैं और भूखे सो रहे हैं। उसके आश्चर्य और क्रोध का ठिकाना न रहा जब उसने यह कहते सुना कि उसकी सास झूले में झूल रही है और ससुर का जन्म नहीं हुआ जबकि हम दोनों की आयु 60-65 साल की है। उसको बहु पर इसलिए क्रोध आ रहा था कि उसने आज सेठ की इज्जत खाक में मिला दी और बाल मुनि पर इसलिए कि साधु होकर उन्हें ऐसे प्रश्न नहीं पूछना चाहिए।

अन्त में सेठ दाँत पीसता हुआ मुनिराज और बहु के पास आया और आँख लाल करके बोला कि हे महात्मन्! घर की मान मर्यादा को खाक में मिला देने वाली नादान छोकरी के साथ वार्तालाप करके आप अपना समय व्यर्थ में क्यों नष्ट कर रहे हैं। आप तो समझदार हैं इसलिए इस मूर्ख के साथ वार्तालाप मत करें। मुनिराज ने कहा सेठ तुम्हारी बहु मूर्ख नहीं बहुत विदुषी है, शास्त्रज्ञ है। क्रोध से तमतमाते सेठ ने कहा इसने कौन सी चतुरता की बात कही- दस बज

रहे हैं और यह कह रही है कि अभी तो सवेरा है। इसका ससुर 70 का इसके सामने उपस्थित है और यह कह रही है अभी पैदा ही नहीं हुआ। आप ही बताइये कि सास ससुर के बिना इसके पति का जन्म कैसे हुआ हमारे घर में प्रतिदिन पकवान बन रहे हैं बासी कैसे खायेंगे और भूखे रहने का तो सवाल ही नहीं उठता।

मुनिराज ने एक-एक सवाल का उत्तर देते हुए कहा सेठ! तेरी बहु ने मेरी युवा अवस्था तेजस्विता देखकर कहा था अभी तो सवेरा है। अतः इस उभरती हुई अवस्था में ही सन्यास जैसे कठोर मार्ग का अनुसरण कैसे कर लिया। मैंने इस बहन के रहस्य भरे भाव को देखकर उत्तर दिया कि काल अर्थात् मृत्यु का कोई भरोसा नहीं है। समय अपना ग्रास बनायेगा। इसके बाद मैंने तत्त्वज्ञान की दृष्टि से और परीक्षा लेने की दृष्टि से प्रश्न पूछे कि तुम्हारे घर में धर्म रुचि वाला कोई है कि नहीं। क्योंकि जो मानव धार्मिक प्रवृत्ति वाला होता है उसका जन्म ही सार्थक है नहीं तो उसका जन्म पशु के समान है। भोजन करना निद्रा लेना कलह करना, मैथुन संज्ञा यह तो पशु के समान है। धर्माचरण के द्वारा ही मानव और पशु में भेद है इसलिए मैंने तुम्हारी पुत्रवधु से तुम्हारे बारे में प्रश्न पूछे थे उसके उत्तर से ज्ञात हुआ कि तुम्हारा छोटा लड़का पाँच साल से धर्म रुचि करता है तुम्हारी बड़ी पुत्रवधु दो साल से तथा बड़ा पुत्र एक साल से धर्म में लगा है। तुम्हारी पत्नी को अभी धर्म पर अटल विश्वास नहीं है। धार्मिक क्रिया करती है परन्तु देखा देखी संशय के पालने में झूल रही है। तुम तो धर्म के नाम से अनभिज्ञ हो दिन रात परिग्रह जुटाने और खाने पीने में मस्त हो इसलिए तुम्हारा जन्म नहीं हुआ है। ताजा खाते हो या बासी इसका तात्पर्य है कि तुम्हारे घर में कोई दान, पूजा, संयमाचरण आदि अनुष्ठान होते हैं कि नहीं। इसका उत्तर था जो पूर्व भव में उपार्जन किया हुआ पुण्य है उसके फल को भोग रहे हैं अर्थात् बासी खा रहे हैं और भूखे सो रहे हैं।

बालमुनि के इस रहस्य पूर्ण मधुर वार्तालाप सुनकर सेठ के क्रोध का ज्वर उतर गया और मुनिराज के चरणों में गिर कर क्षमा याचना करने लगा हम लोग वास्तव में बासी खा रहे हैं। मानव जैसे उत्तम मन को पाकर पशु के समान आचरण कर रहे हैं। मानव जैसे उत्तम तन को पाकर पशु के समान आचरण कर रहे हैं। विषय वासनाओं के कीड़े बने हुए हैं। इसलिए वास्तव में मेरा अभी जन्म नहीं हुआ है। अब मेरा हृदय पश्चाताप से जल रहा है आपके सदुपयोग रूपी ज्ञान ने मेरे नेत्र खोल दिये। मुनिराज ने कहा कि अभी समय है। गई सो गई अब बचे हुए क्षण अमूल्य हैं अपना कल्याण कर।

सारांश यह है कि इस लोक में जीव का निगोद से निकलना और त्रस पर्याय का प्राप्त होना उसी प्रकार है जैसे समुद्र में खोया हुआ रत्न का प्राप्त होना और इतनी दुर्लभ पर्याय प्राप्त कर उसे पंचेन्द्रिय के विषय भोगों में खो देना, रत्नत्रय रूप बोधि ज्ञान को प्राप्त न करके बोधिदुर्लभ

भावना को न भाना मूर्खता है। अत: जीव को अपना आत्म कल्याण करने के लिए बोधिदुर्लभ भावना का चिन्तन करना चाहिए यही श्रेयस्कर और नरपर्याय की सार्थकता है।

12. धर्म भावना– धर्म के स्वरूप का चिन्तन करना। धर्म ही इस लोक में सुखों को देने वाला है और धर्म ही दु:ख से छुड़ा कर मोक्ष के सुख को देने वाला है ऐसा विचार बार-बार करना, दशलक्षण धर्म तथा रत्नत्रय धर्म का चिन्तन करना धर्म भावना है।

पं॰ दौलतराम जी छहढाला में लिखते हैं कि–

मुनि सकल व्रती बड़भागी, भव भोगन ते वैरागी।
वैराग्य उपावन माई, चिंतो अनुप्रेक्षा भाई।।
इन चिंतत सम सुख जागे, जिमि ज्वलन पवन के लागे।
जब ही जिय आतम जाने, तब ही जिय शिव सुख ठाने।।

आचार्यो ने कहा है–

जो जाणदि पच्चक्खं तियाल - गुण-पज्जएहिं संजुत्तं।
लोयालोयं सयलं सो सव्वण्हू हवे देवो।।

जो त्रिकालवर्ती गुणपर्यायों से संयुक्त समस्त लोक और अलोक को प्रत्यक्ष जानता है वह सर्वज्ञ देव है। सर्वज्ञ का अर्थ है सबको जानने वाला और सबसे मतलब है भूत, भावी और वर्तमान कालीन गुण और पर्याय सहित समस्त लोक और परलोक। अत: जो समस्त लोक और अलोक में वर्तमान सब द्रव्यों को और उनकी सब पर्यायों को जानता है वही सर्वज्ञ है वही वास्तव में देव है। क्योंकि वह अनन्त चतुष्टय स्वरूप परमानन्द में क्रीडा करता है। कहा भी है– जो अनेक प्रकार के समस्त चराचर द्रव्यों को तथा उनके सब गुणों को और उनकी भूत भावी और वर्तमान सब पर्यायों को एक साथ प्रति समय पूरी तरह से जानता है उसे सर्वज्ञ कहते हैं। ऐसे सर्वज्ञ जिनेश्वर महावीर स्वामी को नमस्कार हो।

(श्री शिवलाल कृत)

जिससे परभव सुधरता इस भव में कल्यान।
वही धर्म है परमहित, अस आगम अभिधान।।
चारों ही पुरुषार्थ में धर्म बड़ा सरदार।
मूल भूत सब तत्व का महिमा अमित अपार।।
कामधेतु चिन्ता रतन, कल्पवृक्ष सुख होत।
सब सेवक है धर्म के बिन मांगे फल दोत।।
धर्म भावना के लिए जीव धर्म थिर होय।
धर्म कार्य में रत रहैं धर्म च्युत नहीं होय।।

आगमों में कहा है कि जिससे परभव सुधरता है एवं वर्तमान भव में कल्याण होता है, ऐसा परमहितकारी धर्म होता है। धर्म कामधेनु, चिन्तामणि और कल्पवृक्ष के समान है। जिससे बिना मांगे ही उस पर श्रद्धान करने मात्र से सब कुछ प्राप्त हो जाता है। इसलिए व्यक्ति को धर्म भावना पाकर, उसमें लगना चाहिए।

(श्री जुगलकिशोर युगल कृत)

चिर रक्षक धर्म हमारा हो, हो धर्म हमारा चिर साथी।
जग में न हमारा कोई था, हम भी न रहे जग के साथी।

जो सदा हमारी रक्षा करता है वह केवल धर्म ही है यही धर्म सदा हमारे साथ रहता है और कोई नहीं। धन स्त्री पुत्रादिक कोई साथ नहीं देता यदि इस संसार में कोई साथ जाता है तो वह केवल धर्म ही है धर्म ही केवल ऐसा है जो चिरकाल तक साथ देता है अन्य कोई नहीं।

(श्री दौलतराम जी कृत)

जे भाव मोहतैं न्यारे, दृग ज्ञान व्रतादिक सारे।
सो धर्म जबै जिय धारै, तब ही सुख अचल निहारै॥

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र आदि जो मोह से भिन्न प्रकार के भाव हैं वे ही धर्म कहलाते हैं, जीव जब ऐसे धर्म को धारण करता है तब ही अविनाशी सुख को प्राप्त कर पाता है ऐसा विचार करना बारहवीं धर्म भावना है।

निश्चय से धर्म वस्तु का स्वभाव है। व्यवहार में रत्नत्रय स्वरूप तीन प्रकार, उत्तम क्षमादि दशलक्षण रूप दस प्रकार व अहिंसा ही धर्म है। आत्मा का शुद्ध निर्मल स्वभाव ही अपना ध र्म है इसकी प्राप्ति के बिना यह जीव अनादि काल से संसार परिभ्रमण करता रहता है। वह ध र्म ही संसार सागर से निकाल कर मोक्षस्थान में पहुँचाने वाला है।

धरम करत संसार सुख, धरम करत निरवान।
धरम पंथ साधे बिना, नर तिर्यंच एक समान॥

धर्म करने से संसार का सुख भी मिलता है जैसे किसान अनाज के लिए खेती करता है लेकिन भूसा स्वयंमेव ही मिल जाता है। जितना भी हम उपाय करते हैं वह सभी निर्वाण के लिए है। लेकिन संसार के भोग तो भूसे की तरह स्वतः ही मिल जाते हैं। धर्म के बिना मनुष्य तिर्यंच के समान है। हर समय धर्म का चिंतन करते रहो। भगवान की आज्ञा को प्रमाण मान कर तद्रूप पालन के उपाय करते रहो निरन्तर कर्म शुत्र को दूर करने और मोक्ष के कारण सात तत्त्व- जप, तप, शील, संयम नियम, व्रतादि का चिन्तन करो। ज्ञानावरणीय आदि आठ द्रव्यकर्म, क्षेत्र काल

भाव के निमित्त विपाक अर्थात् फल हैं, जिनसे आत्मा की नाना प्रकार की सुख दु:ख आदि रूप अवस्थाएं होती हैं। उसका निज स्वरूप से भिन्न उपाधि कर्म जनित दु:ख विचारते रहना। तीन लोकों को विचार कर इसमें स्थित पदार्थों का और पंच परमेष्ठी व निज आत्म स्वरूप का चिन्तन करना ही धर्म भावना है।

निश्चय से आत्मा का स्वभाव ही धर्म है और उस का चिन्तन ध्यान करने के आचार्यों ने चार भेद बताये हैं। पिंडस्थ, पदस्थ, रूपस्थ और रूपातीत।

1. **पिंडस्थ ध्यान-** जीव का आकार विचार कर दृष्टि को संकोच कर जम्बूद्वीप का विचार करना। भरत क्षेत्र, आर्यखण्ड, निजदेश, नगर गृह फिर अपने शरीर आदि का विचार करना पिंडस्थ ध्यान है।
2. **पदस्थ ध्यान–** पंच परमेष्ठी णमोकार मंत्र और किसी गुण आदि का आश्रय ले कर ध्यान करना पदस्थ ध्यान है।
3. **रूपस्थ ध्यान–** समवशरण में चार घातिया कर्म रहित, अनन्त चतुष्टय संयुक्त, सप्तधातु रहित परमौदारिक शरीर में स्थित और अष्टादश दोष रहित गंध कुटी में स्फटिक मणिसिंह के मध्य अत्यन्त कोमल पवित्र, अनुपम, शतदल वाले रक्त की कणिका के मध्य में चार अंगुल अन्तरिक्ष में शान्त स्वरूप जिनेन्द्र भगवान स्थित हैं। अपने मन में ऐसा अरहन्त भगवान का स्वरूप क्रमश: मुक्त होने तक विचारना रूपस्थ ध्यान है।
4. **रूपातीत ध्यान–** अष्टकर्म और औदारिक शरीर रहित शरीर से किंचित न्यून पुरुष के आकार मात्र धारक लोकाग्र भाग में स्थिति अनन्त गुणों के भण्डार से सिद्ध परमात्मा का जो ध्यान है वह रूपातीत ध्यान है। इनके विपरीत बिना सम्यक्त्व के तप करना धर्म नहीं तीर्थ को जाना धर्म नहीं, मन्दिर में घंटा बजाना धर्म नहीं, नहाना धोना धर्म नहीं, नग्न रहना धर्म नहीं, कहा है–

यह नहाना धोना तीर्थ जाना धर्म ना ही जप जपा।
तन नग्न रहना धर्म ना ही धर्म ना ही तप तपा॥
वर धर्म निज आतम स्वभावी इस बिना सब निष्फला।
बुधजन निज धर्म धार लीना तीना कीना सब भला॥
मिथ्यादर्शन अरु कुबोधने है जग को लूटा,
राग द्वेष का पोषण जागे सो मजहब झूठा॥
ही स्वच्छ सब पाप करे, सिर कर्ता के लावे,
कोई हिंसक करता से जग में अटकाये॥

वीतराग सर्वज्ञ दोष बिन, श्री जिन की वाणी,
सप्त तत्त्व का वर्णन जाने सबको सुखदानी।
इनका चिन्तवन बार-बार कर श्रद्धा उर धरना,
मंगत इसी यतन से इक दिन भव सागर तरना॥

सम्यक् दर्शन, ज्ञान चारित्र आदि मिथ्यात्व या मोह से भिन्न जो भाव हैं वे तो धर्म हैं जीव जब ऐसे धर्म को ग्रहण करता है, तब अचल सुख पाता है। ऐसे धर्म को भाना चाहिए।

चिर रक्षक धर्म हमारा हो, हो धर्म हमारा चिर साथी।
जग में न हमारा कोई था, हम भी न रहे जग के साथी॥

अनादि से धर्म हमारी रक्षा करे, धर्म हमारा साथी चिरकाल तक रहे। इस संसार में धर्म के सिवाय कोई भी साथी नहीं है। धर्म संसार के दु:खों से निकाल सकता है ऐसा चिन्तन करना चाहिए। इससे विपरीत आचरण करने वालों, इस सत्य तथ्य को न समझने वालों का बहुत ही सुन्दर वर्णन पं० बनारसी दासजी ने अपने सवैये में इस प्रकार किया है–

भेष धरि लोकनिकौं बंचै सो धरम ठग,
गुरु सो कहावै गुरुवाई जाहि चहिये।
मंत्र तंत्र साधक कहावै गुनी जादूगर॥
पंडित कहावै पंडिताई जामैं लहिये॥
कवित्त की कला मैं प्रवीन सो कहावै कवि,
बात कहि जानै सो पवार गीर कहिये।
एतौ सब विषै के भिखारी मायाधारी जीव,
इन्हकौं विलोकि कै दयाल रूप रहिये॥

जो वेष बनाकर लोगों को ठगता है वह धर्म ठग कहलाता है, जिसमें लौकिक बड़प्पन होता है वह बड़ा कहलाता है, जिसमें मंत्र-तंत्र साधने का गुण है वह जादूगर कहलाता है जो ज्ञानवान् है वह पण्डित कहलाता है, जो कविताई में होशियार है वह कवि कहलाता है जो बातचीत में चटपटा है, वह व्याख्याता कहलाता है। ये सब कपटी जीव विषय के भिक्षुक हैं, विषयों की पूर्ति के लिए याचना करते फिरते हैं, इनमें स्वार्थ-त्याग का अंश भी नहीं है। इन्हें देखकर दया आना चाहिए।

धर्म का प्रभाव

मगध देश में राजगृह नाम का एक नगर था। वहाँ संग्राम-सुर नाम का एक राजा था। उसकी रानी का नाम कनक-माला था। उसी नगर में वृषभ नाम का एक सेठ था, वह धर्मात्मा था। सेठ की स्त्री

का नाम जिनदत्ता था वह भी बहुत धर्मात्मा थी लेकिन वह बाँझ थी। किसी भी उपाय से उसके सन्तान नहीं हुई। एक दिन अवसर पाकर उसने अपने पति से कहा कि नाथ, पुत्र के बिना कुल की शोभा नहीं होती। वंश का उच्छेद हो जाता है इस कारण सन्तान की उत्पत्ति के लिए आपको दूसरा विवाह करना चाहिए। यह सुनकर सेठ ने कहा यह सब भोग विलास अनित्य है। ये भोग जो भोगता है वह विवेक शून्य है। एक बात और भी है, मै 70 साल का हो चुका हूँ यह मेरे धर्म साध न का समय है। यदि मैं ऐसी दशा में विवाह कर लूँ तो लोग मेरी हँसी उड़ायेंगे। इस अवस्था में विवाह करना लोक विरुद्ध भी है। इसलिए मैं विवाह नहीं करुँगा। सेठ का ऐसा निश्चय देख जिनदत्ता ने कहा हे नाथ! अगर भोग के लिए ऐसा करते हैं तो ठीक नहीं है परन्तु सन्तान के लिए कोई दोष नहीं है। इस विवाद से सेठ को हार माननी पड़ी जैसे तैसे उसने अपना विवाह करना स्वीकार कर लिया। इसी नगर में जिनदत्ता के काका की लड़की कनक श्री थी। जिनदत्ता ने अपने काका और काकी से अपने पति वृषभदास के लिए कनकश्री की याचना की। उत्तर में उन दोनों ने कहा कि सौत होते हुए हम अपनी लड़की नहीं दे सकते। जिनदत्ता ने कहा कि आप मेरी चिन्ता मत करे, मैं तो भोजन के समय घर पर आया करूँगी। मेरा घर से वास्ता नहीं रहेगा। कनकश्री घर की मालिकिन रहेगी। तब बन्धुश्री ने उसकी बात मान ली। शुभ मुहूर्त में विवाह हो गया। अब जिनदत्ता मन्दिर में रहने लगी। नववधु कनकश्री तथा वृषभ सेठ घर में सुख से रहने लगे। एक दिन कनकश्री अपनी माँ के पास आयी तब उसकी माँ ने पूछा पुत्री तू अपने पति के साथ सुख से तो रहती है। कनकश्री बोली- मेरा पति तो मेरे से बात भी नहीं करता। तुमने मेरा विवाह सौत के रहते हुए कर दिया है। तब सुख की क्या बात पूछती हो, मेरी सौत ने मेरे पति को लुभा रखा है। वे दोनों जिनमन्दिर में रहते हैं। मैं घर में अकेली पड़ी रहती हूँ। इसलिए मैं दुबली होती जा रही हूँ। कनकश्री ने अपनी माँ को झूठी बात कहकर भर दिया। इसके बाद बंधुश्री के घर पर एक कपाली साधु भिक्षा लेने आया बन्धुश्री ने विचार किया कि मेरा कार्य यह साधु सिद्ध करेगा उसने उसे बहुत पकवान खिलाये और वह रोज उसको खूब पकवान खिलाने लगी। कपाली ने उसकी भक्ति देखकर मन में विचार किया कि मुझे इसका कुछ उपाय करना चाहिए।

एक दिन बन्धुश्री ने कपाली से कहा कि मुझे एक दुःख है, उसका निवारण करो। कपाली बोला मेरे पास बहुत विद्याएं हैं यदि कोई कार्य हो तो मुझे कहिये यह सोचकर बन्धुश्री ने सारा हाल बात दिया कि जिनदत्ता को मरवाना है। कपाली बोला किसी को मार देना तो मेरे बायें हाथ का खेल है मुझे यह भी भय नहीं कि इसमें जीव हिंसा होगी। मैं कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी को श्मशान में विद्या सिद्ध करके जिनदत्ता को मार दूँगा कपाली ने बैताली विद्या सिद्ध कर ली और कहा जो जिनमन्दिर में बैठी है उसे मार आओ। वह किलकारी मार कर जिनदत्ता के पास पहुँची लेकिन जिनदत्ता तो

धर्म में लगी रहती थी धर्म की ऐसी महिमा है बैताली विद्या जिनदत्ता की प्रदक्षिणा लगा कर वापस कपाली के पास चली आई। उसे देखकर कपाली डर कर भागा फिर भी उसने जिनदत्ता को मारने के लिए तीन बार भेजा परन्तु वह तीनों बार लौट आई। धर्म की महिमा ही विचित्र है। चौथी बार कपाली ने कहा जो भी इन दोनों में दुष्ट हो उसे मार दो। वह बेताली जाकर कनकश्री को मार आई। बेताली भी अपने स्थान पर चली गई योगी भी अपने स्थान पर चला गया।

सवेरा हुआ बन्धुश्री प्रसन्न होती हुई अपनी लड़की के घर गई और चारपाई पर पड़ी लाश को देखकर चिल्लाती हुई राजा के पास पहुँची और राजा से कहा मेरी लड़की को जिनदत्ता ने मरवा दिया। यह सुनकर राजा को क्रोध आया और क्रोध में उसने सेठ वृषभ और जिनदत्ता को पकड़ने के लिए सिपाहियों को भेज दिया। वृषभ सेठ और जिनदत्ता को पकड़ने आये सिपाहियों को नगर देव ने वहीं कील दिया। यह बात वृषभ सेठ और जिनदत्ता को मालूम हुई तो उन्होंने प्रण किया कि जब तक यह उपसर्ग दूर नहीं हो जाता तब तक धर्मध्यान में लीन रहेगें। नगर देवता ने उस कपाली को लाकर सारी बाते खोल दीं। बेताली विद्या ने कहा कि जिनदत्ता निर्दोष है। कनकश्री ही पापिन थी मैंने उसे मार डाला यह सुनकर नगर के सभी खुश हुए। जिनदत्ता बड़ी साध्वी थी देवों ने जय-जय कार किया और राजा ने बन्धुश्री का काला मुख करके नगर से बाहर निकलवा दिया। राजा ने विचार किया जिनधर्म में बड़ी शक्ति है जो मैंने साक्षात् देख ली ऐसा निश्चय कर राजा ने जिन चैत्यालय में समाधि गुप्त मुनिराज जो समाधि में बैठे थे उन्हें नमस्कार किया और जिनदत्ता, वृषभ सेठ को भी नमस्कार किया और बैठ गया। मुनिराज से उसने प्रार्थना की कि हे गुरुवर! धर्म प्रभाव से आज वृषभ सेठ व जिनदत्ता का उपसर्ग दूर हुआ। मुनिराज बोले हे राजन्! धर्म के प्रभाव से सब मनोरथ सिद्ध हो जाते हैं संसार में धर्म के सिवाय सब अनित्य है इसलिए धर्म साधन करते रहना चाहिए धन तो पैरों की धूल के समान है यह धर्म का अतिशय देखकर संग्रामसुर राजा ने अपने पुत्र को राज्य देकर उन्हीं मुनिराज के पास दीक्षा ले ली। तुम भी धर्म का चमत्कार देखकर धर्म को ही भावो उसे पाकर जिनदीक्षा धारण करो यही धर्म अनुप्रेक्षा है।

सोलहकारण भावनाओं का स्वरूप

मनुष्य के व्यक्तित्व में भाव का महत्त्व सर्वोपरि है, भाव ही स्वर्ग है और भाव ही नरक। सद्भावों से सद्गति और बुरे भावों से दुर्गति प्राप्त होती है। भावना और भाव पर्यायवाची हैं। अशुद्ध भाव जीव को कर्म परतन्त्र बनाते हैं और शुद्ध भाव उसे कर्म बन्ध से छुड़ाते हैं।

जिस प्रकार जीव भाव करता है तुरन्त उसी प्रकार भाव बंध हो जाते हैं। कलह करते बालक को हिंसा न करने पर भी अपराध दण्ड भोगना पड़ता है। मछियारे द्वारा मछली न पकडने पर भी केवल मछली पकडने के यत्न मात्र से ही हिंसा के बंध के उपरान्त सागरों तक नरकों में दुःख भोगना पड़ता है परन्तु डाक्टर के उपकरणों से रोगी की मृत्यु हो जाने पर भी वह अपराधी नहीं बनता दूषित भावों से ही बन्ध और उत्तम भावों से ही मुक्ति होती है। अतः ऐसा प्रयास करते रहो कि अशुभ भाव न आने पाए। कोई भी जीव भाव के बिना एक क्षण भी नहीं रहता। एकेन्द्रिय निगोद से लेकर सिद्धपर्यन्त तक भाव के बिना न संसारी जीव हैं और न मुक्त। आचार्य उमास्वामी तत्त्वार्थसूत्र के दूसरे अध्याय के प्रथम सूत्र में कहते हैं कि- **औपशमिकक्षायिकौ भावौ मिश्रश्च जीवस्य स्वतत्वमौदयिक पारिणामिकौ च** अर्थात् जीव के औपशमिक और क्षायिक भाव और मिश्र तथा औदायिक और पारिणामिक यह पाँच भाव मित्र भाव हैं अर्थात् यह जीव के अतिरिक्त दूसरे में नहीं होते।

ये भाव संसारी तथा मुक्त में शक्ति अनुसार पाये जाते हैं। मनुष्य को भावों का परिहार करके शुभ और शुद्ध बनाने का यत्न करना ही मनुष्य जीव की शोभा है। भौतिक विचार धारा को बदल कर आध्यात्मिक विचारधारा बनाओ। आगम में आचार्यों ने अनेक पावन भावनाओं को भाने की प्रेरणा दी है जैसे-बारह भावना, सोलह कारण भावना, पंचव्रतों की स्थिरता हेतु प्रत्येक की पाँच-पाँच भावनाएं आदि।

आचार्य उमास्वामी ने तत्त्वार्थसूत्र के सातवें अध्याय के ग्यारहवें सूत्र मे कहा है कि मैत्री प्रमोद, कारूण्य और माध्यस्थ ये चार भावनायें संसार और शरीर के स्वरूप चिन्तन, वैराग्य आदि की भावनाएं हैं। भावनाओं को बार-बार चिन्तन, मनन, स्मरण करने से परिणामों में उज्ज्वलता होती है मिथ्यात्व का अभाव होता है। व्रतों में दृढ परिणाम बनते हैं। अशुभ ध्यान का अभाव होकर शुभध्यान में वृद्धि होती है, संसार शरीर भोगों से वैराग्य होता है।

ये सोलह कारण भावनाएं श्रावक को भी भाने योग्य हैं इसलिए श्रावक सोलह कारण पूजन में इसकी आराधना करता है।

सोलहकारण भावना– सोलहकारण भावना भाने का फल तीर्थंकरपना है। इनके द्वारा ही तीर्थकर प्रकृति का बंध अणुव्रती सम्यग्दृष्टि को होता है, देशव्रती श्रावक को भी होता है तथा

प्रमत्त-अप्रमत्त संयम मुनि को भी होता है। तीर्थंकर प्रकृति सर्वोत्कृष्ट पुण्य प्रकृति है। इससे ऊँची पुण्य प्रकृति तीन लोक में दूसरी नहीं।

तीर्थंकर प्रकृति के बंध का प्रारम्भ कर्मभूमि के मनुष्य पुरूषलिंगधारी के ही होता है, अन्य तीन गतियों में आरंभ नहीं होता है। केवली, श्रुतकेवली के चरणारविंद के समीप में ही होता है। केवली, श्रुतकेवली की निकटता के बिना तीर्थंकर प्रकृति के बंध के योग्य परिणामों की विशुद्धि नहीं होती है। तीर्थंकर प्रकृति का बंध प्रथमोपशम सम्यक्त्व में होता है तथा शेष जो द्वितीयोपशम, क्षयोपशम, क्षायिक सम्यक्त्व वालों को होता है। अविरत, देशविरत, प्रमत्त तथा अप्रमत्त इन चारों ही गुणस्थानों में होता है।

तीर्थंकर प्रकृतिबंध का कारण सोलहकारण भावनाएं है। ये भावनाएं समस्त पाप का क्षय करने वाली, भावों की अशुद्धिरूप मल को विध्वंस करनेवाली, श्रवण-पठन करते-करते संसार के बंध को छेदनेवाली हैं तथा निरन्तर ही भाने योग्य हैं।

जो पूर्वजन्म में सोलहकारण भावना भाकर तीर्थंकर प्रकृति बांधते हैं उनके पाँच कल्याणक की महिमा होती है। जो विदेह क्षेत्रों मे गृहस्थपना में तीर्थंकर प्रकृति बांधते हैं, वे उन भाव में तप, ज्ञान, निर्वाण इन तीन कल्याणकों की इन्द्रादि द्वारा पूजन पाकर निर्वाण को प्राप्त होते हैं।

कोई विदेह क्षेत्रों में मुनि के व्रत धारण करने के बाद केवली-श्रुतकेवली के निकट सोलहकारण भावना भाकर उसी भव में तीर्थंकर होकर ज्ञान, निर्वाण दो कल्याणकों की पूजा को प्राप्त होकर निर्वाण को प्राप्त होते हैं। वे दीक्षा पहले ही ले लेते हैं। सोलहकारण भावना बाद में भाकर तीर्थंकर प्रकृति बांधते हैं, इसीलिए उनका तप कल्याणक नहीं होता है।

जिसको तीर्थंकर प्रकृति का बंध हो जाता है वह भवनत्रिक देवों में खोटे मनुष्यों में नीचे कुलवाले, विकृत अंगवाले, अल्पायु, दरिद्री, तिर्यंचों में, भोग भूमि में, स्त्री में, नपुसंक में, एकेन्द्रिय से विकल चतुष्कादि पर्यायों में नहीं उत्पन्न होते हैं, तीसरे नरक से नीचे नहीं जाते हैं। इस प्रकार सोलह कारण भावना कुमति का निवारण करनेवाली हैं। सोलह कारण भावना भाने के बाद तीसरे भव में निर्वाण होता ही है, अत: शिव का कारण है। तीर्थंकरत्व ऋद्धि सोलहकारण भावना भाने से ही उप्पन्न होती है।

निर्वाण सुख को देने वाली इन सोलहकारण भावनाओं को जो भव्य स्थिर चित्त से भाता है, चिंतन करता है बहुत सम्मान करता है उनमें रच-पच जाता है, उसका मोक्ष मार्ग प्रशस्त होता हैं। पं० दौलतराम जी छहढ़ाला में कहते हैं कि–

मुनि सकलव्रती बड़ भागी, भवभोगनतैं वैरागी।
वैराग्य उपावन माई, चिंते अनुप्रेक्षा भाई।।

इन चिंतत सम सुख जागे, जिमि ज्वलन पवन के लागे।
जब ही जिय आतम जाने तब ही जिय शिव सुख ठाने॥

मुनि बड़े भाग्यवान हैं जो महाव्रत पालते हैं और संसार शरीर से वैरागी हैं। वे वैराग्य उत्पन्न करने के लिए बारह भावनाओं का चिन्तन करते हैं और उन्हें माता के समान मानते हैं। जिस प्रकार हवा लगने से अग्नि वेग से धधक उठती है उसी प्रकार इन बारह भावनाओं का बार-बार चिन्तन करने से शान्ति रूपी सुख जागृत होता है। जब जीव अपनी आत्मा को जानता है तब मोक्ष सुख प्राप्त करता है। सोलह कारण भावना की महिमा का कितना सुन्दर वर्णन कवि निम्न चार लाइनों में कर रहा है-

सोलह कारण भाये, तीर्थंकर जे भये।
हरषे इन्द्र अपार मेरु पर ले गये॥
पूजा कर निज धन्य लखो बहुचाव सौं।
हमहूँ षोडश कारण भावे भाव सौं॥

तीर्थंकर की महिमा का क्या कहना त्रिलोक पूज्य पद है। सब मनुष्य तीन खण्ड के नारायण अथवा छह खण्ड के अधिपति चक्रवर्ती एवं तीन लोक के इन्द्र जिसे नमस्कार करते हैं तीर्थंकर का वैभव बड़ा है। वैभव के साथ-साथ उनकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वे धर्म-तीर्थ के भी प्रवर्तक माने जाते हैं। तीर्थंकर कौन होते हैं? वे कौन से परिणाम हैं जिन के कारण तीर्थंकर होते हैं वे परिणाम सोलह कारण भावनाएं हैं।

भगवान महावीर के जीव ने दो भव पूर्व राजानन्द की पर्याय में मुनि अवस्था धारण की और उस मुनि अवस्था में अनेक प्रकार के व्रतादि के साथ सोलह कारण भावनाओं का चिन्तन किया जिसके प्रभाव से वे तीर्थंकर बने।

राजा श्रेणिक ने मिथ्यात्व अवस्था में सातवें नरक का बंध किया लेकिन सोलह कारण भावनाएं भाकर तीर्थंकर प्रकृति का बंध किया। जिसके कारण सातवें नरक से घटकर पहला नरक रह गया। अगली चौबीसी में वे प्रथम तीर्थंकर पद्म नाम से होंगे। इसलिए ये भावनाएं प्रत्येक मुमुक्ष को भाना चाहिए। इन भावनाओं के चिन्तन से लौकिक और पारलौकिक सुख मिलते हैं। आत्मा के विकास के लिए ऊँची एवं सर्वोत्कृष्ट भावनाओं का चिन्तन करना ही श्रेयस्कर होता है।

सोलहकारण भावनाएं अधोलिखित हैं - (1) दर्शनविशुद्धि, (2) विनयसम्पन्नता, (3) शीलव्रतानतिचार, (4) अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग, (5) अभीक्ष्ण संवेग, (6) यथाशक्तित्याग, (7) यथाशक्ति तप, (8) साधुसमाधि, (9) वैयावृत्य करण, (10) अरहंतभक्ति, (11) आचार्य भक्ति, (12) बहुश्रुतभक्ति, (13) प्रवचनभक्ति, (14) आवश्यकापरिहाणि, (15) मार्ग प्रभावना एवं (16) प्रवचनवात्सल्य।

दर्शनविशुद्धि भावना

सम्यग्दर्शन के साथ जो लोक कल्याण की भावना होती है, उसे दर्शन विशुद्धि कहते हैं।

दर्शन शुद्ध न होवत जो लग, तो लग जीव मिथ्यात्वी कहावे।
काल अनंत फिरे भव में महादुःखन को कहु पार न पावे॥
दोष पचीस रहित गुण-अम्बुधि, सम्यकदरशन शुद्ध ठरावे।
ज्ञान कहे नर सोहि बड़ो, मिथ्यात्व तजे जिन-मारग ध्यावे॥

सम्यक्दर्शन जबतक शुद्ध नहीं होगा तबतक जीव मिथ्यात्वी कहलाता है। अनन्त काल तक चारों गतियों में महा दुःख पाये जिनका पार न पाया। पच्चीस दोष रहित, आठ अंग सहित सम्यदर्शन शुद्ध करो। ज्ञान से ही मनुष्य बड़ा होता है। मिथ्यात्व छोड़कर ही जिनमार्ग की आराधना हो सकती है।

दरश विशुद्धि धरे जो काई, ताको आवागमन न होई।

सम्यग्दर्शन होने पर जो एक विलक्षण अलौकिक विशुद्धि उत्पन्न होती है उसका नाम दर्शनविशुद्धि है। दृष्टि में निर्मलता आती है। तत्त्व चिन्तन में कार्य कारण का महत्व है क्योंकि यदि कारण न हो तो कार्य निष्पन्न होगा नहीं। फूल न होगा तो फल की प्राप्ति नहीं होगी।

भगवान महावीर को नंद चक्रवर्ती की पर्याय में एक विकल्प आया कि मैं सम्पूर्ण प्राणी मात्र का कल्याण करूँ और इसी विकल्प के फलस्वरूप उन्हें तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध हुआ। किसी की भावना यह रहती है कि बृष्टि समय पर हुआ करे अथवा वह चाहता है कि वर्षा सभी खेतों पर हो किन्तु जब फसल काटता है तो अपनी ही फसल काटता है, किसी दूसरे की नहीं। कल्याण सबका चाहता है किन्तु पूर्ति अपने स्वार्थ की करता है। ज्ञान और आनंद वाले सकल जीव होते हैं परन्तु अपने इस ज्ञान और आनंद स्वभाव पर दृष्टि किये बिना पर-पदार्थ और भावों में एकत्व बुद्धि करने से ही तो दुःखी बना रहता है। समीचीन दृष्टि, वस्तु और वस्तु के स्वभाव के परिणाम बिना सारा क्लेश सह रहा है। अगर सद्बुद्धि पाये तो क्लेश दूर हो ऐसी अपार करुणा होती है भइया! आपकी स्थिति उस बच्चे जैसी है जो, दीपक जलता है और बच्चे को समझाया जाता है कि इसे छूना नहीं और दीपक से बचाने की चेष्टा की जाती है परन्तु वह बच्चा फिर भी दीपक पर हाथ रख देता है और जब एक बार जल जाता है तब हाथ नहीं रखता। वे भव्य जीवो, यदि इस मनुष्य जन्म को पाकर सफल करना चाहते हो तो सम्यग्दर्शन की विशुद्धता धारण करो। यह सम्यकदर्शन धर्म का मूल है। सम्यग्दर्शन के बिना श्रावकधर्म भी नहीं होता है और मुनिधर्म भी नहीं होता है। सम्यक्दर्शन के बिना जो ज्ञान है वह कुज्ञान है

जो चरित्र है वह कुचारित्र है, जो तप है वह कुतप है।

सम्यग्दर्शन के बिना इस जीव ने संसार में अनंतानंत काल तक परिभ्रमण किया है अब यदि चतुर्गतिरूप संसार परिभ्रमण से भयभीत होकर जन्म-जरा-मरण के दुखों से रोगों से छूटना चाहते हो तथा अनंत अविनाशी सुखमय आत्मा को चाहते हो तो अन्य समस्त परद्रव्यों की अभिलाषा छोड़कर एक सम्यग्दर्शन को ही धारण करो। दर्शन विशुद्धता निर्वाण के सुख की कारण है दुर्गति का निराकण करने वाली है। यह संसार के दु:खरूप मोहांधकार का नाश करने के लिए सूर्य के समान है भव्यों को दर्शन विशुद्धता नाम की भावना भाकर जिस प्रकार से स्वपर द्रव्यों का भेदज्ञान उत्पन्न हो, वैसा प्रयत्न करना चाहिए।

इस जीव ने अनादिकाल से मिथ्यात्व नाम के कर्म के वश में होकर अपने स्वरूप की और पर द्रव्यों के स्वरूप की पहिचान नहीं की। जो पर्याय कर्म के उदय से प्राप्त की उसी पर्याय को अपना स्वरूप जान लिया। अपने सच्चे स्वरूप का ज्ञान करने में अपने स्वरूप से भ्रष्ट रहकर, चारों गतियों में भ्रमण करता आ रहा है। यह जीव देव कुदेव को, धर्म कुधर्म को सुगुरू-कुगुरू को जानता नहीं हैं पुण्य पाप का, इस लोक परलोक का, त्यागने योग्य ग्रहण करने योग्य का, भक्ष्य-अभक्ष्य का, सत्संग-कुसंग का, शास्त्र कुशास्त्र का विचार ही नहीं करता है। कर्म के उदय के रस में तन्मय होकर, सदाकाल ही कष्ट उठाता रहा है।

अकस्मात् काललब्धि के योग से उत्तम कुलादि में जिनेन्द्र धर्म प्राप्त हुआ है इसलिए वीतराग सर्वज्ञ के अनेकान्तरूप परमागम के प्रसाद से प्रमाण, नय, निक्षेपों द्वारा निर्णय करके, परीक्षाप्रधानी होकर, वीतरागी सम्यग्ज्ञानी गुरूओं की कृपा से ऐसा निश्चय कर कि मैं एक ज्ञायक भाव, अविनाशी, अखण्ड, चेतना लक्षण, देहादि समस्त पर द्रव्यों से भिन्न आत्मा हूँ। देह, जाति, कुल, रूप, नाम इत्यादि मुझसे अत्यन्त भिन्न हैं। रागद्वेष, काम, क्रोध, मद, लोभादि, कर्म के उदय से उत्पन्न हुए मेरे ज्ञायक स्वभाव में विकार हैं। जैसे स्फटिक मणि स्वयं जो स्वच्छ श्वेत स्वाभाविक है डांक के संसर्ग से काला, पीला, लाल, हरा अनेक रंग का दिखता है उसी प्रकार आत्मा स्वयं तो स्वच्छ, ज्ञायक भाव, निर्विकार है, पर मोह कर्म के कारण रागद्वेष आदि उसमें झलकते हैं जो उसका रूप नहीं हैं इस प्रकार अपने स्वरूप का निश्चय करना चाहिए।

नि:शंकित गुण:- सर्वज्ञ, वीतराग, परम हितोपदेशक तथा अठारह दोष-क्षुधा, तृषा, जन्म जरा, मरण, रोग, शोक, भय विस्मय, राग-द्वेष, निंदा, चिन्ता, स्वेद, मद, मोह, खेद, अरति का जिनके अत्यन्त अभाव हुआ है तथा जिनके अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त सुख, अनन्तवीर्य इत्यादि अनन्त आत्मिक अविनाशी गुण प्रकट हुए हैं, ऐसे आप्त ही हमारे वंदन, स्तवन, पूजन करने योग्य हैं। अन्य कामी क्रोधी, लोभी मोही, स्त्रियों में आसक्त शस्त्रादि धारण किये, कर्म के आधीन, इंद्रिय ज्ञान के धारक, सर्वज्ञता रहित हैं वे मेरे वंदन स्तवन पूजन योग्य नही हैं।

अपनी आत्मा के अनुभव में, सर्वज्ञ वीतरागरूप आप्त के स्वरूप में, निर्ग्रन्थ विषय-कषाय रहित गुण में, अनेकांत स्वरूप आगम में दयारूप धर्म में शंका का अभाव होना वह निःशंकित अंग है। सम्यग्दृष्टि को इनमें कभी शंका नहीं होती है अतः उसके निःशंकित अंग होता ही है।

निःकांक्षित गुण- सम्यग्दृष्टि धर्म सेवन करके विषयों की वांछा नहीं करता है। सम्यग्दृष्टि को इंद्र अहमिन्द्रलोक के विषय भी महान वेदनारूप, विनाशशील, पाप के बीजरूप ही दिखाई पड़ते हैं तथा धर्म का फल अनन्त, अविनाशी स्वाधीन सुख सहित मोक्ष रूप दिखाई देता है। जिस प्रकार जौहरी बहुमूल्य रत्न को छोड़कर काँच के टुकड़े को ग्रहण नहीं करता है उसी प्रकार जिसे सच्चा आत्मिक, अविनाशी, बाधारहित सुख दिखाई पड़ गया, (अनुभव में आ गया) वह असत्य, बाधा सहित, विषयों के सुख की कैसे वांछा करेगा? अतः सम्यग्दृष्टि बांछा रहित ही होता है।

निर्विचिकित्सा गुणः- सम्यग्दृष्टि के अशुभ कर्म के उदय से प्राप्त हुई अशुभ सामग्री कि मैंने पूर्व में जैसा कर्म बांधा था। उसी के अनुसार हुई है। जो पाप की सामग्री जानकर कलुषता नहीं करता है। मलमूत्र, कीचड़ आदि द्रव्य, भंयकर शमशान वन आदि क्षेत्र, भयरूप दुःखदायी काल, दुष्टपना, कंडुआपना इत्यादि वस्तु के स्वभाव को देखकर अपने परिणामों में क्लेशित नहीं होता है। उस सम्यकदृष्टि के निर्विचिकित्सिता अंग होता है।

अमूढ़दृष्टि गुणः- खोटे शास्त्रों से व्यंतर आदि देवकृत विक्रिया से, मणि-मंत्र, औषधि आदि के प्रभाव से अनेक वस्तुओं का विपरीत स्वभाव देखकर सच्चे धर्म से चलायमान नहीं होना वह सम्यकदर्शन का अमूढ़दृष्टि गुण है जो सम्यग्दृष्टि के होता ही है।

उपगूहन गुणः- सम्यकदृष्टि अन्य जीवों के अज्ञान से अशक्तता से लगे हुए दोष देखकर उन्हें ढांकता है। ये संसारी जीव ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय कर्म के वश में होकर अपने स्वभाव को भूल रहे हैं। कर्म के आधीन होकर असत्य वचन, परधन हरण, कुशील आदि पापों में प्रवृति करते हैं। जो पापों से दूर रहते हैं वे धन्य हैं यदि किसी प्रसिद्ध धर्मात्मा पुरूष से पाप के उदय में कोई अपराध हो जाय तो उसे जानकर ऐसा विचार करता है कि यदि यह दोष प्रकट हो जायेगा तो अन्य धर्मात्माओं तथा जैनधर्म की बड़ी निन्दा होगी, ऐसा जानकर उसके दोष को आच्छादित करता है अपने गुणों की प्रशंसा का इच्छुक नहीं होता है। ऐसा उपगूहन गुण सम्यग्दृष्टि का होता ही है।

स्थितिकरण गुणः- यदि धर्मात्मा पुरूष के परिणाम कभी रोग की वेदना से धर्म से, असहायता से, आहार पानी रुक जाने से, परिणाम धर्म से शिथिल होने लगे, तो उसे उपदेश आदि देकर परिणामों को धर्म में स्थिर करने के लिए कहे, भो ज्ञानी! भो धर्म के धारक! तुम सचेत

हो जाओ। क्यों कायरता धारण करके धर्म में शिथिल हो रहे हो? क्यों रोग के कष्ट से धर्म से विचलित होते हो? तुम ज्ञानी होकर क्यों ऐसी भूल करते हो? यह असातावेदनीय कर्म अपना समय पाकर उदय में आ गया है, अब यदि कायर होकर, दीन होकर, रुदन-विलाप होकर भोगोगे तो कर्म नहीं छोड़ेगा, कर्म को दया नहीं होती है। यदि धीरपना धारण करके भोगोगे तो भी कर्म नहीं छोड़गा। कोई देव, दानव, मंत्र, तंत्र औषधि, वैद्य आदि तथा स्त्री, पुत्र, मित्र, बांधव, सेवक, सुभट आदि उदय में आये कर्म का हरण करने में समर्थ नहीं है, यह तुम भी अच्छी तरह जानते हो। अब इस वेदना के समय में कायर होकर अपना धर्म, यश, परलोक आदि को क्यों बिगाड़ते हो? इनको बिगाड़कर स्वच्छन्द चेष्टा, विलाप आदि करने से वेदना नहीं घटेगी। ज्यों-ज्यों कायर होगे त्यों-त्यों वेदना का दु:ख बढ़ेगा। इसलिए अब धैर्य धारण करके धर्म की परम शरण ग्रहण करो।

संसार में नरक के तथा तिर्यंचों के क्षुधा, तृषा, रोग, संताप, ताड़न, छेदन, भेदन, मारन, शीत, उष्ण आदि के घोर दु:ख असंख्यात काल पर्यन्त अनेक बार अनन्त भव धारण करके भोगे हैं। अभी यह तुम्हें कितना-सा दु:ख है? अत: तुम सव सचेत हो जाओ, यह कर्म को जीतने का अवसर है।

अब भगवान पंच परमेष्ठी की शरण ग्रहण करके अपने अजर, अमर, अखण्ड, ज्ञाता दृष्टा स्वभाव को ग्रहण करो। ऐसा अवसर पुन: प्राप्त होना दुर्लभ है। इस प्रकार धर्म का उपदेश देकर धर्म में दृढ़ करना। शीघ्र ही अनित्य, अशरण आदि भावनाओं का चिंतन कराना, ग्रहण कराना, शरीर का मर्दनादि करके दु:ख दूर करना, कोई सेवा पहल करने वाला नहीं हो तो स्वयं पहल करना, अन्य साधर्मियों का साथ मिला देना, आहार पानी दवा आदि करके स्थितिकरण करना। मल, मूत्र, कफ आदि आ गया हो तो उसे साफ करना, पोंछना इत्यादि करके स्थिर करना, दारिद्र्य आदि से चलायमान हुआ हो तो उसकी भोजन आदि द्वारा आजीविका लगा देना, उपसर्ग परीषह आदि दूर करके सच्चे धर्म में स्थापित करना, ऐसा स्थितिकरण अंग सम्यग्दृष्टि के होता ही है।

वात्सल्य गुण:- संसारी जीवों के अपने स्त्री पुत्रादि में, इन्द्रियों के विषयादि में, धन कमाने में प्रीति बहुत ही रहती है। स्त्री, पुत्र, धन, परिग्रह, विषय आदि को संसार परिभ्रमण के कारण जानकर अतंरंग में विरागता धारण करके धर्मात्मा में, रत्नत्रय के धारक मुनि आर्यिका, श्रावक, श्राविका में व धर्म के आयतनों में जिसकी अत्यन्त प्रीति होती है उसके सम्यक दर्शन का वात्सल्य अंग होता ही है।

प्रभावना गुण:- अपने मन से, वचन से, काय से, धन से, दान से, व्रत से, तप से, भक्ति से रत्नत्रय का प्रभाव प्रकट करना वह मार्ग प्रभावना अंग है।

इस प्रकार सम्यग्दर्शन के आठ अंग धारण करने से तथा इन गुणों के प्रतिपक्षी शंकादि आठ दोषों का अभाव होने से दर्शन विशुद्धता होती है। लोकमूढ़ता, देवमूढ़ता, गुरुमूढ़ता को छोड़कर तत्त्वार्थ श्रद्धान को उज्ज्वल करना इस गुण के अन्तर्गत आता है।

लोक मूढ़ता त्याग

मृतक हाड, नखादि गंगा में पहुँचाने से मृतक की मुक्ति हुई मानना, गंगाजल का उत्तम मानना, गंगा स्नान में, नदी स्नान में, समुद्र की लहर से स्नान में धर्म मानना, मृतक पति के साथ जीवित स्त्री तथा दासी को अग्नि में जलकर, मर जाने वाली को सती मानकर पूजना, मरे हुये पूर्वजों को पितर मानकर पूजना, सूर्य चंद मंगल और ग्रहों का सोने चांदी के बनवाकर गले में पहिनना, ग्रहों का दोष दूर करने के लिए दान देना, संक्राति व्यतिपात, सोमवती अमावस मानकर दान देना, सूर्य चंद को ग्रहण लगने पर स्नान करना। डाभ को शुद्ध मानना, हाथी के दांतों को शुद्ध मानना, पूजना, देहरी पूजना, मूसल पूजना, छींक पूजना, गणेश पूजना, दीपक की ज्योति पूजना, देवता की बोलारी बोलाना, देवता को चढ़ाने के वायदे को पूरा करते रहने से अपनी संतानों को जीवित मानना, संतान को देवता के द्वारा दी हुई मानना आदि लोकमूढ़ता के अन्तर्गत है।

देवमूढ़ता त्याग:- देव कुदेव का विचार रहित होकर कामी क्रोधी शस्त्रधारी परिग्रहों में भी ईश्वरपने की वृद्धि करना कि-ये भगवान परमेश्वर हैं विश्व की समस्त रचना इन्हीं की रची है। जगत में जो कुछ होता है वह सब ईश्वर का किया होता है। अच्छा या बुरा ईश्वर के कराये बिना कुछ नहीं होता। सब कुछ ईश्वर के आधीन है इत्यादि अनेक प्रकार के सभी परिणम मिथ्यादर्शन के उदय से होते हैं यह देवमूढ़ता है।

गुरुमूढ़ता त्याग:- पाखण्डी, हीन आचार के धारक, परिग्रही, लोभी, विषयों के लोलुपी को करामाती मानना, उसके वचन सत्यसिद्ध मानने से प्रसन्न हो जायेगें तो हमारे इच्छित सभी कार्य सिद्ध हो जायेगें, ये तपस्वी हैं, पूज्य है, महापुरुष है प्रसिद्ध हैं इत्यादि विपरीत श्रद्धान करना गुरुमूढ़ता है जिसके परिणामों में ये तीन मूढ़ताएं नहीं होती हैं। उसके दर्शन विशुद्धता होती है।

अनायतन त्याग-षट अनायतनों का त्याग करने से दर्शन विशुद्धता होती हैं। रागी, द्वेषी क्रोधी, लोभी, शस्त्रादि सहित, परिग्रही जो मिथ्यात्व सहित हैं उनमें सच्चाधर्म नहीं होता। हिंसा के आंरभ की प्ररेणा देने वाले, राग द्वेष कामादि को बढ़ाने वाले, सर्वथा एकान्त के प्रेरक शास्त्र, कुशास्त्र, अनाई देवी, तिहाड़ी क्षेत्रपाल आदि देवों को वन्दने वाले धर्म रहित हैं। अत: वे अनायतन है। कुगुरूओं की भक्ति पूर्वक सेवा करने वाले धर्म रहित हैं अत: वे अनायतन है। मिथ्याशास्त्रों के पढ़ने वाले, उनकी सेवा भक्ति करने वाले एकांती हैं धर्म में स्थान नहीं है अत: अनायतन हैं।

अष्ट मदत्याग:- जातिमद, कुलमद, ऐश्वर्यमद, रूपमद, शास्त्रमद, तपमद, बलमद, विज्ञानमद। इन आठ मदों का जिसके अत्यंत अभाव होता हैं उसके दर्शन विशुद्धता होती है।

जिस प्रकार जड़ के बिना वृक्ष नहीं होता, नींव के बिना मकान नहीं बनता। उसी प्रकार सम्यग्दर्शन के बिना धर्म नहीं होता। सम्यग्दर्शन ही मोक्ष का बीज है। छहढाला में पं० दौलत राम जी ने कहा है कि-

मोक्ष महल की प्रथम सीढ़ी या बिन ज्ञान चरित्रा।
सम्यक्ता न लहै सो दर्शन, धारो भव्य पवित्रा।।
"दौल" समझ सुन चेत सयाने, काल वृथामत खोवै।
यह नर भव फिर मिलन कठिन है, जो सम्यक् नहिं होवै।।

सम्यग्दर्शन की प्राप्ति न होने से अनन्तानन्त काल से यह जीव संसार में परिभ्रमण करता आ रहा है। अब यदि चतुर्गति रूप संसार के परिभ्रमण से भयभीत हो, जन्म मरण से छुटकारा चाहते हो और अविनाशी अपनी सुखमय आत्मा की इच्छा हो तो अन्य समस्त पर-द्रव्यों की अभिलाषा छोड़ और सम्यग्दर्शन को उज्ज्वल कर क्योंकि सम्यग्दर्शन संसार के दु:ख रूपी अंधकार को नाश करने को सूर्य के समान हैं। भव्यजीवों की परम शरण हैं।

सम्यग्दर्शन का स्वरूप बताते हुए आचार्यों ने आगम में उसका स्वरूप चार परिभाषाओं द्वारा दर्शाया है।

1. सच्चे देव शास्त्र गुरु के श्रद्धान को सम्यग्दर्शन कहते हैं।
2. सात तत्त्वों के श्रद्धान को सम्यग्दर्शन कहते हैं।
3. स्व-पर भेद विज्ञान को सम्यग्दर्शन कहते हैं।
4. आत्मा के श्रद्धान को सम्यग्दर्शन कहते हैं।

सम्यग्दर्शन के इन चारों लक्षणों में परस्पर कोई विरोध नहीं है केवल प्रयोजन की ही मुख्यता से पृथक-पृथक लक्षण कहे हैं। ज्ञानी जीव को तो विलक्षण आत्मदर्शन विशुद्धि भावना में आता है। अगर दर्शन विशुद्धि भावना नहीं हुई तो शेष पन्द्रह भावनाएं नहीं हो सकतीं।

दृष्टान्त:- एक बार एक राजा किसी कार्य वश विदेश गया वहा का कार्य होने के बाद जब वह राजा अपने देश वापस लौटने लगा तो उसने सोचा कि जब विदेश आये हैं तो यहां से अपनी रानियों के लिए कुछ सामान ले जाना चाहिए। राजा ने अपने मंत्री से पूछा क्या लेजाना चाहिए। मंत्री ने कहा कि एक-एक पत्र सभी रानियों को लिख दे कि उन्हें क्या-क्या चाहिए। उसने ऐसा ही किया सभी रानियों को पत्र लिख दिया पत्र पढ़कर सभी रानियाँ प्रसन्न हुई सबने अपनी-अपनी

पसन्द पत्र में लिख दी राजा ने सब के पत्र पढ़े सब रानियों ने साड़ी जेवर आदि लाने के लिए लिखा था। छोटी रानी ने अपने पत्र में लिखा था कि मैं आपको चाहती हूँ आपको घर से यहाँ आये हुए मर्यादित समय से अधिक समय हो गया है इसलिए मैं आप को देखना चाहती हूँ। इस प्रकार पत्र का आशय सुनकर राजा बहुत प्रसन्न हुआ। सब रानियों के लिए उनकी पसन्द की वस्तुऐं राजा ने ले ली और छोटी रानी के लिए कुछ विशेष ले लिया। वापस जाकर सभी रानियों का सामान नौकरों से भिजवा दिया और छोटी रानी के पास राजा स्वयं गये और छोटी रानी से पूंछा कि तुमने क्या लिखा था। उसने कहा हे स्वामिन्! आपकी चाह थी। आप हैं तो सब कुछ है और आप नहीं तो उसकी कोई कीमत नहीं। उसी प्रकार अगर दर्शन विशुद्धि भावना नहीं तो शेष पंद्रह भावनाओं की कोई कीमत नहीं। इसलिए हे भव्य प्राणियों! सबसे पहले दर्शन शुद्ध करो तभी कल्याण होगा अन्यथा बिना सम्यग्दर्शन के सारी क्रियाएं नकारात्मक हैं।

आज का मानव बाहर को फैलता जा रहा है किंतु कोई भी जड़ नहीं है फिर उसका फैलना किस काम का है। उसके जीवन में जो कुछ भी दिखाई पड़ता है उन सबका अस्तित्व कागज के फूलों से अधिक नहीं है वे असली फूल नहीं है क्योंकि वास्तविक फूलों के लिए जड़े चाहिए। नकली फूल तो ऊपर से चिपकाये जाते हैं। जिनकी कोई भी जड़ नहीं होती। जरा-सा पानी पड़ने पर समाप्त हो जाते हैं। इसी प्रकार धर्म रहित मानव का जन्म भी व्यर्थ है। उसका जीवन विषाक्त है उस विषाक्त शक्ति में आत्मा के परिणाम भी विषाक्त हो रहे हैं।

दर्शन विशुद्धि चौथे गुणस्थान से आठवें गुणस्थान के प्रथम भाग तक ही होती है। दूसरे के कल्याण की भावना का विकल्प होने पर ही बंध होगा। तीर्थंकर प्रकृति एक निकांचित बंध है जो मोक्ष को ले जायेगा। दर्शनविशुद्धि भावना और दर्शन में एक मौतिक अन्तर है। दर्शन विशुद्धि में विषयों का चिन्तन नहीं चलता परन्तु दर्शन में विषय चिन्तन भी सम्भव है। यह स्पष्ट है कि भावों से ही बन्ध होता है और भावों के विशुद्ध होने से कर्मों का निर्मूलन होता है। जैसे-पानी से ही कीचड़ बनती है और पानी में ही धुल कर वह गंगा के जल का भाग बन जाती है, जिसे लोग सिर पर चढ़ाते है। काँटा ही काँटे को निकालता है यह सभी जानते हैं।

तुसधम्मंतबलेण य जह दव्वं ण हि णराण गच्छेदि।
तवसीलमंत कुसली खवंति विसयं विसं व खलं॥

जिस प्रकार तुषों के उड़ा देने से मनुष्यों का कोई सारभूत द्रव्य नष्ट नहीं होता उसी प्रकार तप और शील से युक्त कुशल पुरुष विषयरूपी विष को खल के समान दूर छोड़ देते हैं।

–.कुन्दकुन्द

विनयसंपन्नता भावना

सम्यग्ज्ञान आदि मोक्षमार्ग और उसके साधन गुरु आदि के प्रति उचित आदर रखना विनय सम्पन्नता है।

देव तथा गुरुराय तथा, तप संयम शील व्रतादिक-धारी।
पाप के हारक काम के छारक, शल्य निवारक कर्म निवारी।।
धर्म की धीर कषाय के भेदक, पंच प्रकार संसार के तारी।
ज्ञान कहे विनयो सुखकारक, भाव धरो मन राखो विचारी।।

देव तथा गुरु जो संयम, तप, शील व्रत आदि को धारण कर पालन करते हैं, पाप के हरने वाले, काम के विध्वंसक, शल्य के निवारण करने वाले तथा कर्म का क्षय करने वाले हैं, धर्म को धारण कर कषायों को भेदकर पाँच प्रकार (द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव और भव) से संसार को तारने वाले हैं और विनय गुण सुखकारी हैं ऐसा भाव धरकर मन में विचार करो।

विनय महाधारै जो प्राणी, शिव-वनिता की सखी बखानी।

विनय तीर्थंकर प्रकृति के बन्ध के कारण मूल भावनाओं में दूसरी पावन भावना है। विनय सम्पन्नता का अर्थ है कि अपनी आत्मा को विनय से अलंकृत किया जावे। विनय के भावों से ओत प्रोत रहना यह सब विनय सम्पन्नता है। यहाँ विनय की बात मोक्ष के विषय में कही जा रही है। अत: प्रत्येक का विनय से यहाँ संबंध नहीं। मोक्ष के प्रसंग में विनीत भावों द्वारा धर्मात्मा जनों की विनय करने से प्रयोजन है।

विनय पाँच प्रकार की कहीं जाती हैं दर्शनविनय, ज्ञानविनय, चरित्रविनय, तपविनय और उपचारविनय।

1. दर्शन विनय:- अपने श्रद्धान में शंकादि दोष नहीं लगाना, सम्यग्दर्शन की विशुद्धि से ही अपना जन्म सफल मानना, सम्यग्दर्शन के धारकों में प्रीति रखना तथा आत्मा तथा पर का भेद विज्ञान कर आत्मा का अनुभव करना दर्शनविनय है।

2. ज्ञानविनय:- सम्यग्ज्ञान के आराधन में उद्यम करना, सम्यग्ज्ञान के कथनों का आदर करना, सम्यग्ज्ञान के कारण जो अनेकान्त रूप जिनशास्त्र हैं उनके श्रवण-पढन में बहुत उत्साह रूप होना तथा वन्दन-स्तवन बहुत आदर पूर्वक पढ़ना ज्ञान विनय है। ज्ञान के आराधक ज्ञानीजनों का तथा जिनागम की पुस्तकों की प्राप्तिरूप संयोग का बड़ा लाभ मानना, आदर-सत्कार आदि करना, वह सब ज्ञान विनय है।

3. चारित्रविनय:- अपनी शक्ति प्रमाण चारित्र धारण करने में हर्ष मानना दिनोंदिन चारित्र की उज्ज्वलता के लिए विषय-कषायों का घटाना तथा चारित्र के धारकों के गुणों में अनुराग स्तवन, आदर करना चारित्र विनय है।

4. तपविनय:- इच्छाओं को रोककर, प्राप्त हुए विषयों में सन्तोष करके ध्यान स्वाध्याय में उद्यमी होकर, काम को जीतने के लिए तथा इन्द्रियों के विषयों में प्रवृति रोकने के लिए अनशन आदि तप में उद्यम करना तप विनय है।

5. उपचारविनय:- सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यग्चारित्र सम्यग्तप, इन चार आराधनाओं का उपदेश देकर मोक्षमार्ग में प्रवृत्ति कराने वाले, तथा जिनका स्मरण करने से परिणामों का मैल दूर होकर विशुद्धता प्रकट हो जाती है ऐसे पंच परमेष्ठी के नाम की स्थापना की विनय, वन्दना स्तवन, करना उपचार विनय है। इसके अन्य भेद निम्न हैं-

लोकविनय:- अभिमान छोड़कर आठ मदों का जिसके अत्यन्त अभाव हो गया एवं कठोरता हटकर जिसमें कोमलता प्रगट हो गई है उसके नम्रपना प्रकट होता है। तब ऐसा विचार होता है कि ये धन, यौवन, जीवन क्षणभंगुर है। कर्म के अधीन है। कोई हमसे दु:खी न हो, सभी सम्बन्ध वियोग सहित हैं। यहाँ कितने समय तक रहना है। प्रति समय मृत्यु की ओर अखण्ड धाराप्रवाह रूप से जा रहा हूँ किसी पदार्थ का सम्बन्ध स्थिर नही हैं। यहाँ भगवान ने मनुष्य जन्म का सार विनय धर्म को ही कहा है। यह विनय संसार रूपी वृक्ष को जलाने के लिए अग्नि है। यह विनय तीन लोक में प्रधान है। यह विनय तीन लोक के जीवों के मन को उज्ज्वल करने वाली है। विनय ही समस्त जिनशासन की मूल है। विनय रहित को जिनेन्द्र की शिक्षा ग्रहण नहीं होती है। विनय रहित जीव सभी दोषों का पात्र है। मिथ्याश्रद्धान को छेदने के लिए विनय शूल है। विनय बिना मनुष्यरूप चमड़े का वृक्ष मानरूप अग्नि द्वारा भस्म हो जाता है। मान कषाय द्वारा यहीं पर घोर दु:ख सहता है तथा परलोक में निंद्यजाति, निंद्यकुल में बुद्धिहीन-बलहीन होकर उत्पन्न होता है। जो अभिमानी यहाँ किंचिन्मात्र भी कष्ट नहीं सहते वे तिर्यञ्चगति में नाक में मूंज रस्सी का बंधन, लादन, मारण, लात की ठोकरों की मार, भरण स्थान में चमडे के कोडे की मार, पराधीन होकर भोगते हैं तथा चांडाल आदि के मलिन घरों में बंधनों से बधे रहते हैं। जिनके ऊपर मैला आदि निंद्य वस्तुऐं लादते हैं। इस लोक में भी अभिमानी का समस्त लोक वैरी हो जाता है। अभिमानी की सभी निन्दा करते हैं। महान अपयश प्रकट होता है। सभी लोग अभिमानी का पतन चाहते हैं। मान कषाय से क्रोध प्रगट होकर कपट फैलता है। लोभ बढता है। खोटे वचन रूप प्रवृत्ति होती है। लोक में जितनी अनीति है वे सभी मान कषाय से होती हैं। परधन हरण आदि भी अपने अभिमान को पुष्ट करने को करता है। इस जीव का बडा वैरी मान कषाय है। अत: विनय गुण का बहुत आदर करके अपने दोनों लोक उज्ज्वल करो। वह विनय, देव की शास्त्र की, गुरु की मन, वचन, काय से प्रत्यक्ष करो और परोक्ष भी करो।

देवविनय:- देव अर्थात् अर्हन्त भगवान, समवशरण की विभूति सहित, गंधकुटी के मध्य से सिंहासन के ऊपर चार अंगुल अधर विराजमान चौसठ चमर ढोरित, तीन क्षत्र-आठ प्रातिहार्य से विभूषित, कोटि सूर्य समान प्रभा के धारी, परम औदारिक शरीर से रहने वाले बारह सभा से सेव्यमान, दिव्यध्वनि द्वारा अनेक भव्य जीवों का भला करने वाले अरहंत का चिंतन का ध्यान करना, मन से उनकी परोक्ष विनय है। उनकी विनयपूर्वक वचनों द्वारा स्तुति करना, वचन से परोक्षविनय है। हाथों की अंजुलि जोड़कर मस्तक झुकाकर नमस्कार करना, तन से परोक्ष विनय है। जिनेन्द्र के प्रतिबिम्ब की परमशांत मुद्रा को प्रत्यक्ष नेत्रों से अवलोकन कर महा आनन्द से मन में ध्यान कर अपने को कृतकृत्य मानना वह मन से प्रत्यक्ष विनय है। जिनेन्द्र के प्रतिबिंब के सामने होकर स्तवन करना यह वचन से प्रत्यक्ष विनय है। हाथों की अंजुलि सहित हाथ, पैरों तथा मस्तक को झुकाकर नमस्कार करना काय से प्रत्यक्ष विनय है।

सर्वज्ञ वीतराग जिनेन्द्र परमात्मा के नाम का स्मरण ध्यान वंदन स्तवन करना वह सब परोक्ष विनय है। देव की इस प्रकार की विनय सभी अशुभ कर्मों को नाश करने वाली है।

गुरुविनय:- वीतरागी निर्ग्रन्थ मुनीश्वरों को प्रत्यक्ष देखकर खड़े हो जाना, आनंद सहित सन्मुख जाना स्तवन करना बराबर में चलना पड़े तो, गुरु के बायीं तरफ चलना, गुरु को दाहिनी तरफ करके चलाना, बैठाना, गुरु के साथ रहते हुऐ स्वयं उपदेश नहीं देना। गुरु की आज्ञा होने पर अनुकूल उत्तर देना। गुरु के होते हुऐ उच्च आसन पर नहीं बैठना, गुरु उपदेश को हाथ जोड़कर आदर से ग्रहण करना। गुरुओं के गुणों में अनुराग कर आज्ञा के अनुकूल प्रवर्तन करना गुरु दूर क्षेत्र में हो तो भी जैसी आज्ञा हो उसके अनुसार प्रवर्तन करना दूर से ही गुरुओं का ध्यान स्तवन, नमस्कार करना गुरु की विनय है।

शास्त्रविनय:- शास्त्र की विनय करना-बड़े आदर से पढ़ना, श्रवण करना शास्त्र में कहे व्रत-संयम आदि धारण करते नहीं बन सके तो भी आज्ञा का उल्लंघन नहीं करना शास्त्र की जैसी आज्ञा हो उसी के अनुसार कहना। जो शास्त्र की आज्ञा हो उसे एकाग्रचित से श्रवण करना, अन्यथा कथन नहीं करना आदर पूर्वक मौन से श्रवण करना यदि शंका हो तो उसे दूर करने के लिये विनय पूर्वक थोड़े शब्दों में जिस प्रकार सभा के अन्य लोगों के तथा वक्ता के क्षोभ नहीं उत्पन्न हो उस प्रकार विनय पूर्वक प्रश्न करना उत्तर को आदर से ग्रहण करना, शास्त्र की विनय है। शास्त्र को उच्च आसन पर रखकर स्वयं नीचे बैठना प्रशंसा-स्तवन इत्यादि करना शास्त्र की विनय है। इस प्रकार देव, शास्त्र, गुरु की विनय ही धर्म का मूल है।

निश्चयविनय:- रागद्वेष द्वारा जिस प्रकार से आत्मा का घात नहीं हो उस प्रकार प्रवर्तन करना, आत्मा की विनय है। इसे निश्चयविनय भी कहते हैं। यह मेरा जीव चारों गतियों में भ्रमण न करे, अब मेरी आत्मा मिथ्यात्व-कषाय-अविनयादि से आत्मा के ज्ञानादि गुणों का घात नहीं करे, आत्मा की विनय है। इसी को परमार्थ विनय भी कहा है।

व्यवहारविनयः- जो दूसरों का सम्मान करेगा, वह स्वयं ही सम्मान को प्राप्त कर लेगा। जो दूसरों का अपमान करेगा वह स्वयं ही अपमान को प्राप्त हो जायेगा। सभी से मीठे शब्द बोलना विनय है। किसी जीव का भी तिरस्कार नहीं करना भी विनय ही है।

अपने घर कोई आया हो उसका यथायोग्य सत्कार करना किसी को सामने जाकर ले आना, किसी को उठकर (खड़े होकर) एक हाथ से माथा स्पर्श कर विनय करना किसी को आईये-आईये-आईये-इत्यादि तीन बार कहकर बुलाना, किसी को आदर पूर्वक समीप बैठाना, किसी को बैठने को स्थान देना, किसी को आओ-बैठो कहना, किसी के शरीर की कुशलता पूंछना हम आपके ही हैं। हमें आज्ञा करिये। यह आप ही का घर है यह घर आपके आने से पवित्र हो गया है। ऊँचा हो गया है। आपकी कृपा हमारे ऊपर तो हमेशा से है। इस प्रकार व्यवहार विनय है। किसी को हाथ उठाकर माथे तक लगा लेना विनय है। अन्य भी दान सम्मान कुशल पूछना, रोगी दुःखी की वैयावृत्ति करना भी विनयवान ही के होते हैं। दुखी मनुष्य-तिर्यंचों को धैर्य, विश्वास देना, दुःख सुनना अपनी सामर्थ अनुसार उपकार करना, अपने से नहीं बन सकता हो तो धीरता-संतोष आदि का उपदेश देना, वह व्यवहार विनय है। यह व्यवहार विनय, परमार्थ विनय का कारण है जो यश उत्पन्न कराती है और धर्म की प्रभावना करती है।

वचनविनयः- मिथ्यादृष्टि का भी अपमान नहीं करना, मीठे वचन बोलना यथायोग्य आदर-सत्कार करना ये भी विनय है। महापापी, द्रोही, दुराचारी को भी कुवचन नहीं कहना। एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रियादि तथा सर्पादि दुष्ट जीवों की विराधना नहीं करना, उनकी रक्षा करते रहना ये ही उनकी विनय है। अन्यधर्मियों के मंदिर मूर्ति आदि से बैर करके निंदा नहीं करना। इस प्रकार परमार्थ व व्यवहार दोनों प्रकार की विनय को धारण करके गृहस्थ को प्रवर्तन करना योग्य है।

देखो! सम्पूर्ण परिग्रह के त्यागी वीतरागी मुनिराज को भी यदि कोई मिथ्यादृष्टि बन्दना करता है तो वे उसे भी आशीर्वाद देते हैं। कोई चांडाल, भील, धीवर आदि नीच जाति का भी बन्दन करता है तो वे उसे ''पापक्षयोस्तु'' पापों का नाश हो इत्यादि आशीर्वाद देते हैं। इसलिए यदि विनय अंग धारण करते हो तो बालक, अज्ञानी धर्मरहित नीच-अधम जाति का कोई हो तो उसका तिरस्कार-निंदा करना कभी उचित नहीं है। इस मनुष्य जन्म की शोभा विनय ही है। भगवान गणधर देव तो ऐसा कहते हैं कि विनय बिना मनुष्य जन्म की हमारी एक घड़ी भी नहीं बीते।

विनय धर्म ही मनुष्य का सार है। अब विचारिये जीभ कोमल होती है। पहले जन्म लेती है बाद तक रहती है। दाँत कठोर होते हैं बाद में उत्पन होते हैं पहले टूट जाते हैं। दाँत कठोर होते हैं तो किले की रक्षा पंक्ति की तरह आगे खड़े रहते हैं। सारी कठोरता को सहते हैं। जीभ कोमल है तो पीछे सुरक्षित विश्राम करती है और कोमलता को प्राप्त करती है। दाँत कठोर होते हैं तो

कठोर वस्तु जैसे चने, मटर आदि का सेवन करते हैं और जीभ कोमल है तो हलुआ खाने को मिलता है। कठोर वस्तु को पहले दाँत मुलायम कर देते हैं तब जीभ सेवन करती है।

सोना कोमल होता है तो, मस्तक आदि स्थानों में शोभा पाता है और तिजोरी में सुरक्षा पाता है और लोहा कठोर होता है इसलिए सड़क पर पड़ा रहता है। आचार्य कहते हैं कि जिसके जीवन में दाँत के समान कठोरता विद्यमान रहती है वे जल्दी चले जाते हैं और जिसके जीवन में जीभ जैसी कोमलता विद्यमान होती है वे बाद तक बने रहते हैं। नम्रता से जीने में ही सार है। इससे नम्र जीव इस लोक व परलोक दोनों लोकों में सुखी रहता है।

झुकेगा वही जिसमें ज्ञान है, अकड़ तो खास मुर्दे की पहचान है।

एक जंगल में दो पेड खडे हैं एक बड़ का दूसरा बेंत का। बड़ का पेड़ घमण्ड में चूर है। वह बेंत के पेड़ से कहता है तुम्हारे जीवन से क्या लाभ। न तुम किसी को छाया देते हो, फल और फूल का तो नाम ही नहीं। मुझे देखो मैं कितनों को छाया देता हूँ और यदि मुझे कोई काट ले तो भी मेरी लकड़ी से बैठने के लिए सुन्दर आसन का निर्माण हो सकता है। तुम्हारी लकड़ी से दूसरों को पीटा जा सकता है। बाद-विवाद चल रहा था। थोड़ी देर में मौसम बिगड़ जाता है और तूफान और वर्षा दोनों शुरू हो जाते हैं। कुछ ही देर में बेत का पेड़ साष्टांग दण्डवत करने लगता है किन्तु तूफान ने देखा कि बड़ का पेड़ वैसे ही खड़ा है। पाँच मिनट बाद देखा बड़ का पेड़ उखड़ गया। उसका सिर नीचे और पैर ऊपर हो गये। आचार्य कहते हैं कि जहाँ अविनय है वहाँ इसी तरह की दशा होती है। जिनमें अकड़ होती है वे अपनी जगह स्थिर नहीं रह सकते और जिनमें विनय गुण होता है उन्हें अपने स्थान से कोई हटा नहीं सकता अर्थात् वे स्थायी होते हैं।

विनय का अनुपम महत्त्व है। यह वह सोपान है जिस पर आरूढ़ होकर साधक मुक्ति की मंजिल तक पहुँच सकता है। विनय आत्मा का गुण है और सरलता का प्रतीक है। अविनय मानव शक्ति का विखराव है और विनय में शक्ति का केन्द्रीकरण है। विनय गुण दूसरे को झुकने को विवश कर देता है।

गाँधी जी के जीवन की एक घटना है। उनकी मेज पर कई प्रकार के कागज बिखरे पड़े थे। एक आदमी गाली से भरे हुए चार कागज उनके सम्मुख रख गया। गाँधी जी काम में व्यस्त थे उनको एक पिन की आवश्यकता हुई जो गाली से भरे कागजों में लगी हुई थी। इधर उधर दूढने पर गाँधी जी की निगाह उन कागजों पर गई। उनमें से पिन निकालकर बाकी कागज रद्दी की टोकरी में डाल दिये। दूसरे दिन वह व्यक्ति गाँधी जी की प्रतिक्रया जानने के लिए आया और पूछा आपने वे कागज पढ़े? जो मैं आपके पास कल रखा गया था कैसा लगा? गाँधी जी

बोले-बड़ा लाभ हुआ आपके कागजों में पिन लगा था वह मेरे अच्छे समय पर काम आया आपने मेरी बड़ी सहायता की। गाँधी जी की बातें सुनकर वह आदमी बहुत ही प्रभावित हुआ और उनके चरणों में गिर पड़ा।

विनय युक्त शब्दों का प्रयोग करना चाहिए। कभी-कभी शब्दों की अविनय भी हानिकारक हो जाती है। एक भारतीय महोदय अमेरिका गये। वहाँ उन्हें एक सभा को संबोधित करना था। लोग उन्हें देखकर हँसने लगे और जब वह बोलने के लिए खडे हुए तो और अधिक हँसने लगे। उन भारतीय महोदय को थोड़ा क्रोध आ गया उन्होंने अपने भाषण में सबसे पहले कहा कि पचास प्रतिशत अमेरिकन मूर्ख होते है। अब क्या था सारी सभा उखड़ गई और कन्ट्रोल से बाहर होने लगी तभी थोड़ा विचार आया और उन्होंने कहा भाइयो! मुझे क्षमा करें मुझसे गलती हो गई पचास प्रतिशत अमेरिकन बुद्धिमान होते हैं। इस वाक्य को सुनकर सभा में शान्ति छा गई। और सभी लोग यथास्थान बैठ गये। अर्थ में कोई अन्तर नहीं था किन्तु शब्दों की विनय से उस भारतीय ने सब को वश में कर लिया।

अत: विनय गुण का विकास करो विनयगुण से असाध्य कार्य भी साध्य बन जाते हैं। विनय गुण साध्य है, उपास्य है, आराध्य है। भगवान महावीर कहते हैं कि मेरी उपासना चाहे मत करो परन्तु विनय गुण की उपासना अवश्य करें। किन्तु विनय का यह मतलब नहीं कि भगवान महावीर के सामने विनय करें और पडौसी के साथ अविनय का प्रदर्शन करें। अपने पडौसी की विनय करें कोई घर पर आ जाये तो उसका सम्मान करें क्योंकि नीतिकार ने कहा है कि सम्मान आदर से तृप्ति होती है भोजन से नहीं। मुनिराज तो आपको लौटे देखकर ही तृप्त हो जाते हैं। विनय गुण आप को सिद्धत्व प्राप्त करा देता है।

जीवन में कुछ ऐसी घटनायें घटती हैं जिनका महत्त्व सदा के लिए अमिट हो जाता है। कहावत प्रसिद्ध है कि राजाभोज के दरबार में ऐसे सैकड़ों कवि गाते थे जो एक उपदेशप्रद श्लोक कहकर लाखों रूपयों की आमदानी कर लेते थे। राजाभोज एक उपदेश लाख रुपये में खरीदता था। अत: यहाँ भी दृष्टान्त के द्वारा एक-एक लाख की तीन अमूल्य बातों का जिक्र किया जाता है इन्हें अपनाने से व्यक्ति जीवन में उन्नति कर सकता है।

पुरानी बात है यमुना तटीय राज्यों में से एक राज्य का राजा मधुसुदन था। वह प्रजा वात्सल्य, धार्मिक, दानवीर था। उसके राज्य में सब प्रकार की सुख सम्पदा थी। एक दिन नगर में एक महात्मा को घूमते देखा सबने उसे भोजन व वस्त्र के लिए पूछा परन्तु उसने कुछ भी स्वीकार नहीं किया और ऊँचे स्वर में आवाज लगाता रहा कि एक-एक लाख की तीन बातें तीन लाख की तीन बातें।

महात्मा के भ्रमण का यह समाचार राज्यसभा तक पहुँच गया सभी उस महत्मा को देखने के लिए उत्सुक हो गये। राजा दरबारियों सहित महत्मा के समीप पहुँचा उसने महात्मा को दर्शन कर अपने को कृतार्थ समझा। उसने विनीत स्वर में महात्मा से कहा-"क्या चाहिए महात्मन्।" "तुम दे सकोगे" महात्मा बोला "आज्ञा कीजिये-यथाशक्ति प्रयत्न करूँगा"। राजा ने कहा।

राजन्, कुछ महात्मा तीर्थ यात्रा से लौटते हुए तुम्हारी नगरी में ठहरे हैं, उनके लिए भोजन का प्रबन्ध करना है। मेरा अहोभाग्य राजा ने कहा परन्तु भिक्षा नहीं चाहिए। राजन् परिवर्तन चाहिए आपको तीन बाते उपयोगी बतलाऊँगा। आप तीन बार के लिए भोजन का प्रबन्ध कर दें।

राजा ने अपने भण्डारियों के नाम आदेश जारी कर दिया कि महात्माओं के लिए समस्त सामग्री का प्रबन्ध होना चाहिए। महात्माओं को जिन उपयोगी वस्तुओं की आवश्यकता हो वे सभी वस्तुऐं भण्डार से दे दी जायें। यदि महात्माओं की सेवा में कमी आयेगी तो परिजनों को इसके लिए दण्ड दिया जायेगा।

धार्मिक राजा की प्रजा भी धार्मिक होती है सारा नगर महात्माओं के दर्शनार्थ उमड़ पड़ा। सभी महात्माओं के दर्शन कर अपने को कृतकृत्य समझने लगे प्रजा ने भी महात्माओं की सेवा और खर्चे में अपने को लगा दिया। महात्मा बड़े प्रसन्न हुए फिर विदा होते समय प्रमुख महात्मा ने राजा को उपदेश देते हुए कहा। सुनो राजन् हम तुम्हारी सेवा-भक्ति से बहुत प्रसन्न हैं हमारी इन बातों को सदा ध्यान रखना (1) प्रात: ब्रह्म मुहूर्त में उठना (2) अतिथि का आदर करना (3) क्रोध के समय शान्ति करना।

इतना कहकर महात्मा चले गये। राजा मंत्रियों के साथ लौट आया। राजा मधुसूदन ने उसी दिन से तीनों बातों का पालन शुरू कर दिया इस प्रकार बहुत काल व्यतीत हो गया। एक दिन प्रात: उठकर मधुसूदन राजा यमुना तट पर घूम रहे थे, आकाश में उस उसय तारे चमक रहे थे, अंधकार अभी दूर नहीं हुआ था। राजा को एक स्त्री के रोने की आवाज सुनाई पड़ी राजा ने इधर उधर देखा एक स्त्री रोती हुई मिली तब राजा ने बड़े ही नम्र शब्दों में पूछा तुम कौन हो और क्यों रो रही हो?

उसने कहा कि मैं भवितव्यता हूँ। इस राज्य के राजा को कल सायंकाल पहाड़ी से एक सर्प निकल कर डस लेगा और राजा की मृत्यु हो जायेगी। राजा के इस वियोग से इस नगरी में हा-हा कार मच जायेगा और प्रजा रोने लगेगी। अत: मैं पहले से ही दु:खी होकर रो रही हूँ। राजा ने पूंछा क्या इसको रोका नहीं जा सकता? नहीं, हरगिज नहीं भवितव्यता को रोकने की शक्ति किसी में नहीं है। इतने में आकाश में प्रकाश हो गया। सूर्य पूर्व से अपनी किरणें फैंकने लगा। रोने वाली नारी अदृश्य हो गयी।

दिन में राज्य परिषद की बैठक हुई, महाराज ने अपनी सारीबातें कह सुनाई। किसी ने केवल भ्रम कहा और किसी ने स्वप्न, परन्तु राजा के मन में यह बात सत्य के रूप में बैठ गयी। प्रात: उठने का लाभ वह प्रत्यक्ष देख चुका था कि उसको अपनी मृत्यु का दो दिन पूर्व ही पता चल गया।

दरबार के कुछ विद्वान व्यक्तियों ने ठीक ही समझा और वे चिन्तित हो गये। महाराज मधुसूदन के कोई लड़का नहीं था केवल एक लड़की थी। मंत्री मण्डल में निश्चित हुआ कि महाराज के बाद पुरूष के भेष में इस लड़की को अभिषिक्त किया जाय। विवाह हो जाने पर इस के योग्य पति को यह राज्य सौंप दिया जायेगा।

महाराज ने यह आदेश महलों में जाकर रानियों को सुनाया रानियां व्याकुल हो गई। राजा ने कहा चिन्ता करने एवं रोने से क्या लाभ होगा। तुम लड़की को पुरूष भेष में पहले ही तैयार रखना। अन्यथा राज्य ही गड़बड़ हो जायेगा तुम्हें बडी सावधानी से कार्य करना होगा। उस समय की थोड़ी सी भूल ही बरबादी का कारण बन जायेगी।

दूसरे दिन प्रात: महाराज उठे, अपने दैनिक कार्य से निवृत हो बाहर निकल गये। अचानक उनके मन में आया कि अतिथि का आदर करना आवश्यक कर्तव्य है। वह साँप भी हमारा अतिथि होगा, अत: इसके सत्कार का समुचित प्रबन्ध होना चाहिए। जिस ओर से साँप आने वाला था सारा मार्ग सजा दिया। अगरबत्ती एवं धूप आदि सुगन्धित पदार्थ जलादिये गये। स्थान स्थान पर मीठे दूध के कटोरे रख दिये। पर्वत से लेकर महल के उद्यान तक यही सजावट थी। उद्यान में राजा कुर्सी लगाकर बैठ गया। आदेश दे दिया कि साँप को आने में किसी प्रकार की रूकावट न की जाय।

होनी होकर रहती है। ठीक समय पर साँप उसी पर्वत से निकला मार्ग की सुगन्धों और सजावट से प्रसन्न होता हुआ कभी लोटता, कभी उछलता और कभी दूध पीता हुआ रेगने लगा। और उद्यान तक पहुँच गया। राजा ने कहा "नाग देवता प्रणाम आप अपना कार्य कीजिये मैं मरने के लिए तैयार हूँ।" साँप भी मनुष्य वाणी में बोला- राजन मैं तुम्हारे अतिथि सत्कार से बहुत प्रसन्न हुआ मुझसे आप कुछ भी मांग लीजिये।

मेरे पास सब कुछ है मुझे कुछ नहीं चाहिए। आप अपना कार्य करे। राजा ने अपने मुख पर प्रसन्नता व्यक्त करते हुए कहा। अच्छा राजन्! यदि तुम कुछ नहीं मांगते तो में ही तुम्हारी मौत मरता हूँ। यह कहते हुए साँप पृथ्वी पर लेट गया और निर्जीव हो गया।

अतिथि सत्कार का फल राजा को प्रत्यक्ष प्राप्त हो गया राजा प्रसन्न होकर महलों की ओर चल दिया। रानी रो-रोकर व्याकुल हो रही थी उस पर साहस कर बेटी को पुरूष रूप में तैयार किया

और गले लगाकर अपने हृदय को शान्त करने लगी। राजा महलों में प्रविष्ट हुआ और रानी के कमरे में पुरूष को देख कर दंग रह गया। रानी को पुरुष के गले लगे देख कर उसे बहुत क्रोध आया और मारने को तैयार हो गया परन्तु शीघ्र ही मन में विचार आया कि महात्मा ने कहा था कि क्रोध के समय शान्ति रखना चाहिए।

वह शान्त होकर आगे बढ़ा तो अपनी पुत्री को पुरुष वेष में देखकर बहुत प्रसन्न हुआ और मन ही मन शान्ति धारण करने की प्रशंसा करने लगा। उसने अब सच्चे हृदय से पहचाना कि महात्मा जी की तीन बातें सचमुच तीन लाख की हैं।

इस प्रकार ऐसी विनय गुण की महिमा जानकर इसका महान अर्घावतारण करो। हे विनय सम्पन्नता अंग। हमारे हृदय में तुम्हीं निरन्तर वास करो, तुम्हारे प्रसाद से अब मेरी आत्मा कभी भी आठ मदों रूप अभिमान को प्राप्त नहीं हो।

जहजायरूवसरिसा अवलंबियभुय णिराउहा संता।
परकियणिलयविणवासा पव्वज्जा एरिसा भणिया।

जिसमें सद्योजात बालक के समान नग्न रूप धारण किया जाता है, भुजाएं नीचे की ओर लटकाई जाती है जो शस्त्ररहित है, शान्त है और जिसमें दूसरे के द्वारा बनाई हुई वसतिका में निवास किया जाता है ऐसी जिनदीक्षा कही गई है।

– कुन्दकुन्द

शीलव्रतेष्वनतिचार भावना

शीलपाहुड की 19वीं गाथा में आचार्य कुन्दकुन्द देव कहते हैं कि स्वभाव तथा प्रकृति का नाम शील है। मिथ्यात्व सहित कषाय रूप ज्ञान की परिणति तो दु:शील है इसको संसार प्रकृति कहते हैं और इसके विपरीत अर्थात् सम्यक् सहित ज्ञान की प्रकृति को सुशील कहा है इसको मोक्ष सम्मुख प्रकृति कहते हैं। ऐसे सुशील के जीवदया इन्द्रियों का दमन, सत्य अचौर्य ब्रह्मचर्य संतोष सम्यग्दर्शन, ज्ञान, तप ये सब परिवार कहे हैं क्योंकि संसार प्रकृति के पलटने से संसार देह से वैराग्य होता है और मोक्ष से अनुराग होने पर सम्यग्दर्शनादि परिणाम होगें फिर वह मोक्ष के सम्मुख होगा यही सुशील है और यह प्रकृति उसके होती है जिसके संसार का अन्त आता है अन्यथा जब तक यह प्रकृति न हो संसार भ्रमण ही करता है।

अनगारधर्मामृत के अध्याय 4 श्लोक 172 में पं. आशाधर जी ने लिखा है कि जिसके द्वारा व्रतों की रक्षा की जाय उसको शील कहते हैं।

शीलपाहुड की 40वीं गाथा में आचार्य कुन्दकुन्द देव ने कहा है कि पंचेन्द्रिय विषयों से विरक्त होना शील कहलाता है।

शील की महिमा का वर्णन कवि ने कितना सुन्दर किया है-

शील सदा सुखकारक है, अतिचार-विवर्जित निर्मल कीजै।
दानव देव करे वसु सेव, विषानलभूत पिशाच पती जे॥
शील बडों जग में हथियार, जुशील की उपमा काहे की दीजे।
'ज्ञान' कहे नहीं शील बराबर, ताते सदा दृढशील धरीजे॥

शील सदा ही सुखकारी है इसको अतिचार-रहित निर्मल अर्थात् स्वच्छ कीजिए इस पर देव, दानव भूत पिशाच आदि सभी विश्वास करते हैं। शील से बड़ा हथियार संसार में दूसरा नहीं है फिर शील की उपमा किस से दी जा सकती है? अर्थात् नहीं दी जा सकती। शील के बराबर कुछ भी नहीं है इसलिए शील का सदा दृढ़ता से पालन कीजिए।

शील सदा दृढ़ जो नर पालै, सो औरन की आपदटालै। जो मनुष्य शील को दृढता से पालते हैं वे दूसरे की विपदा को दूर कर देते हैं।

जिसके द्वारा व्रतों की रक्षा अतिचार रहित की जाती है उसे शीलव्रतेष्वनतिचार भावना कहते हैं।

शीलव्रतेष्वनतीचार का अर्थ- राजवार्तिक में कहा है कि अहिंसादि पाँच व्रत तथा इन पाँच व्रतों को पालने के लिए क्रोधादि कषायों के त्यागरूप शील में मन-वचन-काय की जो

निर्दोष प्रवृति है वह शील व्रतेष्वनतीचार भावना है। आत्मा के स्वभाव का नाम शील है आत्म स्वभाव का घात करने वाले हिंसादि पाँच पाप हैं। उनमें कामसेवन नाम का एक ही पाप हिंसादि सभी पापों को पुष्ट करता है तथा क्रोधादि सभी कषायों को तीव्र करता है। अतः यहां जयमाला के अर्थ में ब्रह्मचर्य की प्रधानता से ही वर्णन किया है।

यह शील दुर्गति के दुःख को हरने वाला है। स्वर्गादि शुभगति का कारण है। व्रत तप-सयंम का जीवन है। शील विना तप करना, व्रत धारण करना, संयम पालना मृतक के शरीर समान कार्यकारी नहीं है शील रहित का तप, व्रत-संयम धर्म की निन्दा कराने वाला है। ऐसा जानकर शील नाम के धर्म के अंग का पालन करो, चंचल मन रूपी पक्षी का दमन करो, अतिचार रहित शुद्ध शील को पुष्ट करो।

मन हाथी के समान है:- धर्मरूपी वन का विध्वंस करने वाले मनरूपी मदोन्मत हाथी को रोकना चाहिए चलायमान होकर मनरूपी हाथी महान अनर्थ करता है। जैसे मतवाला हाथी अपने स्थान से निकल भागता है। उसी प्रकार काम से उन्मत्त हुआ मन रूपी हाथी अपने समभाव रूप स्थान से निकल भागता है कुल की मर्यादा सन्तोष आदि छोड़ देता है। मदोन्मत हाथी तो सांकल तोड़कर भाग जाता है। यह मनरूपी हाथी सुबुद्धिरुपी सांकल तोड़कर घूमता है। हाथी तो मार्ग में चलाने वाले महावत को गिरा देता है। कामी का मन सम्यग्धर्म के मार्ग में प्रवर्ताने वाले ज्ञान को दूर कर देता है। हाथी तो अकुंश को नहीं मानता, मनरूप हाथी गुरुओं के शिक्षाकारी वचनों को नहीं मानता है। हाथी तो फल व छाया देने वाले बड़े वृक्षों को उखाड़ फैंकता है। काम से उद्दीप्त मन स्वर्ग मोक्षरूपी फल को देने वाले तथा यशरूपी सुगन्ध को फैलाने वाले समस्त विषयों की आतप को हरने वाले ब्रह्मचर्य रूपी वृक्ष को उखाड़ फैकता है।

हाथी तो मैल कीचड़ आदि को दूर करने वाले सरोवर में स्नान करके मस्तक के ऊपर धूल डालता हुआ धूल से खेलता है। काम से व्याप्त मन सिद्धान्तरूप सरोवर में स्नान करके अनेक प्रकार के अज्ञानरूप मैल को धोकर के भी पापरूप धूल से खेलता है। हाथी तो कानों की चपलता दिखलाता है। काम संयुक्त मन पाँचों इन्द्रियों के विषयों में चंचलता दिखलाता है। हाथी तो हथिनी में रति करता है। काम युक्त मन कुबुद्धि रूपी हथिनी में रमता है। हाथी स्वच्छन्द होकर डोलता है। मन भी स्वच्छन्द होकर डोलता है। हाथी तो मद से मस्त रहता है। कामी का मन रूपादि आठ मदों से मस्त रहता है। हाथी के पास कोई पथिक नहीं आता दूर से ही भाग जाता है। काम से उन्मत्त मन के नजदीक भी कोई एक भी गुण नहीं रहता है।

इसलिए इस काम से उन्मत्त मन रूपी हाथी के लिए वैराग्य रूपी खम्बे से बांधो, यदि यह खुला रहा तो महान अनर्थ करेगा। ये काम अनंग है। इसके पास अंग नहीं है। यह तो मनसिज है। मन से ही इसका जन्म होता है। मन का मंथन करने वाला है। इसलिए इसे मन्मथ कहते हैं।

संवर का अरि अर्थात् वैरी है इसलिए इसे संवरारि कहते हैं। काम से खोटा दर्प अर्थात् गर्व उत्पन्न होता है इसलिए इसे कंदर्प कहते हैं। इसके द्वारा अनेक मनुष्य-तिर्यञ्च परस्पर लड़कर मर जाते हैं इसलिए इसे मार कहते हैं। इसी कारण मनुष्यों में अन्य इन्द्रियों के अंग तो प्रगट हैं। काम के अंग ढके हुए हैं। उत्तम पुरुष तो काम के अंग का नाम भी उच्चारण नहीं करते इसके समान दूसरा पाप नहीं है। धर्म से भ्रष्ट करने वाला काम ही है। इस काम ने ऋषि, मुनि, देवता, हरि, हर, ब्रह्मा आदि को भ्रष्ट करके अपने अधीन किया है। इसलिए सारे जगत को जीतने वाला एक काम का त्याग करने के लिए मनुष्यनी, देवांगना, तिर्यञ्चनी का संसर्ग-संगीत काम विकार को उत्पन्न करने वाली जानकर दूर से ही त्याग कर दो।

मन वचन काय से स्त्रियों में राग का त्याग करो। आप स्वयं कुशील के मार्ग पर नहीं चलना, अन्य दूसरे को कुशील के मार्ग का उपदेश नहीं देना। कोई अन्य जो कुशील के मार्ग पर चलता हो भव्य जीव उसकी अनुमोदना नहीं करते। बालिका स्त्री को देखकर उस पर पुत्रीवत निर्विकार बुद्धि करो। यौवन रूपी हाथी पर बैठी, सौन्दर्यरूप जल में जिसके सभी अंग डूब रहे हों ऐसी रूपवती स्त्री में बहिन के समान निर्विकार बुद्धि करो।

जो शीलवान हैं उनकी दृष्टि स्त्रियों पर जाते ही उनके नेत्र बन्द हो जाते हैं जो स्त्रियों से वचनालाप करेगा, स्त्रियों के अगों को देखेगा उसका शील अवश्य भंग होगा इसलिए जो विवेकी गृहस्थ हैं उनके तो एक अपनी स्त्री के सिवाय अन्य स्त्रियों की संगति, अवलोकन, वचनालाप का त्याग होता है तथा अन्य स्त्रियों की कथा का विचार स्वप्न में भी नहीं आता है। एकान्त में माता, बहन, पुत्री के साथ भी नहीं रहते हैं।

मुनिराज तो समस्त स्त्री मात्र का साथ ही नहीं करते हैं स्त्रियों में उपदेश नहीं करते हैं। स्त्री का नाम ही उसके प्रकट दोषों को कहने वाला है। स्त्री के समान इस जीव का बुरा करने वाला अन्य कोई बैरी नहीं है। इसलिए सज्जन लोग इसे नारी कहते हैं। दोषों को प्रत्यक्ष देखते-देखते ही ढक लेती है। अत: इसे स्त्री कहते हैं। इसे देखने से पुरुष का पतन हो जाता है इसलिए इसका नाम पत्नि है। कुमरण होने का कारण है। इसलिए इसका नाम कुमारी है इसकी संगति से पौरुष बुद्धि बल आदि नष्ट हो जाते हैं। इसलिए इसे अवला कहते हैं। संसार के बंध का कारण है। इसलिए इसका नाम वधु है। कुटिलता-मायाचार का स्वभाव रखती है। इसलिए इसका नाम वामा है। इसके नेत्रों में कुटिलता बसती है इसलिए इसे वामलोचना कहते हैं।

शीलवन्त को इन्द्र भी नमस्कार करता है:- शीलवान पुरूष रत्नत्रय धन लेकर कामादि लुटेरों के भय से रहित निर्वाणपुरी की ओर गमन करते हैं। शील से भूषित रूपरहित भी हो, मलिन हो, रोगादि सहित हो तो भी अपनी संगति से सभी सभाजनों को मोहित करता है। शीलरहित

व्यभिचारी पुरूष में कामदेव समान रूप हो तो भी लोग उस पर थू-थू-कार ही करते हैं। इसका नाम ही कुशील है।

शील का नाम स्वभाव :- कामी मनुष्य का शील जो आत्मा का स्वभाव है, वह खोटा हो जाता है। इसलिए इसको कुशील कहते हैं। कामी मनुष्य धर्म से, आत्मा के स्वभाव से व्यवहार की शुद्धता से रहित हो जाता है। इसलिए इसे व्यभिचारी कहते हैं। इसके समान जगत् में अन्य खोटा कर्म नहीं है। इसलिए इसे कुकर्म कहते हैं। कामसेवन के समय मनुष्य पशु समान हो जाता है। इसलिये इसे पशुकर्म कहते हैं। ब्रह्म अर्थात् आत्मा का ज्ञान-दर्शन आदि स्वभाव का इससे घात होता है। अत: इसे अब्रह्म कहते हैं। कुशीली की संगति से कुशीली हो जाते हैं। जिसने शील की रक्षा की उसने शान्ति, दीक्षा, तप, व्रत संयम सब की रक्षा की। उसे अपने स्वभाव से चलायमान नहीं होना चाहिए। शीलगुण सभी गुणों में बड़ा है। शील सहित पुरुष का थोड़ा भी व्रत तप प्रचुर फल देता है तथा शील बिना बहुत भी व्रत, तप हो वह निष्फल हैं। इस प्रकार जानकर अपनी आत्मा में शील की शुद्धता के लिए नित्य शील ही को पूजो। यह शीलव्रत मनुष्य जन्म में ही है। अन्यगति में नहीं हैं। अत: जन्म सफल करना चाहते हो तो शील की ही उज्ज्वलता करो।

स्त्रियों में राग उत्पन्न करने वाली कथाओं को सुनने का त्याग, स्त्रियों के मनोहर अंगों को देखने का त्याग, पूर्व किये गये भोगों को स्मरण करने का त्याग, कामोद्दीपन करने वाले पौष्टिक और इन्द्रियों की लालसा उत्पन्न करने वाले रसों का त्याग, शरीर को श्रृंगार करने का त्याग ये पाँच भावनायें शील को दृढ़ करती है।

एक समय एक आचार्य महाराज अपने संघ के साथ विहार कर रहे थे। वे रास्ता भूल गये। कुऐ पर एक लड़की पानी भर रही थी उन्होंने उस लड़की से रास्ता पूछा लड़की ने रास्ता बता दिया पूरा संघ अपने निर्दिष्ट स्थान पर पहुँच गया। स्थान पर पहुँच कर आचार्य ने शिष्यों से कहा कि रास्ते में जो दोष लगा है उसका प्रायश्चित लो। शिष्यों ने गुरु से कहा कि आज तो प्रायश्चित आप लेंगें आपने रास्ते में उस लड़की से क्या पूंछा था? आचार्य महाराज बोले कि हमने रास्ता पूंछा था। शिष्य ने कहा कि क्या प्रमाण है? आप ने रास्ता पूंछा था। आचार्य महाराज शिष्यों की बात सुनकर दंग रह गये। और कहने लगे वास्तव में प्रायश्चित के अधिकारी हम ही हैं। तुरन्त आचार्य महाराज ने प्रायश्चित लिया। यह बात लोक व्यवहार से भी विरूद्ध है। शील को अधोलिखित अतिचारों से बचाना चाहिए।

बंध, वध, छेद, अधिक भार लादना, और अन्नपान का निरोध करना-ये पाँच अहिंसाणुव्रत के अतिचार हैं। पशु आदि जीवों को रस्सी इत्यादि से बांध कर रखना बंधातिचार है। प्राणियों को लकड़ी आदि से मारना बधातिचार है। नाक, कान आदि अंगों को छेदना छेदातिचार है। प्राणी

की शक्ति से अधिक भार लादना अतिभारारोपणातिचार है। प्राणियों को ठीक समय पर खाना-पीना न देना अन्नपान निरोधातिचार है।

मिथ्या उपदेश, रहोभ्यायाख्यान, कूटलेख, क्रिया, न्यासापहार और साकार मंत्र भेद ये पाँच सत्याणुव्रत के अतिचार हैं। परमागम के विरूद्ध झूठा उपदेश देना मिथ्योपदेश है किसी की गुप्त बात को प्रकट करना रहोभ्याख्यान है। झूठे पत्र आदि, पत्र के प्रयोग के वशसे कोई खोटा लेखलिखना कूटलेखक्रिया अतिचार है। कोई मनुष्य कुछ वस्तु दे गया और फिर वापस मांगते समय उसने कम मांगी तब ऐसा कहकर कि तुम्हारा जितना हो उतना ले जाओ तथा बाद में कम देना न्यासापहारअतिचार है। हाथ आदि की चेष्टा पर से दूसरे के अभिप्राय को जानकर उसे प्रगट कर देना साकारमंत्रभेद अतिचार है।

चोरी के लिए चोर की प्रेरणा करना या उसका उपाय बताना, चोर से चुराई हुई वस्तु को खरीदना, राज्य की आज्ञा के विरूद्ध चलना, देने-लेने के बाट, तराजू आदि कम ज्यादा रखना और कीमती वस्तु में कम कीमत की वस्तु मिलाकर असली भाव से बेचना ये अचौर्याणुव्रत के अतिचार हैं।

दूसरे के पुत्र-पुत्रियों का विवाह करना-कराना, पति सहित व्यभिचारिणी स्त्रियों के पास आना-जाना, लेन-देन रखना, रागभाव पूर्वक बात-चीत करना, पति रहित व्यभिचारिणी स्त्री (वैश्यादि) के यहाँ जाना-आना, लेन-देन आदि का व्यवहार रखना, अनंग क्रीडा अर्थात् काम-सेवन के लिए निश्चित अंगों को छोड़कर अन्य अंगों से काम सेवन करना और काम सेवन की तीव्राभिलाषा ये पाँच ब्रह्मचर्याणुव्रत के अतिचार हैं।

क्षेत्र और रहने के स्थान के परिमाण का उल्लंघन करना, चाँदी और सोने के परिमाण का उल्लंघन करना धन (पशुआदि) तथा धान्य के परिमाण का उल्लंघन करना, दासी और दास के परिमाण का उल्लंघन करना था वस्त्र, वर्तन, आदि के परिमाण का उल्लंघन करना ये पाँच अपरिग्रह अणुव्रत के अतिचार हैं।

दृष्टान्त- दिन ढल चुका था। नन्ही-नन्ही बूंदे गिरने से हवा ठण्डी हो गई थी। सभी अपना-अपना काम पूरा करके अपने घर आ गये थे। रास्ते में कीचड़ होने से रास्ता चलना मुश्किल हो रहा था। इसी समय एक 16 वर्ष का किशोर युवक गाड़ी के पीछे-पीछे दौड़ता हुआ आ रहा था। उसके मुख से गाड़ी रोको-रोको की आवाज आ रही थी। गाड़ी के अन्दर बैठे हुए व्यक्ति ने कोचवान से कहकर गाड़ी रुकवाई। लड़के ने समीप आकर कहा कि तीन दिन पहले गाड़ी के कोचवान ने गाड़ी में लालटेन जलाने के लिए एक पैसे की दियासलाई मोल ली थी उस समय आप एक पैसे की जगह अठन्नी दे गये थे मैंने अंधेरे में नहीं देखा आप अठन्नी ले लें और मुझे एक पैसा दे दें। उस लड़के की बात पर व्यक्ति को बड़ा आश्चर्य हुआ यदि मैंने अठन्नी

तुम्हें दे दी तो तुम्हें कुछ न कुछ मिला ही। लड़के ने कहा कि जब मेरी अठन्नी नहीं है तो में क्यों रखूं। मैं दिन भर की कमाई से काम चला लेता हूँ। तुमने यह अठन्नी चुराई थोड़े ही है। आदमी को हमेशा अपनी कमाई पर विश्वास रखना चाहिए। लड़के की बात सुनकर रईस दंग रह गया।

उसने मन ही मन लड़के की प्रशंसा की। आज ऐसे व्यक्तियों की आवश्यकता है जिससे समाज में फैली घूस, चोर बाजारी आदि का सर्वनाश हो जाय।

ये पाँच भावनायें अथवा अतिचार दूर कर शील का पालन करना चाहिए। अतिचार और अनाचार में बड़ा अन्तर है अतिचार दोष है जो लगाये नहीं जाते लग जाते हैं किन्तु अनाचार सम्पूर्ण व्रत को ध्वंस करने की प्रतिक्रिया है।

दृष्टान्त- एक पुरानी रस्सी से बाल्टी खींची जा रही है। रस्सी चट-चट कर रही है। पानी खींचने वाला बाल्टी को ग्रहण कर ऊपर ले आता है। इस प्रकार बाल्टी और रस्सी को बचा लेता है किन्तु अगर वह बाल्टी को बीच में ग्रहण नहीं करता तो बाल्टी और पानी दोनों ही हाथ से चले जाते चट-चट की आवाज अतिचार है और भरी बाल्टी से हाथ धो बैठना अनाचार है। रावण के व्रतों में अतिचार तो अवश्य लगे किन्तु व्रत भंग नहीं हुए। जो इस व्रत के सम्पर्क में पड़ जाते हैं बिना प्रभावित हुए नहीं रह सकते। कस्तूरी को अपनी सुगन्ध के लिए क्या प्रतिज्ञा करनी पड़ती है। उस की सुगन्ध चारों ओर विकीर्ण हो जाती है। बगीचे में गुलाब का फूल खिला हुआ है तो आप कहीं भी बगीचे में बैठे हों आपकी नाक में उसकी सुगन्ध प्रवेश अवश्य करेगी।

मुनिराज निरतिचार व्रत के पालन में पूर्ण सचेष्ट रहते हैं। मुनिराज तो शील के अठारह हजार दोष बताते हैं ऐसी वीतरागी साधु के दर्शनमात्र से सब दु:ख भाग जाते हैं।

शील के अठारह हजार दोष:- स्त्री दो प्रकार की होती है।

1. चेतनात्मक 2. अचेतनात्मक।

चेतनात्मक के तीन भेद हैं। 1. मनुष्यनी 2. तिर्यंचनी 3. देवी

अचेतनात्मक के तीन भेद हैं- 1. काष्ठांग 2. पाषाण 3. चित्राभ

चेतनात्मक-तीन चेतनात्मक को मन, वचन काय से गुणा करने पर 3×3=9 इनकी कृत, कारित, अनुमोदना से गुणा करने पर 9×3=27 इनको आहार, मैथुन, भय, परिग्रह इन चार संज्ञाओं से गुणा करने पर -27×4=108 इनको 5 भाव इन्द्रिय व 5 द्रव्य इन्द्रिय से गुणा करने पर 1080 हो जाते हैं 1080 को 16 कषायों से गुणा करने पर 17280 चेतनात्मक हो जाते हैं।

अचेतनात्मक-काष्ठांग, पाषाण, चित्राभ को कृत, कारित, अनुमोदना से गुणा करने पर 3×3=9 इनको 5 भाव इन्द्रियों से गुणा करने पर 9×5=45 को 16 कषायों से गुणा करने पर 45×16=720 अचेतनात्मक हो जाते हैं।

कुलशील के दोष - चेतनात्मक+अचेतनात्मक।

17280+720=18000 इस तरह निरतिचार व्रत पालन की महिमा अद्भुत है।

एक भिक्षुक झोली लेकर एक-एक द्वार पर रोटी माँग रहा था। रूखा जबाव मिलने पर भी वह नाराज न हुआ बल्कि आगे बढ़ जाता। एक थानेदार को तरस आ गया। वह उस भिक्षुक को बुलाने लगा। भिक्षुक के न रुकने पर एक नौकर को उसके पास भेज दिया। भिक्षुक बोला मैं रिश्वत का अन्न नहीं खाता और भिक्षुक चला गया नौकर ने वापस आकर वहीं शब्द दोहरा दिये कि मैं रिश्वत का अन्न नहीं खाता। थानेदार की आत्मा में वे शब्द प्रवेश कर गये और उसने सदा के लिए रिश्वत लेने का परित्याग कर दिया। भिक्षुक की प्रतिज्ञा ने, उसके व्रत ने दूसरे की जिन्दगी सुधार दी। निरतिचार पालन करने वाला स्वयं तो तिरता है दूसरों को भी तिरा देता है। वह स्वयं तो मंजिल पर पहुँता है दूसरों को भी मंजिल पर पहुँचाने में सहायक बन जाता है। उस भिक्षुक की प्रतिज्ञा के कारण उस थानेदार की आत्मा भी सफल बन गयी।.

दृष्टान्त:- एक ब्राह्मण के एक लड़का था। ब्राह्मण ने लड़की से शादी करने के लिए कहा पहले तो लड़का इंकार करता रहा परन्तु कई बार कहने पर बोला कि मैं अंधी लड़की से शादी करूंगा। अंधी लड़की से उसकी शादी हो गई। उस लड़की से उसके तीन लड़के पैदा हुए। एक दिन अंधी लड़की भी बोली कि आप तो मंत्र जानते हैं मेरी आंख खोल दो मैं भी संसार देख लूंगी उसके पति ने बहुत मना किया लेकिन वह नहीं मानी तब उसने उसकी आखें खोल दी फिर उसके एक पुत्र पैदा हुआ। स्त्री ने पूछा आप मेरी आंख खोलना क्यों नहीं चाहते थे। ब्राह्मण बोला मेरी बात की परीक्षा कर लो आज रोटी मत बनाना। अगर कोई पूछे तो कह देना तुम्हारे पिता जी ने मुझे पीट दिया है इसलिए रोटी नहीं बनाई स्त्री ने वैसा ही किया। बड़ा लड़का आया और दु:ख मानने लगा कि लडाई आपकी भूखे हम मरे इस प्रकार वे दोनों लड़के भी आगये। तब चौथा लड़का जो आंखे खुलने के बाद हुआ था, आया। उसने भी रोटी मांगी, उसको भी यही जवाब मिला तब उसने तड़क कर कहा तू रोटी बना मैं देख लूंगा। तब ब्राह्मण ने पत्नि से पूंछा जब वह गर्भ था तो किसी को देखकर विचार आया था क्या? तब स्त्री ने कहा कि और तो विकार नहीं। एक रोज एक पहलवान को मैंने देख लिया था तब मन में विचार आया था कि कितना हष्ट पुष्ट आदमी है। तब ब्राह्मण कहता है तभी तो इस बालक पर प्रभाव आया जो यह आज जवाब दे रहा हैं। इसीलिए कहते है कि दूसरों के ऊपर दृष्टि पड़ने पर अगर भाव विकृत हो गये तो ब्रह्मचर्य में दोष आता है फिर उसकी संतान भी वैसी होती है। इसलिए अपने व्रतों को निरतिचार पालन करना चाहिए। शीलवान पुरुष को निम्न बातें ध्यान में रखना चाहिए।

1. जहाँ पर स्त्री ठहरी हो या नपुंसक हो वहाँ पर नहीं ठहरना।

2. शीलवान को स्त्री कथा नहीं करना चाहिए।

3. स्त्री के आसन पर नहीं बैठना चाहिए।

4. स्त्री के रूप को नहीं निहारना चाहिए।

5. जहाँ पर स्त्रियाँ रागभरी बातें करती हों वहाँ पर नहीं ठहरना चाहिए।

6. पिछले भोगे हुए भोग याद नहीं करना चाहिए।

7. पौष्टिक पदार्थ नहीं खाना चाहिए।

8. रसों का त्याग कर भोजन करना चाहिए।

9. शरीर का श्रृंगार नहीं करना चाहिए।

ये नौ बातें शील की बाड़ अर्थात् रक्षक हैं। सभी के कोई न कोई व्रत अवश्य होना चाहिए व्रत बड़े ही मार्मिक होते हैं। व्रत पर अडिग रहने से सभी कार्य सफलता पूर्वक सम्पन्न हो जाते हैं। व्रतों को निरतिचार पालने से संसारिक सुख और पारमार्थिक सुख दोनों प्राप्त होते हैं।

इस प्रकार शील की नौ बाड़ को अपना कर जो ज्ञानी जन अपने ब्रह्मचर्य धर्म का निरतिचार पालन करते हैं और किसी प्रकार का कोई दोष नहीं लगने देते वे परम्परा से मोक्ष को प्राप्त करते हैं इसलिए हे भव्य आत्माओं! निरतिचार दृढ़तापूर्वक अपने शील का पालन करके इस भव सागर को पार करके शाश्वत सुख का रसपान करते हुए अपने में लीन हो जाओ।

गृहे जपफलं प्रोक्तं वने शतगुणं भवेत्।
पुण्यारामे तथारण्ये सहस्रगुणितं मतम्।।
पर्वते दशसाहस्त्रं च नद्यां लक्षमुदाहृतं।
कोटि देवालये प्राहुरनन्तं जिनसन्निधौ।।

घर में मंत्राराधन करने से एक गुणा, वन में सौ गुना, नशिया एवं वन में हजार गुना, पर्वत पर दस हजार गुना, नदी पर लाख गुना, देवालय में करोड़ गुना, जिनेन्द्र देव के समक्ष अनंत गुना फल दायक होता है। अत: कार्य सिद्धि के लिये मंत्राराधन देवालय या जिनेन्द्र देव के समक्ष करना चाहिए।

अभीक्ष्णज्ञानोपयोग भावना

सर्वार्थसिद्धि में आचार्य पूज्यपाद स्वामी कहते हैं कि- **जानाति ज्ञायतेऽनेन ज्ञप्ति मात्रं वा ज्ञानम्।** अर्थात् जो जानता है वह ज्ञान है। (कर्तृसाधन)। जिसके द्वारा जाना जाय सो ज्ञान है। (करण साधन) जानना मात्र ज्ञान है। (भाव साधन)।

राजवार्तिक में स्वामी अकलंक देव कहते हैं कि- **एवंभूतनयवक्तव्यवशात् ज्ञानदर्शन पर्यायपरिणतात्मैव ज्ञानं दर्शनं च तत्स्वाभाव्यात** अर्थात् एवंभूत नय की दृष्टि में ज्ञानक्रिया में परिणत आत्मा ही ज्ञान है क्योंकि वह ज्ञान स्वामी है। स्याद्वादमंजरी में लिखा है कि- सम्यगवैपरीत्येन विद्यतेऽवगम्यते वस्तुस्वरूपमनयेति संवित्। अर्थात् जिससे यथार्थ रीति से वस्तु जानी जाय उसे ज्ञान (संवित्) कहते हैं। आचार्यों ने ज्ञान के अनेक भेद बताये हैं परन्तु मुख्यरूप से पाँच भेद हैं। मतिज्ञान, श्रुतिज्ञान, अवधिज्ञान, मन:पर्ययज्ञान और केवलज्ञान।

ज्ञान की महिमा का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि-

ज्ञान सदा जिनराज को भाषित, आलस छोड पढे जो पढावे।
द्वादश दोउ अनेक हूं भेद, सुनाम मति श्रुति पंचम पावे॥
चार हूं भेद निरन्तर भाषित, ज्ञान अभीक्षण शुद्ध कहावे।
ज्ञान कहे श्रुत भेद अनेक जु, लोकालोक हि प्रकट दिखावे॥

जिनेन्द्र देव द्वारा कहा हुआ ज्ञान आलस छोड़कर सदा पढ़ना तथा पढ़ाना चाहिए द्वादशांग में ज्ञान के अनेक भेद कहे हैं, परन्तु पाँच नाम (मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मन:पर्ययज्ञान, केवलज्ञान) मुख्यत: कहे हैं। चार भेद (केवलज्ञान को छोड़कर) निरन्तर दिखाई देते हैं। निरन्तर स्थाई रहने वाला (केवलज्ञान) शुद्ध ज्ञान कहलाता है यह अभेद होता है। श्रुतज्ञान के अनेक भेद कहे हैं। ज्ञान में लोकालोक प्रकट दिखाई देता है।

पं. बनारसीदास जी ज्ञान की महिमा का वर्णन करते हुए कहते हैं कि-

ग्यान कला जिन के घट जागी।
ते जगमाहिं सहज वैरागी॥
ग्यानी मगन विषै सुख मांही।
यह विपरीति संभवै नाही॥

अर्थात् जिनके चित्त में सम्यग्ज्ञान की किरण प्रकाशित हुई है, वे संसार में स्वभाव से ही वीतरागी रहते हैं, ज्ञानी होकर विषय सुख में आसक्त हों यह उल्टी रीति असम्भव हैं।

पं. बनारसी दास जी आगे कहते हैं कि-

जम कौसो भ्राता दुखदाता है असाता कर्म,
ताकै उदै मूरख न साहस गहतु है।
सुरग निवासी भूमिवासी औ पातालवासी,
सबही कौ तनमन कंपितु रहतु है।।
उरकौ उजारौ न्यारौ देखिये सपत भैसों,
डोलत निसंक भयौ आनन्द लहतु हैं।
सहज सुवीर जाकौ सास तौ सरीर ऐ सौ,
ग्यानी जीव आरज आचारज कहतु हैं।।

आचार्य कहते हैं कि अत्यन्त दुखदाई, मानो जम का भाई ही है, जिससे स्वर्ग, मध्य और पाताल त्रिलोक के जीवों का तनमन कांपता रहता है, ऐसे असाता कर्म के उदय में अज्ञानी जीव हतसाहस हो जाता है परन्तु ज्ञानी जीव के हृदय में ज्ञान का प्रकाश है,वह आत्मबल से बलवान है उसका ज्ञान रूपी शरीर अविनाशी है, वह परम पवित्र है और सप्तभय से रहित निःशंकित डोलता है।

ज्ञानाभ्यास करे मन माहीं, ताको मोह महातम नाहीं। जो मन लगाकर ज्ञान का अभ्यास करते हैं उनका मोह रूपी महाअंधकार दूर हो जाता है।

अभीक्ष्णज्ञानोपयोग भावना का वर्णनः- हे आत्मन्! मनुष्य जन्म पाकर निरन्तर ज्ञानाभ्यास ही करो, ज्ञान का अभ्यास किये बिना एक क्षण भी व्यतीत नहीं करो ज्ञान के अभ्यास बिना मनुष्य पशु समान है। अतः योग्यकाल में जिनागम का पाठ करो जब समभाव हो तब ध्यान करो, शास्त्रों के अर्थ का चिंतन करो, बहुत ज्ञानी गुरूजनों में नम्रता बन्दना विनयादि करो, धर्म सुनने के इच्छुक को धर्म का उपदेश करो। इसी को अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग कहते हैं। इस अभीक्ष्णज्ञानोपयोग नाम के गुण का अष्ट द्रव्यों से पूजन करके इसका अर्घावतरण करो तथा पुष्प को दोनों हाथों की अंजुलि से इसके आगे क्षेपण करो ज्ञानोपयोग चैतन्य की परिणिति है, अतः प्रतिक्षण निरन्तर चैतन्य की ही भावना करना। अनादिकाल से काम, क्रोध, अभिमान, लोभादि, मेरे साथ में लगे हैं अनादि से ही इनका संस्कार मेरे चैतन्य रूप में घुलमिल रहा है अब्र ऐसी भावना हो कि भगवान के परमागम के सेवन के प्रभाव से मेरी आत्मा, रागद्वेष आदि से भिन्न अपने ज्ञायक स्वभाव में ही ठहर जाय, रागादि के वशीभूत नहीं हो, वही मेरे आत्मा का हित है।

नवीन शिष्यों के आगे श्रुत का इस प्रकार अर्थ प्रकाशित करना जिससे संशय आदि रहित स्वपर पदार्थों का यथार्थ स्वरूप प्रकट हो जाये। जिस प्रकार पाप पुण्य का स्वरूप लोक अलोक

का स्वरूप, मुनि श्रावक के धर्म का सत्यार्थ निर्णय हो जाये उस प्रकार ज्ञानाभ्यास करना। अपने चित्त में संसार शरीर भोगों, से विरक्तता का चिन्तन करना। संसार, शरीर भोगों का यथार्थ स्वरूप का चिन्तन करने से रागद्वेष-मोह आदि ज्ञान को विपरीत नहीं कर सकते हैं।

समस्त द्रव्यों में मिला हुआ होने पर भी एक आत्मा का भिन्न अनुभव होना, ज्ञानोपयोग है। ज्ञानोपयोग द्वारा ज्ञान का अभ्यास करने से विषयों की वांछा नष्ट हो जाती है। कषायों का अभाव हो जाता है। माया मिथ्यात्व निदान इन तीन शल्यों का ज्ञानाभ्यास से नाश हो जाता है। ज्ञान के अभ्यास से ही मनस्थिर होता है। अनेक प्रकार के विकल्प नष्ट हो जाते हैं। ज्ञानाभ्यास से ही धर्मध्यान में - शुक्लध्यान में अचल होकर बैठा जाता है। ज्ञानाभ्यास से ही व्रत संयम से चलायमान नहीं होते हैं। अशुभ कर्मों का नाश होता है। जिन धर्म की प्रभावना होती है। ज्ञान के अभ्यास से ही लोगों के हृदय में पूर्व का संचित पापरूप ऋण नष्ट हो जाता है।

जिनधर्म का स्तम्भ ज्ञान का अभ्यास :- ज्ञान के प्रभाव से ही समस्त जीव विषयों की वांछा रहित होकर सन्तोष धारण करते हैं। ज्ञान के अभ्यास से ही उत्तम क्षमादि गुण प्रकट होते हैं। भक्ष्य-अभक्ष्य का योग्य-अयोग्य का त्यागने योग्य-ग्रहण करने योग्य का विचार होता है। ज्ञान बिना परमार्थ और व्यवहार दोनों नष्ट हो जाते हैं।

ज्ञान रहित राजपुत्र का भी निरादर होता है। ज्ञान समान कोई धन नही हैं। ज्ञान के दान समान कोई दान नहीं है। दुःखी जीव को सदा ज्ञान ही शरण है। ज्ञान ही स्वदेश में परदेश में आदर कराने वाला परम धन है। ज्ञानधन को कोई चोर चुरा नहीं सकता है। लूटनेवाला लूट नहीं सकता है। किसी को देने से घटता नहीं है। जो देता है उसका ज्ञान बढ़ जाता है। ज्ञान से ही सम्यग्दर्शन उत्पन्न होता है। ज्ञान से ही मोक्ष प्रकट होता है। सम्यग्ज्ञान आत्मा का अविनाशी स्वाधीन धन है। ज्ञान बिना संसार राग में डूबने वाले को हस्तावलम्बन देकर कौन रक्षा कर सकता है। विद्या के समान कोई आभूषण नहीं हैं। विद्या बिना केवल आभूषण से कोई सत्पुरूषों के द्वारा आदर योग्य नहीं हो जाता है। निर्धन को भी परम निधान प्राप्त कराने वाला एक सम्यग्ज्ञान ही है।

हे भव्यजीवो! भगवान वीतराग करुणानिधान गुरु तुम्हारे लिए यह शिक्षा दे रहे हैं कि- अपनी आत्मा को सम्यग्ज्ञान के अभ्यास में ही लगाओ तथा मिथ्यादृष्टियों के द्वारा कहे गये मिथ्याज्ञान का दूर से ही परित्याग करो। सम्यग्ज्ञान और मिथ्याज्ञान की परीक्षा करके ग्रहण करो। अपनी संतान को पढ़ाओ अन्य लोगों को भी विद्या का अभ्यास कराओ। जो धनवान है यदि वे अपना धन सफल करना चाहते हैं तो पढ़ने वालों को आजीविका आदि देकर स्थिर करो। पुस्तकें लिखाकर विद्या पढ़ने वालों को दो। पुस्तकों को शुद्ध करो-कराओ, पढ़ने पढ़ाने के लिए स्थान दो निरन्तर पढ़ने सुनने में ही मनुष्य जन्म का समय व्यतीत करो। यह अवसर बीतता चला जा

रहा है। जब तक आयु, काय, इन्द्रियाँ,बुद्धि, बल ठीक है तब तक मनुष्य जन्म की एक घड़ी भी सम्यग्ज्ञान के बिना नहीं गंवाओ। ज्ञानरूप धन परलोक में भी साथ जायेगा।

ज्ञान के आठ अंग है - 1. व्यंजनाचार 2. अर्थाचार 3. उभयाचार 4. कालाचार 5. विनयीचार 6. उपधानाचार 7. बहुमानाचार 8. अनिह्नवाचार।

1. **व्यंजनाचर**- शब्दों का ज्ञान होना और व्याकरण के अनुसार अक्षर पद मात्रा का पढ़ना-पढ़ाना व्यंजनाचार कहलाता है।
2. **अर्थाचार**-शब्द और अर्थ को ठीक-ठीक पढ़कर आगम का पढ़ना-पढ़ाना अर्थाचार कहलाता है।
3. **उभयाचार**- शुद्ध शब्द और अर्थ सहित सिद्धान्त को पढ़ना-पढ़ाना उभयाचार कहलाता है।
4. **कालाचार**- प्रात: मध्य और संध्या इन तीनों कालों में अर्द्धरात्रि, ग्रहण, भूकम्प उल्का पातादि दोष सहित समय को छोड़कर योग्य काल में श्रुत शास्त्रों का अध्ययन करना कालाचार है।
5. **विनयाचार**- दोपहर को दो घड़ी पहले, दो घड़ी पीछे, प्रात:काल के सूर्य निकलने के दो घड़ी पीछे और पहले इन कार्यों को छोड़कर दिग्दाह, उल्कापात, इन्द्रधनुष, सूर्य ग्रहण, चन्द्रग्रहण, भूकम्प आदि उत्पादों के समय में गणधर देवों के द्वारा और ग्यारह अंग दस पूर्व धारियों के बने हुए शास्त्र, श्रुत केवलियों के द्वारा रचे हुए शास्त्र पढ़ना-पढ़ाना वर्जित है। तीर्थंकरों के पुराण, स्तोत्र आराधना तथा चारित्र और धर्म को बताने वाले शास्त्र वर्जित नहीं है। शुद्ध जल से हाथ पैर धोकर पवित्र स्थान पर बैठकर चौकी आगे रखकर आगम स्तुति को नमस्कार कर श्रुत-भक्ति पूर्वक आगम का पढ़ना-पढ़ाना ज्ञान का उत्तम विनयाचार है।
6. **उपधानाचार**- धारणा सहित आराधना करना, स्मरण सहित स्वाध्याय करना भूलना नहीं।
7. **बहुमानाचार**- ज्ञान का, पुस्तक का, पढ़ने वाले का विशेष ज्ञानी का बहुत आदर करना। शास्त्र को ले जाते हुए, लाते हुए उठकर खड़ा हो जाना, पीठ न देना, आगम को उच्चासन पर विराजमान करना, पढ़ते समय लौकिक बातें नहीं करना, अशुद्ध वस्त्रों और अशुद्ध शरीर की अवस्था होने पर शास्त्रों को नहीं छूना चाहिए।
8. **अनिह्नवाचार**- जिस शास्त्र, जिस गुरु, जिस पाठक से आगम का ज्ञान हुआ है उस आगम गुण को नहीं छिपाना तथा शास्त्र तथा अल्प ज्ञानी पाठक का नाम लेने से मेरा महत्त्व घट जायेगा इस मत से बड़े ग्रन्थ एवम् बहुज्ञानी अध्यापक का नाम लेना ऐसा करने से मायाचार का दोष आता है।

जिनवाणी के बिना सच्चा ज्ञान नहीं होता,
केवल अक्षर के जानने से कोई विद्वान नहीं होता।
जिन वाणी की विराधना करने वालो,
जिन वाणी के बिना आत्म कल्याण नहीं होता।।

शब्द ज्ञान के साथ आत्मिक ज्ञान भी आवश्यक है आत्मिक ज्ञान नहीं हुआ तो शाब्दिक ज्ञान अनन्त बार कर लिया परन्तु कल्याण नहीं हुआ। सुख भी आत्मा का ही गुण है। जैसे पाषाण से सोना, खान से हीरे-पन्ने को निकाला जाता है उसी तरह अभीक्ष्णज्ञान का प्रयोग ही वह साधना है जिससे आत्मा को शुद्ध किया जाता है। ज्ञान का प्रवाह तो नदी के प्रवाह की तरह है जैसे गंगा नदी के प्रवाह को सुखाया नहीं जा सकता क्योंकि उसका उद्गम स्थल बहुत दूर पहाड़ों में छिपे हुए स्रोतों में है। केवल उस प्रवाह को या मार्ग को हम बदल सकते हैं। इसी प्रकार ज्ञान के प्रवाह को सुखाया नहीं जा सकता। केवल कार्य यह करना है कि उस ज्ञान के प्रवाह को अपने हित के लिए उपयोग करें। उस ज्ञान का सदुपयोग करना है। ज्ञान का दुरुपयोग विनाश है। ज्ञान का सदुपयोग विकास है। किन्तु ज्ञान के सदुपयोग के लिए जागृति की आवश्यकता है। हमारी अवस्था कबूतरों की तरह हो रही है। बिल्ली पेड़ के नीचे है और कबूतर पेड़ पर बैठा है। किन्तु बिल्ली को देखकर कबूतर बेहोश हो जाता है। अपने पंखों की शक्ति को भूलकर अपना समर्पण उस बिल्ली के समक्ष कर दे तो बताओ किस का दोष है? बिल्ली का या कबूतर का। यही हालत हमारी है हम ज्ञान का सम्मान ही नहीं करते आज तक हम प्रेय की कद्र करते आये हैं ज्ञान की नहीं; यदि हम ज्ञान की कद्र कर लेते तो संसार दु:खों से छूट जाते। हम अज्ञानता में पड़कर वस्तु को बाहर ढूँढ़ रहे हैं। लेकिन वह बाहर नहीं अन्दर है। केवल अक्षर ज्ञान से पंडित नहीं बना जा सकता वस्तुत: पण्डित तो वह है जिस ने आत्मा को जान लिया।

पढ़-पढ़ हुऐ पण्डित, ज्ञान हुआ अपार।
निज वस्तु की खबर नहीं, सब नकली श्रृंगार।।

आचार्य कहते हैं कि कितना ही शब्द ज्ञान, अक्षर ज्ञान प्राप्त कर लेना बिना निजवस्तु अर्थात् आत्मा के ज्ञान बिना सब नकली अर्थात् मिथ्याज्ञान है।

दृष्टान्त- एक पढे-लिखे बी.ए. पास युवक को गर्मी के दिनों में नदी की सैर करने की इच्छा हुई। नदी के किनारे गये और नाविक को बुलाया पूछा-भैया! नदी की सैर करादोगे। उसने कहा हाँ बाबूजी पाँच रूपये लूँगा। युवक ने स्वीकृत दी और नाव में बैठ गया। नाव में दूसरा कोई बात करने वाला नहीं था इसलिए उस नाविक से बात करने लगे। बातचीत करते हुए युवक ने नाविक से पूछा-कितने पढ़े-लिखे हो? नाविक ने कहा "कुछ नहीं।" क्या ए बी सी डी भी

नहीं पढी" युवक ने पूछा, नाविक ने इंकार कर दिया तब वह युवक बोला "नालायक! कुछ नहीं जानता ऐसे ही अनपढ़, बेवकूफ लोगों ने भारत को बरबाद कर दिया।" वह सब कुछ सुनता रहा। कुछ दूर और आगे बढ़े, बीच नदी में जाते-जाते नाव डगमगाने लगी हवा तेज तूफान की तरह बह रही थी। नाविक बोला "बाबूजी अब तो नाव बचानी मुशकिल हो रही है आपको तैरना आता है या नहीं। बाबूजी बोले "नहीं भैया, मुझे तैरना नहीं आता। तब नाविक बोला" उल्लू, गधे, ऐसे लोगों का तो जीवन ही बरबाद है। जो सब कुछ सीखा परन्तु जीने की कला नहीं सीखी। मैं तो तैर कर किनारे पहुँच जाऊँगा, आप क्या करोगे?" तो बन्धुओ, सारांश यह है कि अक्षर ज्ञान करने के साथ आत्मिक ज्ञान भी जरूरी है अन्यथा अक्षर ज्ञान-शब्द ज्ञान तो शीशी के लेबल के समान है। जैसे शीशी के लेवल मात्र से शरीर को स्वास्थ्य लाभ नहीं हो सकता स्वास्थ्य लाभ तो उस शीशी के अन्दर की दवा से ही होगा उसी प्रकार कल्याण तो आत्मिक ज्ञान से होगा शब्द ज्ञान निरर्थक है। जब तक आत्मा का ज्ञान नहीं, अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग भी नहीं हो सकता।

दृष्टान्त- एक इंजीनियर जिसने 26 साल शिक्षण में लगा दिये वह मशीन को ठीक करने में कदाचित फेल हो जाता है लेकिन एक अनुभवी मिस्त्री जिस को पढ़ाई का नाम नहीं आता था उसे तुरन्त ही ठीक कर देता है। मिस्त्री भले ही किसी को न पढ़ा सके परन्तु मशीन संबंधी उसका ज्ञान स्पष्ट है और इंजीनियर अनेक को शाब्दिक ज्ञान करा दे परन्तु मशीन संबंधी उसका ज्ञान अस्पष्ट व मिथ्या है।

ज्ञान समान न आन जगत में सुख को कारण।
इहि परमामृत जन्म जरा मृत्यु रोग निवारण।।

इस संसार में सम्यग्ज्ञान के समान सुखदायक अन्य कोई वस्तु नहीं है यह सम्यग्ज्ञान जन्म, जरा और मृत्यु रूप तीनों रोगों को नष्ट करने के लिए उत्तम अमृत के समान है इसलिए हे भव्य जीवो! हमेशा अभीक्ष्णज्ञानोपयोग भावना भावो तभी संसार के दु:खों से छूटकर मोक्षपद प्राप्त कर सकते हैं।

दृष्टान्त- एक सेठ बीमार था उसका इलाज किसी दूसरे नगर में हकीम का चल रहा था, उसको बहुत कुछ आराम हुआ। उसने एक नौकर को अपनी हालत का समाचार देने के लिए और भोजन में क्या वस्तु लूँ ये पूछने के लिए हकीम के पास भेजा। सब कुछ जानकर हकीम ने एक पर्चा लिख दिया। भोजन में खिचड़ी बता दी। वह नौकर स्मरण शक्ति से विहीन था बुद्धि भी नहीं थी वह खाचड़ी-खाचड़ी बोलता जा रहा था। खाचड़ी शब्द सुनकर किसान ने से एक थप्पड मारा और कहा मेरी हँसी करता है वह बोला भाई क्या बात है खाचड़ी क्यों कहता है? उड़चीड़ी, उड़चीड़ी कह वह यही बोलता हुआ चलने लगा क्योंकि उसे भूल जाने का डर था।

आगे चिड़ियों को फसाने के लिए एक जाल बिछा रखा था, उसने भी धमकाया, हमने पकडने को जाल बिछाया है और तुम उड़ाना चाहते हो? उसने कहा और क्या कहूँ कहो आती जाओ फंसती जाओ वह यही उच्चारण करता हुआ चलने लगा। आगे चोरों का दल मिला वे भी सब उस पर टूट पड़े। बोला और क्या कहूँ? कहो ले ले जाओ घर-घर आओ वह इस शब्द को भी बोलता जा रहा था आगे कुछ लोग मृतक को श्मशान पर ले जाते मिले। उन सब ने भी उसको पीटा। नींच कहीं का अपशकुन बनाता है। क्या कहूँ भैया कही ऐसा दिन किसी को न आये। आगे नगर में राजकुमार की शादी का कार्य क्रम चल रहा था। सिपाहियों ने उसे डंडे लगाये और कहा कि कहो ऐसा दिन सब किसी को हो। वह यह कहता हुआ आगे बढने लगा। आगे आग लग रही थी अनेक बुझाने में लगे हुए थे उन सबने फटकार लगायी, बोला मैं सुबह से पिटता आ रहा हूँ और क्या कहूँ, किसी सज्जन ने उससे प्रश्न पूछा, सुनकर समझा और कहा। हकीम ने खिचड़ी खाने को कहा है। उसे यह पर्ची लिख दी और बोला मुह से कुछ नहीं बोलना तब वह सेठ के पास पहुँचा। इस तरह बुद्धिहीन सब जगह अनादर पाते हैं।

बन्धुओं अज्ञानी मनुष्य सब जगह अनादर पाते हैं क्यों? और ज्ञानी जीव का सभी जगह आदर होता है क्यों? कहा है कि जो व्यक्ति स्वयं की रक्षा करने में सक्षम होते है उनकी रक्षा को सारा जगत तैयार रहता है क्योंकि जो अपनी रक्षा कर सकता है वह दूसरों की रक्षा भी कर सकता है जो अपना कल्याण कर सकता है वह दूसरे गिरतों को भी उठा सकता है जो स्वयं अपना भला नहीं कर सकता है वह दूसरों का भला क्या करेगा। तो बंधुओं अपने अन्दर ज्ञान गुण को उजागर करके जगत में पूज्यता को प्राप्त करो।

चैत्यादौ न्यस्य शुद्धे निरुपरमनिरौपम्यतत्तदगुणौघ-
श्रद्धानात्सोऽयमर्हन्निति जिनमनघैस्तद्विधोपाधिसिद्धैः॥
नीराद्यैश्चारुकाव्यस्फुरदनणुगुणग्रामरज्यन्मनोभिः,
भव्योऽर्चन् दृग्विशुद्धिं प्रबलयतु यया कल्पते तत्पदाय॥

निर्दोष विधि और शुद्ध अष्टद्रव्य द्वारा प्रसादगुणपूर्ण भाषा में जिनेन्द्र भगवान् की पूजन करने वाला व्यक्ति तीर्थंकर पद को प्राप्त करता है।

– आशाधर

अभीक्ष्णसंवेग भावना

संसार-शरीर भोगों से डरना अभीक्ष्णसंवेग है। सम्यग्दर्शन के चार गुण होते हैं। प्रशम, संवेग, अनुकम्पा और आस्तिक्य। इनमें से एक गुण भी अगर कम हुआ तो सम्यग्दर्शन पूर्णता को प्राप्त नहीं होगा जैसे स्त्री पूर्ण श्रृंगार कर ले परन्तु माथे पर बिन्दी न लगाये तो सारी सुन्दरता बेकार है उसी प्रकार सम्यग्दृष्टि को अभीक्ष्ण संवेग गुण नहीं तो वह सम्यग्दृष्टि नहीं क्योंकि सम्यग्दृष्टि की क्रियायें संसार-शरीर भोगों से विरक्त रहकर ही होती हैं। शरीर भोगों में लिप्त होकर नहीं हो सकती। इसलिए आचार्य कहते हैं कि संवेग भावना बिना सारी भावनाएं अधूरी हैं।

भ्रात न तात न पुत्र कलत्र न, संयम सज्जन एसब खोटो।
मन्दिर सुन्दर काहि सखा, सब को इसको हम अंतर मोटो।।
भावके भाव धरी मन भेदन नाहि संवेग पदारथ छोटो।
ज्ञान कहेशिव साधन को जेसी साह के काम करे जुवणोटो।
जो संवेग-भाव विसतारै,सुरगमुकति पद आप निहारै।।

अब पाँचवी संवेग भावना का वर्णन करते हैं संसार शरीर भोगों से विरक्त होकर धर्म में अनुराग करना वह संवेग है तथा धर्म व धर्म के फल में अनुराग करना वह संवेग है।

पुत्र का स्वरूप:- यहाँ संसार में जिस पुत्र से राग करता है वह जन्म लेते ही स्त्री का यौवन सौंदर्य आदि विगाड़ देता है। जन्म लेने के बाद बड़ी आकुलता करते हुए बड़े कष्ट आदि सहते हुए, धन खर्च करके पुत्र को बड़ा करते हैं तथा रोगादि से बचाते हुए, क्षण-क्षण बड़ी सावधानीपूर्वक महामोही-महारागी होकर, ग्लानिरहित होकर, बड़े कष्ट सहकर बड़ा करते हैं। वह पुत्र बड़ा होकर अच्छा भोजन, अच्छा वस्त्र, आभरण, अच्छा स्थान दृढतापूर्वक ग्रहण कर लेता है। यदि वह मूर्ख हुआ, व्यसनी हो गया, तीव्र कषायी हुआ तो रात-दिन परिणामों में जो क्लेश होता है वह कहा नहीं जा सकता हैं।

पुत्र के मोह से परिग्रह में बड़ी मूर्च्छा बढ़ती है यदि वह समर्थ हो जाये किन्तु अपनी आज्ञा में नहीं चले तो परिणाम बहुत विरूप हो जाते हैं। यदि अपने जीवित रहते हुये युवा पुत्र का मरण हो जाय तो अपनी मृत्यु पर्यन्त महादुखी रहता है, कष्ट नही मिटता है। जब तक पिता को अपना काम करने वाला समझता है तब तक पिता से प्रेम करता है। जब पिता काम करने में असमर्थ हो जाता है तो उनसे प्रेम नहीं करता है। यदि पिता धनरहित हो तो उनका निरादर करता है। इसलिए पुत्र का स्वरूप समझकर पुत्र से राग छोड़कर परम धर्म से राग करो। पुत्र के लिए अन्याय से धन परिग्रह आदि को ग्रहण करने का परित्याग करो।

स्त्री का स्वरूप:- स्त्री भी मोह नाम के ठग की बड़ी फांसी है, ममता उपजाने वाली है तृष्णा को बढ़ाने वाली है। स्त्री में तीव्रराग होने से वह धर्म में प्रवृत्ति का नाश करने वाली है लोभ को बहुत अधिक बढ़ाने वाली है, परिग्रह में मूर्च्छा बढाने वाली है, ध्यान-स्वाध्याय विघ्न करने वाली है। विषयों में अंधा करने वाली हैं, क्रोधादि चारों कषायों में तीव्रता कराने वाली है। संयम का घात करने वाली हैं झगडे की जड़ है।

ऐसा जानकर विरागभाव को प्राप्त होना ही संवेग है इसलिए संवेग भावना का निरन्तर चिंतन करना ही श्रेष्ठ हैं। अत: मेरे ह्रदय में निरनतर संवेग भावना रहे। ऐसा चिंतन करते हुए संसार-शरीर-भोगों से विरक्ति होने पर ही परम धर्म में अनुराग होता है।

धर्म का स्वरूप:- जो वस्तु का स्वभाव है वह धर्म है। उत्तम क्षमादि दशलक्षणरूप धर्म है रत्नत्रय रूप धर्म हैं तथा जीवों की दयारूप धर्म है। पर्याय बुद्धि वाले शिष्यों को समझाने वाले के लिए धर्म शब्द का चार प्रकार से वर्णन किया है। वस्तु जो आत्मा उसका स्वभाव ही दशलक्षणरूप है। क्षमादि दश भेदरूप आत्मा का ही स्वभाव है। सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यग्चारित्र आत्मा से भिन्न नहीं हैं तथा दया आत्मा का ही स्वभाव है।

जिनेन्द्रेव के द्वारा कहे गये आत्मा के स्वभावरूप दशलक्षण धर्म में अनुराग होना संवेग है। कपट रहित रत्नत्रय धर्म में अनुराग होना संवेग है। मुनीश्वरों के तथा श्रावकों के धर्म में अनुराग होना संवेग है। जीवों की रक्षा करने रूप जीव दया के परिणाम होना संवेग है।

धर्म का फल:- ये तीर्थंकरपना, चक्रवर्ती होना, नारायण, प्रतिनारायण, बाधारहित केवली होना स्वर्गादि में महान ऋद्धिधारी देव होना इन्द्र होना अनुत्तर आदि विमानों में अहमिन्द्र होना वह सब पूर्व जन्म में आराधना किये धर्म का ही फल है।

भोगभूमि आदि में उत्पन्न होना, राज्य संपदा पाना, अखण्ड ऐश्वर्य पाना अनेक देशों में आज्ञा चलना, प्रचुर सम्पदा पाना, रूप की अधिकता पाना, बल की अधिकता, चतुरता, महान पण्डितपना, सर्व लोक में मान्यता, निर्मल यश की ख्याति बुद्धि की उज्ज्वलता, आज्ञाकारी धर्मात्मा कुटुम्ब का संयोग मिलना, सत्पुरुषों की संगति मिलना, रोग रहित होना, दीर्घ आयु, इंद्रियों की उज्ज्वलता, न्याय मार्ग में प्रवर्तना, वचन की मिष्ठता इत्यादि उत्तम साम्रगी का पाना धर्म से प्रेम धर्मात्मा की सेवा, धर्म तथा धर्मात्मा की प्रशंसा का फल है।

मित्र का स्वरूप:- इस कलिकाल के मित्र विषयों में उलझाने वाले हैं सभी व्यसनों में फंसाने वाले सहायक हैं। जिनको धनवान देखते हैं उनसे अनेक लोग मित्रता करते हैं निर्धन से कोई बात भी नही करता है। अधिक कहाँ तक कहो मित्रता तो व्यसनों में डुबोने के लिए ही है।

इसलिये हे ज्ञानीजनों! यदि संसार में डूब जाने का भय लगता है तो अन्य सभी से मित्रता छोड़कर परमधर्म में अनुराग करो। यह संसार तो निरन्तर जन्म मरण रूप ही है प्रत्येक जीव जन्म के दिन से ही मृत्यु की और निरन्तर प्रयास करता है। अनंतानंत काल जन्म मरण करते हो गया है। अत: पंच परावर्तन रूप संसार से विरागता भावो।

इंन्द्रियों के विषयों का स्वरूप:- ये जो पाँच इन्द्रियों के विषय हैं वे आत्मा के स्वरूप को भुलाने वाले हैं, तृष्णा को बढाने वाले हैं, अंसतोष को बढ़ाने वाले हैं। विषयों के समान पीड़ा तीन लोक में अन्य नहीं हैं। विषय तो नरकादि कुगति के कारण हैं। धर्म से पराड्मुख करने वाले हैं कषायों को बढ़ाने वाले हैं, ज्ञान विपरीत करने वाले है, विष के समान मारने वाले हैं, विष और अग्नि के समान दाह उपजाने वाले हैं। इसलिए विषयों में राग छोड़ने में ही परम कल्याण है। जो अपना कल्याण चाहते हैं उन्हें विषयों को दूर से ही छोड़ देना चाहिए।

शरीर का स्वरूप:- शरीर रोगों का स्थान है महामलिन दुर्गन्धित सप्त धातुमय है, मल मूत्रादि से भरा है, वात-पित्त-कफ भरा है। वायु के निमित्त से हलन चलन आदि करता है, सदा ही भूख प्यास का कष्ट लगाये रहता है, सब प्रकार की अशुचिता का पुंज हैं, दिन-प्रतिदिन जीर्ण होता चला जाता है, करोडों उपायों द्वारा रक्षा करते रहने पर भी मरण को प्राप्त हो जाता है। ऐसे शरीर से विरक्त होना ही श्रेष्ठ हैं।

इस प्रकार पुत्र, मित्र, कलत्र, संसार, शरीर भोगों का दु:खकारी स्वरूप है।

कल्पवृक्ष, चिंतामणि रत्न सभी धर्मात्मा के दरवाजे पर खड़े समझो। धर्म के फल की महिमा कोटि जिह्वाओं द्वारा भी कहने में समर्थ नहीं हो सकती हैं। ऐसे धर्म के फल को जो तीन लोक में उत्कृष्ट जानता है उसके संवेग भावना होती है धर्म सहित साधर्मी जीवों को देखकर आनंद उत्पन होना धर्म की कथनी में आंनदमय होना तथा भोगों से विरक्त हो जाना वह संवेग नाम की पाँचवी भावना है। इसको आत्मा का हितरूप समझ कर निरंतर इसकी भावना भावो तथा भावना के आनंद सहित होकर इसकी प्राप्ति के लिए इसका महान अर्घावतारण करो।

पूज्यपाद स्वामी लिखते हैं कि सम्यग्दर्शन दो प्रकार का है। 1. सराग 2. वीतराग। संवेग सराग सम्पग्दर्शन के चार लक्षणों में से एक है। ललाट पर तिलक के अभाव में स्त्री का सम्पूर्ण श्रृंगार अर्थहीन है। वेदी में मूर्ति के विराजमान न रहने पर मन्दिर की-कोई भी शोभा नहीं है। इस प्रकार बिना संवेग के सम्यग्दर्शन सम्भव नहीं है। संवेग सम्यग्दृष्टि का अलंकार है। संवेग एक उदासी की स्थिति है। बाह्य विषय भोगों में उसे रस नहीं आता। शान्ति के सामने उनका क्या मूल्य है। जिसे हीरे जवाहरात मिलते हैं वह काँच के टुकड़े क्यों ग्रहण करेगा, अत: भोग सामग्री से उसे स्वत: ही अन्तरंग से उदासीनता हो जाती है कृत्रिम रूप से देखा देखी इस सामग्री

का त्याग करने का नाम सच्ची उदासीनता नहीं है। उनका त्याग न करने पर भी गृहस्थ में रहते हुए भी इनमें पूर्ववत् रस आना बन्द हो जाता है। ऐसा वैराग्य या संवेग उपलब्ध हो जाता है तथा संसार के जंजाल से मानों उसे कंपकंपी सी छूटने लगती है। घर में संचित पदार्थों का ढेर देखकर उसका मन हिलने लगता है। जिस कमरे को उसने रुचिपूर्वक सजाया था आज मानों वह खाने को दौड़ रहा है ऐसा संसार के प्रति भय उत्पन्न हो जाता है। इसमें रोता भी नहीं हँसता भी नहीं। संवेग स्थिति तो भोगों की उदासीनता है। यह स्थिति सद्गृहस्थ से लेकर मोक्षमार्ग में आरूढ़ मुनि महाराजमें प्रतिभासित होती है। अपने आहार विहार में, उठने-बैठने में सदैव सजग रहता है यदि साधु का डर निकल जावे तो वह साधु नहीं रह सकता। साधु का आहार आहार नहीं, सोना-सोना नहीं, उसका मार्ग चिन्तन और मनन है। ऐसे संवेग धारी साधु के दर्शन दुर्लभ हैं। सम्यग्दर्शन के बिना डरना होता नहीं, डरने वाला अपने अन्दर ही रहता है। जहाँ भोगों से भय है वहाँ सम्यग्दर्शन अवश्य है जैसे-जहाँ धुआँ है वहाँ अग्नि अवश्य होगी। ऐसी व्याप्ति बनती है। उसी प्रकार जहाँ सम्यग्दर्शन है वहाँ अन्दर ही रहेगा बाहर रहना उसका हो नहीं सकता। संवेग, अनुभव तथा श्रद्धा के साथ जुडा हुआ है। जहाँ संवेग है वहाँ विषयों की ओर प्रवृत्ति होती ही नहीं जो संवेग से डरेगा वही उदास रह सकता है। पाँचों इन्द्रियों के विषयआत्मा के स्वरूप को भुलाने वाले हैं। नरकादि कुगतियों में फंसाते हैं। पुत्र मित्र कुटुम्ब, संसार, भोग, शरीर आदि के प्रति विराग भाव को प्राप्त होने के साथ आत्मलीनता होना संवेग है।

या संसार महावन भीतर भ्रमते छोर न आवै।
जन्म जरा मृत्यु बैरी धावै, जीव महादुख पावै।।

संसार रूपी विस्तृत वन में संसारी जीव को भटकते-भटकते अन्त नहीं मिलेगा। जन्म जरा मृत्यु रूपी शत्रु सदा इसका पीछा किया करता है। जिससे जीव सदा दुःख उठाता है।

कब हूँ जाये नरक थिती, भुंजै छेदन भेदन भारी।
कब हूँ पशु पर्याय धरै,तह बध बंधन भय कारी।।
सुरगति में पर सम्पत्ति देखे, राग उदय दुख होई।
मानुष योनि अनेक विपत्तिमय, सर्व सुखी नहीं कोई।।

यह जीव पाप कर्म के उदय से कभी नरक में दीर्घ काल तक छेदता, भेदता है तथा सर्दी गर्मी आदि की असह्य यंत्रणाए सहताहै। कभी दुर्भाग्य से पशु शरीर पाता है वहाँ पर भी मरना, बँधना, आदि भयानक दुखों से जीवन बिताता है। यदि सौभाग्य से यह जीव देव पर्याय प्राप्त करे तो महान ऋद्धिधारक देवों को देखकर ईर्ष्या के कारण दुःखी रहता है। मनुष्य गति में भी अनेक

विपत्तियाँ भरी हुई हैं। इस प्रकार संसार में पूर्णतया से कोई भी जीव सुखी नहीं है। मनुष्यगति में क्या-क्या दु:ख हैं:-

कोई इष्ट वियोगी विलखै, कोई अनिष्ट संयोगी।
कोई दीन दुखी विगुचे कोई तन के रोगी॥
काहू घर कलिहारी नारी, के बैरी सम भाई।
काहू के दुख ऊपर दीखै, काहू उर दुचिताई॥

मनुष्य में किसी प्रिय के वियोगी का दु:ख या शोक समाया हुआ है और किसी को अप्रिय व्यक्ति के संयोग से बिलखना पड़ता है। कोई मनुष्य दरिद्रता के कारण दीनहीन बनकर और कोई भयानक रोग के कारण दु:ख पा रहा है। किसी की पत्नि रात दिन कलह करती रहती है तो किसी का भाई शत्रु के समान व्यथा पहुँचाता रहता है, किसी के शारीरिक दु:ख हैं जो ऊपर से दिखाई देते हैं। किसी को आन्तरिक दु:ख अन्तर्वेदना है। यही नहीं-

कोई पुत्र बिना नित झुरै, होय मरे तब रोवे।
खोटी संतति सो दुख उपजै क्यों प्राणी सुखसोवे॥
पुण्य उदय जिनके तिनके भी, नहीं सदा सुख साता।
यह जगवास जथारथ देखे, सब दीखै दुख दाता॥

कोई मनुष्य तो अपने घर में पुत्र के जन्म के लेने के कारण अपने मन में कुढ़ता रहता है। किसी के पुत्र भी होते हैं तो वे जन्म लेकर मर जाते हैं और किसी के पुत्र जन्म लेते भी हैं तो वे कुपुत्र निकल जाते हैं। ऐसी दशाओं से मनुष्य को लेश मात्र भी सुख प्राप्ति नहीं होती। जिन मनुष्यों को पुण्य के उदय से सुख साधन प्राप्त हो भी जाते हैं। उनका भी सुख सदा नहीं रहता, अशुभ कर्म के आने में भी देर नहीं लगती जिससे कि फिर कोई न कोई दु:ख उन पर टूट पडता है। इस प्रकार संसार की परिस्थिति पर विचार किया जावे तो निराकुल तथा स्थायी सुख संसार में कही भी नहीं है। अन्त में निष्कर्ष यह है कि-

जो संसार विषै सुख होता, तीर्थंकर क्यों त्यागै।
काहे को शिवसाधन करते, संजम सौ अनुरागै॥

यदि इस संसार में सुख होता तो तीर्थंकर देव निष्कंटक राज्य एवं परिवार का त्याग क्यों करते और वे किस लिए निर्ग्रन्थ तपस्वी बन कर संयम से प्रेम करके वन पर्वतों में जाकर इस संसार से मुक्त होने का प्रयत्न करते।

इस प्रकार संसार के स्वरूप का चिन्तन करके संसार से भयभीत होना तथा धर्म एवं धर्म के फल से अनुराग करना ही संवेग भावना है।

वज्रदन्त का वैराग्य

एक समय की बात है वज्रदन्त चक्रवर्ती अपनी सभा लगाये बैठे थे। उनके 32 हजार मुकुट बद्ध राजा, 96 हजार रानियाँ नवनिधि और 84 लाख हाथी, चौदहरत्न, 18 करोड़ घोड़े, इन्द्र जैसे योग्य सेवक थे। एक दिन माली सहस्र दल कमल लेकर दरबार में आया। उसमें एक भंवरा मरा हुआ पड़ा था। चक्रवर्ती उस भंवरे को देखकर विचार कर रहे हैं कि भोग महापाप के कारण हैं। जब एक नासिका के भोग में अचेत होकर भंवरे ने अपने प्राण दे दिये, हम पाँचों इन्द्रिय के भोगी है तब हमारी क्या दशा होगी। वे संसार तथा भोगों से डर जाते हैं और एक हजार लड़कों को बुलाकर कहते हैं अब हम संसार से उदास हो गये हैं। वन में जाकर आत्मकल्याण करेंगे। राज-काज को संभालो और प्रजा का कल्याण करो। अब हम कर्म रूपीशत्रु से लडेंगे। ये बातें सुनकर कुमार उत्तर देते हैं। पिताजी जब आप राज्य व भोग को बुरा समझकर छोड़ रहे हैं तो हम भी आपके साथ महाव्रत लेंगे। लड़कों से चक्रवर्ती कहते हैं कि मुनियों को 28 मूलगुण, बारह तप, 22 परिषह जीतना पड़ते हैं। तुम्हारा कोमल शरीर है पालन कैसे करोगे? जंगलों में सिंह व्याघ्र बिच्छू सर्पादि भयंकर प्राणी मिलते हैं, ठण्डी-ठण्डी हवा चलती है। नदी नाले कल-कल करते हैं, गर्म पहाडों पर रहना पड़ता है, बरसात में मच्छर शरीर से चिपट जाते हैं ऐसी अवस्था में तुम्हें महल के भोग याद आयेंगे और मोह कर्मसतायेगा। मोह कर्म मुनि को भी गुणस्थान से नीचे गिरा देता है। जब कामदेव सताता है तो बड़े-बड़े ज्ञानी भ्रष्ट हो जाते हैं। लड़के अपने पिता को उत्तर देते है कि हमें संसार भोगों से वैराग्य आ चुका है हम सब परिग्रह रूपी मोह को वैराग्य रूपी तलवार से जीत लेंगे। हम हर हालत में आपके साथ ही जायेगें और कर्मों की फौज से लडेगें। जब चक्रवर्ती की कोई भी बात नहीं चली तो उन्होंने छह माह के पोते को राजतिलक कर दिया और चक्रवर्ती अपने पुत्रों के साथ दीक्षित हो गये। ऐसी होती है संवेग भावना। चक्रवर्ती को यह भाव नहीं आया कि छहमाह का बच्चा छह खण्ड का राज्य को कैसे सम्भालेगा। वैराग्य में किसी का उपाय नहीं चलता है।

ब्रह्मगुलाल मुनि

स्वांगधारी ब्रह्मगुलाल मुनि जिन्होंने हंसी-हंसी में स्वांग रचते हुए जिनदीक्षा को धारण किया। कुसंगति में पड़ने के कारण वे स्वांग बनाने का खेल खेलते कभी वह राम का, कभी कृष्ण का, कभी सीता का, कभी रूक्मणी आदि का मन मोहने वाला लोगों को चकित करने वाला रूप धरते। जवानी का जोश और यह रूप देखकर लोग चकित हो जाते। एक राजा महलों में सभा को जोड़कर बैठे थे उस सभा में यह चर्चा चली कि कौन शेर का रूप धारण करेगा। शेर की भाँति गरजने वाला हो, शक्ति हो ब्रह्मगुलाल ने कहा कि यह स्वांग बनाना कठिन

नहीं लेकिन किसी को चोट लगे इससे मै डरता हूँ। राजकुमार ने एक खून करने की इजाजत दे दी। उसी समय सिंह का रूप धारण करके ब्रह्मगुलाल गरज के साथ आये। वहाँ पर एक बकरी का बच्चा बँधा देखते हैं। यह धर्म-दया पालने में कैसा है। कुंवर ने कहा अरे शेर! आँगन में कौन खड़ा है। तू उसे भी नहीं मार सकता तो वन में क्या करता होगा। तू तो शेर नहीं कोई गीदड़ है।तेरे जन्मदाता को धिक्कार है कुँवर के इन बचनों को सुनकर शेर के मन में क्रोध आ गया। गुस्से में पूँछ हिलाने लगा और आँखों में खून खौलने लगा उसने पंजा उठा कर कुँवर पर छलांग लगा दी आस पास के लोग भय के कारण भाग गये। पंजा लगते ही कुँवर सिंहासन से गिर कर मर गया। राजा विचार करने लगा जो कर्म में लिखा था हो गया संसार तो वृक्ष की छाया है। अब जैनमुनि होकर या जैनमुनि दीक्षा लेकर कोई हितकर उपदेश दो। ब्रह्म गुलाल घर पर पहुँचे सबको बताया कि पाप रूपी कर्मों के रोगों को काटने का अब समय आ गया है। उन्होंने मित्र मथुरामल से भी कहा अब हम महाव्रत धारण कर योग धरेंगे। सबने सोचा कि भोगों का त्याग कठिन है। उन्होंने बारह भावना मन में जपी और प्रात: जिनप्रतिमा के सामने मुनिव्रत ग्रहण कर लिया अर्थात् हाथ से केशलोंच करके कमण्डल और पिच्छि को धारण कर जहाँ सभा बैठी थी वहां पहुँच गये। राजा इस वेष को देखकर हैरान रह गये और सिर झुकाकर बोले- हे मुनिराज! हमे ऐसी शिक्षा दें जिससे हम शोक रहित हो जायें। ब्रह्मगुलाल जी कहते हैं कि लाख यत्न करने पर कोई सुख व दु:ख नहीं दे सकता। मन की शंका को छोड़कर अपने हित के लिए परिश्रम करो। राजा क्रोध मत करो। इस संसार का रूप अनोखा है। यह संसार दुखों का सागर है। यहां सुख नहीं इसलिए मन की दुविधा को छोड़कर इस जग के रूप को विचारो। हमारे हाथ कुँवर मर गया अज्ञानतावश घोर पाप हो गया। अब तन की ममता को छोड़कर आत्मिक त्याग करेंगे। मुनि के रूप को देखकर राजा ने बैर त्याग दिया और प्रकट रूप में कहा तुम्हें जो चीज अच्छी लगे माँग लो। मुनि बोले हमारा मन तो वैराग्य भावना में लीन हो गया है। हे राजन्! हमें क्षमा कीजिए। हम वनवासी हैं हमने इच्छाओं का दमन कर दिया है।

इधर सारे नगर में चर्चा फैलगयी कि ब्रह्मगुलाल मुनि हो गये। आगे-2 मुनिवेष में ब्रह्मगुलाल पीछे सारे नगर वासी माता-पिता और पत्नि शोक रत होकर चलने लगे। वन में पहुँकर मुनि मोह का नाश करने के लिए तपस्या करने लगे। वन में परिवारजन ने अपनी-अपनी तरह ब्रह्मगुलाल मुनि को समझाने का प्रयत्न किया। बेटा घर चलो। तुम वन में क्यों बैठे हो। तुमने तो हंसी-2 में स्वांग रचाया। अब मन में क्या सोचकर मुनि वेषधारण किया। माँ व्याकुल होकर बोली

मुनि- किसके घर जाऊँ मुझे इस आने जाने वाले शरीर से मोह नहीं है।

माँ- मेरे जिगर के टुकड़े! मैंने तुझे दु:ख झेल कर पाला है मुझ दुखियारी को छोड़कर वैराग्य धारण करेंगा।

मुनि- हम अनेक बार मिले हैं, अनेक बार बिछुडे हैं। न कोई किसी की माता है। न कोई किसी का बेटा है। यह संसार एक अनोखा स्वांग है।

माता- मैं इस दिन को नहीं जानती थी। क्या इस भरी जवानी में जोग लेकर कुल का नाम लेने वाली कोई निशानी नहीं छोड़ेगा?

मुनि- जिस वैभव तथापुद्‌गल को अपना समझते हैं वही एक दिन पराया हो जायेगा अर्थात् माटी बनकर माटी में मिल जायेगा।

पत्नि- हे प्रियतम! मुझे तो तुम मझधार में छोड़ चले। मैं किसके सहारे जीवन व्यतीत करूँ। अब मेरे दिन किस प्रकार कटेंगें।

मुनि- यह नारी की पर्याय बुरी है। दूसरों के पराधीन है तुम धर्म की शरण में जाओ। जिससे यह स्त्रीलिंग समाप्त हो जाये।

अब सब कुटुम्बी निराश होकर लौट गये। घरपर आये, मथुरामल की स्त्री को बुलाकर कहा कि धिक्कार है तुम्हें जो तुम पति के साथ घर बैठी हो। हमने मुनि को बहुत समझाया लेकिन नहीं माने। अब हम तुमसे लाचार होकर कहते है कि मथुरामल को भेजो। अपने मित्र ब्रह्मगुलाल को वन से लौटा-लाये।

मथुरामल बोले वह किसी का कहना नहीं मानेगा, बहुत जिद्दी है। वह वापस नहीं आयेगा। फिर स्वयं वह सोचने लगे कि हमें क्या सारी जिन्दगी यही रहना है हम भी संयम ले लेंगे। जिससे सारा संसार जान जायेगा हमारी दोस्ती को और नारी से कह दिया कि अगर वह नहीं आयेगा तो हम भी नहीं आयेगे यह हमारी प्रतिज्ञा है फिर तुम मत पछताना। जंगल में ब्रह्मगुलाल से मथुरामल ने कहा कि मुनिव्रत के सम्बन्ध में विस्तार से हमें समझाओ। बचपन में तो दूसरों का हित करने वाली विद्या सीखी। जवानी अवस्था भोगने की है और त्याग की वृद्धाअवस्था होती है। बिना भोग भोगे जोग धारण मत कर। तुमने मन में यह क्या विचारा? मुनि ब्रह्मगुलाल बोले- भोग भोगने में बहुत रोग हैं। जब भोग भोगने की अवस्था क्षीण हो जाती है तब उदासी छा जाती है। वैसी सेज तो कुछ दिन ही अच्छी लगती है। पाँचों इन्द्रियों के भोग तो अग्नि के समान हैं। ज्यों-2 अग्नि में ईंधन डालो त्यों-2 वह भड़कती है। इसी प्रकार ज्यों-2 भोगों का सेवन करते हैं त्यों-2 वे भडकते हैं। इनको छोड़ने वाला सदा एकान्त वासी हो सुखी रहता है।

मथुरामल ने बहुत समझाया लेकिन ब्रह्मगुलाल नहीं माने। मथुरा मल भी जिनधर्म की महिमा जान गये और भोग वासनाओं को छोड़कर क्षुल्लक दीक्षा लेकर मुनि के साथ हो लिये और दया धर्म का उपदेश संसार में दिया। ऐसे मंगल हुआ जैसे लकड़ी के साथ लोहा भी पानी पर तैर जाता है। इस प्रकार का वैराग्य सब नर नारी मन लगाकर सुनो और जीवन में उतारो। इसे ही संवेग भावना कहते हैं।

शक्तितस्त्याग भावना

पात्र चतुर्विध देख अनुपम, दान चतुर्विध भाव सु दीजे।
शक्ति समान अभ्यागत को, अति आदर से प्रणिपत्य करीजे।।
देवत जे नर दान सुपात्रहिं, तास अनेकहिं कारण सीजे।
बोलत 'ज्ञान' देहि शुभ दान जु, भोग सुभूमि महासुख लीजै।।

चार प्रकार से पात्र को भली प्रकार देखकर, भावपूर्वक चार प्रकार का दान दीजिये। शक्ति के अनुसार अतिथि का आदर-सत्कार कीजिये। जो नर अनेक कारणों से सुपात्र को दान देते है वे भोगभूमि के महान् सुख को प्राप्त करते हैं।

दान देय मन हरष विशेखै, इह भव जस पर भव सुख पेखै।

यथाशक्ति त्याग को शक्तितस्त्याग कहते हैं। शक्ति अनुल्लंघन यथाशक्ति अर्थात् शक्ति की सीमा को पार न करना और साथ ही शक्ति को छिपाना भी नहीं इसी को त्यागशक्ति कहते हैं और इस शक्ति के अनुरूप त्याग करना ही शक्तितस्त्याग कहा जाता है।

एक विद्वान ने लिखा है कि- दान ऐसा देना चाहिए कि जो दूसरे को पता भी न लगे कि यह त्याग है।

यदि त्याग किये पदार्थ में लिप्सा लगी रही और उस पदार्थ के भोगने की लालसा हमारे हृदय में बनी रही तो वह त्याग नहीं हो सकता। त्याग किसका-कूड़े कचरे का त्याग, मल का त्याग, किन्तु इस. बाहरी मल से बड़ा एक मल है राग द्वेष का मल जो हमारी आत्मा के साथ अनादि काल से लगा हुआ है। उसका त्याग आत्मा के अनर्थकारी पदार्थों का त्याग है। वास्तविक त्याग ऐसे पदार्थों का होना चाहिए जिनसे विषय कषाय पुष्ट होते हैं। अन्तरंग और बाह्य परिग्रह छोड़ कर ही त्याग धर्म होता है। कषायों का त्याग, इन्द्रिय विषयों को रोकने हेतु रसों का त्याग धर्म होता है। वीतरागी मुनि कहते हैं- त्याग कर और त्याग कर। भोगी प्राणी कहता है कि- ग्रहण कर और ग्रहण कर। धन सम्पदा सुख हैं और वह एक जीवन है जो वह कह रहा है। इसमें ही दुख है इसलिए भाई! सुख तो त्याग में ही है ग्रहण में नहीं।

जो धन की चाहते रक्षा, तो धनवानों बनो दानी।
कुए से जल न निकलेगा, तो सड़ जायेगा पानी।।

यह त्याग नाम की भावंना प्रशंसा योगय मनुष्य जन्म का मण्डन है। अपने हृदय में त्याग भाव लाने के लिए अनेक उत्सवरूप वादित्रों को बजाकर इसका महान अर्घ उतारण करो।

परिग्रहत्यागः- बाह्य और अंतरंग दोनों प्रकार के परिग्रहों से ममता छोड़ने से त्याग धर्म होता है। अंतरंग परिग्रह चौदह प्रकार का है। जाने बिना ग्रहण और त्याग वृथा हैं। मिथ्या स्त्री-पुरूष-नंपुसकवेद रूप परिणाम, हास्य, रति, अरति, शोक भय, जुगुप्सा, राग, द्वेष, क्रोध, मान, माया, लोभ रूप परिणाम चौदह प्रकार के अंतरंग परिग्रह है।

शरीर आदि पर द्रव्यों में आत्मबुद्धि करना मिथ्यात्व परिग्रह है। जो भी वस्तु है वह अपने द्रव्य, अपने गुण, अपनी पर्याय रूप है, वह वस्तु का अपना स्वरूप है। जैसे- स्वर्ण नाम का द्रव्य है, पीलापन आदि उसके गुण हैं कुंडल आदि उसकी पर्याय हैं वह सब स्वर्ण ही है इसलिए स्वर्ण अन्य वस्तु का नहीं, स्वर्ण है वह स्वर्ण का ही है। अन्य वस्तु का अन्य कोई हुआ नहीं है और न ही होगा। अपना स्वरूप है वह अपना ही है। वैसे ही आत्मा है वह आत्मा का ही है, आत्मा का अन्य कोई द्रव्य नहीं है। अब जो देह को अपनी आत्मा मानता है- मैं गोरा हूँ, मैं सांवला, मैं राजा, मैं रंक, मैं स्वामी, मैं सेवक, मैं ब्राह्मण, मैं क्षत्रिय, मैं वैश्य, मैं शूद्र, मैं वृद्ध, मैं बालक, मैं बलवान, मैं निर्बल, मैं मनुष्य, मैं तिर्यञ्च इत्यादि कर्मकृत विनश्वर परद्रव्य जनित पर्याय में आत्मबुद्धि करना मिथ्यात्व परिग्रह है। मिथ्यादर्शन से ही मेरा घर, मेरा पुत्र, मेरा राज्य, मैं नीच, मैं उच्च इत्यादि मानकर सभी पर पदार्थों में आत्मबुद्धि करते हैं। पुदगल के नाश को अपना नाश मानता है इसके बढ़ने से अपना बढ़ना, इसके घटने से अपना घटना मानकर पर्याय में आत्मबुद्धि करके अनादिकाल से अपना स्वरूप भूल रहा है समस्त परिग्रह में आत्मबुद्धि का मूल मिथ्यात्व नाम का ही परिग्रह है। जिसके मिथ्याज्ञान नहीं है वह परद्रव्यों में 'हमारा' इस प्रकार कहता हुआ भी पर द्रव्यों में कभी अपनापन नहीं मानता है। वेद के उदय से स्त्री पुरूषों में जो कामसेवन के भाव होते हैं उस में तन्मय होकर काम के भाव को आत्मभाव मानना वह वेद परिग्रह है। काम तो वीर्य आदि का प्रेरित किया हुआ देह का विकार है उसे अपना स्वरूप जानना वह वेद परिग्रह है।

धन, ऐश्वर्य, पुत्र, स्त्री, आभरणादि परद्रव्यो में आसक्ति का भाव होना राग परिग्रह है। अन्य का वैभव, परिवार ऐश्वर्य, पाण्डित्य आदि देखकर बैरभाव करना द्वेष परिग्रह है। हास्य में आसक्ति का भाव होना हास्य परिग्रह है। अपना मरण होने के भय से, मित्रों का तथा परिग्रह आदि का वियोग होने से निरंतर भयवान रहना भय परिग्रह है। पाँच इंन्द्रियों द्वारा वांछित भोग उपभोग सामग्री को भोगने में लीन होना रति परिग्रह है। अनिष्ट वस्तु का संयोग होने से परिणामों में संक्लेश भाव होना अरति परिग्रह है। इष्ट स्त्री, पुत्र, मित्र, धन, जीविका आदि का वियोग होने से उनके संयोग की वांछा करके संक्लेश भाव होना शोक परिग्रह है। घृणायुक्त पुदगलों को देखने से, भ्रमण करने से चिंतन करने से, स्पर्श करने से परिणामों में ग्लानि उत्पन्न हो जाना वह जुगुप्सा परिग्रह है अथवा अन्य का पुण्य उदय देखकर अपने भाव क्लेश रूप हो जाना वह जुगुप्सा

परिग्रह है। परिणामों में रोष करके तप्तायमान हो जाना क्रोध परिग्रह है। उच्चासन, धन-ऐश्वर्य, रूप, बल, तप, ज्ञान, बुद्धि इनसे अपने को बड़ा जानकर मद करना तथा दूसरे को छोटा जानकर निरादर करना, कठोर परिणाम रखना मान परिग्रह है। अनेक छल-कपट आदि द्वारा वक्र परिणाम रखना माया परिग्रह है। परद्रव्यों के ग्रहण करने में संग्रह करने में तृष्णा होना लोभ परिग्रह है।

इस प्रकार संसार में परिभ्रमण के कारण, आत्मा के ज्ञानादि गुणों के घातक चौदह प्रकार के अंतरंग परिग्रह हैं इन्हीं में मूर्च्छा के कारण धन, धान्य, क्षेत्र, स्वर्ण स्त्री, पुत्रादि चेतन अचेतन बाह्य परिग्रह हैं। अंतरंग-बहिरंग दोनों प्रकार के परिग्रह का त्याग करने से त्याग धर्म होता है। यद्यपि बाह्य परिग्रह रहित तो दरिद्री मनुष्य स्वभाव से ही होता हैं परन्तु अन्तरंग परिग्रह का त्याग करना बहुत कठिन है। दोनों प्रकार के परिग्रह का एकदेश त्याग वृती श्रावक के होता है तथा पूर्ण त्याग महाव्रतधारी मुनिराजों के होता है।

विषय कषाय त्यागः- कषायों के त्यागने से त्याग धर्म होता है। इन्द्रियों को विषयों में जाने से रोकने से त्याग धर्म होता है। रसों का त्याग करने से त्याग धर्म होता है। रसना इन्द्रिय की लोलुपता पर विजय प्राप्त करने से सभी पापों का त्याग सहज ही हो जाता है।

जिनेन्द्र के परमागम का अध्ययन करना, दूसरों को अध्ययन कराना, शास्त्रों को लिखना, छपवाना शुद्ध करना, कराना, वह भी परम उपकार करने वाला त्याग धर्म है। मन के दुष्ट विकल्पों का अभाव करना, दुष्ट विकल्पों को छोड़कर चारों अनुयोगों की चर्चा में चित्त को लगाना वह भी त्याग धर्म है। मोह का नाश करने वाले धर्म का उपदेश श्रावकों को देना वह भी महापुण्य का उत्पन्न कराने वाला होने से त्याग धर्म है। वीतराग धर्म के उपदेश से प्राणी पाप से भयभीत हो जाते हैं तथा वे धर्म के स्वरूप को समझकर उसे ग्रहण कर लेते हैं।

उत्तम, मध्यम, जघन्य ऐसे तीन प्रकार के पात्रों को भक्ति सहित होकर आहारदान, प्रासुक औषधि दान, ज्ञान के उपकरण सिद्धान्तों के पढ़ने योग्य पुस्तकों का दान, मुनि के योग्य व श्रावक के योग्य वसतिका का दान देना चाहिए। गुणों के धारकों को तप की वृद्धि का कारण आहार आदि चारों प्रकार का दान परम भक्ति से, प्रफुल्ल चित्त से अपने ज्ञान को कृतार्थ मानते हुए, गृहाचार को सफल मानते हुए, बड़े आदर से, पात्र को करना चाहिए।

पात्रदान होना, महाभाग्य से, जिनका भला होना है, उन्हीं के द्वारा होता है। पात्र का लाभ होना ही दुर्लभ है। भक्ति सहित पात्र दान हो जाय तो उसकी महिमा कहने को कौन समर्थ है?

क्षुधा तृषा से जो दुःखी हो, रोगी हो, दरिद्री हो, वृद्ध हो, दीन हो उनको दया पूर्वक दान देना वह सब त्याग धर्म है। त्याग से ही मनुष्य जन्म सफल है। त्याग से ही धन-धान्यादि का

पाना सफल है। त्याग बिना गृहस्थ का घर श्मशान के समान है, गृह का स्वामी पुरुष मृतक के समान है स्त्री-पुत्रादि गृद्धपक्षी के समान हैं जो इसके धनरूप माँस को नोंच-नोंच कर खाते हैं।

भारत में जितनें भी देवों के उपासक हैं, चाहे वे कृष्ण के उपासक हों, बुद्ध के उपासक हों या महावीर के हों सभी त्याग को सर्वाधिक महत्त्व देते हैं किन्तु जो उपासक त्याग में शर्त रखते हैं वे सच्चे उपासक नहीं है। जिस त्याग में शर्त है वह सच्चा त्याग है ही नहीं। आपका त्याग शर्त का त्याग है दान के समय आपका ध्यान आदान में लगा है। जैसे दो व्यक्ति हैं, दोनों सौ-सौ रूपये त्याग देते हैं। एक सौ के सवा सौ प्राप्त करने हेतु देता है वह त्याग नहीं दान नहीं, आदान है। जबकि त्याग किये हुए पदार्थ की ओर ध्यान नहीं होना चाहिए।

१. **भावनापूर्वक त्याग**:- एक नगर में एक गरीब महिला रहती थी उसके पास द्रव्य एवं बर्तन नहीं थे। एक दिन उस नगर में एक महान तपस्वी मुनिराज विहार करते हुए आ गये। उस महिला के मन में मुनि महाराज को आहार करवाने की बात आई। लेकिन घर में कुछ था ही नहीं। मन में विचार किया कि बाजरा रखा है। मिट्टी की हांडी और लोहे का तसला है। हांडी में बाजरे की खिचडी बना लेती हूँ और तसले में पैर धौलूँगी ऐसा विचार करके वह करवा और सरई लेकर पड़गाहन के लिए खडी हो गयी। भाग्य की बात है कि मुनि महाराज की आकडी भी करवा सरई की थी अत: पडगाहन हो गया। नगर में बड़े बड़े साहुकार सोने के कलशे से युक्त छत्तीस प्रकार के भोजन के लिए पड़गाहने हेतु खड़े थे लेकिन मुनिराज गरीब महिला के द्वारा पड़गाहे गये। वह मुनिराज को झोपड़ी में ले गई। लोहे के तसले में पैर धोये। वह तसला सोने का हो गया। फिर बाजरे की खिचड़ी का महाराज को आहार करावाया मुनिराज ऋद्धिधारी थे, उस महिला के यहाँ रत्न बरसे। बिना इच्छा के त्याग में बड़ा बल है। एक पड़ोसन को ईर्ष्या हुई उसने सोचा जब बाजरे की खिचड़ी से आहार कराया सो इसके यहाँ रत्न बरसे हैं। मैं कल छत्तीस प्रकार के व्यंजन बनाऊँगी मेरे तो न जाने कितने रत्न बरसेगें। अगले दिन उसने ऐसा ही किया। महाराज आये लेकिन उसे इच्छा थी रत्नों की वहाँ दान नहीं था। महाराज पडगाहे गये। पहली बार पानी दिया वह पानी उबलता हुआ था महाराज के हाथ पर डाल रही थी और ऊपर को देख रही थी गर्म-गर्म पानी हाथ पर पड़ा अंजुली छूट गई अन्तराय हो गया और आंगन में अंगारे बरसने लगे।

अग्नि लगी आकास में झर-झर जले आकास।
संत न होते संसार में, जल जाता संसार।।

तब उसने महाराज जी से पूछा- ऐसा क्यों हुआ। मुनि महाराज जी ने कहा- तुम्हारा दान सच्चा दान नहीं है तुम्हें मान था, इच्छा थी इसलिए ऐसा हुआ। त्याग पैसे से नहीं होता त्याग भावना से होता है।

2. एक बार धर्मराज युधिष्ठर हजामत बनवा रहे थे, नाई जब हजामत बना चुका तो धर्मराज ने उसे सोने का प्याला, जिसमें हजामत का पानी भरा हुआ था, दान में दे दिया किन्तु दिया बायें हाथ से। दान तो दायें हाथ से दिया जाता है। युधिष्ठिर महाराज बोले-मांगलिक कार्य में देर नहीं करना हो सकता है भावना में परिवर्तन आ जाये, मन में विचार बदल जाये।

3. एक साधु बड़ा संतोषी था। घर-घर आता एक-एक रोटी ही माँगता और आठ-दस घरों से अपना पेट भर लेता। कभी थोड़ा पानी चुल्लू में लेकर पी लेता और दिन भर भजन करता प्रभु की भक्ति करता, गुणगान गाता। बड़ी शान्ति में उसकी जिन्दगी बीत रही थी। एक भक्त कहने लगा कि महाराज अगर खाते-खाते प्यास लग जाये तो आप क्या करेंगे इसलिए एक सस्ता कटोरा ला देता हूँ। साधु ने विचारा कि चलो एक कटोरे से क्या बिगड़ेगा। ला देने दो। इसका भी चित्त प्रसन्न हो जायेगा। कटोरा आ गया। एक दिन शिवालय से निकल कर संध्या ध्यान के लिए जंगल की ओर जाते समय कटोरा रह गया। यदि कोई ले गया तो? साधु को झुझलाहट सी उठी। अच्छा लिया कटोरा, सब कुछ खो बैठे। इसके पीछे चले पहले कटोरे का इलाज कर आऊँ, फिर करूँगा ध्यान। आया द्वार पर कटोरा पड़ा था। पत्थर लेकर तोड़ा मरोड़ा और फेंक दिया। इधर से भक्त भी आ निकला। क्या बिगाड़ा है इस बेचारे ने, पूछने लगा। जो इस प्रकार इसके पीछे पड़े हो। बिगाड़ ही नहीं सर्वस्व लूट लिया है, साधु बोले। तू क्या जाने बेटा क्या किया इसने। साधु सन्तोष की साँस लेकर चला गया, पुनः जंगल की ओर। त्याग से ग्रहण में आकर पता चला कि साधु को कितना दुःख है ग्रहण में। इस प्रकार ग्रहण से त्याग में आकर ही पता चलता है त्याग में कितना सुख है इसलिए संतोष धारण करो।

4. एक सेठ ने सड़क पर गाते हुए साधु को दया करके एक पैसा दे दिया साधु सोचने लगा कि क्या करूँ इसका। किसी जरूरत वाले के हाथ में जाता तो काम आता। मेरे किस काम का? कोई भिखारी मिलेगा तो दे दूँगा। इतने में सिकन्दर का लश्कर दिखाई दिया। साधु ने वह पैसा उस की ओर फैंक दिया। वह पैसा सिकन्दर के मस्तक से जा लगा। वह चौका किसने फेंका यह तुच्छ पैसा। पकड़ लाओ उस साधु को। वह गरजा। साधु आया, क्योंजी तुमने फैंका है यह पैसा? साधु ने कहा हाँ। क्या समझकर, अब साधु बोला। विचारा था कोई भिखारी है। वेचारा भूखा अपना देश छोड़कर यहाँ आया है अपनी भूख मिटाने। यह पैसा इसे दे दूँ काम आवेगा। मुझे क्या करना है इसका? सिकन्दर की आँखे खुल गयी लेकिन हमारी आँख आज तक नहीं खुली। तेरी तृष्णा की खाई आज तक नहीं भरी। ये भौतिक पदार्थ अनन्तबार मिले और छोड़े। देव बना, इन्द्रबना, चक्रवर्ती बना, कौन सी वस्तु रह गई है जो तुझे नहीं मिली। यह शक्तितस्त्याग भावना त्याग करने से ही सफल होगी ग्रहण करने से नहीं।

छहढालाकार कहते हैं कि-

यह राग आग दहै सदा, तातै समामृत सेइये।
चिरभजै विषय कषाय, अब तो त्याग निजपद बेइये।।
कहा रच्यो पर-पद में, न तेरो पद यहै क्यों दुःख सहै।
अब दौल होउ सुखी स्वपद रचि, दावमत चूको यहै।।

राग तपन पैदा करता है विषय कषाय हमें जलाने वाले हैं। यह हमारा पद नहीं है पर पद है। अपने पद में आओ आज तक हम भोग में सुख मानते रहे। त्याग का लक्ष्य रहा नहीं। इसलिए भइया आप तो सब ज्ञानी हैं इन बातों को समझ कर शक्तितस्त्याग भावना भावें।

5. किसी नगर में एक धनी सेठ रहता था। ऊपर से तो वह मीठी और चिकनी चुपड़ी बातें करता लेकिन उसके मन में कपट रहता था। छल-कपट से उसने लाखों का धन इकट्ठा किया था। पर जब कोई दीन भिखारी उसके द्वार पर आकर रोटी कपड़े की याचना करता हो तो सेठ उसे कुत्ते की तरह दुतकार भगा देता। वह धन को ही अपना सर्वस्व समझने लगा- चमड़ी जाय पर दमड़ी न जाये। यह कहावत सेठ पर पूरी घटित होती थी। लोग उसे कन्जूस के नाम से पुकारने लगे। नगरवासी कभी-कभी उससे कह दिया करते थे कि सेठ जी क्या करोगे इतना धन जोड़कर किसी शुभ कार्य में भी कुछ लगा दिया करो। दान दोगे तो उभय लोक में सुख पाओगे।

कन्जूस सेठ उनकी बातों को हंसी में टाल देता और कहता अरे तुम तो सब मूर्ख हो। पैसे की इज्जत तू क्या जाने मैं तो पैसे को अपना सब कुछ समझता हूँ। धन से मृत्यु को जीता जा सकता है। देखते नहीं सारा नगर मेरे सामने सिर पकड़ता है। बड़े-2 आदमी मुझसे ही मिलते हैं। लोग टकटकी लगा कर देखते हैं द्वार पर भीड़ बनी रहती है। यदि मैं इस धन को दान में दे दूं तो मेरी खुशामद कौन करे? मेरी कोठी है, कार है, बगीचे हैं। मुझे चिन्ता किस बात की है। झूठ बोलो बेइमानी करो तथा प्रपंच कर पैसा बनाओ। यह पैसा सब कुछ है। एक दिन कन्जूस बेईमान का परिवार सात दिन के लिए बाहर चला गया तभी सेठ ने यह अच्छा अवसर देख कर तहखाने में प्रवेश किया और अन्दर जाकर ताला लगा दिया।

सेठ देख रहा है एक ओर सोने चाँदी की सिल्ली की तह पर तह लगी है और एक तरफ हीरे जवाहरात और मोतियों के ढेर लगे हुए हैं। नोटों की गड्डियाँ सन्दूक में भरी पड़ी हैं। कई घण्टे दौलत को निहार कर जब बाहर को चला तो द्वार बन्द था चाभी अन्दर आते समय बाहर रह गयी थी। ताला चाबी के बिना बन्द हो जाता था परन्तु खुलता नहीं था। सेठ घबरा गया

अन्दर से शोर मचाया, चिल्लाया पर वहाँ कौन बैठा था। जो पुकार सुनता। तीन चार दिन में सेठ ने तड़फ-तड़फ कर प्राण दे दिये।

सात दिन बीतने पर कुटुम्ब के लोग आये सेठ का पता लगने पर तहखाने के किवाड़ तुडवाये तो देखा सेठ ओधे मुँह पड़ा है। बडी दुर्गन्ध आ रही है पास ही एक कागज पड़ा था जिस पर सेठ ने मरते समय लिखा था- झूठ, कपट, छल, बेईमानी से इकट्ठा किया धन किसी काम नहीं आता धन को सर्वव समझना मनुष्य की सबसे बड़ी भूल है। जो व्यक्ति धन का सदुपयोग नहीं करता, दान पुण्य में नहीं लगाता तथा निजीस्वार्थ हेतु उसका अपव्यय करता है उस की मौत मुझ जैसे पापी और कंजूस व्यक्ति की तरह होती है। अत: समस्त धनराशि में परोपकार के लिए समर्पित करता हूँ।

क्षितिगतमिव वटबीजं, पात्रगतं दानमल्पमपि काले।
फलति छाया विभवं, बहुफलमिष्टं शरीरभृताम्।।

जिस प्रकार अच्छी उपजाऊँ जमीन में बोया हुआ छोटा सा भी बट का वृक्ष, अपने फलदान के समय बड़ीभारी छाया को और अपने फलों को फैलाता है उसी प्रकार योग्य पात्र को दिया हुआ योग्य समय का थोड़ा सा दान, दाता के लिए फलदान के समय पर विशाल ऐश्वर्य सम्पत्ति और इच्छानुसार अनेक भोगोपभोग फलों को देता है।

वास्तव में बाहर कोई ओर काम कर रहा है। भीतर कोई और। मात्र हमारे सामने एक नकली चेहरा ही काम कर रहा है। आज जो भी त्याग हमें दिखाई दे रहा है। उसके पीछे पद का नाम, धन, यश प्रतिष्ठा की चाह छिपी हुई है वह चाहता है कि उसका नाम विशिष्ट रूप से लिया जाय। उसे त्यागियों की विशिष्ट श्रेणी में रखा जाय। सभी लोग उसका सम्मान करें। परन्तु महावीर स्वामी ने इस अहंकार पूर्ण त्याग का मोक्षमार्ग में निषेध किया है।

वास्तविक त्याग तो वही है जिसने अपनी समस्त घटनाओं का त्याग कर दिया है। त्याग में याचना का पूर्ण अभाव होता है। क्योंकि त्याग ही अन्तरंग में उतरने में सहायता प्रदान करने वाली प्रथम सीढ़ी है। फिर शर्त कैसी? अत: हम सब इसकी महत्ता के यथार्थ स्वरूप को पहचानें। शर्तों के घेरे से बाहर निकल कर यथार्थता में आओ और अपना जीवन सार्थक बनाओ।

शक्तितस्तप भावना

मनुष्य संसार के कीचड़ में पैदा हुआ है कीचड़ में कमल विकसित होने से इस का नाम पंकज अर्थात् कमल सार्थक होता है, पुनः कीचड़ में लौटने के लिए, उसमें लथपथ होने के लिए, सुनने के लिए कदापि उसका जन्म नहीं होता। उसे इससे ऊपर उठना है। उसी तरह मनुष्य का संसार रूपी कीचड़ से निकलने के लिए पुरुषार्थ करना **चहृ और अपनी सुवर्ण** भीनी-2 सुगन्ध विकीर्ण करना है।

उत्तम तप से ही उसका सुन्दर रंग खिलता है आगे चमक और आत्मिक तेज प्रकाशित होते हैं। कीचड़ में रहकर भी उसका मुख उससे ऊपर उठा रहता है। सूर्य की ओर उन्मुख रहता है। सूर्य के प्रखर ताप से तप कर वह उज्ज्वल कीर्ति प्रगट करता है। कीचड़ से ऊपर उठे बिना, ताप से तपे बिना, वह खिलता नहीं। कितना सुन्दर और सटीक यह प्रकृति का रहस्य है।

मुक्ति पाने के लिए आत्मा को तपना ही पड़ता है ऐसे तप करने को ही तपस्वी कहा जाता है। स्वेच्छा से वह तपता है। कष्टों को प्रसन्नता पूर्वक सहता है किसी प्रकार की कोई शिकायत नहीं करता। मानव का जीवन एक शुद्ध स्वच्छ दर्पण के समान होता है। समय-समय पर अशुद्ध कर्मों की धूलि की परतें जमती रहती हैं। अतः तप द्वारा इस दर्पण की सफाई नितान्त आवश्यक है। जो व्यक्ति दर्पण में धूलि के कणों को जमने देते हैं फिर उनका दर्पण नहीं रह जाता। परमात्मा का बिम्ब उस पर बिम्बित नहीं होता। अतः दर्पण की स्वच्छता के लिए धूल हटाना आवश्यक है। यह तपस्या से ही सम्भव है। दर्पण यदि स्वच्छ है तो परमात्मा का प्रतिबिम्ब अवश्य दिखाई देगा।

कर्म कठोर गिरावन को निज, शक्ति समान उपोषण कीजे।
बारह भेद तपे तप सुन्दर, पाप जलांजलि काहे न दीजे॥
भाव घरी तप घोर करो, नर जन्म सदा फल काहे न लीजे।
ज्ञान कहे तप जे नर भावत, ताके अनेकहि पातक छीजे॥

कठोर कर्मों को गिराना अर्थात् क्षय करने के लिए अपनी शक्ति के अनुसार व्रत, तप उपवास आदि करना चाहिए। बारह प्रकार के तपों को भली प्रकार पालनकर पाप को जलांजलि क्यों न दे दी जाय। भाव सहित घोर तप करके नर पर्याय का वास्तविक फल अर्थात् मोक्ष पद क्यों नहीं प्राप्त किया जाय? ज्ञानी जन कहते हैं कि जो मनुष्य भाव सहित तपों को तपता है उसके अनेक पापों का हरण हो जाता है। इस प्रकार नर पर्याय को सफल बनाना ही उसकी सार्थकता है।

जो तप तपै खपै अभिलाषा, चूरै कर्म शिखर गुरु भाषा।

गुरु कहते हैं कि जो प्राणी तप तपता है उसकी सभी इच्छायें नष्ट हो जाती हैं और उसके सभी कर्म क्षय को प्राप्त होते हैं।

भारत भूमि का एक-एक कण तपस्वियों और महार्षियों के पद रज से पुनीत बन चुका है। तप की प्रशंसा केवल महर्षियों अथवा योगियों द्वारा ही नहीं की गई है अन्य पुरूषों ने भी तप की यशगाथा गायी है।

एक कवि ने लिखा है कि-

नारायण-नारायण धन्य है नर साधना, इन्द्र पद ने की है जिसकी शुभाराधना।

भोगासक्त देवों ने भी इस साधना की प्रक्रिया की प्रशंसा की है। देव ऊपर से नीचे आते हैं तो पूजा कराने के लिए नहीं आते। उनका पूजन कीर्तन करने के लिए आते हैं जो नर से नारायण बनने की साधना में संलग्न हैं। वे मन में सोचते हैं कि बड़ी गलती हुई जो ऊपर जाकर अटक गये। साधना ही छूट जायेगी।

तप दोषों की निवृत्ति के लिए परम आवश्यक है मिट्टी भी अग्नि की तपन को पार कर पात्र का रूप धारण करती है तभी आदर प्राप्त कर पाती है। पहले कष्ट फिर लाभ ही होता है। जिस भूतल पर हम रहते हैं, यह जो नर पर्याय है यह एक जंक्शन हैं प्रत्येक दिशा में यहाँ से लाईन जाती है यहाँ से नरक, स्वर्ग, तिर्यञ्च योनि को प्राप्त किया जा सकता है और इसी पर्याय से परमात्म पद भी प्राप्त किया जा सकता है।

यह शरीर निगोदिया जीवों का पिण्ड है, अशुचि है, घिनौना है, असार है। यह शरीर दु:ख का कारण है अनेक दु:ख उत्पन्न करता है अनित्य है, अस्थिर है, अशुचि है, कृतघ्न के समान है। करोडों उपकार करने पर भी जैसे कृतघ्न अपना नहीं होता है उसी प्रकार शरीर की भी अनेक प्रकार से सेवा उपकार करने पर भी यह अपना नहीं होता है। अत: चाहे जैसे उपायों से इसे पुष्ट करना उचित नहीं हैं।

शरीर के बिना रत्नत्रय धर्म नहीं होता है। रत्नत्रय धर्म बिना कर्मों का नाश नहीं होता इसलिए अपने प्रयोजन के लिए विषयों में आसक्ति रहित होकर, सेवक के समान योग्यभोजन देकर, यथाशक्ति जिनेन्द्र के मार्ग से विरोध रहित काय क्लेशादि रूप करना योग्य है। तप किये बिना इन्द्रियों के विषयों में लोलुपता नहीं घटती है। तप किये बिना तीन लोक को जीतने वाले काम को नष्ट करने की सामर्थ्य नहीं हीती है। तप बिना आत्मा को अचेत करने वाली निद्रा नहीं जीती जा सकती है। तप बिना शरीर का सुखिया स्वभाव नहीं मिटता है। तप के प्रभाव के द्वारा जो शरीर को वश में कर रखा होगा उसे क्षुधा, तृषा, शीत, उष्ण आदि परिषहों के आने पर कायरता उत्पन्न नहीं होगी। संयम धर्म से चलायमान नहीं होगा। तप कर्मों की निर्जरा का कारण है। अत: तप करना श्रेष्ठ है।

अपनी शक्ति को छिपाये बिना जिस प्रकार जिनेन्द्र के मार्ग से विरोध रहित हो उसी प्रकार तप करो। तप नामक सुभट की सहायता के बिना श्रद्धान, ज्ञान, आचारणरूप धन को क्रोध प्रमाद आदि लुटेरे एक क्षण में लूट लेगें तब रत्नत्रय सम्पत्ति से रहित होकर चर्तुगतिरूप संसार में दीर्घकाल तक भ्रमण करोगे। सभी तपों में प्रधान तप दिगम्बरपना है। कैसा है दिगम्बरपना? घर की ममतारूप फंदे को तोड़कर, देह की समस्त सुखियापना छोड़कर अपने शरीर में शीत, उष्ण, गर्मी, वर्षा, वायु, डांस, मच्छर, मक्खी आदि की बाधा को जीतने के सन्मुख होकर कोपीनादि समस्त वस्त्रों का त्याग कर दश दिशारूप ही जिसके वस्त्र हैं ऐसा दिगम्बरपना धारण करना अतिशयरूप है। जिसके स्वरूप को देखने सुनने पर बड़े-बड़े शूरवीर कापने लगते हैं शक्ति को प्रकट करने वालो यदि संसार के बंधन से छूटना चाहते हो तो जिनेश्वर देव संबंधी दीक्षा धारण करो। उस तप से शरीर का सुखियापना नष्ट हो जाता है। उपसर्ग परिषह सहने में कायरता का अभाव हो जाता है। जिससे स्वर्गलोक की रंभा, तिलोत्तमा भी अपने हावभाव, विलास, विग्रह आदि द्वारा मन को काम विकार सहित नहीं कर सकती है ऐसे काम को नष्ट करना तप है। इंन्द्रियों के विषयों में प्रवर्तने का अभाव हो जाना तप है दोनों प्रकार के परिग्रह में इच्छा का अभाव हो जाना तप है। निर्जनवन में, पर्वतों की भयंकर गुफा में, जहाँ भूत राक्षस आदि की छायाएं विचरण करती हों, सिंह व्याघ्र आदि के भयंकर शब्द हो रहे हों, करोड़ों वृक्षों से अंधकार हो रहा हो, सर्प, अजगर, रीछ, चीता इत्यादि भयंकर दुष्ट तिर्यंचों का आना जाना हो, ऐसे महाविषम स्थानों में भय रहित होकर ध्यान-स्वाध्याय में निराकुल होकर रहना तप है। आहार के लाभ अलाभ में समभाव रखना, मीठा, खट्टा, कडुआ, कषायला ठंडा, गरम, सरस, नीरस भोजन जलादि में लालसा रहित सन्तोष रूप, अमृत का पान करते हुए आनंन्द में रहना तप है। दुष्ट देव, दुष्ट मनुष्य दुष्ट तिर्यञ्चों द्वारा किये गये घोर उपसर्गों के आने पर कायरता छोड़कर कम्पायमान नहीं होना तप है। जिससे चिरकाल का संचित किया हुआ कर्म निर्जरित हो जाये वह तप है। कुवचन बोलने वालों में, निंद्य दोष लगाने वालों में, ताडन-मारन आदि में, द्वेष बुद्धि में कलुषित परिणाम नहीं करना तथा स्तुति पूजनादि करने वालों में राग भाव का उत्पन्न नहीं होना तप है।

पाँच महाव्रतों को धारण करना, पाँच समितियों का पालन करना, पाँच इन्द्रियों का निरोध करना छह आवश्यकों को यथासमय करना, अपने सिर तथा दाढ़ी, मूंछ के बालों को अपने हाथ से उपवास के दिन लोंचना तप है। दो माह पूरे हो जाने पर उत्कृष्ट केशलोंच होता है। तीन माह पूरे हो जाने पर मध्यम, चार माह पूरे हो जाने पर जघन्य केशलोंच होता है। वह भी तप है। प्रतिदिन केशलोंच शीतकाल, ग्रीष्मकाल, वर्षाकाल में नग्न रहना, यावज्जीवन, स्नानादि नहीं करना जमीन पर शयन करना, अल्पनिद्रा लेना, दाँतों का अंगुली से भी मंजन नहीं करना, एक बार खड़े-खड़े ही रस-नीरस स्वाद छोड़कर थोड़ा भोजन करना आदि इस प्रकार अट्ठाईस मूलगुणों

को अखण्ड पालन करना भी बड़ा तप है। इन मूलगुणों के प्रभाव से घातिया कर्मों का नाशकर जीव केवलज्ञान प्राप्तकर मुक्त हो जाते हैं।

यह तप धर्म का अंग है। तप की निर्विघ्न प्राप्ति के लिए इसका स्तवन पूजन करके महान अर्ध उतारण करो। तप के द्वारा मोक्ष महल तक आसानी से पहुंचा जा सकता है।

जैसे कढाई में पूड़ी छटपटाती है उसी प्रकार यह मानव सांसारिक दुःखों से छटपटाता है परन्तु तप द्वारा ही इसका निवारण होता है। जिस प्रकार जब लोहा वक्र हो जाता है तो उसको सीधा करने के लिए तपाना पड़ता है उसी प्रकार इन्द्रिय विषय भोगों और कषायों की निवृत्ति के लिए आत्मा को तपाना ही एक मात्र साधन है। आचार्य कहते हैं कि इच्छाओं का निरोध करना तप है। इच्छाओं का निरोध वानर नहीं नर कर सकता है, वानर तो तिर्यञ्च है। नारकी और देव भी इच्छाओं का निरोध नहीं कर सकते एक मनुष्य पर्याय ही ऐसी है जहाँ पर नारायण बनने का खेल खेला जा सकता है।

'**तपसा निर्जरा च**' अर्थात् तप से निर्जरा होती है। यदि तप करने से आकुलता होती या आकुलता हो तो वह तप, तप नहीं। साधना वही है जो साध्य को दिला दे कारण वही जो कार्य का अवलोकन करा दे, औषधि वही जो रोग से निवृत्त कर दे, तप वही जो नारायण बना दे। अब प्रश्न यह उठता है कि यह कैसे किया जाय? किसको पालन करने से कर्मों की निर्जरा होगी? तो आचार्य कहते हैं कि तप 12 प्रकार के होते हैं छह अन्तरंग और छह बहिरंग।

अनशन, अवमौदर्य, वृत्तिपरिसंख्यान, रसपरित्याग, विविक्तशय्यासन, कायक्लेश ये छह बाह्य तप कहे गये हैं।

अनशन तप- भोजन संबधी संस्कार को योगीजन एक दो, दिन, दस दिन महिना छह महिना यहाँ तक कि वर्ष के उपवास करके तोड़ सकते हैं। उन संस्कारों को उपवास अर्थात् आत्मा में वास अर्थात् आत्मा के निकट होकर कर सकते हैं। यह प्रथम तप है।

वृत्तिपरिसंख्यान तप- कुछ अटपटी आकडी लेकर आहारचर्या को जाना। किसी को न बताकर अमुक वस्तु पड़गाहन में मिलेगी तो आहार लेंगे अन्यथा नहीं यह तीसरा तप है।

रसपरित्याग तप- योगी जन रसों का त्याग कर इच्छओं का दमन करते हैं। रस छह होते हैं- नमक, मीठा, घी, तेल, दूध, दही। ये छह पदार्थ भोजन का स्वाद बनाते हैं। इनमें से एक भी कम हो जाये तो भोजन का स्वाद बिगड़ जाता है। दो तीन अथवा छह के छह रसों से रहित नीरस, घास के समान भोजन करना चौथा तप है।

विविक्तशय्यासन तप- योगी जन एक स्थान में न रहकर अपनी आत्मसाधना करते हैं क्योंकि जन सम्पर्क में रहने से साधाना नहीं होती। कहीं वनों में, पहाड़ों की कन्दराओं में वास करते हैं ताकि कोई उनके पास जा आ न सके।

कायक्लेश तप- क्षुधा, तृषा संबंधी शरीर के अन्दर की बाधाओं के अतिरिक्त शरीर पर बाहर से आघात करने वाली अनेक बाधायें हैं जैसे गर्मी, सर्दी, बरसात बाधा, डांस-मशक की बाधा, पंचेन्द्रिय तिर्यंचों की बाधा, दुष्ट मनुष्यों की बाधा योगी जन इन दुष्ट संस्कारों को निर्मल करने के लिए उपक्रम करते हैं। बाधाओं की प्रतीक्षा न करके स्वयं जान बूझ कर इन बाधाओं में प्रवेश कर जाते हैं और प्रतिकूल वातावरण में रहकर अभ्यास करते हैं। शान्ति में स्थिरता रखने का प्रतिकूल वातावरण में स्थिर होने का आनन्द ही अलग है। इसीलिए गर्मी में गर्म जमीन पर खड़े होना अथवा बैठ जाना और घण्टों एक ही अवस्था में रहना सर्दी में नदी के किनारे सारी रात खड़े रहना, मूसलाधार बरसात में वृक्ष के नीचे जहाँ सिंह की गर्जना हाथी की चिघाड़, गीदडों की चीख, अजगरों की फुंकार, प्रलय काल की आंधीवात तीव्र पवन के झोंको से टूट कर गिरने वाले वृक्षों की गडगडाहट, साँय-साँय करती हवायें, कल-कल करते नदी नाले, ऐसे भयानक वन में मुनिराज ध्यान में तल्लीन रहते हैं। ऐसे मुनिराज धन्य हैं।

प्रायश्चित तप, विनय तप, वैयावृत तप, स्वाध्याय तप, व्युत्सर्ग तप और ध्यान तप ये छह अन्तरंग तप हैं।

प्रायश्चित तप- प्रमाद से लगे हुए दोषों की शुद्धि प्रायश्चित तप है।

विनय तप- पूज्य पुरूषों की विनय करना विनय तप है।

वैयावृत तप- मुनियों की सेवा टहल करना वैय्यावृत तप है।

स्वाध्याय तप- ज्ञानाराधना में आलस्य को त्यागकर शास्त्राध्ययन करना उपदेश देना स्वाध्याय तप है।

व्युत्सर्ग तप- बाह्याभ्यन्तर परिग्रह का त्याग करना व्युत्सर्ग तप है।

ध्यान तप- चित्त चंचलता का त्याग करना ध्यान तप है।

तपस्या गृहस्थ अवस्था में भी होती है। जैसे वारिषेण और सेठ सुदर्शन घर में भी तप करते थे। बहुत प्राणियों ने घर में रहकर तप किया। तपस्वी यह विचार नहीं करते कि शरीर क्षीण हो रहा है अथवा जल रहा है। जैसे कारखाना लगवाते हैं, मशीन फिट करते हैं, मशीन को चलाया वह घिस जायेगी क्या ऐसा अभिप्राय रखकर माल बचाना बन्द कर देते हैं। घिसे तो घिसे, टूटे तो टूटे माल तो बनाना ही है। मशीन है किसलिए, टूट जायेगी मरम्मत करवा लेंगे यह अभिप्राय रहता है। आप लोग शरीर को इसे मशीन न समझकर इसे अन्य समझते हैं इसलिए इसके घटने, बढ़ने, टूटने अर्थात् रोग मृत्यु से डरते हैं। पर योगी इसे मशीन समझते हैं। जिसे उन्होंने शान्ति रूपी माल तैयार करने के लिए लगाया है। वे उसके घिसने या टूटने अर्थात् रोग व मृत्यु हो जाने

से नहीं डरते जब तक वह मरम्मत के योग्य है अर्थात् शान्ति के काम से कुछ सहायता के योग्य है तब तक उसकी मरम्मत करके इसे भोजन आदि आवश्यक पदार्थ देकर इससे अधिक काम लेते हैं जिस दिन वह मरम्मत योग्य न रहेगा अर्थात् बुढ़ापे से अत्यन्त जर्जरित हो जायेगा उस दिन इसे छोड़ देना अर्थात् समाधि मरण धर लेना। नया शरीर फिर मिल जायेगा। उससे पुन: शान्ति का माल तैयार करने का धन्धा करना। यह है योगी के तप का प्रयोजन और शरीर होने का यथार्थ फल। आप तप से क्यों घबराते हैं अगर पुरुषार्थ करना सीखो तो तुम भी धीरे-धीरे योगी बन सकते हो। इसको निम्न उदाहरण द्वारा समझाया जा सकता है- पहले दिन एक व्यापारी का पुत्र दिशावर जाता है, माल लाने के लिए उस दिन उसके हृदय की स्थिति सब जानते हैं उसे कुछ झिझक सी होती है। कुछ भय सा होता है सौदा कैसे करूँगा? कहाँ भोजन करूँगा प्रबन्ध बने कि न बने। अगर भाव में लुट गया तो क्या होगा, खैर जाना तो पड़ेगा ही व्यापार तो प्रारम्भ करना ही है। पहले सौदे में नुकसान भी रहा तो भी कोई बात नहीं इससे कुछ सीख जाऊँगा। धन हानि भले ही हो जाये परन्तु अभ्यास लाभ तो हो ही जायेगा इत्यादि विकल्पों के जाल में उलझता वह चल देता हैं। माल ले आता है। यदि दूसरों की अपेक्षा कुछ ज्यादा दाम दे भी आया तो कोई चिन्ता नहीं पहला अवसर ही तो था। दूसरी बार जायेगा तो वह गलती नहीं करेगा। इसलिए दूसरी बार झिझक व भय नहीं होता है। अत: इस बार वह धोखा नहीं खाता है। खाता भी है तो कम और इसी प्रकार उत्तरोत्तर तीसरी व चौथी बार अधिक-अधिक उत्साह के साथ जाता है और वह एक दिन कुशल व्यापारी बन जाता है। आध्यात्मिक दृष्टि से भी ऐसा क्रम है पहले छोटे से छोटा त्याग करता है फिर धीरे-धीरे वह पूर्ण योगी हो जाता है।

तप करते जीवन गयो, द्रव्य गयो मुनि दान।
प्राण गये सन्यास में, तीनों गये न जान।।

तपस्या करते यौवन अवस्था व्यतीत हो गयी, धन-दान आदि में मुनि-तपस्वियों त्यागियों पर खर्च हो जाये और समाधि के साथ प्राण चले जाये तो उस यौवन धन तथा प्राण का चला जाना आवश्यक है या लाभदायक है। हानिकारक नहीं समझना चाहिए।

अत: जब तक शरीर में शक्ति है तब तक कुछ न कुछ तप अवश्य करते रहना चाहिए। निर्बल शरीर के असक्त हो जाने पर कुछ तप नहीं किया जा सकता। इस प्रकार शक्ति न छिपा कर, शक्ति के बाहर जाकर जो तप आचरण किया जाता है उसको शक्तितस्तप अर्थात् शक्ति अनुसार तप भावना कहते हैं। इस तप के द्वारा ही मूल तत्त्व अर्थात् आत्मा को पाया जा सकता है इसलिए संकल्प-विकल्पों के दायरे से बाहर निकलकर तप की अग्नि में मलिन आत्मा को तपा कर शुद्ध कर अपने को प्राप्त करो यह मेरा सभी को आशीर्वाद है।

साधुसमाधि भावना

जन्म और मरण क्या है? जीव द्वारा नई पर्याय का धारण करना जन्म है और पहली पर्याय को छोड़ना मरण है। जन्म मरण से रहित सिद्ध पर्याय तक पहुँचने के लिए जीव को सोलह कारण भावनाएं भानी श्रेयस्कर हैं इनमें आज आठवीं साधुसमाधि भावना का विवेचन करेंगे।

साधु समाधि करो नर भावक, पुण्य बड़ो उपजे अघ छीजे।
साधु की संगति धर्म की कारण, भक्ति करे परमारथ सीजै॥
साधु समाधि करे भव छूटत, कीर्ति-छटा त्रैलोक्य में गाजे।
'ज्ञान' कहे यह साधु बडो, गिरि श्रृंग गुफा बिच जाय विराजे॥

जो नर भाव पूर्वक समाधिमरण करते हैं उनके पाप का क्षय और बहुत पुण्य उत्पन्न होता है। साधु की संगति करने से धर्म होता है और साधु की भक्ति करने से मोक्ष की प्राप्ति होती है। जो साधु समाधिमरण करते हैं उनका भवभ्रमण छूट जाता है और यश का प्रकाश तीनों लोक में फैल जाता है। ज्ञानी जन कहते हैं कि वह साधु महान होता है जो पहाड़ की चोटी गुफाओं आदि में जाकर रहते हैं।

साधु समाधि सदामन लावै, तिहुं जग भोग भोगि शिव आवै।

समाधि का अर्थ है मरण। साधुका अर्थ है श्रेष्ठ, अच्छा। अत: श्रेष्ठ मरण को साधु समाधि कहते हैं। साधु का दूसरा अर्थ है सज्जन। ऐसा मरण यदि एक बार कर ले तो कल्याण हो जाता है। जन्म मरण से छुटकारा प्राप्त हो जाता है। बच्चों व बड़ों सभी का जन्म दिन मनाते हैं, बच्चों के जन्म पर मिठाईयां बाँटते हैं किन्तु इसके साथ मरण का भय लगा रहता है। न जाने ऐसे जन्म मरण कितने बार किये। वस्तुत: जीवन मरण कोई चीज नहीं है यह तो पुद्गल का स्वभाव है। जन्मदिन मनाना महान अज्ञानता है, मिथ्यात्व है।

जैसे भंडार में लगी हुई आग को गृहस्थ अपनी उपकारी वस्तुओं का नाश होना जानकर बुझाता ही है क्योंकि अपनी उपकारी वस्तुओं की रक्षा करना बहुत आवश्यक है उसी प्रकार व्रत-शील आदि अनेक गुणों सहित जो व्रती संयमी को किसी कारण से विघ्न आ जाय तो विघ्नों को दूर करके व्रत शील की रक्षा करना साधुसमाधि है अथवा गृहस्थ अपने परिणामों को बिगाड़ने वाला मरण काल आ जाये, उपसर्ग आ जाये, रोग आ जाये, इष्ट वियोग हो जाये, अनिष्ट संयोग आ जाये उस समय भयशील नहीं होना साधु समाधि है।

सम्यग्ज्ञानी ऐसा विचार करता है कि हे आत्मन! तुम अखण्ड, अविनाशी ज्ञान, दर्शन स्वभावी हो तुम्हारा मरण नहीं हो सकता है। जो उत्पन्न हुआ है वह नष्ट होगा। पर्याय का

विनाश होता है, चैतन्य द्रव्य का विनाश नहीं होता है। पाँच इन्द्रियाँ, मनबल, वचनबल, कायबल, आयुबल, उच्छवास- ये दश प्राण हैं। इनके नाश को मरण कहते हैं। तुम्हारे ज्ञान, दर्शन, सुख, सत्ता इत्यादि भाव प्राण हैं उनका कभी नाश नहीं होता है। अतः देह के नाश को अपना नाश मानना मिथ्यादर्शन-मिथ्याज्ञन है।

हे ज्ञानी! हजारों कृमि से भरे, हांड-मांसमय, दुर्गंधित, प्रकट विनश्वर देह के नाश होने से तुम्हारा क्या होता है तुम तो अविनाशी ज्ञानमय हो। यह मृत्यु तो बड़ी उपकारी मित्र है जो तुम्हें सड़े गले शरीर में से निकालकर देव आदि की उत्तम देह धारण कराती है यदि मृत्यु नहीं आती तो इस देह में अभी कब तक और रहना पड़ता? रोग तथा दुखों से भरे शरीर में से कौन निकालता? समाधिमरण करके आत्मा का उद्धार कैसे होता? व्रत तप-सयंम का उत्तम फल मृत्यु नाम के मित्र के उपकार किये बिना कैसे पाता? पाप से कौन भयभीत होता? मृत्युरूप कल्पवृक्ष के बिना चार आराधनाओं की शरण ग्रहण कराकर संसार रूपी कीचड़ में से कौन निकालता? जिनका चित्त संसार में आसक्त है तथा देह को अपनारूप जानते हैं उन्हें मरण का भय होता है सम्यग्दृष्टि अपने स्वरूप को देह से भिन्न जानकर भयभीत नहीं होते हैं उन्हीं के साधु समाधि होती है। मरण के समय में जो कभी रोग दुःख आदि आता है वह भी सम्यग्दृष्टि को देह से ममत्व छुडाने के लिए आता है त्याग संयम आदि के सन्मुख कराने के लिए आता है प्रमाद को छुड़ाकर सम्यकदर्शन आदि चार आराधनाओं में दृढ़ता कराने के लिए आता है।

ज्ञानी विचार करता है:- जिसने जन्म धारण किया है वह अवश्य मरेगा यदि कायर हो जाऊँगा तो मरण नहीं छोड़ेगा और यदि धीर बना रहूँगा तो मरण नहीं छोड़ेगा। इसलिए दुर्गति का कारण जो कायरतारूप मरण है उसे धिक्कार हो। अब ऐसे साहस से मरूँगा कि देह मर जायेगी किन्तु मेरे ज्ञान-दर्शन स्वरूप का मरण नहीं होगा ऐसा मरण करना उचित है। अतः उंत्साह सहित सम्यग्दृष्टि के मरण का भय नहीं होना वह साधुसमाधि है।

देवकृत, मनुष्यकृत, तिर्यञ्चकृत उपसर्ग होने पर जिसको भय नहीं होता पूर्व में बांधे हुए कर्म की निर्जरा ही मानता है उसके साधुसमाधि है। ज्ञानी रोग से भय नहीं करता है वह तो अपने शरीर को ही महारोग जानता है क्योंकि शरीर ही तो क्षुधा, तृषा, आदि महारोगों को उत्पन्न कराने वाला है। यह मनुष्य शरीर वात, पित्त, कफादि त्रिदोषमय है। असातावेदनीय कर्म के उदय से, त्रिदोषों के घटने-बढ़ने से ज्वर, खांसी, श्वास, अतिसार पेटदर्द, सिरदर्द, नेत्रविकार, वातादि की पीड़ा होने पर ज्ञानी ऐसा विचार करता है। मुझे यह रोग उत्पन्न हुआ है उसका अंतरंग कारण तो आसातावेदनीय कर्म का उदय है बहिरंग कारण द्रव्य-क्षेत्र कालादि हैं कर्म के उदय का उपशम होने पर रोग का नाश हो जायेगा। असातावेदनीय का प्रबल उदय होने पर बाह्य औषधि आदि कोई भी रोग को मिटाने में समर्थ नहीं है। असाताकर्म को हरने में कोई देव, दानव

मंत्र-तंत्र, औषधि आदि समर्थ नही हैं। अत: अब संक्लेश छोड़कर समता ग्रहण करना। बाह्य जो औषधि आदि हैं वे असातावेदनीय कर्म का उदय मंद हो जाने पर सहकारी कारण हैं। असातावेदनीय कर्म का तीव्र उदय होने पर औषधि आदि कोई भी बाह्य कारण रोग दूर करने में समर्थ नहीं हैं ऐसा विचार करके असातावेदनीय कर्म के नाश का कारण परम समता भाव धारण करके, संक्लेश रहित होकर सहना, कायर नहीं होना वही साधुसमाधि है।

इष्ट का वियोग होने पर अनिष्ट का संयोग होने पर ज्ञान की दृढ़ता से भय को प्राप्त नहीं होना साधु-समाधि है। जो जीव जन्म-मरण के भय सहित है किन्तु सम्यग्दर्शन आदि गुणों सहित है वह इस मनुष्य पर्याय के अंत में आराधनाओं की शरण सहित व भय रहित होकर देहादि सभी पर द्रव्यों में ममता रहित होकर, व्रत संयम सहित होकर समाधिमरण की इच्छा करता है। इस संसार में परिभ्रमण करते हुए मेरा अनंतानन्त काल बीत गया है। समस्त समागम अनेक बार पाया परन्तु समाधिमरण प्राप्त नहीं हुआ है यदि समाधिमरण एक बार भी मिल गया होता तो फिर जन्म-मरण का पात्र नहीं होता संसार में परिभ्रमण करते हुए मैंने भव-भव में अनेक नये-नये देह धारण किये हैं। ऐसी कौन सी देह है जो मैंने धारण नहीं की? अब इस वर्तमान देह में क्यों ममत्व करूँ? मुझे भव-भव में अनेक स्वजन-कुटुम्बीजनों का भी संबंध हुआ है। आज पहली बार ही स्वजन नहीं मिले है अत: किस-किस स्वजन से में राग करूँ? मुझे भव-भव में अनेक बार राजऋद्धि प्राप्त हुई है। अब मैं इस तुच्छ वर्तमान सम्पदा में क्या ममता करूँ? भव-भव में मेरे अनेक पालन करने वाले माता पिता भी हो गये हैं अभी ये प्रथम बार ही नहीं हुए हैं। मुझे भव-भव में अनेक बार नारीपना भी प्राप्त हुआ है काम की तीव्रलम्पटता सहित मुझे भव-भव में अनेकबार नपुंसकपना भी प्राप्त हुआ है तथा मुझे भव-भव में अनेक बार पुरूषपना भी प्राप्त हुआ है तो भी वेद के अभिमान से नष्ट होता फिरता रहा। भव-भव में अनेक जाति के दु:खों को प्राप्त हुआ हूँ संसार में ऐसा कोई दु:ख नहीं है जो मैंने अनेक बार नहीं पाया हो। ऐसा कोई इंद्रिय जनित सुख भी नहीं है जो मैंने अनेकबार नहीं पाया हो। अनेक बार नरक में नारकी होकर असंख्यात काल तक प्रमाण रहित अनेक प्रकार के दु:ख भोगे हैं। अनेक बार तिर्यञ्चों के भव प्राप्त करके अनंतबार जन्म-मरण करते हुए अनेक प्रकार के दु:ख भोगते हुए बारम्बार परिभ्रमण किया है।

मैं अनेक बार धर्म वासना रहित मिथ्यादृष्टि भी हुआ हूँ अनेक बार देवलोक में भी जन्म हुआ है, अनेक भवों में जिनेन्द्र की पूजा की है, अनेक भवों में गुरूवंदना भी की है, अनेक भवों में मिथ्यादृष्टि होकर कपटपूर्वक आत्मनिन्दा भी की है, अनेक भवों में तप भी धारण किया है, अनेक भवों में भगवान के समवशरण में भी हो आया हूँ, तथा अनेक भवों में श्रुतज्ञान के अंगों का भी पठन-पाठनादि का अभ्यास किया है तो भी अनंतकाल से भवनिवासी ही रहा।

यद्यपि जिनेन्द्र की पूजा करना, गुरूओं की वंदना करना, आत्मनिंदा करना, दुर्द्धर तपश्चरण करना, समवशरण में जाना, जिनश्रुत के अंगों का अभ्यास करना इत्यादि कार्य प्रशंसा योग्य हैं पाप का नाश करने वाले हैं पुण्यबंध के कारण हैं तो भी सम्यग्दर्शन बिना अकृतार्थ हैं (अकार्यकारी हैं) संसार परिभ्रमण को नहीं रोक सकते हैं, सम्यग्दर्शन बिना समस्त क्रियाएं पुण्य का बन्ध करने वाली हैं। सम्यग्दर्शन सहित हो तभी वे संसार का नाश कर सकती हैं।

जगत में मणि भी पाषाण है तथा अन्य रेतीला पत्थर भी पाषाण है। जैसे कोई मनुष्य साध ारण पत्थर तो मन दो मन भी बांधकर ले जाय और बेचे तो एक पैसा ही मिले तथा उससे एक दिन भी पेट नहीं भरे। मणि कोई रत्ती भर भी ले जाय और बेचे तो हजारों रुपये मिलें समस्त जन्म की दरिद्रता मिट जाये। उसी प्रकार समभाव, शास्त्रों का ज्ञान चारित्र धारण, घोर तपश्चरण, ये सम्यक्त्व बिना बहुत काल धारण करे तो राज्य सम्पदा मिल जायेगी, मंद कषाय के प्रभाव से देवलोक में पैदा हो जायेगा फिर वहाँ से मरकर एक इंद्रिय आदि पर्यायों में परिभ्रमण करेगा, किन्तु यदि ये सम्यक्त्व सहित होवे तो संसार परिभ्रमण का नाश करके मुक्त हो जायेगा।

सम्यक्त्व बिना जो मिथ्यादृष्टि हैं जिनराज की पूजन करें, निर्ग्रन्थ गुरु की वंदना करें समवशरण में जायें जिनागम का अभ्यास करें, उत्तम तप करें तो भी अनन्तकाल तक संसार में ही निवास रहेगा। इस तीन लोक में सुख-दु:ख की सभी सामग्री इस जीव ने अनन्तबार पाई है कुछ भी दुर्लभ नहीं है एक साधु समाधि रूप जो रत्नत्रय की लब्धि है उसे निर्विघ्न परलोक तक ले जाना दुर्लभ है जो रत्नत्रय सहित होकर देह को छोड़ता है उसके जो साधुसमाधि होती है उसकी प्राप्ति दुर्लभ है। साधुसमाधि चतुर्गति में परिभ्रमण के दु:ख का अभाव करके निश्चयत: स्वाधीन, अनन्त सुख को प्राप्त कराती है। जो पुरूष साधुसमाधि भावना को निर्विघ्न रूप से प्राप्त करने के लिए इस भावना को भाता हुआ इसका महान अर्ध उतारण करता है वह शीघ्र ही संसार समुद्र को पार करके अष्टगुणों का धारक सिद्ध बन जाता है।

आचार्य कहते हैं कि मरण पाँच प्रकार के होते हैं

1. **बाल-बाल मरण:-** यह मरण मिथ्यादृष्टि के होता है इससे चर्तुगति भ्रमण होता है।
2. **बाल मरण:-** यह मरण अविरत सम्यग्दृष्टि के होता है यदि मरण शान्ति से हो जाय तो कल्पवासी देव अन्यथा भवनत्रिक देवों में उत्पन्न होता है।
3. **बाल पंडित मरण:-** यह मरण देशव्रती श्रावकों का होता है।
4. **पंडित मरण:-** यह 28 मूलगुणों धारी मुनियों का होता है।
5. **पंडित-पंडित मरण:-** यह मरण चौदहवें गुणस्थानवर्ती अयोगकेवली के होता है इस मरण के बाद पुन: जन्म-मरण नहीं होता।

समाधिमरण:- रत्नकरण्डश्रावकाचार में आचार्य समन्तभद्र स्वामी कहते हैं कि-

उपसर्गे दुर्भिक्षे जरसि रुजायां च निःप्रतिकारे।
धर्माय तनुविमोचनमाहुः सल्लेखनामार्याः।। १२२

आचार्य कहते हैं कि जिस समय अनिवार्य उपसर्ग आ जावे, दुर्भिक्ष हो या कोई महान क्लिष्ट रोग हो जावे, अथवा कोई शरीर के निपात करने वाला कारण मिल जावे जैसे जंगल में आग लग जावे और निकलने का उपाय न हो, सिंह व्याघ्र आदि का सामना हो जावे अथवा जहरीले जीव-जन्तु काट लें जिसमें ऐसा लगे कि अब बचना मुश्किल है तब धर्म के लिए शरीर को शान्तिपूर्वक त्याग देना चाहिए इसीको समाधि या सल्लेखना कहते हैं। इसके दो भेद हैं-(1) भाव सल्लेखना (2) द्रव्य सल्लेखना

(1) **भाव सल्लेखना**- क्रोधादि कषाय रहित होकर रागादि विकल्पों को कृश करना भाव सल्लेखना है।

तृण, चौकी शिव शैल शिखर नहीं आत्म समाधि के आसन।
संस्तर, पूजा समिलन नहीं समाधि के साधन।।

(2) **द्रव्य सल्लेखना**- भाव सल्लेखना के लिए भोजन आदि का त्याग करके शरीर को कृश करना द्रव्य सल्लेखना है। इसके दो भेद हैं।

(1) शीघ्र सल्लेखना (2) प्रयोग सल्लेखना।

1. **शीघ्र सल्लेखना:**- शरीर के निपात करने वाले उपसर्ग के होनेपर अन्तरंग एवं बहिरंग सभी प्रकार के परिग्रह का एवं चारों प्रकार के आहार का त्याग अन्त समय तक के लिए कर देना शीघ्र सल्लेखना कहलाती है।
2. **प्रयोग सल्लेखना:**- चारों प्रकार के आहार को धीरे-धीरे कम करते हुए शरीर को कृश करना प्रयोग सल्लेखना कहलाती है। यह बारह साल की होती है। इसके तीन भेद हैं।

   (1) भक्त प्रत्याख्यान (2) इंगिनी मरण (3) प्रायोपगमन

   1. **भक्त प्रत्याख्यान:**- जिस में क्रम-क्रम से या एक साथ आहार पानी का त्याग किया जाता है। शरीर की टहल स्वयं एवं दूसरे से कराई जाती है।
   2. **इंगिनी मरण:**- इसमें आहार पानी के त्याग के साथ शरीर की टहल स्वयं की जाती है, दूसरे से नहीं कराई जाती।
   3. **प्रायोपगमन:**- जिसमें इतनी निःस्पृहता बढ़ जाती है कि आहार पानी के त्याग के साथ शरीर की टहल न स्वयं की जाती है और न दूसरों से कराई जाती है। उसे प्रायोपगमन कहते हैं।

निरतिचार सल्लेखना का फल बताते हुए आचार्य समन्तभद्र कहते हैं कि-

निःश्रेयसमभ्युदयं निस्तीरं दुस्तरं सुखाम्बुनिधिम्।
निःपिबति पीतधर्मा सर्वै र्दुःखैरनालीढः।।

-रत्नक., 130

धर्म रूपी अमृत का पान करने वाला सल्लेखना धारी समस्त दुखों से रहित होता हुआ अपार दुस्तर, उत्कर्षशाली सुख के सागर स्वरूप मोक्ष को पाता है।

आचार्य समन्तभद्र स्वामी ने रत्नकरण्डश्रावकाचार में सल्लेखना के पांच अतिचार बताये हैं।

जीवितमरणाशंसे भयमित्रस्मृतिनिदाननामानः।
सल्लेखनातिचारः पंच जिनेन्द्रैः समुदिष्टाः।।

-रत्नक., 129

जीने और मरने की इच्छा करना, डरना, मित्रों की याद करना और अग्निभाव में भोगों की इच्छा करना ये पाँच जिनेन्द्र भगवान ने सल्लेखना के अतिचार बताये हैं।

अज्ञानता वश मनुष्य शरीर के जन्म को जन्म तथा शरीर के मरण को अपना मरण मानता हुआ दुःखी होता है।

पं. दौलतरामजी छहढाला में लिखते हैं कि-

तन उपजत अपनी उपज जान, तन नशत आप से नाशमान।
रागादि प्रगट ये दुख दैन, तिनहीं को सेवत गिनत चैन।।

दृष्टान्तः- एक जगह दो मित्र रहते थे। उसमें से एक समाधि के स्वरूप को जानता था। दूसरा कहने लगा कैसी होती है समाधि? सिखा दो। गुरु ने कहा- जाओ सामने एक मकान खाली पड़ा है उसमें बैठकर ध्यान लगाओ, समता रखना अगर तुम्हारे अन्दर समाधि आ गई तो उपसर्ग आने पर भी तुम ध्यान नहीं छोड़ोगे तो समझ लेना समाधि की जानकारी हो गयी। गुरु ने परीक्षा लेने के लिए एक मेहतरानी को भेज दिया कि उसके पास खूब धूल ड़डा दे मेहतरानी ने वैसा ही किया। उसे तुरन्त क्रोध आ गया और उठकर गुरु जी से आकर बोला। गुरुजी अभी तो समाधि का स्वरूप जाना ही नहीं गुरु बोले फिर ध्यान लगाओ, वह जाकर ध्यान लगाने लगा। फिर परीक्षा के लिए किसी को भेज दिया, उसने उसके पास जाकर खूब गालियाँ दी, उसे कुछ कम क्रोध आया अब वह सच्ची समाधि लगाकर आत्मा का चिन्तन करने लगा। गुरु ने उसके पास फिर मेहतरानी को भेजा। मेहतरानी ने उसके सिर पर विष्टा डाल दी उसने तब भी समाधि

नहीं छोड़ी इसका नाम ही सच्ची समाधि है। जब इतनी समता आ जायेगी तो हमारा मरण सच्चा मरण हो जायेगा। दूसरे रूप में साधुसमाधि से मतलब साधुओं के उपसर्ग को दूर करना अथवा धर्मात्मा को संबोधित करके समाधि नहीं बिगड़ने देना। जैसे भण्डार में लगी हुई अग्नि को बुझाते हैं क्योंकि वस्तुओं की रक्षा करना उपकारक है। इसी प्रकार अनेक गुणों सहित व्रती संयमी के किसी कारण से विघ्न आते हैं तो उनको दूर कर व्रतशील की रक्षा करना, साधु समाधि है अथवा गृहस्थ को अपने परिणाम को छोड़ने वाला मरण आ जाये। इष्ट वियोग हो जाये, अनिष्ट संयोग आ जाये, उपसर्ग आ जाये, रोग आ जाये, इष्ट वियोग हो जाये, अनिष्ट संयोग आ जावे इसमें यदि भय को प्राप्त नहीं होता है तो समाधि है। सम्यग्ज्ञानी ऐसे विचारता है कि हे आत्मन्! तुम्हारा अखण्ड अविनाशी ज्ञान दर्शन स्वभाव है। तुम्हारा मरण नहीं है। जो जन्मा है उसका विनाश भी होगा। धर्मात्मा संबोधन दे रहे हैं कि सुकुमाल महामुनि को देखो कैसे स्यालनी ने बच्चों सहित उनके शरीर को खाया लेकिन उपसर्ग सहा और धीरज नहीं छोड़ा। सुकौशल मुनि को व्याघ्री ने खाया, गजकुमार के ऊपर विप्र ने अंगीठी रख दी तो भी ध्यान नहीं छोड़ा। सनतकुमार मुनि के तन में कुष्ठ हो गया वे विचरते रहे ये रोग पुद्गल में है मेरे में नहीं। समन्तभद्र मुनि के तन में क्षुधावेदना हुई लेकिन सम्यक्त्व को नहीं छोड़ा। चिंलाती पुत्रनाम के मुनि को बैरी ने शस्त्रों से घाता, घावों में बड़े-बड़े कीड़े पड़ गये तो भी अपनी आत्मा में रहे। दंडक राजा ने अभिनन्दन आदि पाँच सौ मुनियों को घानी में पिरवाया लेकिन मुनियों ने समता नहीं छोड़ी। सात सौ मुनियों के ऊपर बलि राजा ने घोर उपसर्ग किया लेकिन वे अपनी आत्मा में रहे। पाँचों पांडव मुनियों के तन में आभूषण तपा-तपा कर पहनाये फिर भी ध्यान में ही खड़े रहे। जब ऐसे पुरुषों पर भी उपसर्ग आये और उन्होंने उपसर्ग को समता से जीत लिया तब तुम्हारे ऊपर तो कोई उपसर्ग नहीं है। अब तो तुम सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र एवं तप की आराधना करो। तुम्हें तप का फल मिलेगा। अगर समाधि के सयम कुटुम्बी रोने लगे तो अपशकुन होता है इसलिए उस समय सब को समाधिमरण, वैराग्य भावना, बारह भावना ही सुनानी चाहिए और कहना चाहिए-मृत्यु मित्र उपकारी है इसमें तुम घबराओ नहीं शरीर मिट्टी है पाषाण है परन्तु पाषाण मन दो मन बांध करके जाओगे तो बेचने पर एक पैसा मिलेगा एक समय का भी पेट नहीं भरेगा और मणि को ले जाओगे तो बेचने पर काफी वैसा मिल जायेगा समस्त जीवन की दरिद्रता नष्ट हो जायेगी। उसी प्रकार समता धारण कर शास्त्र का ज्ञान और चारित्र अथवा घोर तप करे लेकिन सम्यक्त्व के बिना तप पत्थर के समान है सम्यक्त्व सहित तप संसार परिभ्रमण का नाश करके मोक्ष दिलाता है। जो प्राणी मुनियों के उपसर्ग दूर करता है वह भी सातिशय पुण्य का उपार्जन करता है। जैसे सेठ सुदर्शन का जीव पूर्व भव में प्राप्त करता है-

2. सेठ सुदर्शन का जीव पहले भव में एक ग्वाला था। जंगल में गाय चरा रहा था। वहाँ पर एक मुनिराज ध्यान में बैठे थे जाड़ा पड़ रहा था, ठण्डी-ठण्डी हवा शरीर को बाधा पहुँचा

रही थी। उस समय ग्वाले को दया आती है कि ये साधु जंगल में बैठे हैं, नग्न हैं इनका कोई प्रबन्ध करना चाहिए जिससे इन्हें ठंड न लगे। ग्वाले ने चारों ओर फूस जला दिया वैसे मुनिराज पर उपसर्ग था लेकिन ग्वाले के भाव तो उनकी रक्षा करने के थे उसी भाव के बल पर सेठ सुदर्शन वनों में तपस्या करके मोक्ष चले गये इसलिए मुनि के उपसर्ग का निवारण करना साधुसमाधि है। इन बातों को जानकर समाधि भावना भावें।

3. एक गुफा में बैठे हुए आत्म-लीन मुनिराज की गंध पाकर जब सिंह उनको भक्षण करने के लिए गुफा की ओर झपटा तब वहीं पर बैठे हुए एक शूकर ने उस सिंह का अभिप्राय जानकर मुनिराज के प्राण बचाने के लिए सिंह को गुफा में जाने से रोका। सिंह अपने बल मद में चूर था अत: शूकर के रोकने पर गुफा में घुसने लगा तब मुनिराज को आँच न आने पावे के विचार से सूकर सिंह से भिड़ने लगा। इस प्रकार शूकर और सिंह का युद्ध प्रारम्भ हो गया सिंह अपने पंजे से सुअर को घायल करने लगा। इस प्रकार दोनों परस्पर लड़ते-लड़ते मर गये सूकर ने तो मुनिराज की रक्षा के लिए प्राण दिये इसलिए मर कर देव हुआ और सिंह ने मुनिराज को मारकर खाने के भाव से प्राणों को त्यागा इसलिए नरक गया।

इसलिए रत्नत्रय के भण्डार शान्ति पुंज परम दयालु मुनिराज पर आये उपसर्ग को दूर करने में यदि प्राण भी चले जायें तो धार्मिक पुरुष को पीछे नहीं हटना चाहिए। साधुसमाधि का एक अभिप्राय यह भी है।

दृष्टान्त:- जीवनधरकुमार ने एक मरणोन्मुख कुत्ते को णमोकार मंत्र सुनाया तो तत्काल देव आयु का बन्ध कर वह पशु पर्याय को छोड़ कर देव हो गया। पार्श्वकुमार ने जलते हुए नाग नागिन का अन्त समय देखकर उनको समाधिमरण कराया तो दोनों मरकर धरणेन्द्र पद्मावती देव हुए।

इससे स्पष्ट होता है कि समाधिमरण में सहायक होना महान उपकार है। अत: अपने मित्र को शुभगति प्राप्त कराने के लिए उसके समाधिमरण में अवश्य सहायता देनी चाहिए। मरते समय न तो मनुष्य बोल सकता है और न कुछ स्मरण कर सकता है। अत: उसके हितैषी मित्रों का परम कर्तव्य है कि वे उस समय उसको वैराग्यवर्द्धक श्लोक, पद्य, गद्य, पाठ आदि सुनायें।

भय से मुक्ति:- संसार में सबसे बड़ा भय मनुष्य को मौत का होता है। यह ध्रुव सत्य है कि मनुष्य मौत से बच नहीं सकता फिर भी मौत से भय खाता है किसी भी कार्य को करने में यदि मनुष्य को यह पता चल जाय कि इसके करने में प्राणों का संकट है तो वह उस कार्य को करने के लिए तैयार ही नहीं होगा। क्या करें मौत का भय ही ऐसा होता है। यह राजा

और रंक, स्त्री-पुरूष सबको एक ही घाट उतारता है। इस मृत्यु के भय से समस्त प्राणी आतंकित हैं। क्या उससे बचने के लिए हमारे महर्षियों ने कोई उपाय खोजा है, इस प्रश्न का उत्तर हमें ढूंढ़ना है।

जीवन का प्रत्येक क्षेत्र विज्ञान ने छू लिया है फिर भी मनुष्य सुखी नहीं हैं। प्राचीन ऋषि मुनि यह जानते थे कि मनुष्यों का सुख इन जड़ पदार्थों के आश्रित नहीं है इसलिए उन्होंने घर-बार छोड़कर वन में निवास किया। इच्छाओं का दमन करके शरीर को सुखाया महान परमानन्द को प्राप्त किया जिसका स्रोत चेतना है। उन्होंने चेतनतत्त्व की खोज की जड़तत्त्व की नहीं और भारतीय दर्शन को अनमोल रत्न प्रदान किये जिसके प्रकाश में यह भौतिक प्रकाश नगण्य दिखाई पड़ता है। यह मनुष्यजाति जड़ और चेतन तत्त्वों के मिश्रण पर आधारित है। यह जो दिखाई देने वाला स्थूल शरीर है इसके अतिरिक्त भी शरीर है जिसको सूक्ष्म शरीर कह सकते हैं। स्थूल शरीर को औदारिक शरीर की संज्ञा तथा सूक्ष्म शरीर को तेजस और कार्माण शरीर की संज्ञा दी है। ऐसे तीन शरीर प्रत्येक जीव के साथ लगे हुए हैं।

अब अगर थोड़ा सा विश्लेषण करें तो स्पष्ट हो जायेगा कि मौत क्या है? यह स्पष्ट है कि जड़ शरीर के भीतर एक चेतन तत्त्व का अस्तित्व जुड़ा है जो कभी भी विनाश को प्राप्त नहीं होता। वह चेतन तत्त्व अर्थात् आत्मा शुभाशुभ भावों के अनुसार अन्य गतियों में चली जाती है और जड़ तत्त्व मरण को प्राप्त होता है। अब अगर हम इसका मूल्यांकन करे तो जड़ से चेतन का मूल्य ज्यादा होगा यह बात दूसरी है कि आज के इस भौतिक युग में चेतन तत्त्व की उपेक्षा की गई है। आत्मा का जितना तिरस्कार इस युग में हुआ है उतना शायद किसी अन्य युग में नहीं हुआ। चेतन तत्त्व का मूल्य उपेक्षा करने से कम नहीं हो जायेगा यदि मालिन के हाथ में कोई रत्न पड़ जाये और वह उसे गोमची समझकर पैर धोले तो क्या रत्न की कीमत कम हो जायेगी? जौहरी के हाथ में आते ही पुनः प्रकाश में आ जावेगी और उसका मूल्यांकन होने लगेगा।

सर्व विदित है कि जीव के साथ सूक्ष्म शरीर जुड़ा हुआ है और शुभाशुभ कार्यों का असर जीव के साथ-साथ सूक्ष्म शरीर पर भी पड़ता है। अगर हम अच्छे विचार करें तो बुरा कर्म होगा ही नहीं इस प्रकार अच्छे, बुरे कार्यों के जिम्मेदार हम स्वयं हैं। कर्म हम करें और फल कोई दूसरा पावे, ऐसा हो नहीं सकता। एक वैज्ञानिक तथ्य है कि हम पहाड़ों में जाकर आवाज लगाये तो वैसी ही प्रतिध्वनि हमको सुनाई देगी इसलिए सुनिश्चित है कि हम अपने संस्कारों के साथ अर्थात् सूक्ष्मशरीर के साथ परलोक गमन करते हैं। जब तक सूक्ष्मशरीर का विष मौजूद है तब तक संसार भ्रमण होता रहेगा। हमारे पूर्वज इस तथ्य को भली भाँति जानते थे। इसलिए अपने कर्तव्य पर सदा आरूढ़ रहे। उन्हें मौत का भय नहीं सता पाया। उनके सामने कितनी भी बाधायें व विपत्तियाँ

आई अपनी दृढ़ श्रद्धा के बल पर वह उनका सफलता के साथ मुकाबला करते रहे। यदि कोई भी कार्य कोई व्यक्ति भयभीत होकर करता है तो उसकी सफलता की गारन्टी नहीं है, निर्भीक मनुष्य के ही सफलता पाँव चूमती है।

अंग्रेजों के शासन काल में भारत को स्वतंत्र करने के लिए नवयुवकों में बड़ी व्यग्रता थी। गाँधी जी का स्वाधीनता संदेश जगह-जगह फैल चुका था। लोग देश के नाम पर मिटने को तैयार थे। ऐसे में हरदयाल ने अमेरिका जाकर नवयुवकों का एक संगठित दल बनाया और उन सबने मिलकर प्लान बनाया कि अमेरिका से हथियार खरीदकर सीमाओं के अन्दर पहुँचा दिये जायें और अंग्रेजों को परेशान किया जाय यह काम कुछ दिनों तक चलता रहा किन्तु इतने बड़े साम्राज्य के आगे यह षड्यंत्र कब तक चलता आखिर एक जहाज जिस में हथियार भरे थे बन्दरगाह पर साथियों समेत पकड़ लिया गया। मुकदमा चला सबको मौत का सन्देश सुनाया गया उसमें एक लड़का जिस की उम्र 22, 23 वर्ष थी जज के समक्ष पेश किया गया। लड़के को देखकर जज के मन में करुणा का भाव उठा। वह सोचने लगा यह सुन्दर बालक अपने प्राण व्यर्थ ही गंवा देगा। अत: उससे बोले, काम तो तुमने मौत की सजा का किया है परन्तु तुम्हारे ऊपर मुझे दया आ रही है। इसलिए तुम्हें सलाह देता हूँ कि तुम एक दया का प्रार्थना पत्र लिख दो और उसे वायसराय के पास भेज देते हैं। वह तुम्हारे प्रार्थना पत्र पर ध्यान देकर तुम्हें मौत की सजा से अवश्य छुडा देगें। तुम मौत से बच जाओगे और तुम्हें 20 साल की काले पानी की सजा हो जायेगी यह मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूँ।

युवक बोला जज साहब तुमने मुझे नेक सलाह नही दी। क्यों? मैंने तो तुम्हें मौत से बचाया है। मैं आपकी बात नहीं मानता क्योंकि यह शिक्षा मेरे फायदे की नहीं है। सोचिये यदि उस प्रार्थना पत्र ने मुझे कदाचित् बचा लिया और मुझे काले पानी की सजा हो गयी तो मुझे 20 साल कैद में बिताने पड़ेंगे वहाँ की जलवायु शरीर के लिए हानिकारक होगी और इस तरह तब मुझे वहाँ से छुट्टी मिलेगी तब मैं अधेड़ हो जाऊँगा और यदि में कर्तव्य करते हुए फाँसी पर चढ़ जाऊँगा तो मरणोपरान्त मैं नया शरीर धारण कर लूँगा और जब तक काले पानी की सजा से निकल लूँगा तब 22 साल का नौजवान बन जाऊँगा इस तरह काले पानी से तो कर्तव्य करते-करते फॉसी के तख्ते को चूमने में भलाई है। अत: आप तुरन्त अपना फरमान सुनाइये और मुझे अपने कर्तव्य से वंचित मत कीजिये। यह था उस नवयुवक का दृढ विश्वास जिसको मृत्यु भी अपने कर्तव्य से विचलित नहीं कर पाई। ऐसे साहसी पुरूष ही संसार में ऐसे कार्य कर जाते हैं जो दूसरों को आश्चर्य में डाल देते हैं। वह जानते हैं कि यह शरीर तो एक वस्त्र बदलने के समान है। महाभारत में लिखा है कि- जिस प्रकार पुराना वस्त्र बदलकर नया वस्त्र पहनने में कोई कठिनाई नही होती उसी प्रकार यह जीवात्मा पुराना शरीर छोड़कर नया शरीर धारण कर लेती है।

जो मनुष्य डर कर भागता है। वह कभी भी मुक्ति प्राप्त नही कर सकता। जो वीर पुरूष हैं वे हर्ष से सदा उसका स्वागत करने को तैयार रहते हैं समाधिमरण तो अन्तिम समय के महोत्सव का सूचक है। यह इतना ही सच है कि जब मनुष्य पर संकट आता है तो उसे उस समय डरने के बजाय दृढ़ता पूर्वक मुकाबला करना चाहिए जिस तरह एक योद्धा स्थल में शत्रु का मुकाबला करने को खड़ा होता है। जैसे स्वर्ण की पहचान अग्नि में तपने से होती है इसी तरह जीवन के संकट काल में मनुष्य की वास्तविक परीक्षा होती है। उस समय ज्ञानी पुरूष अपने कर्तव्य को पूरा करते-करते हर्ष पूर्वक मौत गले लगा लेते हैं और कायर पुरूष (अज्ञानी) मौत के भय से अपने कर्तव्य से च्युत होकर अधोगति को प्राप्त होते हैं।

बन्धुओ! ज्ञानी जन मृत्यु को महोत्सवरूप में वरण करते हैं अर्थात् जिस प्रकार मनुष्य उत्सव मनाकर आनन्दित होता है उसी प्रकार ज्ञानी जन मृत्यु का महोत्सव मनाकर मृत्यु को अंगीकार कर के जन्म-मरण पर विजय प्राप्त करते हैं और शाश्वत आनन्द को प्राप्त करते हैं। यही मनुष्य जीवन की सार्थकता है।

वैयावृत्यकरण भावना

सोलह कारण भावनाओं की श्रृंखला में आज वैयावृत्यकरण भावना पर विवेचन किया जायेगा। प्रश्न यह उठता है कि वैयावृत्य क्या है? किसकी करना चाहिए? कैसे करना चाहिए? क्यों करनी चाहिए और इसका फल क्या है?

कर्म के योग व्यथा उदई मुनि, पुगंव, कुन्तस भेषज कीजे।
पीतक फान, लसास भगन्दर, ताप को सूल महागद छीजे।।
भोजन साथ बनाय के औषध, पथ्य, कुपथ्य विचार के दीजे।
'ज्ञान' कहे नित ऐसी वैय्यावृत्य करे तस देव पतीजे।।

कर्म के उदय से पीड़ित मुनि की सेवा, सुश्रुषा, दवाई आदि रोग के प्रतिकार स्वरूप दीजिए। पीत, कफ आदि भीतरी मल को साफ करने के लिए पथ्य और अपथ्य का भलीभाँति विचार कर औषधि को बनाकर भोजन के साथ दीजिए। ज्ञानी जन कहते हैं जो इस प्रकार की वैयावृत्य करता है वह देवगति में उत्पन्न होता है।

आचार्य समन्तभद्र स्वामी कहते हैं कि-

व्यापत्तिव्यपनोदः पदयोः संवाहनं च गुणरागात्।
वैयावृत्यं यावानुपग्रहोऽन्योऽपि संयमिनाम्।।

-रत्नकरण्डश्रावकाचार 112

गुणों में प्रेम से व्रतियों के दुःख को दूर करना, मार्गजन्य आदि थकावट को दूर करने के लिए पैरों को दबाना अथवा जितना उपकार है वह सब वैयावृत कहलाता है।

सर्वार्थसिद्धि में आचार्य पूज्यपाद स्वामी लिखते हैं कि–

गुणवद्दुःखोपनिपाते निरवद्येन विधिना तदपहरणं वैयावृत्त्यम्।6.24

गुणी पुरुषों के दुःख में आ पड़ने पर निर्दोष विधि से उसका दुःख दूर करना वैयावृत्य भावना है।

कायचेष्टा या दूसरे द्रव्य द्वारा उपासना करना वैयावृत्य तप है।

आचार्य आदि पर व्याधि परिषह मिथ्यात्व आदि का उपद्रव होने पर उसका प्रासुक औषधि आहार-पान आश्रयं चौकी तख्ता और सांथरा आदि धर्मोपकरणों से प्रतीकार करना और सम्यक्त्व मार्ग में दृढ़ करना वैयावृत्य है। औषधि आदि के अभाव में अपने हाथ से नाक आदि भीतरी मल को साफ करना और उनके अनुकूल वातावरण को बना देना आदि भी वैयावृत्य है।

एक दृष्टान्त है–

श्री कृष्ण जी राज्य कर रहे थे उनके नगर में एक मुनिराज बिहार करते हुए चले आये। उनका शरीर रुग्ण था श्री कृष्ण जी के मन में उपचार कराने की बात आई। उन्होंने जीवंधर वैद्य को बुलाकर उस रोग का उपचार मालूम किया और उस रोग की औषधि के लड्डू बनवाकर सभी घरों में भिजवाते रहे जिस घर में उन मुनिराज का आहार होता वही आहार के साथ मुनिराज को लड्डू दिये जाने लगे और धीरे-धीरे वह रोग ठीक हो गया। इस तरह श्री कृष्ण जी ने वैयावृत्य की भावना भाई। वैयावृत्य तप परम्परा से मोक्ष दिलाने वाला है। श्री कृष्ण जी अगली चौबीसी में सोलहवें तीर्थंकर बनकर मोक्ष चले जायेंगे। कार्तिकेय लिखते हैं कि–

जो मुनि उपसर्ग से पीड़ित हो और बुढ़ापे आदि के कारण जिनकी काय क्षीण हो गयी हो, जो अपनी पूजा, प्रतिष्ठा की अपेक्षा न करके उन मुनियों का उपचार करता है उसका वैयावृत्य तप होता है।

कुष्ठ रोगी देव

एक नगर में एक धर्मात्मा लड़का रहता था वह हमेशा वैय्यावृत्य किया करता था। एक बार उसकी चर्चा स्वर्ग लोक में होने लगी। ईर्ष्यावश एक देव कुष्ठ रोगी का भेष बनाकर उस नगर में उसकी परीक्षा लेने आया। वह आकर उस नगर के मन्दिर के पास चबूतरे पर बैठ गया। उसके शरीर से बदबू आ रही थी इसलिए जो भी मन्दिर आता उससे कहता कि तुम यहाँ क्यों बैठे हो तुम्हारे अन्दर से दुर्गन्ध आ रही है। यहाँ से हट जाओ। वह थोड़ा पीछे हट जाता फिर वहीं आ

जाता इस तरह बहुत देर तक चलता रहा। इतने में वह धर्मात्मा लड़का मन्दिर दर्शन करने आया उसने उस कोढ़ी को देखा और उसके मन में विचार आया कि कोई गरीब प्राणी है इसका उपचार होना चाहिए। यह विचार कर वह उसे कन्धे पर बैठा कर घर ले जाता है। उसकी दवा करके उसको दूसरे कपड़े पहना देता है। तभी आकाश में जय-जय कार होने लगती है। आवाज आती है कि धर्मात्मा तो तुम्हीं हो। वस्तुत: वैयावृत्ति करना भगवान की पूजा करना है। भगवती आराध ना में आचार्य कहते हैं कि-

शयन स्थान, बैठने का स्थान, उपकरण आदि का शोधन करना, निर्दोष आहार-औषध देकर उपकार करना, स्वाध्याय अर्थात् व्याख्यान करना, अशक्त मुनिका मैला उठाना, उसे करवट दिलाना, बैठाना, आदि कार्य करना थके हुए साधु के हाथ पाँव व अंग दबाना, नदी से रुके हुए अथवा रोग पीड़ित का उपद्रव विद्या आदि से दूर करना, दुर्भिक्ष पीड़ित को सुभिक्ष देश में लाना, ले जाना ये सब कार्य वैयावृत्य कहलाते हैं।

पं० बनारसीदास जी ने लिखा है-

काहे को बोलत बोल बुरे नर, नाहक क्यों जस धर्म गमावै॥
कोमल वैन चखै किन ऐन, लगै कछु है न सबै मन भावै॥
तालु छिदै रसना ना भिन्दै, न घटै कछु अंक दरिद्रन आवै।
जीव कहै जिय हानि नहिं तुझ, जी सब जीवन को सुख पावै॥

हे भाई! कठोर वचन क्यों बोलते हो? कठोर वचन बोल कर व्यर्थ ही क्यों अपना यश और धर्म नष्ट करते हो? अच्छे व कोमल वचन क्यों नहीं बोलते हो? देखो! कोमल वचन सबके मन को अच्छे लगते हैं जबकि उन्हें बोलने में कोई धन नहीं लगता, बोलने पर तालु भी नहीं छिदता, जीभ भी नहीं भिदती, रूपया-पैसा कुछ घट नहीं जाता और दरिद्रता भी नहीं आती। इस प्रकार अपनी जीभ से मधुर और कोमल वचन बोलने में तुम्हें हानि कुछ भी नहीं होती, अपितु सुनने वाले सब जीवों के मन को बड़ा सुख प्राप्त होता है अत: कोमल वचन ही बोलो, कटुक वचन मत बोलो। हित-मिष्ट मधुर वचन बोलना वैयावृत्ति करना है जो हित मिष्ट मधुर वचन बोल कर दूसरों के दुखित हृदय पर सांत्वना की मरहम लगाकर दुख का प्रतिकार करते हैं उनको वैयावृत्य तप होता है।

पुन: पं० बनारसी दास जी कहते हैं कि-

आयौ है अचानक भयानक असाता कर्म,
ताके दूर करिवे को बलि कौ न अह रे।
जे जे मन भाये ते कमाये पूर्व पाप आय,
तेई अब आये निज उदैकाल लइरे॥

ऐ मेरे वीर! काहे होत है अधरि यामैं;
कोउ कौ न सरि तू अकेलौ आप सह रे।
भयै दिलगीर कछू पीर न विमसि जाय,
ताही तै सयाने! तू तमास गीर रह रे।।

हे भाई! यदि तुम्हारे ऊपर भयानक असाता कर्म का अचानक उदय आ गया है तो तुम इससे अधीर क्यों होते हो, क्योंकि अब इसे टालने में कोई समर्थ नहीं है। तुमने स्वयं ने अपनी इच्छानुसार प्रवर्तन करके जो जो पाप पहले कमाये थे, वे ही अब अपना उदय काल आने पर तुम्हारे पास आये हैं। तुम्हारे कर्मों के इस फल को अब दूसरा कोई नहीं बाँट सकता, तुम्हें स्वयं अकेले ही भोगना पडेगा। अत: अब चिन्तित या उदास होने से कोई लाभ नहीं है। चिन्ता करने से या उदास रहने से दु:ख मिट नहीं जावेगा। अत: मेरे सयाने भाई! तुम मात्र ज्ञाता दृष्टा बने रहो तमाशा देखने वाले बने रहो। जो व्यक्ति इस प्रकार दूसरे पीड़ित व्यक्ति को संबोधन देकर पीड़ा से ध्यान हटाकर धर्म में स्थित करता है उसको वैयावृत्य तप होता है।

भगवान महावीर कहते थे कि मेरी भक्ति चाहे मत करो लेकिन पड़ोस में जो तड़प रहा है। जो दुख से पीड़ित है उसकी वैयावृत्ति करो वह ही सच्ची भक्ति है। वैयावृत्ति प्रत्येक मनुष्य को करना चाहिए इससे आत्मिक शान्ति आनन्द मिलता है। प्राणी मात्र के लिए सेवा का भाव होना ही वैयावृत्य तप है। प्राणी मात्र की रक्षा का भाव होना ही सच्ची वैयावृत्य तप है।

कुत्ते की सेवा

एक जज साहब कार से सुबह के समय अदालत जा रहे थे। रास्ते में एक कुत्ता नाली में फंसा हुआ था और चिल्ला रहा था तड़प रहा था दुख भरी आवाज सुनकर जज साहब को लगा कि वह तुझे ही पुकार रहा है कि मैं फंसा हुआ हूँ। आकर मुझे निकाल दो। जज साहब कार रोकते है और पहुँच जाते है कुत्ते के पास। उनके दोनों हाथ झुक जाते हैं कुत्ते को निकालने के लिए। याद रखो सेवा वही कर सकता है जो झुकना जानता है। सागवान का पेड़ जो सीधा चला जाता है वह झुकना जानता ही नहीं। सागवान के पेड़ की तरह सीधा रहने वाला सेवा कर नहीं सकता। जज साहब ने कुत्ते को निकाला और बाहर निकलते ही कुत्ते ने अपना शरीर हिलाया और सारे कपड़े गन्दे कर दिये। कीचड़ के धब्बों से, लेकिन जज साहब रुके नहीं, घर लौटे नहीं, उन्हीं वस्त्रों में पहुँच गये। अदालत में सभी चकित! किन्तु जज साहब के चेहरे पर अलौकिक आनन्द की एक अद्‌भुत आभा खेल रही थी। लोगों के पूछने कर बोले कि मैंने अपने ह्दय की तड़पन मिटाई। वास्तव में हम दूसरों की सेवा करके अपनी वेदना मिटाते हैं, वैयावृत्ति स्वयं की करो उस भाव से ही स्वत: दूसरों की भी हो जायेगी।

आचार्य कहते हैं कि मुनिराज को लेने जाना, उन्हें दूसरे स्थान तक छोड़ने आना, उनके प्रवचन सुनना, उनसे तत्त्व चर्चा करना, मुनिराज के पास जीव दया के उपकरण एवं साधन पिच्छी आदि समुचित हैं कि नहीं, कमण्डलु ठीक है कि नहीं आदि व्यवस्था करना स्वाध्याय के लिए शास्त्र उपलब्ध कराना, उनके ठहरने की समुचित व्यवस्था करना, योग आदि की परीक्षा करके औषधि आदि देना, आहार दान देना, चटाई आदि की व्यवस्था करना वैयावृत्ति है।

कूलर, पंखे, ए.सी., हीटर, हेलोजन, मोबाइल फोन, फोन, गाड़ी, बग्गी आदि की व्यवस्था नहीं करना। संयमी व्रतियों को धन नहीं देना। उनसे अथवा उनके सामने राग-रंग की बातें नहीं करना, नृत्य आदि नहीं करना, हिंसक कार्य नहीं करना, शरीर में तेल लगाकर तौलिये से नहीं पौंछना, कोढ़, पेट के रोग, आमवात, संग्रहणी कठोदर, सफोदर, नेत्र शूल, शिरशूल दंतशूल तथा ज्वर, कास, श्वास, जरा इत्यादि रोगों से पीड़ित जो मुनि तथा श्रावक हैं उनको निर्दोष आहार, औषधि, वसतिका आदि देकर सेवा शुश्रूषा करना, विनय करना, आदर करना, दुःख दूर करने का यत्न करना वह सब वैयावृत्य हैं। जो तप द्वारा तपे हुए हैं। किन्तु रोग सहित शरीर हो उनका दुःख देखकर उनके लिये प्रासुक औषधि तथा पथ्य आदि द्वारा रोग का उपशमन करना वह वैयावृत्य भावना है।

मुनियों के दशभेद होने से वैयावृत्य के भी दश भेद हैं। आचार्य उपाध्याय तपस्वी, शैक्ष्य, ग्लान, गण, कुल, संघ, साधु और मनोज्ञ- इन दश प्रकार के मुनियों की परस्पर में वैयावृत्य होती है। काय की चेष्टा द्वारा अन्य द्रव्यों से दुःख वेदन आदि दूर करने का कार्य-व्यापार करना, प्रवर्तन करना वह वैयावृत्य है।

दश प्रकार के मुनियों का स्वरूप : जिनसे, स्वर्ग मोक्ष सुख के बीज रूप जो व्रत हैं उनको आदर सहित ग्रहण करके भव्य जीव अपने हित के लिए पालते आचरण करते हैं ऐसे सम्यग्ज्ञान आदि गुणों के धारक आचार्य हैं। जिनका सामीप्य प्राप्त करके आगम का अध्ययन करते हैं ऐसे व्रत, शील, श्रुत के आधार उपाध्याय हैं। जो महान् अनशनादि तप करने वाले हैं वे तपस्वी हैं। जो निरन्तर श्रुत के शिक्षण में तत्पर तथा व्रतों की भावना में तत्पर रहते हैं वे शैक्ष्य हैं। रोगादि के द्वारा जिन का शरीर दुःखी हो वे ग्लान हैं। जो वृद्ध मुनियों की परिपाटी के हों वे गण हैं। अपने को दीक्षा लेने वाले आचार्य के जो शिष्य हैं वे कुल हैं। ऋषि, यति, मुनि, अनगार इन चार प्रकार के मुनियों का जो समूह है वह संघ है बहुत समय से जो दीक्षित हो वे साधु हैं।

जो विद्वत्ता द्वारा, वक्तृत्व द्वारा, ऊँचे कुल द्वारा प्रसिद्ध गुरु का शिष्य होना लोगों में मान्य होकर धर्म का गुरुकुल का गौरव उत्पन्न करने वाले हो-बढ़ने वाले हो, वे मनोज्ञ हैं अथवा असंयत सम्यग्दृष्टि भी संसार के अभाव रूप होने के कारण मनोज्ञ हैं।

इन दश प्रकार के मुनियों के रोग आ जाय, परिषहों से दुःखी होकर तथा श्रद्धानादि बिगड़ जाने से मिथ्यात्व आदि को प्राप्त हो जाये तो प्रासुक औषधि भोजन-पानी रोग स्थान, आसन, तख्त तृणादि की बिछावन करके पुस्तक पीछी आदि धर्मोपकरण द्वारा प्रतिकार-उपकार करना तथा पुनः सम्यक्त्व में स्थापित करना इत्यादि उपकार करना वह वैयावृत्य है। यदि बाह्य भोजन-पानी औषधि देना सम्भव नहीं हो तो अपने शरीर द्वारा ही उनका कफ, नाक का मैल, मूत्रादि दूर कर देने से तथा उनके अनुकूल आचरण करने से वैयावृत्य होती है।

इस वैयावृत्य में संयम की स्थापना, ग्लानि का अभाव प्रवचन में वात्सल्य, सनाथता इत्यादि अनेक गुण प्रकट होते हैं वैयावृत्य ही परम धर्म हैं। वैयावृत्य नहीं हो तो मोक्षमार्ग बिगड़ जायेगा। आचार्य आदि अपने शिष्य, मुनि, रोगी इत्यादि की वैयावृत्य करने से बहुत विशुद्धता व उच्चता को प्राप्त हो जाते हैं। इसी प्रकार श्रावक भी मुनियों की वैयावृत्य करें तथा श्रविकायें आर्यिकाओं की वैयावृत्य करें।

औषधिदान द्वारा भी वैयावृत्य करें, भक्ति पूर्वक युक्ति से देह का आधार आहार दान देकर वैयावृत्य करें। कर्म के उदय से कोई दोष लग गया होतो उसे ढांकना, श्रद्धान से चलायमान हो गया हो तो उसे सम्यग्दर्शन ग्रहण कराना, जिनेन्द्र के मार्ग से बिछुड़ गया हो तो उसे मार्ग में स्थापित करना इत्यादि उपकार द्वारा भी वैयावृत्य होती हैं।

जो आचार्य आदि गुरु शिष्य को श्रुत के अंग पढ़ाते हैं तथा व्रत संयम आदि की शुद्धि का उपदेश देते हैं वह शिष्य की वैयावृत्य है। शिष्य भी गुरुओं की आज्ञा के अनुसार प्रवर्तता हुआ गुरुओं के चरणों की सेवा करे वह आचार्य की वैयावृत्य है।

अपने चैतन्य स्वरूप आत्मा को रागद्वेष आदि दोषों से लिप्त नहीं होने देना वह अपने आत्मा की वैयावृत्य है। अपने आत्मा को भगवान के परमागम में लगा देना दशलक्षण धर्म में लीन हो जाना वह अपने आत्मा की वैयावृत्य है। काम, क्रोध, लोभ आदि के तथा इंद्रियों के विषय के आधीन नहीं होना वह अपने आत्मा की वैयावृत्य है।

रोगी मुनियों का तथा गुरुओं का प्रातः एवं संध्याकाल शयन, आसन, कमंडल, पीछी, पुस्तक अच्छी तरह नेत्रों से देखकर मयूर पीछी से शोधन, अशक्त रोगी मुनि का आहार-औषधि आदि द्वारा संयम के योग्य उपचार करना शुद्ध ग्रन्थ को वाचकर धर्म का उपदेश देकर परिणामों को धर्म में लीन करना तथा उठाना बैठाना मल-मूत्र कराना, करवट लिवाना इत्यादि सब वैयावृत्य है। कोई साधु रास्ते में दुःखी हुआ हो, भील, म्लेच्छ, दुष्ट राजा, दुष्ट तिर्यंचों द्वारा दुःखी हुआ हो, उपद्रव हुआ हो, दुर्भिक्ष, मरी-व्याधि, इत्यादि उपद्रवों से पीड़ा होने से परिणाम कायर हुए हो तो उसे स्थान देकर कुशल पूछकर आदर से सिद्धान्त की शिक्षा देकर स्थितिकरण करना वैयावृत्य

है। जो समर्थ होकर के भी अपने बल-वीर्य को छिपाकर वैयावृत्य नहीं करता है वह धर्म रहित है उसने तीर्थंकरों की आज्ञा भंग की, श्रुत द्वारा उपदेशित धर्म की विराधना की अपना आचार बिगाड़ लिया, प्रभावना नष्ट की धर्मात्मा का आपत्ति में भी उपकार नहीं किया तब धर्म से विमुख हुआ श्रुत की आज्ञा लोपने से परमागम से पराङ्मुख हुआ।

वे धन्य हैं जो काम को मारकर, रागद्वेष को त्यागकर, इंद्रियों को जीतकर आत्मा के हित में उद्यमी हुए हैं। ये लोकोत्तर गुणों के धारी हैं। मुझे ऐसे गुणवंतों के चरणों की शरण ही प्राप्त हो। इस प्रकार के गुणों में परिणाम वैयावृत्य से ही होते हैं जैसे-जैसे गुणों में परिणाम मग्न होते हैं वैसे-वैसे श्रद्धान बढ़ता है जब श्रद्धान बढ़ता है तब धर्म से प्रीति बढ़ती है तब धर्म के नायक अरहन्तादि पंच परमेष्ठि के गुणों में अनुराग रूप भक्ति बढ़ती है भक्ति कैसी होती है? मायाचार रहित मिथ्याज्ञान रहित, भोगों की वांछा रहित, मेरु के समान निष्कंप अचल, ऐसी जिनभक्ति जिसे होती है उसे संसार के परिभ्रमण का भय नहीं रहता है। ऐसी भक्ति धर्मात्मा की वैयावृत्य से होती है। पाँच महाव्रतों सहित, कषायों से रहित, रागद्वेष को जीतने वाले, श्रुतज्ञान रूप रत्नों के निधान ऐसे पात्र का लाभ वैयावृत्य करने वाले को होता है। जिसने रत्नत्रय धारी की वैत्यावृत्य की उसने रत्नत्रय से स्वयं को तथा दूसरों को मोक्षमार्ग में स्थापित कर लिया। जिसने आचार्य की वैयावृत्य की है उसने सम्पूर्ण संघ की सर्वधर्म की वैयावृत्य की, भगवान की आज्ञा पाली, अपने तथा अन्य के संयम की रक्षा की, शुभध्यान की वृति तथा इन्द्रियों का निग्रह किया, रत्नत्रय की रक्षा की, अत्यधिक दान दिया निर्विचिकित्सा गुण को प्रकट दिखाया जिनेन्द्र के धर्म की प्रभावना की। धन खर्च कर देना सुलभ है किन्तु रोगी की सेवा करना दुर्लभ है। अन्य के अवगुण ढकना, गुण प्रकट करना इत्यादि गुणों के प्रभाव से तीर्थंकर नाम की प्रकृति का बंध होता हैं यह वैयावृत्य में उत्तम है ऐसी जिनेन्द्र की शिक्षा है। जो कोई श्रावक या साधु वैयावृत्य करता है वह उत्कृष्ट निर्वाण को प्राप्त करता है। जो अपनी सामर्थ्य के अनुसार छह काय के जीवों की रक्षा करने में सावधान है उससे समस्त प्राणियों की वैयावृत्य होती है।

ऊपर जितना कथन किया व्यवहार से किया परन्तु वास्तविक वैयावृत्ति तो निज आत्मा की होती है। निज आत्मा की वैयावृत्ति करने से कर्मों की श्रृंखला टूट जाती है और यही श्रेयस्कर है। आचार्य कहते हैं कि वैयावृत्ति तो निज आत्मा की है पुद्‌गल की कैसी वैयावृत्ति? जिस प्रकार गंदे पानी में निर्मली डालकर निर्मलता लाई जाती है उसी प्रकार आत्मा से विकारी भावों को समाप्त करना, कर्मों के लेप को उतारकर आत्मा में पूर्ण निर्मलता लाना ही वैयावृत्ति होती है। कार्तिकेयानुप्रेक्षा में स्वामी कार्तिकेय लिखते हैं कि

विशुद्ध उपयोग से युक्त हुआ जो भूमि शमदम भाव रूप अपने आत्म स्वरूप में प्रवृत्ति करता है और लोक व्यवहार से विरक्त रहता है उसके उत्कृष्ट वैयावृत्ति तप होता है।

अन्त में आचार्य कहते हैं -

निशदिन वैयावृत्य करैया सो निहचे भव नीर तिरैया।

जो सर्वदा वैयावृत्ति करता रहता है वह निश्चय से संसार-सागर को पार कर जाता है।

परम वीतरागी जिनेन्द्र मार्गी मुनि को नमस्कार करने से उच्च गोत्र बंधता है; शुद्ध निर्दोष आहार देने से उत्तम भोगभूमि, देवगति के सुख एवं चक्रवर्ती पद की प्राप्ति होती है और परम्परा से मोक्ष प्राप्त होता है।

राजा वज्रजंघ अपनी रानी श्रीमति तथा चार मंत्रियों के साथ अपनी ससुराल जा रहे थे। रास्ते में एक जंगल में युगल ऋद्धिधारी मुनियों के दर्शन हुए। वहीं जंगल में मुनिराजों को आहार दान दिया। साथ में चारों मंत्री थे और उस जंगल में चार तिर्यंच व्याघ्र, सूकर, नेवला और सर्प भी बैठकर आहार की अनुमोदना कर रहे थे। आहार के बाद राजा वज्रजंघ ने मुनिराज से सभी जीवों (जो वहाँ उपस्थिति थे) के भविष्य के भवों के बारे में पूछा।

तब मुनिराज ने बताया कि तुम भविष्य में भरतक्षेत्र के प्रथम तीर्थंकर बनोगे और यह तुम्हारी रानी तुम्हें प्रथम आहार दान करके दान तीर्थ का आरम्भ करेगी। चारों मंत्री एवं ये चारों तिर्यंच तुम्हारे पुत्र होंगे और मोक्ष जायेंगे। तब राजा वज्रजंघ अगले भव में आदिनाथ बने और रानी श्रीमति का जीव राजा श्रेयांस हस्तिनापुर का राजा बना और एक वर्ष के पश्चात् भगवान आदिनाथ को इक्षुरस का प्रथम आहार दान देकर दानतीर्थ का प्रवर्तक कहलाया। बाकी आठों जीव भरत, बाहुबलि, अनन्त वीर्य आदि पुत्र बनकर मोक्ष गये। इसलिए आचार्य कहते हैं कि वैयावृत्ति तप को जीवन में अपनाओ और एक दिन कर्मों की श्रृंखला तोड़कर परम पद मोक्ष को प्राप्त करो क्योंकि वैयावृत्ति करने से परम्परा से मोक्ष की प्राप्ति होती है।

सर्वार्थसिद्धि में लिखा है–

समाध्याधानविचिकित्साभावप्रवचनवात्सल्याद्यभिव्यक्त्यर्थम्। 24

यह समाधि की प्राप्ति, विचिकित्सा का अभाव और प्रवचन वात्सल्य की अभिव्यक्ति के लिए किया जाता है।

आचार्य कुन्दकुन्द देव प्रवचनसार में लिखते हैं कि–

वेज्जा वच्च णिमित्तं गिलाण गुरु बाल बुड्ढ समणाणं।
लोगिग जण संभासाण णिंदिदावा सुहोव जुदा॥२५३॥
ऐसा पसत्थ भूदा समणाणं वा पुणो धरतथाणं।
चरिया परेत्ति भणिदा ता एव परं लहदि सोक्खं॥२५४॥

रोगी, गुरु, बाल, वृद्ध, श्रमणों की वैयावृत्ति के निमित्त शुभोपयोग युक्त लौकिक जनों के साथ की बातचीत निन्दित नहीं है। यह प्रशस्त चर्या राग सहित होने के कारण श्रमणों को गौण

होती है और गृहस्थों को क्रमशः परम निर्वाण सौख्य का कारण होने से मुख्य है। ऐसा शास्त्रों में कथन है।

जिस सम्यक्त्व, ज्ञान, अरहन्त भक्ति, बहुश्रुतभक्ति एवं प्रवचन वात्सल्य आदि से जीव वैयावृत्ति में लगता है वह वैयावृत्य योग अर्थात् दर्शनविशुद्धतादि गुण है। उनसे संयुक्त होने का नाम वैयावृत्तयोगयुक्तता है। इस प्रकार उस एक ही वैयावृत्ययोगयुक्तता से तीर्थंकर नाम कर्म बँध ता है। इस प्रकार इसमें बाकी भावनाओं का भी अन्तर्भाव हो जाता है।

गृहस्थ का परम कर्तव्य है कि उसको वैयावृत्य करना चाहिए जो परम्परा से निर्वाण का कारण है।

बन्धुओं! अपने जीवन में वैयावृत्यकरण भावना का समावेश करके अपने जीवन को सार्थक बनायें यही मेरा सभी को आशीर्वाद है।

अर्हद्भक्ति भावना

सोलहकारण भावनाओं की श्रृंखला में आज अर्हद्भक्ति भावना का विवेचन प्रस्तुत है। इस भावना में अरहन्त प्रभु की भक्ति की जाती है। अरहन्त का स्वरूप क्या है, उनकी भक्ति कैसे की जाय, यह निम्न पद्य में स्पष्ट है-

देव सदा अरिहन्त भजो जई दोष अठारा किये अति दूरा।
पाप पखाल भये अति निर्मल, कर्म कठोर किये अति चूरा।।
दिव्य अनन्त चतुष्टय शोभित, घोर मिथ्यान्ध निवारण सूरा।
ज्ञान कहे जिन राज अराधो, निरन्तर जे गुण मंदिर पूरा।।

जिन्होंने अठारह दोषों का निवारण कर दिया है, पापों को धोकर अति निर्मल हो गये हैं, कर्मों को चूर-चूर कर जो दिव्य अनन्त चतुष्टय से शोभित हैं, मिथ्यात्व रूप अंधकार को दूर कर दिया हो ऐसे अरिहन्त देव का भजन करो अर्थात् ऐसे जिनराज की आराधना करो और निरन्तर उनके गुणों की पूजा करो।

जो अरहन्त भक्ति मन आने, सो जन विषय कषाय न मानें।

जो अरिहन्त की भक्ति मन से करता है उसके अन्दर से विषय कषाय निकल जाती हैं। विषय कषायों के न रहने पर अथवा मन्द पड़ने पर ही भावों में विशुद्धता आती है और भावों की विशुद्धि बढ़ते-बढ़ते शुद्धता में परिणत हो जाती है भावों की शुद्धता ही वीतरागता है और वीतरागी जीव ही अपनी आत्मा का कल्याण कर सकता है।

जिन्होंने कर्म रूपी शत्रुओं का हनन कर दिया हो, जो इन्द्रों द्वारा वन्दित हो, जिन्होंने कर्म रूपी बीज नष्ट कर दिया हो, जिसके कारण जन्म, जरा, मृत्यु रूपी रोगों से मुक्ति हो गयी हो उनको अरहन्त कहते हैं। वीतरागी, सर्वज्ञ और हितोपदेशी अठारह दोषों से मुक्त व 46 गुणों सहित आत्मा की आराधना करना ही अर्हद्‌भक्ति भावना कहलाती है।

शास्त्रों में इन्द्रों की संख्या 100 बताई है। 40 भवनवासी देवों के 32 व्यन्तर देवों के 24 कल्पवासी देवों के, 2 ज्योतिष्कि देवों के, 1 मनुष्यों में चक्रवर्ती, 1 तिर्यंचों में अष्टापद इस प्रकार 100 इन्द्रों की संख्या है जो नित्य प्रतिदिन अरिहन्त देव की वन्दना करते हैं। मन, वचन, काय द्वारा 'जिन' ऐसे दो अक्षर सदाकाल स्मरण करना वह अर्हद्‌भक्ति है।। अरिहन्त के गुणों में अनुराग अर्हन्त भक्ति है। जिसने पूर्व जन्म में सोलह कारण भावना भाई है वह तीर्थङ्कर होकर अर्हन्त होता है। अद्‌भुत पुण्य के प्रभाव से तीर्थंकर के गर्भ में आने के छह माह पहले से इंद्र की आज्ञा से कुबेर बारह योजन लम्बी, नौ योजन चौड़ी, रत्नमयी नगरी की रचना करता है। उसके मध्य में महल नगरी, बड़े दरवाजे, कोट, खाई, परकोट इत्यादि जो कुबेर रचता है उसकी महिमा का कई हजार जिह्वाओं द्वारा वर्णन नहीं हो सकता हैं। तीर्थंकर की माता के गर्भ का शोधन रुचिक द्वीपादि में रहने वाली छप्पन कुमारी देवियां करती हैं। वे देवियाँ माता की अनेक प्रकार की सेवा करने में सावधान रहती हैं। गर्भ में आने के छह महीना पहले से कुबेर प्रभात मध्याह्न, अपराह्न रात्रि, एक-एक काल में आकाश से साढ़े तीन करोड़ रत्नों की वर्षा करता है इसके बाद गर्भ में आते ही इंद्र आदि चारों निकाय के देवों के आसन कम्पायमान होने से चार प्रकार के देव आकर नगरी की प्रदक्षिणा देकर माता-पिता की पूजा सत्कार करके अपने-अपने स्थान को चले जाते हैं। भगवान तीर्थंकर स्फटिक मणि के पिटारा समान मलादि रहित माता के गर्भ में विराजमान रहते हैं। कमलवासिनी छह देवियां तथा रुचिक द्वीप में रहने वाली छप्पन कुमारी देवियां और अनेक देवियाँ माता की सेवा करती हैं। नौ महीना पूर्ण होने पर उचित समय में जन्म होते ही चारों निकाय के देवों के आसन कम्पायमान होने तथा बाजों के अकस्मात् बजने से जिनेन्द्र का जन्म होना जानकर बड़े हर्ष से सौधर्म नाम का इंद्र एक लाख योजन प्रमाण के ऐरावत हाथी के ऊपर बैठकर अपने सौधर्म स्वर्ग के 31वें पटल के अठारहवें श्रेणीबद्ध विमान से अपने असंख्यात देवों के परिकर सहित साढ़े बारह करोड़ जाति के वादित्रों की मीठी ध्वनि, असंख्यात देवों द्वारा किया जाने वाला जय-जयकार शब्द, अनेक ध्वजा उत्सव साम्रगी तथा करोड़ों अप्सराओं का नाचते हुए उत्सव करोड़ों गंधर्व देवों के साथ गाते हुए आता है।

इंद्र का रहने का पटल यहाँ से असंख्यात योजन ऊपर तथा असंख्यात योजन ही तिर्यक् दक्षिण दिशा में है। वहाँ से जम्बूद्वीप तक असंख्यात योजन उत्सव करते हुए आकर नगरी की प्रदक्षिणा देकर, इंद्राणी प्रसूतिग्रह में जाकर वहाँ माता को माया द्वारा निद्रा में सुलाकर, वियोग

के दुख के भय से अपनी देवत्व शक्ति द्वारा दूसरा बालक बनाकर वहाँ रखकर तीर्थंकर बालक को बड़ी भक्ति से लाकर इंद्र को सौंप देती है। उस समय बाल तीर्थंकर को देखकर इंद्र को तृप्ति नहीं होती तब वह अपने एक हजार नेत्र बनाकर देखता है। फिर वहाँ ईशान आदि स्वर्गों के इन्द्र, भवनवासी, व्यन्तर ज्योतिषि देवों के इंद्रादि असख्यांत देव अपनी-अपनी सेना, वाहन, परिवार सहित आते हैं।

सौधर्म इंद्र ऐरावत हाथी के ऊपर बैठकर भगवान (बाल तीर्थंकर) को गोद में लेकर सुमेरुगिरि की ओर चलता है। वहाँ ईशान इन्द्र छत्र लिए रहता है, सनतकुमार महेन्द्र कुमार चमर ढुराते हुए, अन्य असंख्यात देव अपने-अपने नियोग के अनुसार सावधान होकर बड़े उत्सव पूर्वक मेरुगिरि के पाण्डुकवन में पहुँचते हैं। वहाँ पाण्डुक शिला के ऊपर अकृत्रिम सिंहासन है, उस पर जिनेन्द्र (बाल तीर्थंकर) को विराजमान करते हैं। फिर पाण्डुकवन से लगाकर क्षीर समुद्र तक दोनों ओर देव पक्तिबद्ध होकर खड़े हो जाते हैं।

क्षीर समुद्र मेरूपर्वत की भूमि से पाँच करोड़ दस लाख साढ़े उन्वास हजार योजन की दूरी पर है। उस समय मेरु की चूलिका से दोनों और मुकुट, कुंडल, हार, कंकण आदि अद्‌भुत रत्नों के आभूषण पहिने हुए देवों की पंक्ति क्षीर समुद्र तक कतार बाधँकर हाथों-हाथ कलश सौंपती जाती हैं। वहाँ दोनों ओर इन्द्र के खड़े होने के लिए बने दो छोटे सिहांसन पर सौधर्म व ईशान इन्द्र खड़े होकर हाथों में कलश लेकर एक हजार आठ कलशों द्वारा (बाल तीर्थंकर का) अभिषेक करते हैं।

उन कलशों का मुख एक योजन का, बीच का उदरस्थान चार योजन चौड़ा, आठ योजन ऊँचा होता है। उन कलशों से निकली धारा भगवान बाल तीर्थंकर के वज्रवृषभनाराच संहनन वाले शरीर पर फूलों की वर्षा के समान बाधा रहित होती है। इसके बाद इंद्राणी कोमल वस्त्र से पोंछकर अपने जन्म को कृतार्थ मानकर स्वर्ग से लाये हुए सभी रत्नमयी वस्त्र आभूषण पहनाती है। वहाँ अनेक देव अनेक उत्सव रचते हैं। जिन्हें लिखने में कोई समर्थ नहीं है। मेरु पर्वत से फिर उसी प्रकार उत्सव करते हुए वापस जाकर जिनेन्द्र को लाकर माता को सौंपकर इन्द्र वहाँ तांडव नृत्य आदि जो उत्सव करता है उन सब का कोई असंख्यात काल तक करोड़ों जिह्वाओं द्वारा वर्णन करने में समर्थ नहीं है।

जिनेन्द्र तो जन्म से ही तीर्थंकर प्रकृति के उदय के प्रभाव से दस अतिशय लिए उत्पन्न होते हैं। पसीना रहित शरीर नीहार, (मल, मूत्र, कफ आदि) रहित, शरीर में दुग्धवर्ण श्वेत रुधिर, समचतुरस्त्रसंस्थान, वज्रवृषभनाराचसंहनन, अद्‌भुत अप्रमाण शरीर का रूप सौन्दर्य, महासुंगधयुक्त शरीर, अप्रमाण बल, एक हजार आठ लक्षण, प्रिय-हित-मधुर-वचन ये सभी पूर्व जन्म में सोलह कारण भावनाएं भाने का प्रभाव है। वे इन्द्र द्वारा अपने अंगूठे में रखा हुआ अमृतपान करते है।

माता के स्तन में से निकला दुग्धपान नहीं करते हैं स्वर्ग लोक से आये आभूषण, वस्त्र, भोजन आदि मनोवांछित सामग्री लिए हुए देव हमेशा रात-दिन खड़े रहते हैं। पृथ्वी का भोजन, आभूषण, वस्त्र आदि अंगीकार नहीं करते हैं। स्वर्ग से आई हुई ही सामग्री भोगते हैं।

कुमार काल व्यतीत हो जाने के पश्चात् इन्द्रादि द्वारा अद्भुत उत्साह पूर्वक किये गये उत्सव में पिता द्वारा भक्ति पूर्वक सौंपे गये राज्य को ग्रहण कर भोगते हैं अवसर आ जाने पर संसार, शरीर भोगों से विरागता उत्पन्न होती है तब अनित्यादि बारह भावना भाने लगते हैं बारह भावना भाते ही लौकान्तिक देव आकर वंदना स्तवनरूप संबोधन तथा वैराग्य की अनुमोदना करते हैं।

जिनेन्द्र का विराग भाव होते ही चार निकाय के इन्द्रादि देव अपने आसन कंपायमान होने से अवधि ज्ञान से जिनेन्द्र के तप का अवसर जानकर बड़े उत्साह पूर्वक आकर अभिषेक करके देवलोक के वस्त्र आभरणों से भक्ति सहित सजाते हैं। फिर रत्नमयी पालकी बनाकर उसमें जिनेन्द्र को बैठाकर अप्रमाण उत्सव तथा जय-जयकार शब्दोच्चार सहित तप के योग्य वन में ले जाकर उतारते हैं वहाँ वे सभी वस्त्र आभरण त्याग देते हैं देव उन्हें अधर में ही झेलकर अपने मस्तक पर रख लेते हैं फिर वे जिनेन्द्र सिद्धों को नमस्कार करके पंचमुष्टि केशलोंच करते हैं वहाँ केशों को उत्तम जानकर इन्द्र रत्नमय पात्र में रखकर बड़ी भक्ति से क्षीर समुन्द्र में क्षेपण कर देते हैं।

समवशरण की विभूति का वर्णन कौन कर सकता है, पृथ्वी से पाँच हजार धनुष ऊँचा जिसकी बीस हजार सीढ़ियाँ होती हैं उसके ऊपर बारह योजन प्रमाण इन्द्रनील मणिमय गोल भूमि पर अप्रमाण महिमा सहित समवशरण रचना होती है। जहाँ समवशरण की रचना होती है व भगवान का विहार होता है वहाँ अँधों को दिखने लगता है, बहरे सुनने लग जाते हैं, लूले चलने लग जाते हैं गूंगे बोलने लग जाते हैं। वीतरागता की अद्भुत महिमा है।

अरहंत भक्ति संसार समुद्र से तारने वाली ही है सम्यग्दर्शन में तथा अरहन्त भक्ति में नाम भेद है अर्थ भेद नहीं है। अरहंत भक्ति नरकादि गति को हरने वाली है जो इस भक्ति की पूजन स्तवन करके अर्घावतरण करते हैं वे देवों का सुख भोगकर फिर मनुष्य का सुख भोगकर अविनाशी सुख के धारी अक्षय अविनाशी सिद्धों के जैसे सुख को प्राप्त हो जाते हैं।

इस प्रकार अरिहन्त की भक्ति करना ही अरिहन्त भक्ति भावना है। परन्तु आज के समय में उपास्य अधिक हैं और उपासक कम हैं। कोई तो राग की भक्ति करता है कोई वीतरागता की भक्ति करता है। कोई शंकर, राम, बुद्ध, हजरत, गुरु नानक और महावीर की भक्ति करता है। कोई पद्मावती, चक्रेश्वरी, क्षेत्रपाल आदि की भक्ति कर रहा है। सभी जैसी जिसकी मान्यता है भक्ति कर रहे हैं। ठीक है, हम किसी का खण्डन नहीं कर रहे हैं परन्तु विचार करना है कि आपको क्या चाहिए? संसार अथवा मोक्ष। अगर आप राग की भक्ति करेगें अथवा विवेकहीन क्रिया करेंगे तो कर्म बन्ध होगें और संसार मिलेगा तथा यदि वीतरागता की भक्ति करेंगें अथवा

विवेक पूर्वक क्रिया करेंगे तो कर्मों की निर्जरा होगी और संसार छूट जायेगा एवं मोक्ष की प्राप्ति होगी जिससे जन्म-मरण रूपी दुःखों से छुटकारा मिल जायेगा। रुढ़िवादिता अथवा भेड़चाल चलने से कभी भी लक्ष्य की प्राप्ति नहीं हो सकती। उक्त विचारों को निम्न दृष्टान्तों से भलीभांति समझ सकते हैं। दक्षिण में एक जलूस निकल रहा था वैष्णव धर्मावलम्बियों का रास्ता साफ पड़ा था। सड़के भली प्रकार साफ की गयी थी। एक कुत्ता आया। बीच सड़क पर गन्दा कर गया। एक व्यक्ति ने सोचा कि जुलूस आ रहा है और गन्दगी ठीक नहीं है। उसने उस पर फूल डालकर वह गन्दगी ढक दी। परन्तु वहां जो आता वही उस पर फूल चढ़ा देता और वहाँ पर फूलों का ढेर लग गया। सोचो, कहीं भगवान सड़क पर आयेंगे क्या? यह है रुढ़िवादिता की मूढ़ता। भक्ति में इसका कोई स्थान नहीं है।

आप जैसी दुकान पर जायेंगे वैसा ही सामान मिलेगा जैसे- किराने की दुकान पर कपड़ा नहीं मिलेगा। इसी प्रकार राग से राग और वीतरागता से वीतरागता ही मिलेगी अगर एक बार भी वीतरागता की भक्ति कर ली होती तो संसार का विच्छेद हो गया होता।

गंगा बनी सिन्धु

एक आदमी गंगा के तट पर खड़ा होकर गंगा से कहता है कि कहाँ दौड़े जा रही हो? लहरों ने मौन उत्तर दिया। वहाँ जा रही हूँ जहाँ मुझे शरण मिले। पहाड़ों पर शरण नहीं मिली, गड्ढों में नहीं मिली, मरुस्थल पर न मिली जहाँ सीमा है वहाँ शरण मिल नहीं सकती, त्रिकाल में गंगा पहुँच गई सागर के पास। जहाँ बिन्दु भी सिन्धु बन गया। इसलिए पूजा करो तो पूर्ण की। लोक में विख्यात है कि सुखी की शरण में जाओगे तो सुखी होओगे। गंगा सिन्धु के पास पहुँचकर स्वयं भी सिन्धु बन गई। इसलिए अगर अर्हन्त भक्ति करोगे तो एक दिन अरिहन्त बन जाओगे।

भाव की प्रधानता

एक नगर में दो मित्र रहते थे। एक मित्र वेश्या के कोठे पर जाता है दूसरा मन्दिर में पूजा करने चला जाता है। परन्तु जो वेश्या के कोठे पर गया वह सोचता है कि मुझसे अच्छा तो मेरा मित्र है जो मन्दिर में भगवान की भक्ति कर रहा है और मन्दिर जाने वाला सोचता हैकि तू यहाँ मन्दिर में बैठा तेरे से अच्छा तो मेरा मित्र है वह वेश्या के कोठे पर आनन्द ले रहा है। तो बन्धुओं वह मन्दिर में जाकर भी पाप बन्ध कर रहा है और वह वेश्या के कोठे पर रहकर भी पुण्य बन्ध कर रहा है क्योंकि प्रधानता भावों की है बाह्य रूप में की गई क्रिया तो मात्र लौकिक व्यवहार है।

दृश्य एक : भाव अनेक

एक मन्दिर में सोने चांदी की प्रतिमायें थीं। मन्दिर में दर्शन करने एक सुनार गया वह उन प्रतिमाओं में सोने की शुद्धता आंक रहा था। उसके बाद सर्राफ गया, वह उन प्रतिमाओं की सोने का शुद्धता के आधार पर मूल्यांकन करने लगा। उसके बाद एक कलाकार पहुँचा वह उन प्रतिमाओं में कला देख रहा था कि बनाने वाले करीगर ने किस कला से ये प्रतिमाएं बनाई हैं। अन्त में एक भक्त पहुँचा वह उन प्रतिमाओं में वीतरागता देख रहा था, प्रतिमा में गुणों को परख रहा था उसको अन्य बातों से कोई मतलब नहीं था। इसी प्रकार कोई तो रुढिवाद को पकड़ कर मन्दिर जाते हैं कि मुझे मन्दिर जाना है। कुछ लोग मन्दिर जाकर कहते है कि हे भगवान मैं तेरे 108 चक्कर लगा रहा हूँ मेरा मनोरथ सिद्ध कर देना। कोई ये विचार करता है हे भगवान जो तेरी वीतराग छवि है यह मेरे मन में बस जाये और जब तक मैं भी तेरे जैसा ना बन जाऊँ यह छवि, मेरे मन में बसी रहे। जिसके मन में वीतराग छवि बसाने की ललक जागी उसने की अर्हन्त भक्ति। असली भक्ति वही है, उनके जैसे भावों का जागृत होना और जब ऐसे भाव जागृत होगें तो एक दिन ऐसा भी आयेगा अब कर्मों की कड़ियाँ टूट जायेंगी। अरहन्त भक्ति की सार्थकता तभी है जब आप अपने जीवन में उनके गुणों को उतारने का प्रयास करेगें उनके बतॊये मार्ग पर चलने का प्रयास करेंगे अन्यथा चौरासी लाख योनियों के चक्कर तो लगा ही रहे हो।

आचार्यभक्ति भावना

सर्वप्रथम यह जानना जरूरी है कि आचार्य परमेष्ठी किसे कहते हैं। एक आचार्य में कौन से गुण होना चाहिए और इनकी उपयोगिता क्या है आदि क्योंकि इनके ज्ञान के बिना आचार्य की भक्ति नहीं की जा सकती।

देवत ही उपदेश अनेक सु, आप सदा परमारथ धारी।
देश-विदेश विहार करें, दस धर्म धरे भव पार उतारी।।
ऐसे आचारज भाव धरी भज, सो शिव चाहत कर्म निवारी।
ज्ञान कहे गुरु भक्ति करो नर, देखत ही मन मांहि विचारी।।

आप सदा मोक्ष मार्ग को धारण करने वाले अनेक प्रकार के उपदेश देते हैं, संसार को पार उतारने वाले दस धर्म को धारण कर स्थान-स्थान पर विहार करते हैं। जो कर्म की निवृत्ति कर मोक्ष चाहते हैं ऐसे आचार्य की भाव सहित भक्ति करते हैं। ज्ञानी जन कहते हैं कि हे प्राणी। यदि मोक्ष मार्ग की प्राप्ति करना चाहते हो तो परखकर, मन में विचार करके गुरु भक्ति करो।

जो आचारज भक्ति करे है, सो निर्मल आचार धरै है।

अर्थात् जो आचार्य भक्ति करता है वह निर्मल आचरण धारण करता है।

सभी ने गुरु की अपरिमित महिमा का यशोगान किया है कहा भी है कि–

गुरु गोविन्द दोउ खड़े, काके लागू पाय।
बलिहारी गुरु आपनो, गोविन्द दियो बताय।।

गुरु की महिमा अपरम्पार है। शुरु शिष्य को भगवान बना देता है गुरु को तरण तारण कहा है। गुरु तो सत्य पथ पर चलते ही हैं साथ ही दूसरों को भी चलाते हैं। गुरु स्वयं भी तरता है और दूसरों को भी तारता है इसलिए गुरु का महत्त्व अनुपम है। आचार्य महाराज संसार में डूबते को अवलम्बन देते हैं। बुद्धि बल प्रदान करते हैं, साहस देते हैं और सभी प्रकार के बल अपने शिष्य को प्रदान करते हैं।

आचार्य परमेष्ठी के पास, यदि कोई दीक्षा लेने जाता है तो उसको दीक्षा दे देते हैं और कल्याण मार्ग पर लगा देते हैं। आचार्य परमेष्ठी का हर समय यह भाव रहता है कि मेरा शिष्य ऊँचा उठ जाये। वे कहते हैं कि तुम भगवान बन जाओ। आचार्य मात्र उपदेश देते हैं, आदेश देते हैं परन्तु साधना तो साधु पद में ही होती है, मोक्षमार्ग का भार साधु वहन करता है। इसलिए चारों मंगलों में साधु का स्थान है आचार्य का कोई स्थान नहीं। आचार्य तो एक उपाधि है।

जहाँ राग का थोड़ा अंश भी शेष है वहाँ मोक्षमार्ग की प्राप्ति नहीं हो सकती। लेकिन आचार्य कितने महान होते हैं जो मूल गुणों को धारण करते हैं, 12 तप पालते हैं छह आवश्यक क्रियाओं में सावधान रहते हैं और पंचाचार पालते हैं। तेरह प्रकार के चारित्र को शुद्ध रखते हुए बाइस परिषह को जीतते हैं। दस लक्षण धर्म में परिणति जिनकी है और तीन गुप्ति (मन, वचन, काय) के धारी जो आचार्य हैं उनकी भक्ति, पूजन एवं गुणगान गाना आदि क्रियाएं आचार्य भक्ति है।

जो आचार्य राजा, मंत्री व उच्च श्रेष्ठी कुल में उत्पन्न हुआ हो और जिसका आचरण जगत में प्रसिद्ध हो और जिसने कभी भी गृहस्थ आश्रम में भी निन्द्य व्यवहार न किया हो ऐसे आचार्य बहुत ही उच्च कोटि के तपस्वी होते हैं। ऐसे आचार्यों में अनेक उत्तर गुण होते हैं। इस प्रकार आचार्य परमेष्ठी 36 विशेष गुण, साधु के 28 मूलगुण, आठ गुण एवं उत्तर गुणों का पालन करते हैं और संघ के अन्य साधुओं को उचित प्रायश्चित देते हैं और संघ का संचालन करते हैं।

वे धन्य भाग्य हैं, जिन्हें वीतरागी गुरुओं के गुणों में अनुराग होता है। धन्य हैं जिन पुरुषों के मस्तक पर गुरुओं की आज्ञा प्रवर्तती है। आचार्य तो अनेक गुणों की खान हैं, श्रेष्ठ तप के धारक हैं। इसलिए अपने मन में उनके गुणों का स्मरण करके पूजिये, अर्घ उतारण कीजिये, उनके आगे पुष्पांजलि क्षेपण करें, जिससे गुरुओं के चरणों की शरण ही प्राप्त होवे।

आचार्य का स्वरूप:- जिनका अनशन आदि बारह प्रकार के उज्ज्वल तपों में निरन्तर उद्यम है, छह आवश्यक क्रियाओं में सावधान हैं, दशलक्षण धर्मरूप जिसकी परिणति है, मन-वचन-काय की गुप्ति सहित हैं, ऐसे छत्तीस गुणों के धारी आचार्य होते हैं। सम्यक्‌दर्शनाचार को निर्दोष धारण करते हैं। सम्यग्ज्ञान की शुद्धता से युक्त हैं। तेरह प्रकार के चारित्र की शुद्धता के धारक हैं। तपश्चरण में उत्साह युक्त हैं, तथा अपनी शक्ति को नहीं छिपाते हुए बाईस परीषहों को जीतने में समर्थ, ऐसे निरन्तर पञ्च आचार के धारक हैं। अंतरग-बहिंरग परिग्रह से रहित हैं। निर्ग्रन्थ मार्ग में गमन करने में तप से उपवास वेला-तेला पंचोपवास, पक्षोपवास, मासोपवास करने में तत्पर हैं तथा निर्जन वन में पर्वतों की दरारों में गुफाओं के स्थान में निश्चय शुभ ध्यान में मन को लगाते हैं। शिष्यों की योग्यता को अच्छी तरह से जानकर दीक्षा देने में व शिक्षा करने में निपुण हैं।- युक्ति से सब प्रकार के नयों के जानने वाले हैं। अपने शरीर से ममत्व छोड़कर रहते हैं। रात्रिदिन संसार कूप में पतन हो जाने से भयभीत हैं। जिन्होंने मन-वचन-काय की शुद्धता सहित नासिका के अग्रभाग में नेत्रयुगल को स्थापित किया है, ऐसे आचार्य को मस्तक सहित अपने सभी अंगों को पृथ्वी में नवाकर वंदन करना चाहिए। उन आचार्यों के चरणों के स्पर्श से पवित्र हुई रज को शिर पर रखिए। इस प्रकार संसार परिभ्रमण के क्लेश को नष्ट करनेवाली आचार्य भक्ति है।

आचार्य के विशेष गुण- आचार्य समस्त धर्म के नायक हैं। जो निम्न गुणों के धारक हैं, वही आचार्य हो सकता है।

बड़े राजाओं के, राजा के मंत्री के महान श्रेष्ठियों के कुल में उत्पन्न हुए हों जिनके स्वरूप को देखते ही परिणाम शांत हो जायें ऐसे मनोहर रूप वाले हों, जिनका उच्च आचार जगत में प्रसिद्ध हो, पहले गृहस्थ अवस्था में भी कभी हीन आचार निंद्य व्यवहार न किया हो, वर्तमान भोग सम्पदा छोड़कर विरक्ति को प्राप्त हुए हों, लौकिक व्यवहार तथा परमार्थ के ज्ञाता हों, बुद्धि की प्रबलता तथा तप की प्रबलता के धारक हों। संघ के अन्य मुनियों से जैसा तप नहीं बन सके वैसे तप के धारक हों, बहुत काल से दीक्षित हो, बहुत काल तक गुरुओं का चरण सेवन किया हो, वचन में अतिशय सहित हो, जिनके वचन सुनते ही धर्म में दृढ़ता हो, संशय का अभाव हो, जो संसार-शरीर भोगों से दृढ़-निश्चय विरागता वाले हों, सिद्धान्त सूत्र के अर्थ के पारगामी हों, इन्द्रियों का दमन करके इस लोक-परलोक संबंधी भोग विलास रहित हों, देहादि में निर्ममत्व हों, महाधीर हों, उपसर्ग-परीषहों से जिनका चित्त कभी चलायमान नहीं हो। यदि आचार्य ही विचलित हो जाय तो सकल संघ भ्रष्ट हो जाये, धर्म का लोप हो जाये।

स्वमत परमत के ज्ञाता हों, अनेकान्त विद्या में क्रीड़ा करने वाले हों, अन्य के प्रश्न आदि का कायरता रहित तत्काल उत्तर देने वाले हों, एकान्त पक्ष का खंडन कर सत्य धर्म की स्थापना

करने की जिसमें सामार्थ्य हो, धर्म की प्रभावना करने में उद्यमी हो, गुरुओं के निकट प्रायश्चित आदि शास्त्र पढ़कर छत्तीस गुणों के धारक हों उन्हें समस्त संघ की साक्षी पूर्वक गुरुओं का दिया दान आचार्य पद प्राप्त होता है। जो इतने गुणों का धारक हो उसी को आचार्यपना होता है। इन गुणों के बिना यदि आचार्य होगा तो धर्मतीर्थ का लोप हो जायेगा, शास्त्र की परिपाटी तथा आचार की परिपाटी दूर हो जायेगी।

आचार्य के आठगुण:- आचार्य के अन्य अष्टगुण हैं जिनका धारण करने वाला ही आचार्य होना चाहिए आचारवान, आधारवान, व्यवहारवान, प्रकर्ता, अपायोपायविदर्शी, अवपीड़क, अपरिस्रावी, निर्यापक- ये आठ गुण हैं।

आचारवान:- जो पाँच प्रकार का आचार धारण करता है उसे आचारवान कहते हैं। भगवान सर्वज्ञ वीतरागी देव ने अपने दिव्य निरावरण ज्ञान द्वारा जीवादि तत्वों को प्रत्यक्ष देखकर कहा है उनमें सम्यक् श्रद्धान रूप परिणति होना वह दर्शनाचार है स्वपर तत्वों का निर्बाध आगम और आत्मानुभव से जानने रूप प्रवृत्ति ज्ञानाचार है। हिंसादि पाँच पापों के अभाव रूप प्रवत्ति चारित्राचार है। अंतरंग-बहिरंग तप में प्रवृत्ति तपाचार है परिषह आदि आने पर अपनी शक्ति को नहीं छिपाकर धीरता रूप प्रवृत्ति वीर्याचार है और भी दश प्रकार स्थितिकल्प आदि आचार में तत्पर हों।

पाँच प्रकार का आचार आप स्वयं निर्दोष पाले तथा अन्य शिष्यों को भी निर्दोष आचरण कराने में उद्यमी हों वही आचार्य हैं। यदि आचार्य स्वयं ही हीनाचारी हों तो वह शिष्यों से शुद्ध आचरण नहीं करा सकेगा। जो हीनाचारी होगा वह आहार-विहार उपकरण वसतिकादि अशुद्ध ग्रहण करा देगा, जो स्वयं ही आचारहीन होगा वह शुद्ध उपदेश नहीं कर सकेगा। इसलिए आचार्य को आचारवान ही होना चाहिए।

आधारवान:- जिनेन्द्र के कहे चारों अनुयोगों का आधार हो, स्याद्वाद विद्या का पारगामी हो, शब्द, न्याय विद्या, सिद्धान्त विद्या का पारगामी हो, प्रमाण, नय, निक्षेप द्वारा व स्वानुभव के द्वारा भली प्रकारसे जिसने तत्वों का निर्णय किया हो वह आधारवान है। जिसके श्रुत का आध ार नहीं हो वह अन्य शिष्यों का संशय, एकान्त रूप हठ तथा मिथ्याचरण का निराकरण नहीं कर सकेगा। अंनतानंत काल से परिभ्रमण करते आये जीव को अतिदुर्लभ मनुष्य जन्म की प्राप्ति उसमें भी उत्तम देव, जाति कुल इन्द्रियों की पूर्णता, दीर्घायु, सत्संगति, श्रद्धान, ज्ञान, आचरण ये उत्तरोत्तर दुर्लभ संयोग पाकर यदि अल्पज्ञानी गुरु के पास रहने वाला शिष्य हुआ तो वह सत्यार्थ उपदेश नहीं प्राप्त करने के कारण, अपना स्वरूप यथार्थ नहीं जानकर संशय रूप हो जायेगा तथा मोक्षमार्ग को अतिदूर अतिकठिन जानकर रत्नत्रय को यथार्थ नहीं जानकर संशय रूप हो जायेगा तथा मोक्षमार्ग को अतिदूर अतिकठिन जानकर रत्नत्रय मार्ग से विचलित हो जायेगा।

सत्यार्थ उपदेश बिना विषय कषायों में उलझे मन को निकालने में समर्थ नहीं होगा तथा रोगकृत वेदना में व उपसर्ग परिषहों से विचलित हुए भावों को शास्त्र के अतिशय रूप उपदेश के बिना थामने में समर्थ नहीं होगा। यदि मरण आ जाये तब सन्यास के अवसर में आहार-पान का त्याग का यथाअवसर देश काल सहायक सामर्थ्य के क्रम को समझे बिना शिष्य के भाव विचलित हो जाये या आर्तध्यान हो जाये तो सुगति बिगड़ जायेगी, धर्म का अपवाद होगा, अन्य मुनि भी धर्म में शिथिल हो जायेंगे, यह तो बड़ा अनर्थ है?

यह मनुष्य आहारमय है, आहार से ही जी रहा हैं, आहार की ही निरन्तर वांछा करता है। जब रोग के कारण तथा त्याग कर देने से आहार छूट जाता हैं तथा दु:ख से ज्ञान-चारित्र में शिथिल हो जाता है धर्मध्यान रहित हो जाता है तब बहुश्रुतगुरु ऐसा उपदेश देते हैं जिससे क्षुधा-तृषा की वेदना रहित होकर उपदेश रूप अमृत से सींचा हुआ समस्त क्लेश रहित हुआ धर्मध्यान में लीन हो जाता है। क्षुधा-तृषा, रोगादि की वेदना सहित शिष्य को धर्म के उपदेश रूप अमृत का पानी तथा उत्तम शिक्षा रूप भोजन द्वारा ज्ञान सहित गुरु वेदना रहित करते हैं। बहुश्रुत के आधार बिना धर्म नहीं रहता है। इसलिए जो आधारवान आचार्य हो उसी की शिक्षा ग्रहण करना योग्य है।

यदि शिष्य वेदना से दुखी हो रहा हो तो उसका शरीर सहलाना, हाथ पैर मस्तक दबाना, मीठे शब्द बोलना इत्यादि द्वारा दु:ख दूर करे। पूर्व में जो अनेक साधुओं ने घोर परिषह सहकर आत्मकल्याण किया उनकी कथा कहकर देह से भिन्न आत्मा का अनुभव कराकर वेदना रहित करे। हे मुनि अब दुख में धैर्य धारण करो संसार में कौन-कौन से दु:ख नहीं भोगे? यदि वीतरागी की शरण ग्रहण करोगे तो दु:खों का नाश करके कल्याण को प्राप्त हो जाओगे- इत्यादि बहुत प्रकार से कहकर मार्ग से विचलित नहीं होने दे, ऐसे आधारवान गुरु की शरण लेने योग्य है।

व्यवहारवान:- आचार्य को व्यवहार प्रायश्चित शास्त्र का ज्ञाता होना चाहिए क्योंकि प्रायश्चित शास्त्र तो आचार्य होने के योग्य पात्र को पढ़ाया जाता हैं औरों के पढ़ने योग्य नहीं है। जो जिन आगम का ज्ञाता हो, महाधैर्यवान हो, प्रबल बुद्धि का धारक हो वही प्रायश्चित दे सकता है। द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, क्रिया, परिणाम, उत्साह, संहनन, पर्याय, दीक्षा का काल, शास्त्रज्ञान, पुरुषार्थ आदि को अच्छी तरह जानकर जो राग-द्वेष रहित होता है वही प्रायश्चित देता है।

जिसमें इतनी प्रवीणता हो कि यह जान सके कि प्रायश्चित लेने वाले को कितना प्रायश्चित देने पर उसके परिणाम उज्ज्वल हो जायेगें, दोष का अभाव हो जायेगा, व्रतों में दृढ़ता होगी, ऐसा ज्ञाता हो। जिसे आहार की योग्यता-अयोग्यता का ज्ञान हो, इस क्षेत्र में ऐसे प्रायश्चित का निर्वाह होगा या नहीं होगा इस क्षेत्र में वात-पित-कफ-शीत उष्णता की अधिकता है या समता है,

अथवा इस क्षेत्र में मिथ्यादृष्टियों की अधिकता है या मंदता है यह जानकर प्रायश्चित का निर्वाह होता दिखाई दे तो प्रायश्चित देना चाहिए। शीत उष्ण- वर्षाकाल को, अवसर्पिणी, उत्सर्पिणी का तीसरा, चौथा, पंचम काल को देखकर, काल के आधीन प्रायश्चित का निर्वाह होता दिखाई दे तो प्रायश्चित दे।

परिणाम देखना चाहिए यह भी देखना कि तपश्चरण में इसका तीव्र उत्साह है या मंद है। संहनन की हीनता-अधिकता, बल की मंदता-तीव्रता भी देखना चाहिए। यह भी देखना चाहिए कि यह बहुत काल का दीक्षित है या नवीन दीक्षित है, सहनशील है या कायर है, बाल-युवा-वृद्ध अवस्था भी देखना चाहिए, आगम का ज्ञाता है या मंद ज्ञानी, पुरुषार्थी है या मंद उद्यमी है- इत्यादि का ज्ञाता होकर प्रायश्चित देना चाहिए।

दोषरूप आचरण जिस प्रकार फिर नहीं करे तथा पूर्व में किये दोष दूर हो जायँ उस प्रकार शास्त्र के अनुकूल प्रायश्चित देना चाहिए। जिसने गुरुओं के निकट प्रायश्चित शास्त्र से व अर्थ से पढ़ा नहीं, वही यदि दूसरों को प्रायश्चित देता है तो संसार रूप कीचड़ में डूबता है अपयश उपार्जन करता है तथा उन्मार्ग का उपदेश देकर सम्यक्मार्ग का नाश करके मिथ्यादृष्टि होता है। जो इतने गुणों का धारक हो उसे प्रायश्चित शास्त्र पढ़ाकर गुरु अपना आचार्य पद दे देते हैं। जो महान काल में उत्पन्न हुआ हो व्यवहार परमार्थ का ज्ञाता हो किसी भी काल में अपने मूलगुणों में अतिचार नहीं लगाता हो, चारों अनुयोग रूप शास्त्र समुद्र का पारगामी हो, धैर्यवान हो कुलवान हो, परीषह जीतने में समर्थ हो, देवों द्वारा किये गये उपसर्ग से भी जो चलायमान नहीं हो, वक्तृत्व की शक्ति का धारक हो, वादी-प्रतिवादी को जीतने में समर्थ हो, विषयों से अत्यन्त विरक्त हो, बहुत समय तक गुरु संघ में रहा हो, सर्वसंघ में मान्य हो, समस्त संघ में पहले ही जिसने आचार्यत्व की योग्यता जान ली हो वह प्रायश्चित देता है। इतने गुणों के बिना जैसे मूढ़ वैद्य यदि देश, काल, प्रकृति आदि को नहीं जानता है तो वह रोगी को मार डालता है उसी प्रकार व्यवहार ज्ञान रहित मूढ़ गुरु भी शिष्य को संसार में डुबोने वाला ही है। इसलिए आचार्य को व्यवहारवान होना ही चाहिए।

प्रकर्त्ता:- आचार्य को प्रकर्ता गुण सहित होना चाहिए। संघ में कोई रोगी हो, वृद्ध हो, अशक्त हो, बालक हो जिसने सन्यास धारण कर लिया हो उनकी वैयावृत्य में नियुक्त किये गये मुनि तो सेवा करते ही हैं परन्तु स्वयं आचार्य भी यदि संघ के मुनियों में कोई अशक्त हो जाये तो उसे उठाना, बैठाना, शयन कराना, मल-मूत्र-कफ तथा खून-पीव आदि शरीर से दूर करना, धोना, उठाना, प्रासुक स्थान में फेंकना, धर्मोपदेश देना, धर्मग्रहण कराना इत्यादि आदर पूर्वक भक्ति सहित वैयावृत्य करे उनको देखकर संघ के सभी मुनि वैयावृत्य करने में सावधान हो जाते हैं तथा विचार करते हैं:-

अहो! धन्य हैं यह गुरु भगवान परमेष्ठी करुणा निधान, जिनके धर्मात्मा में ऐसा वात्सल्य है। हम महानिंद्य हैं, आलसी हो रहे हैं हमारे होते हुए भी गुरु सेवा करे यह हमारा प्रमादीपन धिक्कारने योग्य है, बंध का कारण है। ऐसा विचार कर समस्त संघ वैयावृत्य में उद्यमी हो जाता है।

यदि आचार्य स्वयं प्रमादी हों तो सकल संघ वात्सल्य रहित हो जाये। इसलिए आचार्य का कर्तव्य गुण मुख्य है समस्त संघ की वैयावृत्य करने की जिसमें क्षमता हो वह आचार्य होता है कोई हीन आचार्य हो तो उसे शुद्ध आचार ग्रहण कराते हैं, कोई मंद ज्ञानी हो तो उसे समझाकर चारित्र में लगाते हैं, किसी को प्रायश्चित देकर शुद्ध करते हैं किसी को धर्मोपदेश देकर दृढ़ता कराते हैं। धन्य है आचार्य! जिनको उनकी शरण प्राप्त हो गई उनको मोक्षमार्ग में लगाकर उद्धार कर देते हैं। इसलिए आचार्य का प्रकर्ता गुण प्रधान है।

अपायोपाय-विदर्शी:- अपायोपायविदर्शी नाम का आचार्य का पांचवा गुण हैं कोई साधु, क्षुधा, तृषा रोग वेदना से क्लेशित परिणाम रूप हो जाये तीव्र राग-द्वेष रूप हो जाये, लज्जा से भय से यथावत् आलोचना नहीं करे रत्नत्रय में उत्साह रहित हो जाये, धर्म में शिथिल हो जाये कषाय अर्थात् रत्नत्रय के नाश होने से कांपने लगे तथा रत्नत्रय के नाश से अपना नाश व नरकादि कुगति में पतन साक्षात दिखाई देने लगे ऐसे साधुओं के लिए, रत्नत्रय की रक्षा से संसार से उद्धार होकर अनन्त सुख की प्राप्ति उपदेश द्वारा साक्षात् दिखला दे, ऐसा उपदेश देने की सामर्थ्य जिसमें हो, वह अपायोपाय-विदर्शी का धारक आचार्य होता हैं।

अवपीड़क:- अब अवपीड़क नाम का छठा गुण कहते हैं। कोई मुनि रत्नत्रय को धारण करके भी लज्जा से, भय से, अभिमान, गौरव आदि से अपनी शुद्ध यथावत् आलोचना (भूल स्वीकार करना) नहीं करता हैं तो आचार्य उसे स्नेह से भरी तथा हृदय में प्रवेश करने वाली शिक्षा देते हैं- हे मुने! बहुत दुर्लभ रत्नत्रय के लाभ को तुम मायाचारी द्वारा नष्ट नहीं करो। माता-पिता के समान अपने गुरुओं के पास अपना दोष प्रकट करने में क्या शर्म है?

वात्सल्य के धारी गुरु भी अपने शिष्य के दोष प्रकट करके शिष्य का तथा धर्म का अपवाद नहीं कराते हैं। अत: शल्य दूर करके आलोचना करो। जिस प्रकार रत्नत्रय की शुद्धता व तपश्चरण का निर्वाह होगा उसी प्रकार द्रव्य, क्षेत्र, काल भाव के अनुसार तुम्हें प्रायश्चित दिया जायेगा अत: भय छोड़कर निर्दोष आलोचना करो।

जो ऐसे स्नेह रूप वचनों द्वारा भी माया शल्य नहीं छोड़ता है तो तेज के धारी आचार्य जबरजस्ती शिष्य की शल्य को निकालते हैं। जिस समय आचार्य शिष्य से पूछते हैं कि- हे मुने! क्या यह दोष ऐसा ही है सत्य कहो? तब उनके तेज व तप के प्रभाव से जैसे सिंह को देखते ही स्यार खाते हुए माँस को तत्काल उगल देता है तथा जैसे महान प्रचण्ड तेजस्वी राजा अपराधी

से पूछता हैं तब उससे तत्काल सत्य कहते ही बनता है उसी प्रकार शिष्य भी माया शल्य को निकाल देता है।

यदि शिष्य सत्य नहीं बोलकर अपना मायाचार नहीं छोड़ता है तो गुरु तिरस्कार के वचन भी कहते हैं- 'हे मुने! हमारे संघ से निकल जाओ हमसे तुम्हारा क्या प्रयोजन है? जो अपने शरीर का मैल धोना चाहेगा वह प्रवीण वैद्य को प्राप्त करेगा उसी प्रकार जो रत्नत्रय रूप परम धर्म को अतिचार दूर करके उज्ज्वल करना चाहेगा वह गुरु का आश्रय लेगा। तुम्हें रत्नत्रय की शुद्धता करने में आदर नहीं है इसलिए यह मुनि, व्रत धारणा करना, नग्न होकर क्षुधादि परिषह सहने की विडंबना द्वारा क्या साध्य है? संवर निर्जरा तो कषायों को जीतने से होती है जब माया कषाय का ही त्याग नहीं किया तो व्रत संयम मौन धारण करना व्यर्थ है। मायाचारी का नग्न रहना और परिषह सहना व्यर्थ है, तिर्यंच भी परिग्रह रहित नग्न रहते है अत: तुम दूरभव्य हो हमारे वंदने योग्य नहीं हो। तुम्हारे भाव तो ऐसे हैं कि यदि हमारा दोष प्रकट हो जायेगा तो हम निंद्य हो जायेगें हमारी उच्चता घट जायेगी किन्तु तुम्हारा ऐसा मानना बंध का कारण है। श्रमण तो स्तुति-निंदा में समान परिणाम रखने वाले होते हैं। इस प्रकार गुरु कठोर वचन कहकर भी मायाचार आदि का अभाव कराते हैं। कैसे होते हैं अवपीड़क आचार्य-? जो बलवान हो उपसर्ग परिषह आने पर कायर नहीं हो, प्रतापवान हो जिसका वचन उल्लघंन करने में कोई समर्थ नहीं हो। प्रभाववान हो जिसे देखने के साथ ही दोष का धारक साधु कांपने लगे जिसे बड़े-बड़े विद्या के धारक झुककर वंदना करते हों, जिसकी उज्ज्वल कीर्ति विख्यात होती है जिसकी प्रशंसा सुनते ही उसके गुणों में दृढ़ श्रद्धा हो जाती है जिसके वचन जगत में देखे बिना ही दूर देशों में प्रमाण माने जाते हों सिंह के समान निर्भय हो। ऐसा अवपीड़क गुण का धारक गुरु जिस प्रकार शिष्य का हित हो उस प्रकार उपकार करता है। जैसे बालक का हित विचारने वाली माता रोते हुए बालक को भी दाबकर मुहँ खोलकर जबरजस्ती धृत, दुग्ध औषधि आदि पिलाती है उसी प्रकार शिष्य का हित विचारने वाले आचार्य भी मायाशल्य सहित-शिष्य मुनि का जबरजस्ती दोष दूर करते हैं अथवा कटुक औषधि के समान पश्चात् हित करते हैं। जो जिह्वा से मीठा बोले किन्तु शिष्य को दोषों से दूर नहीं कर सके वह गुरु भला नहीं करता। जो वचन से ताड़ना देकर भी दोषों से छुड़ाता है वह गुरु पूजने योग्य है। अत: अवपीड़क गुण का धारक भी आचार्य होता है।

अपरिस्रावी:- अब अपरिस्रावी गुण कहते हैं। शिष्य जिस दोष की गुरु से आलोचना करता है। गुरु उस दोष को किसी दूसरे से नहीं बतलाते हैं जैसे तपाये हुए लोहे के द्वारा पिया हुआ जल बाहर नहीं निकलता है उसी प्रकार शिष्य से सुने हुए दोष को आचार्य किसी दूसरे को नहीं बताते हैं वह अपरिस्रावी गुण हैं। शिष्य तो गुरु का विश्वास करके कहता है किन्तु यदि गुरु

शिष्य का दोष प्रकट कर देता है दूसरों को बता देता है तो वह गुरु नहीं है अधम हैं विश्वासघाती है।

कोई शिष्य अपने दोष को गुरु के द्वारा प्रकट किया गया जानकर दुःखी होकर आत्महनन कर लेता है कोई क्रोध में आकर रत्नत्रय का त्याग कर देता है कोई गुरु की धृष्टता जानकर अन्य संघ में चला जाता है। जैसे मेरी अवज्ञा की है वैसे ही तुम्हारी भी अवज्ञा करूगाँ- इस प्रकार समस्त संघ में प्रकट घोषणा कर देता हैं जिससे समस्त संघ का आचार्य पर से विश्वास उठ जाता है ऐसे आचार्य सभी के त्याज्य हो जाते हैं इत्यादि बहुत दोष आते हैं। बहुत कहने से कथन बढ़ जायेगा अतः अपरिस्रावी गुण का धारक भी आचार्य होना चाहिए।

निर्यापक:- आचार्य को निर्यापक गुणधारी होना चाहिए। जैसे खेवटिया समस्त बाधाओं को टालकर नाव से पार उतार ले जाता है उसी प्रकार आचार्य भी शिष्यों को दोषों से बचाकर संसार समुद्र से पार करा देता है।

इस प्रकार आचारवान, आधारवान, व्यवहारवान, प्रकर्त्ता, अपायोपायविदर्शी, अवपीड़क, अपरिस्रावी, निर्यापक-आचार्य के इन आठ गुणों को धारण करने वालों के गुणों में अनुराग करना वह आचार्य भक्ति है। ऐसे आचार्यों के गुणों को स्मरण करके आचार्यों का स्तवन वंदन करके अर्घावतारण जो पुरुष करता है वह पापरूप संसार की परिपाटी को नष्ट करके अक्षय सुख को प्राप्त करता है ऐसा वीतरागी गुरु कहते हैं।

आज तक धर्म को ऊँचा उठाने का कार्य आचार्यों ने ही किया। महावीर स्वामी के बाद सुधर्माचार्य जम्बूस्वामी आदि केवलियों द्वारा अनेक वर्षों तक अंगज्ञान सुरक्षित रहा। भद्रबाहु स्वामी एक बार उज्जयिनी में आहार को गये। वहाँ पर एक बालक पालने में झूल रहा था। उसकी आवाज सुनकर उन्होंने कहा कि यहाँ पर बारह साल का अकाल पड़ने वाला है। तभी भद्रबाहु आचार्य कुछ शिष्यों के साथ दक्षिण की तरफ प्रस्थान कर गये और श्रमण धर्म को बचाया। ऐसे आचार्य इस पावन भूमि पर हुए।

श्री कुन्दकुन्द आचार्य ने धर्म प्रचार हेतु अनेक शास्त्र लिखे। आचार्य उमास्वामी ने **तत्त्वार्थ सूत्र** की रचना की। श्री पूज्यपाद स्वामी ने तत्त्वार्थसूत्र की टीका करके **सर्वार्थसिद्धि** नामक ग्रन्थ की रचना की। श्री अंकलंक देव ने **राजवार्तिक** तथा श्री विद्यानन्द स्वामी ने **अष्टसहस्त्री** और इसी **तत्वार्थसूत्र की टीका** पर आचार्य समन्तभद्र स्वामी ने **गंधहस्तीमहाभाष्य** लिखा। ऐसे आचार्यों के हम बहुत आभारी हैं। जिन्होंने अपना तो कल्याण किया ही, हमारा मार्ग भी प्रशस्त किया। समय-समय पर आचार्य अनेक अतिशय दिखाकर जैनधर्म का प्रचार करते रहे। आचार्यों पर अनेक उपसर्ग आये परन्तु समता भाव से सहन करके धर्म को अथवा अपने पद को गिरने नहीं दिया गरिमा बनाये रखी। अकम्पनाचार्य आदि 700 मुनियों पर राजा बलि ने हस्तिनापुर में

उपसर्ग किया। उपसर्ग को मुनि विष्णुकुमार ने दूर किया। परिणामस्वरूप सभी विरोधियों ने जिन धर्म स्वीकार किया। श्री वादिराज मुनिराज ने कोढ़ दूर करके अतिशय दिखाया। श्री मानतुंग आचार्य ने भक्तामरस्तोत्र की रचना कर जंजीरे व 48 ताले तोड़कर अतिशय दिखाया जिससे ध र्म प्रभावना हुई।

समन्तभद्र स्वामी को भस्मक रोग हो गया था वे जो खाते वह भस्म हो जाता। सिद्धान्ततः जैन दिगम्बर मुनिराज 8 पहर में एक बार आहार लेते हैं। इस कारण समन्तभद्र ने गुरु से समाधि के लिए कहा। गुरु ने जाना कि इनके द्वारा धर्म की प्रभावना होनी है। इसलिए उन्होंने समाधि के लिए मना कर दिया और कहा कि जाओ येन केन प्रकारेण जैसे बने इस व्याधि का उपचार करो। तब वे वैष्णवी साधु के वेश में बनारस पहुँचे। वहाँ शिव मन्दिर में चढ़ावा बहुत चढ़ता था। तब इन्होंने विचार किया क्षुधा यहाँ शान्त हो सकती है। वहाँ जाकर राजा को कहा कि ये सारा मिष्ठान्न में शिव जी को खिला सकता हूँ। इस तरह अकेले मन्दिर में चारों तरफ से बन्दकर जिससे किसी को पता ना चले वे सारा मिष्ठान स्वयं खा गये इस बात से राजा बहुत प्रभावित हुए और वे वही रहने लगे। कुछ समय बाद जब असाता वेदनीय कर्म का क्षय हुआ, धीरे-धीरे क्षुधा वेदना शान्त होने लगी। मिष्ठान बचने लगा तब राजा से एक दिन पुजारी कहने लगा कि ये तो देवता के ऊपर पैर रख कर सोता है और मिष्ठान्न भी बचा पड़ा रहता है। राजा ने इनसे कहा कि तुम शिव जी की अविनय करते हो। इस पिण्डी को नमस्कार करो। तब वे राजा से बोले- यह पिण्डी नमस्कार नहीं झेल पायेगी। परन्तु राजा नहीं माना तब उन्होंने स्वयंभूस्तोत्र की रचना की। इस स्तोत्र के आठवें श्लोक की रचना के माध्यम से जो नमस्कार किया वह पिण्डी फट गयी और चन्द्रप्रभ भगवान की प्रतिमा प्रकट हो गयी। इस अतिशय से राजा ने प्रभावित होकर अपने भाई, मंत्री आदि के साथ जैनधर्म स्वीकार किया। समन्तभद्र स्वामी का भस्मक रोग शान्त हो गया। उन्होंने फिर गुरु के पास जाकर पुनः दीक्षा ग्रहण की। अनेक ग्रन्थों की रचना की। आचार्य शान्तिसागर ने भी अनेक उपसर्ग झेलकर जनता में धर्म की प्रभावना की। इस प्रकार बन्धुओ उन आचार्यों की भक्ति करो उनका आचरण अपने अन्दर उतारने का प्रयास करो। उनकी भक्ति करने से उनके जैसे भले ही न बन पाओ संतोषी तो बन ही सकते हो। जब आये संतोष धन, सब धन धूल समान।

आचार्य नेमिसागर जी महाराज घोर तपस्वी, हफ्ते-महिनों निर्जल उपवास करते थे। साधना के प्रताप से उनकी वाणी में इतना सत्य समाहित हो गया था कि उनके मुख से निकला वचन कभी खाली नहीं जाता था। इस कारण जनता को कभी-कभी यह भ्रान्ति हो जाती थी कि कहीं महाराज नाराज होकर श्राप न दे दें। बन्धुओ, जैन साधुओं में करुणा और वात्सल्य इतना होता है कि कभी किसी का बुरा सोच नहीं सकते इसलिए श्राप भी नहीं दे सकते और जो श्राप देते हैं वे सच्चे जैन साधु होते नहीं।

एक बार महाराज बड़ौत नगरी में चातुर्मास कर रहे थे और वर्षा न होने के कारण जनता परेशान थी कि कहीं भयंकर सूखा न पड़ जाये और वर्षा के लक्षण भी दिखाई नहीं दे रहे थे। तभी सभी एकत्रित होकर आचार्य श्री के पास पहुँचे सबकी आँखों में आँसू थे आचार्य से निवेदन किया अपनी पीड़ा बताई तब आचार्य श्री के अन्दर इतनी करुणा उत्पन्न हुई कि दो मिनट तक मौन रहने के बाद सबको आशीर्वाद देते हुए बोले आप लोग अतिशीघ्र अपने-अपने घर पहुँच जाओ। सभी लोग समझ नहीं पाये और मायूस से वापस लौट गये। सभी घर तक पहुंच नहीं पाये थे कि मूसलाधार वर्षा होने लगी। सारे नगर में खुशी की लहर दौड़ गयी। चारों ओर जय-जयकार होने लगी।

एक बार चारित्र चक्रवर्ती आचार्य श्री शान्तिसागर जी महाराज जंगल में बने मन्दिर में आत्मध्यान कर रहे थे सायंकाल आचार्य श्री को ध्यान में बैठे देखकर वहाँ के पुजारी ने उजाले के लिए एक दीपक जलाकर रख दिया और मन्दिर के किवाड़ बन्द कर अपने घर चला गया। इधर थोड़ा सा घी जमीन पर गिर गया था, जिससे चींटियां आ गयीं और आचार्य श्री के बदन पर भी चढ़ गईं। आचार्य श्री ध्यान में लीन थे उन्हें कुछ भी नहीं मालूम था। उपसर्ग हो रहा है और वे अपने ध्यान में लीन हैं। वे चींटियाँ आचार्य श्री के गुप्तांगों में चिपट कर काटने लगीं, रक्त बहने लगा। तब पुजारी को स्वप्न आया कि महाराज पर घोर उपसर्ग आया है और तुम जाकर उसे दूर करो परन्तु पुजारी जंगल के भय के कारण नहीं आया और रातभर उपसर्ग होता रहा दिन निकलते ही सब लोग पहुँचे और उपसर्ग दूर किया। ऐसे होते हैं आचार्य परमेष्ठी जो आत्मा के अन्वेषण में इतने लीन होते हैं कि उन्हें कितना ही उपसर्ग होता रहे कुछ भी पता नहीं चलता।

बन्धुओ, ऐसे आचार्यों की देख-परख कर शुद्धभावों सहित भक्ति करो, यही आचार्य भक्ति भावना कहलाती है और भक्ति चिन्तन से एक दिन ऐसे ही गुण तुम्हारे अन्दर भी उत्पन्न हो जावेगे और कर्मों की श्रृंखला तोड़ कर अपने आत्म स्वरूप में लीन होकर शाश्वत सुख का आनन्द प्राप्त करोगे।

बहुश्रुतभक्ति भावना

बहुश्रुतभक्ति उपाध्याय परमेष्ठी की होती है। कहा गया है–

आगम छन्द पुराण पढ़ावत, सहित तर्क वितर्क बखाने।
काव्य कथा सब नाटक पूजन, ज्योतिष वैद्यक शास्त्र प्रमाने॥

ऐसे बहुश्रुत साधु मुनीश्वर, जो मन में दोउ भाव न आने।
बोलत ज्ञान धरी मन सान जु, भाग्य विशेसते जानहिं जाने।।

उपाध्याय आप्त द्वारा कहे सिद्धान्त, कवितायें महापुरुष आदि की कथायें पढाते तथा तर्क वितर्क सहित व्याख्यान करते हैं। काव्य, कथा सभी प्रकार के साहित्य पूजन तथा ज्योतिष को जानने वाले शास्त्र को बताते हैं। ऐसे अनेक शास्त्रों के ज्ञाता साधु मुनीश्वर मन में दो भाव राग-द्वेष नहीं आने देते अर्थात् उनसे दूर रहते हैं।

बहुश्रुतवंत भक्ति जो करई, सो नर सम्पूर्ण श्रुत धरई।

जो प्राणी अनेक शास्त्रों के ज्ञाता की भक्ति करता है वह प्राणी सम्पूर्ण शास्त्रों का ज्ञान प्राप्तकर लेता है।

बहुश्रुत का तात्पर्य उपाध्याय परमेष्ठी हैं। उपाध्याय तीन शब्दों से मिल कर बना है- उप+अधि+आय, उप अर्थात् पास, निकट अधि अर्थात् बहुत अर्थात् सन्निकट और आय का तात्पर्य आना अर्थात् जिन के जीवन का संबंध अपने शुद्ध गुण पर्याय के साथ है और अपना जीवन चला रहे हैं। वे उपाध्याय परमेष्ठी हैं। उनकी पूजा या उपासना करना बहुश्रुतभक्ति कहलाती है।

आचार्य उपाध्याय में मौलिक अन्तर केवल इतना है कि आचार्य उपाध्याय को अनुशासित करते हैं परहित का लक्ष्य करके। आचार्य का कार्य है आदेश देना। अत: आचार्य परमेष्ठी प्रिय, कटु और मिश्रित तीनों प्रकार के वचनों का प्रयोग करते हैं किन्तु उपाध्याय परमेष्ठी इनसे बिल्कुल भिन्न होते हैं।

उपाध्याय बहुत वात्सल्य भाव से वचनामृत का पान कराते हैं। जैसे माँ अपने बच्चों को बड़े प्रेम से दूध पिलाती है। सभी को संसार की प्रक्रिया से दूर रहने का ढंग बताते हैं। आत्मा की बात करते हैं। उनके पास न पंचेन्द्रिय विषयों की चर्चा होती है और न कषायों की, न आरम्भ और परिग्रह की। विषयों और कषायों में अनुराग आरम्भ और परिग्रह में आसक्ति तथा इनका संचय करना ही संसार है और इनसे विमुख होना ही मोक्ष का कारण है। विषय, कषाय, आरम्भ और उस उपदेश के अनुरूप आचरण करना। इसी कारण उसका प्रभाव पड़ता है शिष्यों पर। प्रभाव केवल आचरण का ही पड़ता है अथवा पड़ सकता है, वचनों का नहीं। वचनों में भी अद्‌भुत शक्ति है। किन्तु उन वचनों के अनुरुप कार्य करना चाहिए। वह ही उपदेश तथा आचरण के द्वारा दूसरों को आचरण करवा सकता है।

एक समय की बात है कि एक डाक्टर के पास एक रोगी पहुंचा, उसे एक के दो दिखाई देते थे। अब आप ही बताओ कि वह डाक्टर क्या इलाज करेगा। ऐसे स्थान पर निराशा ही हाथ

लगेगी। संसार मार्ग का समर्थक कभी मुक्ति मार्ग का उपदेश दे नहीं सकता। उपाध्याय परमेष्ठी मुक्ति मार्ग का उपदेश दे सकते हैं। क्योंकि वे स्वयं उस मार्ग के अडिग एवं अथक पथिक हैं। उपाध्याय परमेष्ठी एक अनूठे साधक हैं। इनका उपदेश सुनकर जो जन्म-जरा-मृत्यु से पीडित है वह दौड़ा चला जाता है और उसे उपाध्याय परमेष्ठी से रोग की औषधि मिल जाती है। रोगी का रोग तो वही ठीक कर सकता है जो स्वयं पीडित न हो।

अगर उपाध्याय परमेष्ठी परोक्ष भी हैं और मन में उनकी भक्ति है तो भी फल मिल जाता है। एक सामान्य प्राणी भी उपाध्याय की भक्ति करने से उपाध्याय बन सकता है ऐसा नियम है। जैसे-

एक समय की बात है कि धनुर्विद्या के ज्ञाता आचार्य द्रोण के पास एक भील आकर ध नुर्विद्या सीखने का आग्रह करता है। परन्तु उसके हिंसक प्रकृति होने के कारण उसे सिखाने से मना कर देते हैं वे जानते थे कि यह धनुर्विद्या का दुरुपयोग करेगा। परन्तु उसकी दृष्टि में तो द्रोणाचार्य गुरु बन चुके थे भले ही उन्होंने उसे अपना शिष्य स्वीकार न किया हो। और उसने दृढ़ संकल्प कर द्रोणाचार्य की मिट्टी की प्रतिमा स्थापित करके धनुर्विद्या का अभ्यास करने लगा। अगर वह अभिमान से यह सोचता कि आचार्य द्रोण क्या कर लेगें मैं स्वयं सीख लूँगा तो वह कभी न सीख पाता। उसके हृदय में विकल्प नहीं था और उसकी दृष्टि में गुरु की विद्या थी और सच्ची गुरु भक्ति के बल पर उसने विद्या सीख ली।

मुनिसंघ में आचार्य के बाद उपाध्याय का पद होता है। जो अंग-पूर्व आदि के ज्ञाता हैं, चारों अनुयोगों के पारगामी होकर निरन्तर स्वयं परमागम को पढ़ते हैं। अन्य शिष्यों को पढ़ाते हैं। वे बहुश्रुती हैं। श्रुतज्ञान ही जिनके दिव्य नेत्र हैं। अपना तथा पर का हित करने में ही प्रवर्तते हैं। अपने जिन-सिद्धांतों तथा अन्य एकान्तियों के सिद्धान्तों को विस्तार से जानने वाले स्याद्वादरूप, परम विद्या के धारक हैं। उनकी भक्ति करना बहुश्रुत भक्ति है। बहुश्रुतवंत की महिमा कहने को कौन समर्थ है? जो निरन्तर श्रुतज्ञान का दान करते हों। ऐसे उपाध्यायों की जो विनय सहित भक्ति करते हैं। वे शास्त्र रूप समुद्र के पारगामी हो जाते हैं। जितने भी अंग, पूर्व, प्रकीर्णक जिनेन्द्र देव ने कहे हैं उन समस्त जिनागमों को जो निरन्तर स्वयं पढ़ते हैं तथा अन्य को पढ़ाते हैं वे बहुश्रुतवंत हैं।

द्वादशांग:- प्रथम **आचारांग** के अठारह हजार पदों में मुनिधर्म का वर्णन है।

सूत्रकृतांग के छत्तीस हजार पदों में जिनेन्द्र के श्रुत के आराधन करने की विनयक्रिया का वर्णन है।

स्थानांग के बियालीस हजार पदों में छह द्रव्यों के एक अनेक स्थानों का वर्णन है।

समवायांग के एक लाख चौदह हजार पदों में जीवादि पदार्थों का द्रव्य क्षेत्र काल भाव की समानता की अपेक्षा से वर्णन है।

व्याख्याप्रज्ञप्तिः- अंग के दो लाख अठ्ठाईस हजार पदों में जीव अस्ति है या नास्ति है। एक है या अनेक है इत्यादि गणधर द्वारा तीर्थंकर के निकट किये गये साठ हजार प्रश्नों का वर्णन है।

ज्ञातृधर्मकथा अंग के पाँच लाख छप्पन हजार पदों में गणधर द्वारा किये प्रश्नों के उत्तररूप जीवादि के स्वभाव का वर्णन है।

उपासकाध्ययनांग के ग्यारह लाख सत्तर हजार पदों में श्रावक के (ग्यारह प्रतिमा) व्रत, शील, आचार, क्रिया, मंत्रादि का वर्णन है।

अंतःकृतदशांग के तेईस लाख अठ्ठाईस हजार पदों में एक-एक तीर्थंकर के तीर्थकाल में दश-दश मुनि उपसर्ग सहित होकर संसार का अन्त करके निर्वाण प्राप्त किया उनका वर्णन है।

अनुत्तरोपपाददशांग के बानवै लाख चवालीस हजार पदों में एक-एक तीर्थंकर के तीर्थकाल में दश-दश मुनि भंयकर घोर उपसर्ग सहकर देवों द्वारा पूजित होकर (समाधिमरण करके) विजय आदि अनुत्तर विमानों में उत्पन्न हुऐ उनका वर्णन है।

प्रश्नव्याकरणांग के तिरानवे लाख सोलह हजार पदों में लाभ, हानि, सुख-दुःख, जीवन-मरण (हार-जीत चिन्ता) के सम्बन्ध में किये गये प्रश्नों का (भूत, भविष्य, वर्तमान की अपेक्षा से दिये गये उत्तर) का वर्णन है।

विपाकसूत्रांग के एक करोड़ चौरासी लाख पदों में कर्मो का उदय, उदीरणा सत्ता का वर्णन है (इस प्रकार ग्यारह अंगों का चार करोड़ पन्द्रह लाख दो हजार पदों में वर्णन किया है)।

दृष्टिवाद नाम के बारहवे अंग के (एक सौ आठ करोड़ अड़सठ लाख छप्पन हजार पाँच पदों में मिथ्यादर्शन के दूर करने का वर्णन है। दृष्टिवाद अंग के) पाँच भेद हैं। परिकर्म, सूत्र, प्रथमानुयोग, पूर्व और चूलिका बारह अंगों में कुल एक सौ बारह करोड़, तिरासी लाख अठ्ठावन हजार पाँच, 1,12,83,58005 पद हैं।

परिकर्मः- दृष्टिवाद अंग के प्रथम भेद परिकर्म के भी पाँच भेद हैं- चन्द्रप्रज्ञप्ति, सूर्यप्रज्ञप्ति, जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति, द्वीपसागर प्रज्ञप्ति, व्याख्या प्रज्ञप्ति।

चन्द्र प्रज्ञप्तिः- के छत्तीस लाख पाँच हजार पदों में चन्द्रमा की आयु, गति, कला की हानि-वृद्धि, देवी, वैभव, परिवार आदि का वर्णन है।

सूर्य प्रज्ञप्तिः- के पाँच लाख तीन हजार पदों में सूर्य की आयु, गति वैभव आदि का वर्णन है।

जम्बूद्वीप प्रज्ञप्तिः- के तीन लाख पच्चीस हजार पदों में जंबूद्वीप सम्बन्धित क्षेत्र पर्वत, सरोवर, नदी आदि का वर्णन है।

द्वीपसागर प्रज्ञप्तिः- के बावन लाख छत्तीस हजार पदों में असंख्यात द्वीप समुद्रों का मध्यलोक के अकृत्रिम जिनमंदिरों का भवनवासी-व्यंतर-ज्योतिषी देवों के अवास का वर्णन है।

व्याख्या प्रज्ञप्तिः- के चौरासी लाख छतीस हजार पदों में जीव पुद्गलादि द्रव्य का वर्णन है। इस प्रकार पाँच प्रकार के परिकर्म का एक करोड़ इक्यासी लाख पाँच हजार पदों में वर्णन है।

सूत्रः- दृष्टिवाद अंग का दूसरा भेद सूत्र के अठासी लाख पदों में जीव अस्तिरूप ही है। नास्तिरुप ही है। कर्ता ही है, भोक्ता ही है इत्यादि क्रियावादी, अक्रियावादी, अज्ञानवादी, विनयवादी, एकान्तवादियों द्वारा कल्पित जीव के स्वरूप का एक पक्ष की अपेक्षा मात्र से ही वर्णन कैसा होता है वह बताया है।

प्रथमानुयोगः- दृष्टिवाद अंग का तीसरा भेद प्रथमानुयोग के पाँच हजार पदों में विशेष ज्ञान रहित मिथ्यादृष्टि अव्रती को समझाने के लिए तिरेसठ शलाका महापुरुषों के चारित्र का वर्णन है।

पूर्वः- दृष्टिवाद अंग के चौथे भेद में चौदह पूर्व हैं।

उत्पादपूर्वः- के एक करोड़ पदों में जीवादि द्रव्यों के (अनेक प्रकार की नय विवक्षा से क्रमवर्ती-युगपत अनेक धर्मो से उत्पाद व्यय ध्रौव्य) स्वभाव का (भूत वर्तमान, भविष्य कालों की अपेक्षा से 81-81 भेद करके) वर्णन किया है।

अग्रायणी पूर्वः- के छियानवै लाख पदों में द्वादशांग का सारभूत ज्ञान सात तत्त्व नौ पदार्थ, छह द्रव्यों सात सौ नय दुर्नय आदि (प्रयोजन भूत) का वर्णन है।

वीर्यानुवाद पूर्वः- के सत्तर लाख पदों में आत्मा का स्व-वीर्य पर वीर्य दोनों का वीर्य क्षेत्रवीर्य, कालवीर्य, भाववीर्य, तपोवीर्य, द्रव्य-गुण पर्यायों का शक्ति रूप वीर्य का वर्णन है।

अस्तिनास्तिप्रवाद पूर्वः- के साठ लाख पदों में जीवादि द्रव्यों का स्व-द्रव्य-क्षेत्र काल भाव रूप चतुष्टय की अपेक्षा अस्ति तथा पर द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव रूप से चतुष्टय की अपेक्षा नास्ति इत्यादि सात भेद (सप्त भंग) तथा नित्य, अनित्य, एक अनेक आदि का विरोध रहित वर्णन है।

ज्ञानप्रवाद के पूर्व के एक कम एक करोड़ पदों में मति श्रुत, अवधि, मनः पर्यय, केवल ये पाँच सम्यक्ज्ञान तथा कुमति, कुश्रुत विभंग ये तीन अज्ञान इनका स्वरूप, संख्या, विषय, फल की अपेक्षा प्रमाण-अप्रमाण रूप भेद सहित वर्णन है।

सत्यप्रवाद पूर्व के छः अधिक एक करोड़ पदों में वचनगुप्ति वचन के संस्कार के कारण वक्ता के भेद, बारह भाषा, दश प्रकार का सत्य तथा बहुत प्रकार के असत्य वचनों का वर्णन हैं। आत्म प्रवाद पूर्व के छब्बीस करोड़ पदों में आत्मा जीव है कर्ता है, भोक्ता है, प्राणी हैं, वक्ता हैं, पुद्‌गल हैं, वेदक हैं, व्यापक (विष्णु) है, स्वयंभू हैं, शरीर सहित हैं, शक्तिमान है, जन्तु हैं। मानव हैं, मानी हैं, मायावी हैं, योगी हैं, संकोच-विस्तार वाला है, क्षेत्रज्ञ हैं, मूर्तिक हैं, इत्यादि स्वरूप का वर्णन है।

कर्मप्रवाद पूर्व के एक करोड़ अस्सी लाख पदों में कर्मो के बंध, उदय, उदीरणा, सत्ता, उत्कर्षण, अपकर्षण, उपशमन, संक्रमण, निधत्ति, निंकाचित आदि अवस्था रूप मूल प्रकृति, उत्तर प्रकृति आदि भेदों का तथा ईर्यापथ तपस्या, अधः कर्म आदि का वर्णन है।

प्रत्याख्यान पूर्व के चौरासी लाख पदों में नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की अपेक्षा जीवों के सहंनन, बल आदि के अनुसार काल की मर्यादा सहित त्याग, पाप सहित पदार्थों का त्याग, उपवास की विधि व भावना, पाँच समिति, तीन गुप्ति इत्यादि का वर्णन है।

विद्यानुवाद पूर्व के एक करोड़ दश लाख पदों में अगुंष्ठ, आदि सात सौ अल्प विद्याओं का, तथा रोहिणी आदि पाँच सौ महाविद्याओं का स्वरूप, सामर्थ्य, साधनभूत मंत्र-यंत्र-पूजा विधान, सिद्ध हो जाने पर उनका फल तथा अंतरिक्ष, भौम, अंग, स्वर, स्वप्न, लक्षण, व्यंजन छिन्न ये आठ प्रकार का निमित्त ज्ञान का वर्णन है।

कल्याणानुवाद पूर्व के छब्बीस करोड़ पदों में तीर्थंकर, चक्रवर्ती, बलभद्र, नारायण (वासुदेव), प्रतिनारायण के गर्भ कल्याणक आदि महोत्सवों भावनाओं, तपश्चरण आदि क्रियाओं का, चन्द्र, सूर्य व ग्रह, नक्षत्र आदि की गति, ग्रहण, शकुन, फल आदि का वर्णन किया है।

प्राणवाद पूर्व के तेरह करोड़ पदों में शरीर की चिकित्सा का अष्टांग आयुर्वेद, भूत-प्रेत, विष आदि व्याधि दूर करने के मंत्रादिक का तथा गति के अनुसार दश प्राणों के उपकारक-अनुपकारक द्रव्यों का वर्णन है।

क्रियाविशाल पूर्व के नौ करोड़ पदों में संगीत शास्त्र, छंद, अलंकार शास्त्र बहत्तर कलाएं स्त्री के चौसठ गुण, शिल्प विज्ञान, गर्भाधान आदि चौरासी क्रियाएं सम्यक् दर्शन आदि की एक सौ आठ क्रियाएं, पच्चीस देववंदनादि क्रियाएं तथा नित्य-नैमित्तिक क्रियाओं का वर्णन है

त्रिलोक बिन्दुसार पूर्व के बारह करोड़ पचास लाख पदों में तीन लोकों का स्वरूप, छब्बीस परिकर्म आठ व्यवहार, चार बीज आदि गणित, मोक्ष का स्वरूप, मोक्ष गमन की कारण भूत क्रिया तथा मोक्ष सुख का वर्णन है। इस प्रकार पंचानवै करोड़ पचास लाख पाँच पदों में चौदह पूर्वों का वर्णन हैं।

दृष्टिवाद अंग के पांचवें भेद चूलिका के पाँच भेद हैं- जलगता, स्थलगता, मायागता, आकाशगता, रूपगता। प्रत्येक चूलिका के दो करोड़ नौ लाख नवासी हजार सौ पद हैं। पांचों चूलिकाओं के कुल दश करोड़ उनचास लाख छियालीस हजार पद हैं।

जलगता चूलिका- में जल को रोकना, जल में गमन करना, अग्नि को रोकना, अग्नि खाना, अग्नि पर बैठना-चलना, अग्नि में प्रवेश करना इत्यादि क्रिया के कारण भूत मंत्र तंत्र तपश्चरण आदि का वर्णन है।

स्थलगता चूलिका में मेरु आदि पर्वतों में, भूमि में प्रवेश तथा शीघ्र गमन इत्यादि क्रिया के कारण भूत मंत्र, तंत्र तपश्चरणादि का वर्णन है।

मायागता चूलिका में मायारूप इंद्रजालादि विक्रिया के कारण भूत मंत्र, तंत्र तपश्चरणादि का वर्णन है। इन रूपगता चूलिका में सिंह, हाथी, घोड़ा, बैल, हिरण, व्याघ्र, खरगोश, मनुष्य, वृक्ष आदि के अनेक रूप बदलने के कारण भूत मंत्र तंत्र तपश्चरणादि का तथा चित्र, मिट्टी पत्थर, लकड़ी लेप आदि की कलाकारी तथा धातुवाद, रसवाद, खनिज आदि की चतुराई पूर्वक रचना करने का वर्णन है।

द्वादशांग में 18446744073709551616 इतने अपुनरुक्त अक्षर हैं जो एक बार आने के बाद दूसरी बार नहीं आते हैं उसे अपुनरूक्त अक्षर कहते हैं। इनमें चौसठ संयोग तक के अक्षर हैं। आगम में कहे मध्यम पद में सोलह सौ चौतीस करोड़ तेरासी लाख सात हजार आठ सौ अठासी अपुनरुक्त अक्षर हैं। इन अक्षरों में प्रमाणे का भाग देने पर एक सौ बारह करोड़ तेरासी लाख अठावन हजार पाँच पद आये उनमें समस्त द्वादशांग है शेष अक्षर आठ करोड़ एक लाख आठ हजार एक सौ पचहत्तर अंक रहे। इन अक्षरों का पूर्ण एक पद नहीं होता इसलिए इन्हें अंग बाह्य कहा है। उन अक्षरों के सामायिक आदि चौदह प्रकीर्णक हैं।

सामायिक प्रकीर्णक- में मिथ्यात्व कषायादि के क्लेश के अभाव रूप नाम, स्थापना द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव के भेदसे छह भेद रूप सामायिक का वर्णन है।

स्तवन प्रकीर्णक- में चौंतीस अतिशय, आठ प्रातिहार्य, परम औदारिक दिव्य देह, समवशरण सभा धर्मोपदेश आदि तीर्थंकरों के माहात्म्य का प्रकाश रूप वर्णन है।

वंदना प्रकीर्णक- में एक तीर्थंकर के अबलंबनरूप चैत्यालय प्रतिमा का स्तवन रूप वर्णन है **प्रतिक्रमण प्रकीर्णक** में प्रमाद जनित पूर्वकृत दोषों का निराकरण करने का वर्णन है उसके सात भेद हैं- दैनिक, रात्रिक, पाक्षिक, चातुर्मासिक, सावंत्सरिक (वार्षिक) ईर्यापथिक, उत्तमार्थ (मरण के साथ) **विनय प्रकीर्णक** में सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र, तप तथा उपचार स्वरूप पाँच प्रकार की विनय का वर्णन है।

कृतिकर्म प्रकीर्णक में नवदेवताओं, अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु, जिन प्रतिमा, जिनमन्दिर, जिनआगम, जिनधर्म की वंदना के लिए, तीन प्रदक्षिणा, चार शिरोनति, तीन शुद्धि दो नमस्कार बारह आवर्त, इत्यादि नित्य-नैमित्तिक क्रियाओं का वर्णन हैं।

दश वैकल्पिक प्रकीर्णक में साधु के आचार तथा आहार की शुद्धि का दश विशेष कालों से संम्बंधित वर्णन है।

उत्तराध्ययन प्रकीर्णक में चार प्रकार के उपसर्ग तथा बाईस परिषहों के सहने का विधान उनका फल तथा उनसे संबंधित प्रश्नों के उत्तर का वर्णन है।

कल्पव्यवहार प्रकीर्णक में साधु के योग्य आचरण का विधान, अयोग्य के सेवन का प्रायश्चित का वर्णन हैं।

कल्प्याकल्प्य प्रकीर्णक में साधु को द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की अपेक्षा क्या योग्य है क्या अयोग्य है ऐसा भेदरूप वर्णन है।

महाकल्प प्रकीर्णक में जिनकल्पी उत्कृष्ट संहनन सहित महामुनियों के योग्य द्रव्य क्षेत्र काल भाव के प्रभाव से उत्कृष्ट चर्या से वर्तते प्रतिमा योग, आतापन योग, त्रिकालयोग (वृक्षतल) आदि का आचरण तथा स्थविरकल्पी साधुओं की दीक्षा, शिक्षा संघ का पोषण, यथायोग्य शरीर का समाधान, आत्म-संस्कार, सल्लेखना तथा उत्मार्थ को प्राप्त उत्तम आराधना का वर्णन है।

पुण्डरीक प्रकीर्णक में भवनवासी व्यंतर, ज्योतिषि, कल्पवासी देवों में उत्पत्ति के कारण दान, पूजा, तपश्चरण, अकाम निर्जरा, सम्यक्त्व, संयम आदि का वर्णन तथा उनके उपजने के स्थान का वैभव आदि का वर्णन है।

महापुण्डरीक प्रकीर्णक में महर्द्धिक देवों में जो इन्द्र, प्रतीन्द्र, अहमिन्द्र आदि में उत्पत्ति के कारण तप विशेष आदि का वर्णन है।

निषिद्धिका प्रकीर्णक में प्रमाद से उत्पन्न दोषों का त्याग करके विशुद्धता के लिए अनेक प्रकार से प्रायश्चित का वर्णन है ऐसा प्रायश्चित शास्त्र है। ऐसे द्वादशांग शास्त्र का ज्ञान तप के प्रभाव से होता है जो आप स्वंय पढ़ते हैं, अन्य बुद्धिमान शिष्यों को पढ़ाते हैं उन बहुश्रुतों की भक्ति संसार परिभ्रमण का नाश करने वाली है। शास्त्रों की भक्ति भी बहुश्रुत भक्ति है। गुणों में अनुराग करना वह भक्ति है जो शास्त्रो में अनुराग करके पढ़ते हैं शास्त्र के अर्थ को अन्य को बतलाते हैं धन खर्च करके शास्त्रों को लिखाते हैं (छपाते हैं) अपने हाथ से शास्त्र लिखते हैं, अक्षरों की हीनता, अधिकता, मात्रा आदि का शोधन करते हैं, पढ़ने वालों-बांचने वालों की आजीविका की स्थिरता करके शास्त्रों के ज्ञानाभ्यास का प्रवर्तन कराते हैं, स्वाध्याय करने के लिए निराकुल स्थान देते हैं वह ज्ञानावरण कर्म का नाश करने वाली बहुश्रुत भक्ति है। शास्त्रों को

बहुमूल्य वस्त्रों में पुट्ठा लगाकर कपड़ा सहित डोरी से इस प्रकार बांधना जिससे देखने सुनने वाले पढ़ने वालों का मन प्रसन्न हो जाये वह सब बहुश्रुत भक्ति है स्वर्ण से मनोहर गढ़े हुए तथा पाँच प्रकार के रत्नों से जड़ित, सैकड़ों फूलों से शास्त्र की सारभूत पूजा करना ऐसी श्रुतभक्ति संशय आदि रहित सम्यग्ज्ञान उत्पन्न कराकर क्रम से केवलज्ञान प्रकट करा देती है। जो पुरुष अपने मन को इन्द्रियों के विषयों से रोककर बारम्बार श्रुत देवता (जिनवाणी) के गुणों का स्मरण करके भली प्रकार से बनाये पवित्र अर्घ के द्वारा श्रुत देवता की पूजा करता है वह समस्त श्रुत का पारगामी होकर केवलज्ञान प्राप्त कर निर्वाण प्राप्त करता है।

इस प्रकार अंग प्रविष्ट आदि और अंग बाह्य रूप पूर्ण श्रुत ज्ञान है। अंग बाह्य का परिणाम बहुत थोड़ा है इस कारण श्रुत मुख्य रूप से द्वादश अंग रूप कहा जाता है तथा बारहवें दृष्टिवाद अंग में 14 पूर्वों का मुख्य स्थान है उनका परिणाम भी बहुत बड़ा है।

उपाध्याय परमेष्ठी 11 अंग 14 पूर्वों के ज्ञाता होते हैं। इस कारण 11 अंग 14 पूर्व रूप शास्त्रों की जानकारी के रूप में उनके 25 गुण कहे जाते हैं।

उपाध्याय बहुत श्रुतों (शास्त्रों) के पारंगत विद्वान होते हैं। इसलिए उनका नाम बहुश्रुत भी है। उपाध्याय की भक्ति करना उनका आदर सत्कार करना विनय आदि करना बहुश्रुत भक्ति है।

बहुश्रुत भक्ति से विविध शास्त्रों का अंग पूर्वों का ज्ञान प्राप्त होता है यही बहुश्रुत भक्ति तीर्थंकर प्रकृति के बंध के कारण हैं। अधोलिखित दृष्टान्तों से बहुश्रुत भक्ति के महत्त्व का पता चलता है :-

मृदु वचन

एक समय की बात है कि एक व्यक्ति व्यापार करने जा रहा था। वह रास्ता भूल गया और खड़ा होकर सोचने लगा। उसी समय एक व्यक्ति आया व्यापारी को कुछ शान्ति मिली उसने उस व्यक्ति से पूछा कि अमुक गाँव को कौन सा रास्ता जाता है। तब वह व्यक्ति बोला जा चला जा बायें हाथ को सीधा ही तो रास्ता है घर से चल दिया रास्ता जानता नहीं, खड़ा हुआ दूसरों से टक्कर मार रहा है। ऐसे शब्द सुनकर व्यापारी के मन में बहुत दुःख हुआ। उसने चाहे रास्ता ठीक ही बताया हो परन्तु वह एक कदम भी आगे नहीं बढ़ पाया। वचन में कटुता होने से कोई लाभ नहीं हुआ। थोड़ी देर बाद दूसरा व्यक्ति आया उससे व्यापारी ने रास्ता पूछा वह बोला पथिक रास्ता भूल गये हो, बायें हाथ से चले जाओ। एक पुल आयेगा उसे पार कर दायें हाथ को रास्ता मुड़ता है आगे एक खजूर का वृक्ष आयेगा उससे आगे थोड़ी दूर गाँव है। उसके कहते ही व्यापारी प्रसन्न हो गया और चलने लगा। रास्ता तो दोनों ने ही बताया लेकिन बोलने में अन्तर

था मधुर वचन बोलना चाहिए। अच्छे ज्ञानी का सम्पर्क एवं भक्ति करना चाहिए। श्रुतभक्ति संशयादि रहित सम्यग्ज्ञान को उत्पन्न करती है।

बन्धुओं! ज्ञान प्राप्त करके समीचीनता का ज्ञान होता है और ज्ञान के द्वारा ही थोड़ा पुरुषार्थ करके अधिक लाभ प्राप्त किया जा सकता है। चिन्तन करने की क्षमता में विकास होता है सही समय पर सही निर्णय लेने की योग्यता को प्राप्त किया जा सकता है बल्कि यूं कहा जाय कि ज्ञान आत्मा का प्रथम गुण है और ज्ञान के द्वारा अपनी आत्मा की समीपता प्राप्त की जा सकती है। और अपनी आत्मा की समीपता प्राप्त करना ही आत्म कल्याण है। मनुष्य जीवन की सार्थकता है। इसलिए मानव जीवन को सार्थक बनाओ और स्वयं को स्वयं में स्थिर कर के ज्ञान गुण का आनन्द भोगो।

प्रवचनभक्ति भावना

आज की भावना है प्रवचनभक्ति भावना। भावना तभी भाई जा सकती है जब उसके बारे में पूर्ण ज्ञान हो। इसलिए आइये आज की भावना के विषय में जाने। कहा गया है–

द्वादश अंग उपांग सदागम, ताकी निरंतर भक्ति करावे।
वेद अनुपम चार कहे, अर्थ भले मन मांहि ठरावे॥
पढ़ बहु भाव लिखो निज अक्षर, भक्ति करी बड़ि पूज रचावे।
ज्ञान कहे जिन आगम-भक्ति करो सद्‌बुद्धि बहुश्रुत पावें॥

बारह अंग और उपांगों वाले सच्चे आगम की निरन्तर (प्रतिदिन) भक्ति करना चाहिए, उपमा रहित आगम के चार अनुयोग (प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग, द्रव्यानुयोग) का भली प्रकार (निरतिचार) स्वाध्याय करना चाहिए। विनय पूर्वक, भाव सहित अध्ययन कर उसके अनुसार आचरण करना चाहिए और जिनवाणी की भक्तिपूर्वक पूजा करना चाहिए। ज्ञानी लोग कहते हैं कि जो आप्त द्वारा कहे आगम की भक्ति करता है उसको सम्यग्ज्ञान की प्राप्ति होती है।

प्रवचन-भगति करै जो ज्ञाता, लहै ज्ञान परमानन्द-दाता।

जो प्रवचन भक्ति करता है वह ज्ञान के परम अलौकिक आनन्द को प्राप्त करता है।

वचन और प्रवचन में बड़ा ही अन्तर है वचन तो साधारण बोले जाने वाले शब्द हैं और प्रवचन का संबंध तो आत्मिक ज्ञान है, आत्मा से है। आत्मा के ज्ञान गुण से निकले विशेष शब्द

प्रवचन कहलाते हैं। भगवान ऋषभनाथ से महावीर स्वामी तक सभी तीर्थंकरों से खिरे प्रवचन सरस्वती बन गये और श्रुत कहलाये। श्रुत की आराधना एक महान कार्य है।

अनात्मार्थं विना रागैः शास्ता शास्ति सतो हितम्।
ध्वनन् शिल्पिकरस्पर्शान्मुरजः किमपेक्षते।।

शास्ता जो धर्मोपदेश रूप शिक्षा देने वाले अरहन्त आप्त हैं वे अनात्मार्थ अर्थात् बिना प्रयोजन तथा शिष्यों में राग भाव के हित रूप शिक्षा देते हैं जैसे वाद्य बजाने वाले के हाथ का स्पर्श मात्र पाकर मृदंग अनेक प्रकार से ध्वनि करने लगता है किन्तु बदले में कुछ नहीं चाहता है और न श्रोताओं से राग करता है।

गुण के दो भेद हैं–(1) द्रव्यश्रुत (2) भावश्रुत

पुदगल द्रव्य स्वरूप अक्षर पदादि रूप से द्रव्य श्रुत है और उनके सुनने से श्रुतज्ञान की पर्याय रूप से उत्पन्न हुआ ज्ञान भावश्रुत है।

प्रवचन का अर्थ जिनेन्द्र सर्ववीतराग द्वारा प्रणीत आगम है जिसमें छह द्रव्यों, पाँच अस्तिकायों, सात तत्त्वों, नौ पदार्थों का वर्णन है तथा कर्मों की प्रकृतियों के नाश का वर्णन है वह आगम है। जिसके प्रदेश बहुत होते हैं उसे अस्तिकाय कहते हैं जो निरन्तर गुण पर्यायों को प्राप्त हो उसका नाम द्रव्य है। वस्तुपना के द्वारा जो निश्चय करते हैं उसका नाम पदार्थ है। जिसमें स्वभाव रूपपना है उसका नाम तत्त्व है इनका विशेष कथन आगे प्रकरण पाकर करेंगे। जैसे अंध कारयुक्त महल में हांथ में दीपक लेकर देखने पर सभी पदार्थ दिखाई देते हैं उसी प्रकार तीन लोक रूप मंदिर में प्रवचनरूप दीपक द्वारा सूक्ष्म, स्थूल, मूर्तिक, अमूर्तिक सभी पदार्थ दिखाई देते हैं। प्रवचनरूप नेत्रों द्वारा ही मुनीश्वर चेतन आदि गुणों के धारक समस्त द्रव्यों का अवलोकन करते हैं जिनेन्द्र के परमागम को योग्य काल में बहुत विनय से पढ़ना वह प्रवचन भक्ति है।

कैसा है प्रवचन जिसमें छह द्रव्य, सात तत्त्व, नौ पदार्थों के भेदरूप समस्त गुण पर्यायों का अनन्त भूतकाल, अनंत भविष्यकाल तथा वर्तमानकाल स्वरूप का वर्णन होता है।

जिसमें अधोलोक की सात पृथ्वियों व नारकियों के रहने के उत्पत्ति के स्थानों का, आयु, काय, वेदना, गति आदि, भवनवासी देवों के सात करोड़ बहत्तर लाख भवनों का उनकी आयु, काय, वैभव, विक्रिया, भोग का तथा अधोलोक का वर्णन होता है।

जिसमें मध्यलोक संबंधी असंख्यातद्वीप समुद्रों का उनमें मेरू, पर्वत, नदी, सरोवर आदि का कर्मभूमि के विदेह क्षेत्रों का, भोगभूमि का, छियानवै अन्तद्वीप सम्बंधी मनुष्यों का कर्मभूमि के भोगभूमि के मनुष्यों का कर्तव्य, आयु, काय सुख-दुःख का, तथा तिर्यंचों का व्यतरों के निवास वैभव, परिवार आयु काय सामर्थ्य विक्रिया का वर्णन है। ज्योतिषि देव उनके विमान, वैभव,

परिवार, आयु, कायादि का, सूर्य चंद्रमा ग्रह नक्षत्रों का चार क्षेत्र संबंधी संयोग आदि का वर्णन है।

जिसमें उर्ध्वलोक के श्रेष्ठ पटलों का स्वर्ग के अहमिन्द्रों का, इन्द्रादि देवों का वैभव, परिवार आयु काय शक्तिगति सुखादि का वर्णन हैं। इस प्रकार सर्वज्ञ द्वारा प्रत्यक्ष देखे तीन लोकवर्ती समस्त द्रव्यों के उत्पाद, व्यय, ध्रौव्यपनादि समस्त प्रवचन में वर्णन किया है। कर्मों की प्रकृतियों का बंध होने का, उदय का, सत्त्व का, संक्रमणादि का समस्त वर्णन आगम में है। संसार से उद्धार करने वाले रत्नत्रय के स्वरूप व रत्नत्रय प्राप्त होने के उपाय का वर्णन परमागम में ही है। गृहस्थ अवस्था में श्रावक धर्म की जघन्य, मध्यम, उत्कृष्टचर्या का, तथा श्रावकों के व्रतसंयमादि व्यवहार परमार्थरूप प्रवृत्ति का वर्णन प्रवचन से ही जानते हैं।

गृह के त्यागी मुनिराजों के महाव्रतादि अट्ठाईस मूलगुण, चौरासी लाख उत्तर गुण, स्वाध्याय ध्यान, आहार-विहार, सामायिक आदि चारित्र चर्या का धर्मध्यान आदि का सल्लेखना मरण की समस्त चर्या का वर्णन प्रवचन में हैं।

चौदह गुणस्थानों का स्वरूप, चौदह जीव समास, चौदह मार्गणाओं का वर्णन प्रवचन से ही जाना जाता है। जीवों के एक सौ साढ़े निन्यानवै लाख करोड़ कुल, चौरासी लाख जाति के योनि स्थान प्रवचन से ही जाने जाते हैं। चार अनुयोग, चार शिक्षाव्रत तीन गुणव्रत तथा चार गतियों के भेद सम्यकदर्शन, सम्यकज्ञान, सम्यकचारित्र का स्वरूप भगवान के कहे आगम से ही जानते हैं।

बारह भावना, बारह, तप, बारह अंग, चौदह पूर्व, चौदह प्रकीर्णकों का स्वरूप आगम से ही जाना जाता है। उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी काल का चक्र, इसमें छह छह काल के भेदों में पदार्थ की परिणति के भेदों का स्वरूप आगम से ही जाना जाता है। कुलकर, चक्रवर्ती, तीर्थंकर, बलदेव, वासुदेव, प्रतिवासुदेव, इत्यादि की उत्पत्ति, प्रवृत्ति, धर्मतीर्थ का प्रवर्तन, चक्री का साम्राज्य, वासुदेव आदि के वैभव, परिवार, ऐश्वर्य आदि आगम से ही जानते हैं। जीवादि द्रव्यों का प्रभाव आगम से ही जानते हैं।

आगम की भक्तिपूर्वक सेवा के बिना मनुष्य इसी जन्म में ही पशु के समान है। भगवान सर्वज्ञ वीतराग देव ने समस्त लोक-अलोक के अनंतानंत द्रव्यों को भूत भविष्य, वर्तमान कालवर्ती पर्यायों सहित एक समय में युगपत् क्रमरहित हस्त की रेखा समान प्रत्यक्ष जाना देखा है उसी सर्वज्ञ कथित समस्त वस्तु के स्वरूप को सातऋद्धि व चार ज्ञान के धारी गणधर देव ने द्वादशांगरूप में रचना की है।

यहाँ ऐसा विशेष जानना–जो देवाधिदेव, परमपूज्य, धर्मतीर्थ के प्रवर्तन करने वाले अनन्त ज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तवीर्य, अनंतसुखरूप अंतरंग लक्ष्मी समवशरण आदि बहिरंग लक्ष्मी से

मंडित इन्द्रादि असंख्यात देवों के समूह से वंदित, चौतीस अतिशय, आठ प्रातिहार्यादि अनुपम ऋद्धि सहित क्षुधा-तृषादि अठारह दोषरहित समस्त जीवों के परम उपकारक लोकालोक के अनन्तानंत द्रव्यों के गुण पर्यायों के क्रमरहित युगपत ज्ञान के धारक अनंतशक्ति के धारक संसार में डूबते हुए प्राणियों को हस्तावलंबन देने वाले समस्त जीवों के दयालु, परमात्मा, परमेश्वर परमब्रह्म परमेष्ठी स्वयंभू, शिव अजर, अमर, अरहंत आदि नामों से प्रसिद्ध अशरण प्राणियों के परमशरण अंतिम परम औदारिक शरीर में विराजमान गणधर आदि मुनियों द्वारा जिनके चरण वंदनीय हैं। कण्ठ, तालु, ओष्ठ, जिह्वा आदि के हलन चलन रहित इच्छा बिना अनेक प्राणियों के पुण्य के प्रभाव से उत्पन्न आर्य-अनार्य सभी देशों के प्राणियों की समझ में आने वाली समस्त पाप की घातक दिव्यध्वनि द्वारा भव्य जीवों के मोहान्धकार का नाश करने वाले चौंसठ चमर ढ़ोराये जाते हुए, तीन छत्र आठ प्रातिहार्य के धारक रत्नमय सिंहासन पर चार अंगुल अधर विराजमान भगवान सकल पूज्य परम भट्टारक श्री वर्धमान देवाधिदेव ने मोक्षमार्ग को प्रकाशित करने के लिए समस्त पदार्थों का स्वरूप सातिशय दिव्यध्वनि द्वारा प्रकट किया है। उसी समय निकटवर्ती निर्ग्रन्थ ऋषीश्वरों द्वारा वंदनीय, सात ऋद्धियों से समृद्ध चार ज्ञान के धारक श्री गौतम गाणधर देव ने कोष्ठबुद्धि आदि ऋद्धियों के प्रभाव से भगवान के द्वारा कहे गये अर्थ को विस्मरण नहीं करते हुए भगवान के द्वारा कहे गये अर्थ को धारण कर द्वादशांग रूप रचना रची है।

जब चतुर्थ काल के तीन वर्ष आठ माह पंद्रह दिन बाकी रह गये थे तब श्री वर्धमान स्वामी निर्वाण को प्राप्त हुए। पश्चात् बासठ वर्ष तक गौतम स्वामी, सुधर्माचार्य, जम्बू स्वामी-इन तीन केवलियों ने केवलज्ञान के द्वारा समस्त प्ररूपणा की।

उसके बाद केवलज्ञान होने का अभाव हो गया। उसके बाद क्रम से विष्णु, नंदिमित्र, अपराजित गोवर्धन, भद्रबहु-ये पाँच मुनि द्वादशांग के धारक श्रुतकेवली हुए। उनका समय क्रम से कुल एक सौ वर्ष का रहा। उनके समय में केवली भगवान के समान ही पदार्थों का ज्ञान और प्ररूपणा रही।

उसके बाद विशाखाचार्य, प्रोष्ठिलाचार्य, क्षत्रिय, जयसेन, नागसेन, सिद्धार्थ, धृतिषेण, विजय, बुद्धिमान, गंगदेव, धर्मसेन-ये ग्यारह परम निर्ग्रन्थ मुनीश्वर दशपूर्वों के धारी क्रम से कुल एक सौ तेरासी वर्ष में हुए। उन्होंने भी यथावत् प्ररूपणा की।

उसके बाद नक्षत्र, जयपाल, पांडुनाम, ध्रुवसेन, कंसाचार्य-ये पाँच महामुनि ग्यारह अंग के ज्ञान के पारगामी अनुक्रम से दो सौ बीस वर्ष में हुए उन्होंने भी यथावत् प्ररूपणा की। उसके बाद सुभद्र, यशोभद्र, महायश, लोहाचार्य आदि ये पाँच महामुनि एक अंग के ज्ञान के पारगामी अनुक्रम से एक सौ अठारह वर्ष में हुए।

इस प्रकार भगवान महावीर जिनेन्द्र के निर्वाण प्राप्त करने के पश्चात छह सौ तेरासी वर्ष तक अंगों का ज्ञान रहा। उसके पश्चात इस काल के निमित्त से बुद्धि, वीर्य, आदि की मंदता हो जाने पर श्री कुंदकुंद आदि अनेक निर्ग्रन्थ वीतरागी मुनि अंग की वस्तुओं के ज्ञानी हुए। उन्हीं की परम्परा में श्री उमास्वामी हुए। ऐसे पाप से भयभीत, ज्ञान विज्ञान, सम्पत्र, परमसंयम गुण मंडित, गुरुओं की परिपाटी से श्रुत के अविच्छिन्न अर्थ के धारक वीतरागियों की परम्परा चली आई।

उनमें श्री कुन्दकुन्द स्वामी ने समयसार, प्रवचनसार, नियमसार, पञ्चास्तिकाय, अष्टपाहुड़ आदि अनेक ग्रंथ बनाये हैं जो आज प्रत्यक्ष पढ़े जा रहे हैं। इन ग्रन्थों की विनयपूर्वक आराधना करना प्रवचन भक्ति है।

श्री उमास्वामी ने दस अध्यायों में तत्त्वार्थसूत्र बनाया है। उस तत्त्वार्थसूत्र पर श्री पूज्यपाद स्वामी ने सर्वार्थसिद्धि नाम की टीका बनाई है। तत्त्वार्थसूत्र पर ही श्री अकलंकदेव ने सोलह हजार श्लोकों में राजवार्तिक टीका बनाई है।

श्री समन्तभद्र स्वामी ने एक सौ पंद्रह श्लोकों में देवागम स्तोत्र बनाया है, उसे आप्तमीमांसा भी कहते हैं। श्री अकलंक देव ने देवागम स्तोत्र पर अष्टशती नाम की टीका बनाई है उसी देवागम अष्टशती पर श्री विद्यानंदि जी ने अष्टसहस्री नाम की टीका बनाई है। श्री विद्यानंदि स्वामी ने आप्तपरीक्षा नाम का ग्रन्थ बनाया है। श्री माणिक्यनंदि आचार्य ने परीक्षामुख ग्रन्थ बनाया है। परीक्षामुख की बड़ी टीका भी श्री प्रभाचंद आचार्य ने प्रमेयकमलमार्तण्ड नाम से बनाई है। उसी की छोटी टीका श्री अनन्तवीर्य आचार्य ने प्रमेयचंद्रिका नाम से बनाई है। श्री अकलंकदेव आचार्य ने लघीयस्त्रय ग्रन्थ बनाया है उस पर भी श्री प्रभाचंद आचार्य ने सोलह हजार श्लोकों में न्यायकुमुदचन्द्र नाम का ग्रन्थ बनाया है तथा और भी न्याय के कई ग्रन्थ प्रमाणपरीक्षा, प्रमाणनिर्णय, प्रमाणमीमांसा, बालप्रबोधिनी, न्यायदीपिका इत्यादि जिनधर्म के स्तंभ, प्रमाण से द्रव्यों के निर्णय कराने वाले अनेकांत से भरे हुए द्रव्यानुयोग के ग्रन्थ जयवंत प्रवर्तते हैं।

करणानुयोग के गोम्मटसार, लब्धिसार, क्षपणसार, त्रिलोकसारादि अनेक ग्रन्थ हैं। चरणानुयोग के मूलाचार, आचारसार, रत्नकरण्डश्रावकाचार, भगवतीआराधना, स्वामीकार्तिकेयानुप्रेक्षा, आत्मानुशासन, पद्मनन्दिपञ्चविंशतिका, पुरुषार्थसिद्ध्युपाय, ज्ञानार्णव इत्यादि अनेक ग्रन्थ हैं। जैनेन्द्र व्याकरण अनेकांत से भरा हुआ है। प्रथमानुयोग के श्री जिनसेनाचार्य कृत आदिपुराण, श्री गुणभद्राचार्यकृत उत्तरपुराण इत्यादि अनेक ग्रन्थ हैं उनको बड़ी भक्ति से पठन करना, श्रवण करना, व्याख्यान करना, वंदना करना, लिखना शोधना, वह सब प्रवचन भक्ति है।

मेरा शास्त्र के अभ्यास में जो दिन जाता है वह धन्य है। परमागम के अभ्यास बिना हमारा जो समय जाता है वह वृथा है। स्वाध्याय बिना शुभ ध्यान नहीं होता है। शास्त्र के अभ्यास बिना

पाप से नहीं छूटता है, कषायों की मंदता नहीं होती हैं शास्त्र के सेवन बिना संसार, शरीर, भोगों से वैराग्य उत्पन्न नहीं होता है। समस्त व्यवहार की उज्ज्वलता व परमार्थ का विचार आगम के सेवन से ही होता है। श्रुत के सेवन से जगत में मान्यता, उच्चता, उज्ज्वल यश, आदर सत्कार प्राप्त होता है सम्यग्ज्ञान ही परम बांधव हैं उत्कृष्ट धन है परम मित्र हैं। सम्यग्ज्ञान अविनाशी धन है स्वदेश में, परदेश में, सुख अवस्था में दुख अवस्था में, आपदा में परम शरण सम्यग्ज्ञान ही है। स्वाधीन अविनाशी धन ज्ञान ही है।

इसलिए शास्त्रों के अर्थ का ही सेवन करो, अपनी आत्मा को नित्यज्ञान दान ही करो अपनी संतान को तथा शिष्यों को ज्ञान दान ही करो। ज्ञानदान देने के समान अन्य का दान नहीं है। धन तो मद उत्पन्न करता है, विषयों में उलझाता है, दुर्ध्यान कराता है, संसार रूप, अंधकूप में डुबोता है। अत: ज्ञानदान प्रमुख दान है।

जो नित्य एक श्लोक, आधा श्लोक, एक पद, मात्रा का भी अभ्यास करता है वह शास्त्रों के अर्थ का पारगामी हो जाता है। विद्या ही परम देवता है। जो माता-पिता ज्ञानाभ्यास कराते हैं उन्होंने मानों करोड़ों का धन दिया है। जो सम्यग्ज्ञान के दाता गुरु हैं उनके उपकार के समान तीन लोक में कोई दूसरा उपकार नहीं है जो ज्ञान के देने वाले गुरु के उपकार का लोप करता है उसके समान कृतघ्नी दूसरा नहीं है पापी नहीं है। अत: प्रवचन भक्ति ही परम कल्याण है। प्रवचन के सेवन बिना मनुष्य पशु समान है। यह प्रवचन भक्ति हजारों दोषों का नाश करने वाली है। इस भक्ति का भक्तिपूर्वक अर्घावतारण करो। इसी से सम्यग्दर्शन की उज्ज्वलता होती है।

द्रव्यश्रुत एक चाबी की तरह है जिससे मोह रूपी ताले को खोला जा सकता है। चाबी मिलने पर ताला खुल ही जाय यह बात नहीं, उस चाबी का प्रयोग यदि दूसरे ताले में करेंगे तो ताला कभी नहीं खुलेगा। आज तक हमने यही किया है अन्यथा कल्याण हो जाता। इसका महत्त्व तो तभी है जब आप इसके सहारे अपनी अलौकिक निधि को प्राप्त कर ले। इस शुद्ध बुद्ध निरंजन निराकार आत्माराम का अनुभव कर ले। दूध में घी है परन्तु घी निकालने के लिए दूध को मथना पड़ेगा। इसी प्रकार भावश्रुत की उपलब्धि के लिए द्रव्यश्रुत की सहायता से मंथन करना होगा। द्रव्यश्रुत रस्सी और मथनी की तरह है। सरस्वती की उपमा दीपक से दी गयी है जो हमारे मार्ग को प्रशस्त करती है। मार्ग की बाधाओं को दिखाती है परन्तु जिसके हाथ में लालटेन (दीपक) है और मद में मदहोश हो तो किसी बाधा से बाधित हो जाये। इसी प्रकार इन्द्रियों के अधीन होकर अथवा कषायों के वशीभूत होने के कारण हम बाधाओं से बाधित हो रहे हैं। जो वचन कषायों का शमन न कर सकें वे वचन व्यर्थ हैं। कषायों के शमन से ही भाव श्रुत की उत्पत्ति होती है। अविनाशी जीव के लिए जितना भावश्रुत लाभदायक, कार्यकारी, श्रेयस्कर है शाब्दिक अक्षर ज्ञान नहीं। जैसा कि शिवकुमार का उदाहरण है–

भेद ज्ञान होते ही शिवकुमार तपस्या में लग गये और केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्ष चले गये। प्रत्येक प्राणी को भेद विज्ञान की कला में पारंगत होना चाहिए। भावश्रुत की प्राप्ति के लिए अथक प्रयास करना चाहिए। शरीर में कालिमा और आत्मा में प्रकाश है जिस क्षण यह भेद ज्ञान हो जायेगा उस समय न शरीर की लालसा रहेगी और न भोगों की। मोह भी विलीन और दुःख भी विलीन हो जायेगा। जिस प्रकार सूर्य के उदित होते ही अंधकार समाप्त हो जाता है। परन्तु आजकल विचारधारा ऐसी हो गयी है कि शरीर अलग और आत्मा अलग। शरीर को खूब खिलाओ, पिलाओ आत्मा का कुछ भी नहीं बिगड़ेगा भेद विज्ञान का अर्थ यह लगाया जा रहा है।

पं. बनारसीदास जी कहते हैं कि–

ग्यान कला जिनके घट जागी, ते जग मांहि सहज वैरागी।
ग्यानी मगन विषै सुख मांही, यह विपरीति संभवै नांही॥

भेद विज्ञान की महिमा बड़ी विचित्र है। आज प्राणियों की दशा उस बुढ़िया के समान है जिसकी सुई खो गई है और सुई पास में पड़ी है परन्तु ढूँढ़ कहीं और रही है। इसी प्रकार वह अनमोल निधि हमारे अन्दर है परन्तु ढूँढ़ हम बाहर रहे हैं।

द्रव्यश्रुत तो ढाल की तरह है और भावश्रुत तलवार की तरह है परन्तु ढाल और तलवार लेकर रण में उतरने वाला योद्धा अगर होश में नहीं हो तो वह उनका प्रयोग नहीं कर पायेगा रक्षा करने के बजाय घातक बन जायेगा इसी प्रकार द्रव्यश्रुत से अपनी रक्षा करके प्राणी भावश्रुत में रहने का प्रयास करे यही कल्याण मार्ग है।

बहुत से लोग कहते हैं कि पंचम काल में तो मुक्ति नहीं होती। ठीक है कदाचित सही है लेकिन द्रव्यमुक्ति भले ही नहीं हो परन्तु भाव मुक्ति तो अवश्य हो सकती है। आहार, निद्रा, भय, मैथुन धनादि जिनमें भाव लगा है उनका विमोचन कर दो, तो छुटकारा पा जाओगे उन पदार्थों से जिनको आप पकड़े बैठे हो अपने परिणामों में उन महान तीर्थंकरों, तपस्वियों के वचनों को जीवन में उतारना ही सच्ची प्रवचन भक्ति है।

चार सूरदास

एक गाँव में चार अंधे बड़े ही गुणवान और परस्पर में मित्र थे। चारों मित्र काम की तलाश में घूमते हुए एक राज्य में पहुँच गये। राजा ने पूछा तुम लोग क्या काम कर सकते हो? तब उन्होंने कहा कि महाराज! हम चारों में एक अश्व परीक्षक, दूसरा रत्न परीक्षक, तीसरा स्त्री परीक्षक और चौथा पुरुष परीक्षक है। तब राजा ने उनके गुणों को जानकर प्रत्येक को एक सेर

आटा, एक छटांक दाल, एक तोला घी और एक तोला मसाला प्रतिदिन देने की आज्ञा दे दी और राज्य की सेवा में रख लिया। अब चारों सूरदास आनन्द मनाते उस देश में रहने लगे।

संयोग से एक जौहरी बहुमूल्य रत्न बेचने आया तब राजा ने रत्न परीक्षक से रत्नों की परीक्षा करने को कहा। रत्न परीक्षक ने मूल्यांकन के आधार पर रत्नों का बंटवारा कर दिया। राजा ने उससे पूछा कि सत्यता कैसे आंकी तब उसने कहा जो असली रत्न हैं वे चोट पड़ने पर नहीं टूटेंगे तथा नकली रत्न टूट जायेंगे। परीक्षण किया गया तो सत्य पाने पर राजा ने उस रत्न परीक्षक सूरदास की घी की मात्रा बढ़ा दी।

इसी प्रकार एक घोड़ों का व्यापारी घोड़े बेचने आया तब राजा ने अश्व परीक्षक से घोड़े पहचानने के लिए कहा। परीक्षक ने एक घोड़ा अलग किया और कहा कि यह घोड़ा पानी में प्रवेश करते ही बैठ जायेगा तब उस घोड़े को जल में प्रवेश कराया तो घोड़ा जल में प्रवेश करते ही बैठ गया।

राजा ने पूछा तुमने कैसे अनुमान लगाया तो परीक्षक बोला मैंने घोड़े की नाड़ियाँ और अंगों को टटोलकर देखा तो मुझे इसके पेट की एक नस ऐसी मिली जो सामान्य से अधिक मोटी थी तब मैंने अनुमान लगाया कि इतनी मोटी नस तो भैंस की पायी जाती है। इस प्रकार अनुमान लगाया कि इस घोड़े की माँ ने भैंस का दूध पिया है जिसकी गर्मी का अंश इस घोड़े में भी आ गया है। इस प्रकार राजा ने प्रसन्न होकर इस सूरदास को भी घी की मात्रा बढ़ा दी।

कुछ समय बाद राजा ने स्त्री परीक्षक से रानी की परीक्षा करवाई। तब वह बोला हे राजन! तुम्हारी रानी क्षत्राणी नहीं है अर्थात् रानी की माता पिता एक वर्ण के नहीं है अथवा यदि पिता क्षत्रिय है तो माता कोई और है।

तब राजा ने कहा तुमने कैसे जाना? तब सूरदास बोला मैंने उसके चलने, उठने, बैठने की आवाज सुनकर अनुमान लगाया कि इसकी क्रियाएं क्षत्राणी से मेल नहीं खाती। तब राजा रानी के पास पहुँचा और प्रश्न किया कि तुम अपनी वास्तविकता सही-सही ब्यान कर दो इसमें तुम्हारा कोई दोष नहीं तुम्हें मैं कोई दण्ड नहीं दूँगा।

तब रानी ने कहा कि मैंने बांदी की कोख से जन्म लिया है। जिस कन्या से आपका विवाह होना था वह ठीक विवाह के समय मृत्यु को प्राप्त हो गयी तब उसकी मृत्यु की बात छिपाकर आपका विवाह मेरे साथ कर दिया गया। तब राजा ने सारी बात शान्तिपूर्वक सुनी और दरबार में जाकर उस सूरदास के घी की मात्रा भी बढ़ा दी।

अन्त में पुरुष परीक्षक से अपने बारे में पूछा तब वह बोला हे राजन! आप परीक्षा न करवायें तो अच्छा है। अगर आप नहीं मानते तो जितना मैं बताऊँ उसी पर संतोष कर लेना। वैसे तो मैंने आपका परीक्षण पहले ही कर लिया था।

इसके बाद परीक्षक ने परीक्षण करके कहा कि आपके अन्दर बनियों जैसा स्वभाव है। इतना सुनकर राजा के मन में उथल-पुथल मचने लगी। राजा अपने मन में विचार करने लगा कि सच है अग्नि, जल, नदी, सर्प, सिंह और स्त्री, जुआरी, चोर और जार (पर स्त्रीगामी) आदि कुटिल स्वभाव वालों का क्या विश्वास? यह विचारता राजा राजमाता के पास पहुँचा और बड़ी नम्रता से पूछा कि माता भविष्य बड़ा बलवान है समय की चपेट में बड़े-बड़े बलवान, देव, चक्रवर्ती आदि भी आ जाते हैं। यदि इसी प्रकार आप भी किसी चपेट में आ गई हों तो कोई असम्भव नहीं। सच-सच बयान करना कि मेरे स्वभाव में क्षत्रियोचित गुण क्यों नहीं है?

राजमाता ने कहा कि हे पुत्र! एक दिन मैं छत पर बैठी श्रृंगार कर रही थी उसी समय कल्याणराय सेठ अपनी छत पर बैठा हुआ सुन्दर रागिनी गा रहा था। अचानक उससे मेरी नजर टकरा गई। समय पाकर दुर्भावना ने जन्म लिया और उसी रात्रि तू मेरे गर्भ में आया हो सकता है इस प्रकार आई दुर्भावना का असर तेरे ऊपर पड़ गया हो। मुझ पर विश्वास करो इसके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। इस प्रकार राजा सभी बातों की जानकारी हासिल कर दरबार में आया और इस पुरुष परीक्षक सूरदास का वेतन भी बढ़ा दिया और चारों सूरदास आनन्द से राजा के दरबार में रहने लगे।

उन चारों ने भली भाँति अपनी विद्याएं ग्रहण कीं थीं, यही कारण रहा कि राजा के परीक्षा करने पर वे खरे उतरे हमें भी शास्त्रों का पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिए, अधूरा नहीं।

बन्धुओ, इस प्रकार मात्र छोटी-छोटी घटनाएं अगर जीवन में परिवर्तन ला सकती हैं तो जिन वाणी माता की भक्ति हमें अवश्य जन्म-मरण रूपी दुःख से हमेशा-हमेशा के लिए छुटकारा दिला सकती है और जिनवाणी माता की भक्ति ही प्रवचन भक्ति भावना कहलाती है। इसलिए यदि जन्म-जरा-मृत्यु रूपी रोगों से छुटकारा पाना चाहते हो तो जिनवाणी माता की विनयपूर्वक भक्ति करके अपना नर जीवन सफल बनावें।

आवश्यकापरिहाणि भावना

आज का विषय है आवश्यकापरिहाणि भावना। गृहस्थ और श्रमण दोनों के लिए आवश्यक होते हैं। उनका यहां पर विचार किया जायेगा। विद्वानों ने कहा है-

भाव धरे समता सब जीव सु, स्तोत्र पढ़े मुख से मनहारी।
कायोत्सर्ग करे मन प्रीत सु, वंदन देव-तणों भव तारी॥

ध्यान धरी मद दूर करी, दोउ बेर करे पड़कम्मन भारी।
ज्ञान कहे मुनि सो धनवन्त जु, दर्शन ज्ञान चरित्र उधारी।।

सभी जीवों पर समता भाव धारण करें और मुख से मनको अच्छा लगने वाले स्तोत्र पढ़ें। मन से भवसागर को पार उतारने वाली देव-वन्दना करके कार्योत्सर्ग करें। अहंकार त्यागकर ध्यान करें, दो बार प्रतिक्रमण करें। ज्ञानी जन कहते हैं कि ऐसे मुनि धन्य हैं जो सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र को धारण करते हैं।

षट्आवश्यकाल जो साधै, सो ही रत्न-त्रय आराधै।

जो प्रतिदिन छह आवश्यक का पालन करता है वही रत्नत्रय अर्थात तीन रत्न (सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र) की आराधना करता है।

आवश्यकापरिहाणि दो शब्दों से मिलकर बना है। आवश्यक+अपरिहाणि अपरिहाणि–न छोड़ने योग्य अर्थात् आवश्यकापरिहाणि न छोड़ने योग्य आवश्यक। आवश्यक छह हैं जिनको यथाकाल प्रतिदिन स्वाभाविक क्रम से करते रहना जरूरी होता है। इन आवश्यक कार्यों को समयोचित करने के लिए ज्ञान होना आवश्यक है। इस सम्बन्ध में एक दृष्टान्त देखें–

अनपढ़ बहु

एक परिवार में अनपढ़ अर्थात् अज्ञानी बहु आ गई। उसे इतना ज्ञान नहीं था कि कौन-सा कार्य किस समय करना चाहिए। एक दिन पड़ौस में किसी की मृत्यु हो गयी उसमें उस बहु को भेज दिया सांत्वना देने के लिए। बहु गई और शाब्दिक सांत्वना देकर चली आई, रोई नहीं। सास ने समझाया रोना आवश्यक था बहु। दूसरे दिन पड़ौस में एक बच्चे का जन्म हुआ वहाँ फिर उस बहु को भेज दिया गया। बहु ने वहाँ जाकर रोना शुरू कर दिया। घर आकर सास से उसने सब कुछ बता दिया तब फिर सास ने समझाया कि तुम्हें प्रसन्न होकर गीत गाने चाहिए थे। संयोग की बात पड़ोस के एक घर में आग लग गई। वह बहु वहाँ जाकर गीत गाने लगी और प्रसन्नता व्यक्त की सभी ने उसकी भर्तस्ना की। उस अज्ञानी बहु के ये काम समयोचित नहीं थे। अगर आप अपनी क्रियाओं पर ध्यान न दो तो आप जो धार्मिक क्रियायें करते हैं उनमें अपने को भी उस जैसा ही पाओगे। महर्षि हँसते हैं आपके क्रिया-कलापों के ऊपर क्योंकि आपके सभी कार्य अस्त-व्यस्त हैं, आपको नहीं मालूम कब कौन सा कार्य करना चाहिए।

अन्तिम कुलकर ऋषभनाथ ने कर्मभूमि के प्रादुर्भाव होने पर सभी को छह कार्य करने की शिक्षा दी।

(1) असि (2) मसि (3) कृषि (4) वाणिज्य (5) शिल्प और (6) विद्या।

इस छह कार्यों के आधार पर समाज का तीन भागों में विभाजन हुआ।

1. असि अर्थात् तलवार चलाकर दूसरों की रक्षा करके आजीविका करने वाले क्षत्रिय कहलाये।
2. मसि (लेखन कार्य) कृषि (खेती करना) वाणिज्य (व्यापार करना) द्वारा आजीविका करने वाले वैश्य कहलाये।
3. शिल्प (दस्तकारी अर्थात् हाथ की कारीगरी से वस्तुएं बनाना) और विद्या (गायन, वाद्य, नृत्य, चित्रकारी तथा नटों के व्यायाम आदि) द्वारा आजीविका करने वाले शूद्र कहलाये।

बाद में भरत चक्रवर्ती ने ब्राह्मण वर्ण की स्थापना की, जो कोई भी आजीविका का कार्य नहीं करता था।

शूद्र के दो भेद हो गये। (1) जो शिल्प से आजीविका करते थे वे कारू और जो विद्या से आजीविका करने वाले थे वे अकारू कहलाये। स्पृश्य और अस्पृश्य के भेद से भी उनके दो भेद हो गये। ब्राह्मण, वैश्य और क्षत्रिय ही मुनिधर्म के पात्र बताए गए।

इस प्रकार कर्मभूमि होने पर ऋषभनाथ ने आजीविका को चलाने का उपदेश दिया। इसके अतिरिक्त आत्मकल्याण के लिए उपदेश देते हुए दो धारायें बताई। (1) गृहस्थ धर्म (2) श्रमण धर्म। दोनों के छह-छह आवश्यक बताये जिनके करने से प्राणी मोक्ष मार्ग में आगे बढ़ता है।

गृहस्थ के छह आवश्यक–

देवपूजा गुरूपास्ति स्वाध्यायः संयमस्तपः।
दानं चेति गृहस्थानां षट्कर्माणि दिने-दिने।।

(1) देव पूजा (2) गुरु भक्ति (3) स्वाध्याय (4) संयम (5) तप और (6) दान–ये गृहस्थ के छह आवश्यक हैं।

मुनि के छह आवश्यक–

समता सम्हारे थुति उचारे, वन्दना जिन देव को।
नित करै श्रुति रति, करे प्रतिक्रमण तजे तन अहमेव को।।

सामायिक, स्तवन, वन्दना, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान, कायोत्सर्ग ये मुनि के छह आवश्यक हैं।

सामयिक–देह से भिन्न, ज्ञानमय ही जिसकी देह है। ऐसे परमात्म स्वरूप, कर्म रहित, चैतन्यमात्र शुद्ध जीव का एकाग्रतापूर्वक ध्यान करने वाले मुनि सर्वोत्कृष्ट निर्वाण को प्राप्त होते हैं।

निर्विकल्प शुद्ध आत्मा के गुणों में जिनका मन स्थिर नहीं होता है। ऐसे तपस्वी मुनि छह आवश्यक क्रियाओं को अच्छी तरह अंगीकार करें तथा आते हुए अशुभ कर्मों के आस्रव को टाले-रोकें।

प्रथम तो सुन्दर-असुन्दर वस्तु में तथा शुभ-अशुभ कर्म के उदय में रागद्वेष नहीं करो। आहार वसतिकादि के लाभ-अलाभ में समभाव करो। स्तुति-निंदा में, आदर-अनादर में पाषाण रत्न में, जीवन-मरण में शत्रु-मित्र में, सुख-दुख में, श्मशान-महल में, राग-द्वेष में परिणाम समभाव रखो। जो साम्यभाव के धारक हैं वे बाह्य पुद्गलों को अचेतन व अपने से भिन्न तथा अपने आत्म स्वभाव में हानि वृद्धि के अकर्ता जानकर राग-द्वेषादि विकार रहित रहते हैं उनके समभाव होता है। यही **सामयिक** है।

स्तवन नाम का एक आवश्यक है। इसमें यह चिन्तन करना चाहिए कि कर्मरूप शत्रुओं को जीतने से आपका नाम जिन है। आपको किसी ने नहीं बनाया है तथा आप स्वयं ही अपने स्वरूप में रहते हैं। अत: स्वयम्भू हैं। आप केवलज्ञानरूप नेत्रों द्वारा त्रिकालवर्ती पदार्थों को जानते हो अत: आप त्रिलोचन हो। आपने मोहरूप अन्धासुर को मार दिया है, अत: आप अन्धकान्तक हो, आपने आठ कर्मों में से चार घातिया कर्मोंरूप आधे बैरियों का नाश करके ही अद्वितीय ईश्वरपना पाया है अत: आप अर्द्धनारीश्वर हैं। आप शिव पद अर्थात् निर्वाण पद में विराजमान हैं अत: आप शिव हैं। पापरूप बैरी का आप संहार करते हैं, अत: आप हर हैं। लोक में आप सुख के कर्ता हो अत: आप शंकर हो। शं अर्थात् परम आनन्द रूप सुख उसमें आप रहते हैं, अत: आप शंभू हैं। वृष अर्थात् धर्म उससे आप शोभित हैं, अत: आप वृषभ हैं। जगत के सम्पूर्ण प्राणियों में गुणों के द्वारा आप बड़े हैं, अत: आप जगत्ज्येष्ठ हैं। स्वसुख चैतन्य द्वारा आप सभी जीवों का पालन करते हो, अत: आप कपाली हो। केवलज्ञान द्वारा आप समस्त लोक अलोक में व्याप्त हो रहे हो, अत: आप विष्णु हो। जन्म जरा मरणरूप त्रिपुर का आपने अंत कर दिया है। अत: आप त्रिपुरांतक हो। इस प्रकार से इन्द्र ने आपका एक हजार आठ नामों द्वारा स्तवन किया है। गुणों की अपेक्षा आपके अनन्त नाम है। इस प्रकार भावों में चौबीस तीर्थंकर के गुणों का चिन्तन करके स्तवन करना, वह स्तवन नाम का आवश्यक है।

वंदना– चौबीस तीर्थंकरों में से किसी एक तीर्थंकर तथा अरहंत सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, सर्वसाधु में से किसी एक को मुख्यकर स्तुति करना, वंदना आवश्यक है।

प्रतिक्रमण– सम्पूर्ण दिन में प्रमाद के वश होकर, कषायों के वश होकर विषयों में रागीद्वेषी, होकर किसी एकेन्द्रिय जीव का घात किया हो, निरर्थक प्रवर्तन किया हो, सदोष भोजन किया हो, किसी जीव के प्राणों को कष्ट पहुँचाया हो, कर्कश-कठोर-मिथ्या वचन कहा हो किसी की निंदा बदनामी की हो, अपनी प्रशंसा की हो, स्त्री कथा, देश कथा, भोजन कथा, राज्य

कथा की हो, अदत्तधन ग्रहण किया हो, पर के धन में लालसा की हो, ये सब खोटे पाप हैं, बंध के कारण हैं, अतः अब ऐसे पापरूप परिणामों से भगवान पंच परमगुरु हमारी रक्षा करें। ऐसे परिणाम मिथ्या होवे, पंच परमेष्ठी के प्रसाद से हमारे पापरूप परिणाम नहीं होवे ऐसे भावों की शुद्धता के लिए पंचनमस्कार मंत्र की नौ जाप करना चाहिए।

इस प्रकार सम्पूर्ण दिन की प्रवृत्ति को संध्याकाल चिंतन करके पाप परिणामों की निंदा करना वह दैवसिक प्रतिक्रमण है रात्रि सम्बन्धी पापों को दूर करने के लिए प्रभात में प्रतिक्रमण करना वह रात्रिक प्रतिक्रमण है। मार्ग में चलने में दोष लग गया हो उसकी शुद्धि के लिए जो प्रतिक्रमण है, वह ईर्यापथिक प्रतिक्रमण है। एक पखवाड़े के दोषों के निराकरण के लिए पाक्षिक प्रतिक्रमण है। एक वर्ष के दोषों के लिए सांवत्सरिक प्रतिक्रमण है। समस्त पर्याय-जीवन भर के दोषों के निराकरण के लिए अंत्यसन्यासमरण के पहले जो प्रतिक्रमण है, वह उत्तमार्थ प्रतिक्रमण है। ऐसा सात प्रकार का प्रतिक्रमण है।

जब सौ-पचास रुपये का व्यापार करने वाला भी शाम को लाभ-हानि देखता है तो इस मनुष्य जन्म की जिसकी एक-एक घड़ी करोड़ों धन से भी दुर्लभ है, चली जाने के बाद मिलती नहीं है। उसका विचार भी अवश्य करने योग्य है। आज मेरा परमेष्ठी के पूजन में स्तवन में कितना समय गया। स्वाध्याय में, पंच परमगुरु की जाप में शास्त्र श्रवण में, तत्त्वार्थ की चर्चा में, धर्मात्मा की वैयावृत्ति में कितना समय गया। घर के आरम्भ में, कषाय में, विकथा करने में, विसंवाद में, भोजनादि में इन्द्रियों के विषयों में, प्रमाद में, निद्रा में, शरीर के संस्कार में, हिंसादि पाँच पापों में कितना काल गया। इस प्रकार विचार कर पाप में बहुत प्रवृत्ति हुई तो अपने को धिक्कार देकर पाप बंध के कारणों को घटाकर, धर्म कार्य में आत्मा को युक्त करना योग्य है। पंचम काल में प्रतिक्रमण ही परमागम में धर्म कहा है। आत्मा के हित-अहित के विचार में निरन्तर उद्यमी रहना योग्य है। यह प्रतिक्रमण आत्मा की बड़ी सावधानी करने वाला तथा पूर्व में किये पापों की निर्जरा करने वाला है।

प्रत्याख्यान– आगामी काल में पाप का आस्रव रोकने के लिए पापों का त्याग करना कि मैं भविष्य में ऐसा पाप मन-वचन-काम से नहीं करूँगा वह प्रत्याख्यान नाम का आवश्यक है, जो सुगति का कारण है।

कायोत्सर्ग– चार अंगुल के अन्तर से दोनों पैर बराबर कर खड़े होकर दोनों हाथों को नीचे की ओर लम्बे लटकाकर, देह से ममता छोड़कर नासिका के अग्रभाग पर दृष्टि जमाकर, देह से भिन्न शुद्ध आत्मा की भावना करना कायोत्सर्ग है। निश्चल पद्मासन से तथा खड़े होकर भी

कायोत्सर्ग किया जा सकता है। दोनों ही अवस्थाओं में शुद्ध ध्यान के अवलम्बन से ही सफल कायोत्सर्ग होता है।

ये छह आवश्यक परम धर्मरूप हैं। इनकी पूजा करके पुष्पों की अंजुलि क्षेपना, अर्घ उतारना। इन छह आवश्यकों के परमागम में छह-छह भेद कहे हैं। नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव ये छह प्रकार से जानना।

सामायिक के छह भेद– शुभ-अशुभ नाम को सुनकर रागद्वेष नहीं करना वह नाम सामायिक है। कोई स्थापना प्रमाण आदि से सुन्दर है, कोई प्रमाणादि से हीनाधिक होने के कारण असुन्दर है, उनमें रागद्वेष का अभाव वह स्थापना सामायिक है। सोना-चाँदी, रत्न मोती, इत्यादि तथा मिट्टी लकड़ी पत्थर, कांटें छार, राख धूल इत्यादि में राग द्वेष रहित समभाव देखना वह द्रव्य सामायिक है। महल उपवनादिक रमणीक, श्मशानादि, अरमणीक क्षेत्र में रागद्वेष नहीं करना वह क्षेत्र सामायिक है। हिम शिशिर बसंत, ग्रीष्म, वर्षा, शरद ऋतुओं तथा रात्रि-दिन शुक्ल पक्ष, कृष्णपक्ष इत्यादि काल में रागद्वेष नहीं करना वह काल सामायिक है। सभी जीवों को दुःख नहीं हो ऐसा मैत्री भाव करते हुए अशुभ परिणामों का अभाव करना वह भाव सामायिक है। इस प्रकार सामायिक के छह भेद कहे हैं।

स्तवन के छह भेद– चौबीस तीर्थंकरों का अर्थ सहित एक हजार आठ नामों द्वारा स्तवन करना वह नाम स्तवन है। तीर्थंकरों के-अर्हन्तों के अनेक कृत्रिम-अकृत्रिम प्रतिबिम्बों का स्तवन, स्थापना स्तवन है। समवशरण में स्थित अर्हन्तों की देह, प्रभा, प्रातिहार्य, आदि सहित का स्तवन, द्रव्य स्तवन है। कैलाश, सम्मेदाचल, ऊर्जयन्त, (गिरनार, पावापुर) चंपापुर आदि निर्वाण क्षेत्रों का तथा समवशरण में धर्मोपदेश के क्षेत्र का स्तवन, क्षेत्र स्तवन है। गर्भ-जन्म तप ज्ञान निर्वाण कल्याण के काल का स्तवन, काल स्तवन है। केवलज्ञान आदि अनंत चतुष्ट्य भावों का स्तवन भाव स्तवन है। इस प्रकार स्तवन के छह भेद हैं।

वन्दना के छह भेद– तीर्थंकर व सिद्ध तथा आचार्य, उपाध्याय, साधु इनमें एक-एक का नाम उच्चारण करके वन्दना करना नामवंदना है। अरहन्त सिद्ध आदि में एक-एक के प्रतिबिम्ब आदि की वन्दना करना स्थापना वंदना है। अर्हंतादि में उनके शरीर की वंदना करना द्रव्य वन्दना है। तीर्थंकर के सिद्ध के आचार्य के उपाध्यय के साधु के आत्मा के गुणों की वंदना करना भाव वंदना है। ये वंदना के छह भेद हैं।

प्रतिक्रमण के छह भेद– नाम के अयोग्य उच्चारण में कृत, कारित, अनुमोदनारूप मन, वचन, काय से उत्पन्न दोष का निवारण करने के लिए प्रतिक्रमण करना, वह नाम प्रतिक्रमण है

किसी शुभ-अशुभ स्थापना के निमित्त से मन-वचन-काय से उत्पन्न दोष से आत्मा को निवृत्त करना वह स्थापना प्रतिक्रमण है। आहार, पुस्तक, औषधि आदि के निमित्त से मन-वचन-काय से उत्पन्न दोष के निराकरण के लिए प्रतिक्रमण करना वह द्रव्य प्रतिक्रमण है। किसी क्षेत्र में गमन, स्थापना आदि के निमित्त से उत्पन्न अशुभ परिणाम जनित दोषों के निराकरण के लिए प्रतिक्रमण करना वह क्षेत्र प्रतिक्रमण है। दिन, रात्रि, पक्ष, ऋतु, शीत, उष्ण, वर्षा काल के निमित्त से उत्पन्न अतिचार को दूर करने के लिए प्रतिक्रमण करना वह काल प्रतिक्रमण है।

रागद्वेष आदि भावों से उत्पन्न दोषों को दूर करने के लिए प्रतिक्रमण करना वह भाव प्रतिक्रमण है। इस प्रकार प्रतिक्रमण के भेद कहे हैं।

प्रत्याख्यान के छह भेद– अयोग्य पाप के कारण जो नाम है उनके उच्चारण करने का त्याग कर देना वह नाम प्रत्याख्यान है। अयोग्य मिथ्यात्वादि में प्रवर्तन कराने वाली स्थापना करने का त्याग करना वह स्थापना प्रत्याख्यान है। पापबंध के कारण सदोष द्रव्य व तप के निमित्त निर्दोष द्रव्य का भी मन-वचन-काय से त्याग कर देना वह द्रव्य प्रत्याख्यान है। असंयम का कारण क्षेत्र का त्याग कर देना वह क्षेत्र प्रत्याख्यान है। असंयम का कारण काल का त्याग कर देना वह काल प्रत्याख्यान है। मिथ्यात्व, असंयम, कषायादि का त्याग करना वह भाव प्रत्याख्यान है। इस प्रकार प्रत्याख्यान के छह भेद कहे हैं।

कायोत्सर्ग के छह भेद– अयोग्य पाप के कारण जो हैं उनके उच्चारण करने का त्याग कर देना तथा कठोर कटुकनामादि से उत्पन्न दोष को दूर करने के लिए कायोत्सर्ग करना वह नाम कायोत्सर्ग है। पापरूप स्थापना के द्वारा आए अतिचार को दूर करने के लिए कायोत्सर्ग करना वह स्थापना कायोत्सर्ग है, सदोष द्रव्यों के सेवन से तथा सदोष क्षेत्र, काल के सेवन से संयोग से उत्पन्न दोष दूर करने के लिए कायोत्सर्ग करना वह द्रव्य, क्षेत्र, काल, कायोत्सर्ग है। मिथ्यात्व, असंयम आदि भावों द्वारा किये दोष दूर करने के लिए कायोत्सर्ग करना वह भाव कायोत्सर्ग है। इस प्रकार मुनियों के कायोत्सर्ग के छह भेद हैं।

गृहस्थ के छह आवश्यक

1. **देवपूजा–** जो श्रावक तीर्थंकर भगवान की पूजा करता है और शक्ति अनुसार दान करता है वह सम्यग्दृष्टि श्रावक है, वही मोक्ष मार्ग में लगा हुआ है।

   श्रावक जीवन, आरोग्य, इन्द्रियों के भोग उपभोग की सामग्री की तृष्णा के कारण असि, मसि, कृषि, वाणिज्य (व्यापार) आदि जीविका के साधनों में प्रयत्न करता रहता है तथा भोज्य सामग्री तैयार करने में एवं गृह को शुद्ध रखने में उसे चक्की, चूला, ऊखल, मार्जनी आदि का आरम्भ करना पड़ता है। इस आरम्भ जनित पाप की शुद्धि, जिनपूजन और

पात्रदान से हो जाती है, इसलिए जो श्रावक जिनपूजन, पात्रदान एवं गुरुभक्ति करता है, वह श्रावक अपने आरंभ दोषों से उत्पन्न हुए पापों की शुद्धि करके पुण्य बंध को प्राप्त करता हैं इसलिए वह प्रशंसनीय धर्मात्मा है एवं जो जिनेन्द्रभक्ति और पात्रदान किये बिना भोजन करता है वह पाप रूपी अंधेरे को ही खाता है, क्योंकि उसके पाप की शुद्धि कदापि नहीं हो सकती।

2. **गुरूपास्ति**– पुण्य योग से मनुष्य भव को पाकर शमत्व को प्राप्त होकर और भोगों को रोग तुल्य जानकर तथा वन में जाकर समस्त परिग्रह से रहित होकर, जो यतीश्वर सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र में स्थित होते हैं जो कि वचनागोचर गुणों सहित हैं उन मुनियों की स्तुति करना गुरूपास्ति है।

3. **स्वाध्याय**– भगवान तीर्थंकर अरहन्त के द्वारा कहे गये चार अनुयोगों–प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग और द्रव्यानुयोग के शास्त्रों को यथार्थ रूप से पढ़ना और पढ़ाने का नाम स्वाध्याय है। काल शुद्धि पूर्वक शास्त्रों का अध्ययन करने या कराने का नाम स्वाध्याय है।

4. **संयम**– जिस शक्ति के द्वारा पांचों इन्द्रियों एवं छठे मन की प्रवृत्ति को रोका जाये उसे संयम कहते हैं।

   हिरण, हस्ति, भ्रमर और मछली क्रम से केवल कर्ण, स्पर्शन, नेत्र, नासिका और जिह्वा इन्द्रिय के वशीभूत होकर प्राण दे बैठते हैं तो यह प्रमादी मनुष्य जो पांचों इन्द्रियों के वशीभूत है वह कैसे न मारा जावे? अवश्य मारा जावेगा।

5. **तप**– जिसके द्वारा दुःख रूप संसार छूट जावे एवं जो मोह रूपी अंधकार को दूर करे उसे तप कहते हैं। वह तप निर्मल अनन्त सुख का प्रधान कारण है और दुःख रूप अग्नि के लिए मेघ के समान है। उस तप के जिनेन्द्र भगवान ने वाह्य और आभ्यन्तर भेद से दो प्रकार और प्रत्येक के छह-छह भेद इस प्रकार बारह भेद बताये हैं।

6. **दान**–दान चार प्रकार का होता है।

   1. **ज्ञानदान**– जिस प्रकार से अन्य पुरुष की बुद्धि विद्या एवं ज्ञान वृद्धि हो ऐसे कार्य करने को तथा उसके साधनों को जुटाने को ज्ञान दान कहते हैं। विद्या पढ़ाना–विद्यालय खोलना, पुस्तकें देना, छात्रवृत्ति देकर छात्रों का उत्साह बढ़ाना, आदि सभी ज्ञानदान हैं। मंदिरों में तथा मुनि आर्यिका श्रावक, श्राविकाओं को शास्त्र दान देना जो केवल ज्ञान का कारण होता है।

   2. **अभयदान**– जिस कारण से अन्य पुरुष का भय दूर हो जावे ऐसे कारणों का योग

करना अभयदान अर्थात् दूसरों को भय से बचाने का नाम अभय है। एकेन्द्रिय जीव से लेकर पंचेन्द्रिय तक की दया पालना अभयदान है।

3. **आहारदान–** उत्तम योग्य पात्रों को दान देकर अर्थात् आहार देकर उनकी क्षुधा की निवृत्ति करने का नाम आहारदान है।

4. **औषधिदान–** मुनि-आर्यिका, श्रावक-श्राविकाओं को शुद्ध औषधिदान करना, औषध ालय खुलवाना, जिससे अन्य प्राणियों के रोग दूर होकर स्वस्थता प्राप्त हो, ऐसे साध न जुटाने का नाम औषधिदान है इससे निरोग शरीर प्राप्त होता है। इन चार दानों को करना गृहस्थ का पहला कर्तव्य है।

यह जीवन योग साधना के लिए मिला है, भोग के लिए नहीं। श्रावक गृहस्थावस्था में गृहस्थ के छह आवश्यक का मन वचन काय से पालन करता है तो उसके भावों में विशुद्धि और निर्मलता आती है जिससे वह कषायों का शमन कर सम्यक्त्व उत्पन्न करता है। सम्यक्त्व उत्पन्न के बाद भावों की विशुद्धि और बढ़ती है तो अणुव्रत धारण कर श्रावक मुनिधर्म अंगीकार करता है और मुनि के छह आवश्यक नौ कोटि (समरंम्भ, समारम्भ, आरम्भ, मन, वचन, काय, कृत, कारित, अनुमोदना) से पालन कर मोक्ष मार्ग पर आगे बढ़ जाता है। इस प्रकार भावों में विशुद्धि को बढ़ाते हुए छह आवश्यकों का पालन करते हुए मोक्ष मार्ग पर आगे बढ़ना आवश्यकापरिहाणि भावना होती है।

नर पर्याय का मिलना ठीक उसी प्रकार है जिस प्रकार हाथ में आया रत्न समुद्र में गिर जाय और उसका फिर प्राप्त होना। इस तरह कठिनाई से प्राप्त नर पर्याय को भोगों में व्यतीत कर दिया तो क्या होगा? इस पर आप स्वयं विचार कीजिए।

बादशाह अकबर के दरबार की बात है। एक व्यक्ति आया उसने सबसे प्रश्न किया कि 27 में से 10 घटाने पर क्या बचेगा? सबने उत्तर दिया कि 17 बचेंगे परन्तु बीरबल ने उत्तर दिया कि कुछ नहीं बचेगा। सबको आश्चर्य हुआ कि बीरबल को जोड़-घटाना भी नहीं आता। फिर प्रश्न हुआ कि कैसे? तब बीरबल बोला कि नक्षत्र 27 होते हैं और उनमें 10 नक्षत्र ऐसे होते हैं जिनको अगर निकाल दिया जाय तो फसल होगी ही नहीं भले ही पौधे बड़े हो जाये और बाकी 17 नक्षत्रों में जो पानी बरसेगा वह फसल को नष्ट कर देगा और अनाज का एक भी दाना घर नहीं जा पायेगा। अकाल की स्थिति बन जायेगी। इसी प्रकार अगर त्रस पर्याय में से मनुष्य भव को निकाल दिया जाय तो बाकी भव शून्य के समान हैं उसमें जीव अपना कल्याण नहीं कर सकता।

भोगभूमि का मनुष्य बनकर भी कल्याण नहीं है क्योंकि वहाँ भी जीवन भोगों में व्यतीत हो जाता है। जबकि उत्तम भोगभूमि में तीन पल्य, मध्यम में दो पल्य तथा जघन्य भोगभूमि में

एक पल्य का समय मिलता है वह सारा समय भोगों में ही व्यतीत होता है। एक सिर्फ कर्मभूमि ही ऐसी है जिसमें भोगों का अभाव हो सकता है और योग साधना करके जीव अपना कल्याण कर सकता है। वृषभनाथ से लेकर महावीर स्वामी तक सभी 24 तीर्थंकरों ने यही किया। भोगों को छोड़कर योग को अपनाया। छह आवश्यक कार्य करके दिखाये और अपना जीवन सफल बनाया। परन्तु अगर हमने अपनी प्रकृति कुत्ते की दुम जैसी बना ली तो तीन काल में तीन लोक की कोई भी शक्ति हमारे कल्याण के मार्ग में सहायक नहीं हो सकती अर्थात् हम आत्म कल्याण नहीं कर सकते और नर पर्याय को व्यर्थ गँवाकर वापस निगोद की यात्रा करनी पड़ेगी।

काल अनन्त निगोद मंझार, बीत्यो एकेन्द्रिय तन धार।
एक श्वास में अठदस बार, जन्म्यो मर्‌यो भर्‌यो दुःख भार।

तो बन्धुओ, निगोद आदि के कष्टों का विचार कर मानव जीवन को व्यर्थ मत जाने दो, आवश्यक कर्तव्यों का पालन कर अपने भावों की विशुद्धि को बढ़ाओ और अपना जीवन सार्थक करो तभी यह आवश्यक अपरिहाणि भावना की सार्थकता सिद्ध होगी।

सन्मार्गप्रभावना भावना

मार्गप्रभावना के विषय में पूजन में आया है–

धरम-प्रभाव करै जे ज्ञानी, तिन-शिव-मारग रीति पिछानी।

जो ज्ञानीजन धर्म की प्रभावना करते हैं वे मोक्षमार्ग को भली-भाँति जानते हैं अर्थात् जो धर्ममार्ग की प्रभावना करते हैं वे मोक्षमार्गी होते हैं। जिसके द्वारा खोज की जाये उसे मार्ग कहते हैं। जिस मार्ग द्वारा अनादि से छूटी वस्तु का ज्ञान होता है उस मार्ग की यहाँ पर चर्चा है। ध न प्राप्ति का मार्ग तो लौकिक है परन्तु यहाँ जो चर्चा की जायेगी वह रत्नत्रय प्राप्ति का मार्ग है। जिस मार्ग का अनुसरण करने से आत्मा कुन्दन बनती है।

वैसे तो आत्मा स्वभाव से शुद्ध होती है परन्तु राग-द्वेष, क्रोध, मान माया लोभ आदि के द्वारा अनादि से मलिन होकर संसार में भटक रही है। परम आगम शरण ग्रहण कर रत्नत्रय को उज्ज्वल करना ही मार्ग प्रभावना है। सम्यक्त्व की प्रभावना भरत चक्रवर्ती ने की एवं राजा श्रेणिक ने की। सम्यग्ज्ञान की प्रभावना श्री कुन्दकुन्दाचार्य ने की। सम्यक्‌चारित्र की प्रभावना ऋषभनाथ ने की, छह माह तक योग धारण किया और छह माह तक आहार नहीं मिला। इस प्रकार एक साल तक निराहार रहे। उन्हीं के पुत्र बाहुबलि एक साल तक ध्यान में खड़े रहे लताएं चढ़ गयीं सर्पों ने बाबी बना ली। चारित्र को उज्ज्वल बनाया। इतिहास में उनका नाम अमर हो गया। सेठ

सुदर्शन ने शील की महिमा दिखलाई, सीता, मनोरमा एवं द्रौपदी आदि ने शील की महिमा दिखाकर धर्ममार्ग की प्रभावना की। वर्तमान में भी अगर कोई चारित्र का पालन कर धर्म मार्ग पर आगे बढ़ता है तो उससे प्रभावनाएं होती हैं। अगर कोई धर्म मार्ग पर आरूढ़ होकर चारित्र पालन नहीं कर पाता अथवा विपरीत क्रियाएं करता है तो उससे धर्म मार्ग की प्रभावना नहीं होती। आजकल जन्म-दिवस, दीक्षा दिवस आदि मनाते हैं गोष्ठियाँ करते हैं जिसमें एकत्रित होकर एक-दूसरे की चापलूसी कर देते हैं और समाज का धन व्यर्थ में व्यय कर देते हैं और कहते हैं कि धर्म की प्रभावना होती है। इस प्रकार प्रभावना नहीं होती। प्रभावना तो अपना आचरण उत्तम बनाने से होती है। रचनात्मक कार्य करने से होती है। गिरतों को उठाने से होती है गरीबों पर दया करने से होती है। यहाँ सन्मार्ग है मोक्ष का सत्यार्थ मार्ग है, उसका प्रभाव प्रकट करना, सन्मार्ग प्रभावना है, सन्मार्ग रत्नत्रय है। रत्नत्रय आत्मा का स्वभाव है। उसे मिथ्यात्व राग, द्वेष, काम, क्रोध, मान, माया, लोभ ने अनादि से मलिन-विपरीत कर रखा है। अब परमागम की शरण लेकर हमें मिथ्यात्वादि दोषों को दूर करके रत्नत्रय स्वभाव को उज्ज्वल करना है।

यह मनुष्य जन्म, इन्द्रियों की पूर्णता, ज्ञानशक्ति, परमागम की शरण, साधर्मियों का समागम, रोग रहित अवस्था क्लेशरहित जीविका, इत्यादि पुण्यरूप सामग्री प्राप्त करके भी यदि आत्मा को मिथ्यात्व कषाय, विषयों से नहीं छुड़ाया तो अनन्तानन्त दुखों से भरे संसार समुद्र से निकलना अनन्तकाल में भी नहीं होगा। जो सामग्री आज मिली है वह अनन्तकाल में भी मिलना अतिदुर्लभ है। अतिरंग-बहिरंग सकल सामग्री पाकर भी यदि आत्मा का प्रभाव प्रकट नहीं करेगा तो काल अचानक आकर समस्त संयोग नष्ट कर देगा। इसलिए अब राग-द्वेष दूर करके जैसे मेरा शुद्ध वीतराग स्वरूप अनुभवगोचर हो उस प्रकार ध्यान स्वाध्याय में तत्पर होना है।

बाह्य प्रवृत्ति भी मुझे उज्ज्वल करके अंतरंग धर्म का प्रभाव प्रकट करके ऐसी मार्ग प्रभावना करना है। जिसे देखकर अनेक जीवों के हृदय में धर्म की महिमा प्रवेश कर जाये। जिनेन्द्र के अभिषेक का उत्सव ऐसा करना जिसे देखकर हजारों लोग अपने जन्म को उसी प्रकार सफल बनाये जैसे इन्द्रादिक देवों ने अभिषेक करके अपना जन्म सफल किया। जय-जयकार शब्दों द्वारा हमारे स्तवन के उच्चारण से लोग अपने को कृतार्थ मानकर तन-मन से प्रफुल्लित हो जायें।

जिनेन्द्र भक्ति करना—जिनेन्द्र देव की बड़ी भक्ति, बड़ी विनय, निश्चल ध्यान से ऐसे पूजन करो जिसे करते हुए देखकर शुद्ध भक्ति के पाठ पढ़ते तथा सुनते हुए हर्ष के अंकुर प्रकट हो जायें। आनन्द हृदय में नहीं समाये बाहर उछलने लग जाये। जिन्हें देखकर मिथ्यादृष्टियों के भी ऐसी परिणाम हो जायें कि अहो। जैनियों की भक्ति आश्चर्य रूप है। निर्दोष उत्तम उज्ज्वल

प्रामाणिक सामग्री उज्ज्वल सोने-चाँदी कांसा पीतल के मनोहर पूजन के बर्तन, भक्ति रस से भरे अर्थ सहित कानों में अमृतरस का सिञ्चन करने वाले शुद्ध अक्षरों का उच्चारण, एकाग्रता से विनय सहित उज्ज्वल द्रव्यों को अर्पण परमशांत मुद्रारूप वीतराग के प्रतिबिम्ब प्रातिहार्यों सहित पूजन, स्तवन करना, नमस्कार करना ये सभी धन्य पुरुषों द्वारा ही होता है। धन्य इनकी भक्ति, धन्य इनका जन्म, धन्य इनका मन-वचन-काय और धन्य इनका धन जो निर्वाहक होकर ऐसे सन्मार्ग में लगाते हैं। ऐसा प्रभाव व्याप्त हो जाता है।

भक्ति ही संसार समुद्र में डूबते हुए लोगों को हस्तावलम्बन देने वाली है। हमारे लिए भवभव में जिनेन्द्र की भक्ति ही शरण हो--इस प्रकार जिनेन्द्र का नित्य पूजन करना, अष्टाह्निका, षोडशकारण, दश लक्षण व रत्नत्रय पर्वों में सभी पाप के आरम्भ छोड़कर जिनपूजन करना, आनन्द सहित नृत्य करना, कर्ण प्रिय वाद्य बजाना, तथा स्वरताल, भजनादि सहित जिनेन्द्र के गुणगान करना ये सभी सन्मार्ग प्रभावना है। जिनके हृदय में सत्यार्थ धर्म निवास करता है उनसे प्रभावना होती ही है।

शास्त्र प्रवचन की प्रेरणा तथा व्याख्यान का स्वरूप--जिनेन्द्र प्ररूपित चारों अनुयोगों के सिद्धान्तों का ऐसा व्याख्यान करना जिसे सुनने से एकान्त का हठ नष्ट हो जाये, हृदय में अनेकान्त रच जाये, पापों से काँपने लगें, व्यसन छूट जायें, दया रूप धर्म में प्रवर्तन हो जाये, अभक्ष्य भक्षण का त्याग हो जाये, जिसे सुनने से हजारों मनुष्यों का कुदेव, कुगुरु, कुधर्म, के आराध्य का त्याग हो जाये तथा वीतराग देव, दयारूप, धर्म, आरंभ परिग्रह, सहित गुरु के आराध्य में सत् श्रद्धान हो जाये। ऐसा व्याख्यान करना जिसे सुनकर मनुष्य रात्रि भोजन, अयोग्य भोजन, अन्याय के विषय, परधन में राग, छोड़कर व्रतों में, शील में, संयम भाव में, सन्तोष भाव में लीन हो जावे।

ऐसा उपदेश करना जिससे देहादि पर द्रव्यों से भिन्न अपने आत्मा का अनुभव हो जाये, शरीर में एकत्व बुद्धि छूट जाये, जीव, अजीवादि द्रव्यों का प्रमाण-नय-निक्षेपों के द्वारा निर्णय होकर संशय रहित द्रव्य गुण पर्यायों का सत्यार्थ स्वरूप प्रकट हो जाये, मिथ्या अहंकार दूर हो जाये ऐसे आगम के व्याख्यान से सन्मार्ग की प्रभावना होती है।

ऐसा घोर तपश्चरण करना जो कायरों से धारण नहीं किया जा सके, उसमें प्रभावना होती है। विषयानुराग छोड़कर निर्वाहक होने से भी आत्मा का प्रभाव प्रकट होता है तथा धर्म का मार्ग चमकता है। तप दुर्गति के मार्ग को नष्ट करने वाला है। तप बिना कामादि विषय ज्ञान-चारित्र को नष्ट कर देते हैं। तप के प्रभाव से काम का नाश होता है। रसना इन्द्रिय की चपलता नष्ट हो जाती है। लालसा का अभाव होता है। रत्नत्रय की प्रभावना में तप से ही दृढ़ता होती है।

जिनमन्दिर और जिनबिम्ब की प्रतिष्ठा कराना–जिनेन्द्र के प्रतिबिम्ब की प्रतिष्ठा कराना, जिनेन्द्र का मन्दिर बनवाना–इनसे सन्मार्ग की प्रभावना होती है क्योंकि जब तक जिनबिम्ब रहेगा तब तक दर्शन, स्तवन पूजनादि करके अनेक भव्य जीव पुण्योपार्जन करेंगे। जो जिनमन्दिर बनवायेंगे उन गृहस्थों का ही धन प्राप्त करना सफल होता है। पूजन, रात्रि जागरण, शास्त्रों का व्याख्यान, श्रवण, पठन, जिनेन्द्र का स्तवन सामायिक, प्रतिक्रमण, अनशनादि तप, नृत्यगान-भजन, उत्सव जिनमन्दिर होने पर ही होते हैं। जिनमन्दिर बिना धर्म का समस्त समागम होता ही नहीं है। इसलिए अधिक क्या लिखे अपने तथा पर के उपकार का मूल जिनबिम्ब प्रतिष्ठा कराना तथा जिनमन्दिर बनवाना है।

धन से आसक्ति घटाने की प्रेरणा–धर्म का उत्कृष्ट मार्ग समस्त परिग्रह छोड़कर वीतरागता अंगीकार करना है, परन्तु जिसके प्रत्याख्यान व अप्रत्याख्यान कषायों का उपशम नहीं हुआ उससे गृह सम्पदा नहीं छोड़ी जाती है।

धन सम्पदा बहुत हो तो जिनका आपने अन्याय से धन लिया हो उनके पास जाकर क्षमा मांगकर उनका धन लौटा देना। यदि आपके पास धन बहुत हो, तो धन के उर्पाजन करने का त्याग करना। तीव्र राग के बढ़ाने वाले इन्द्रियों के विषयों की लालसा छोड़कर स्व रूप होना। जो शेष धन रहे उसमें से अपने मित्र हितचिन्तक, पुत्री, बहन में जो निर्धन रोगी दुखी सम्बन्धी हो तथा अनाथ विधवा हो उनको यथायोग्य देकर सन्तोष धारण करना। अपने आश्रित सेवकादि व जो समीप में रहने वाले हों उनको यथायोग्य सन्तुष्ट करें। तत्पश्चात् स्त्री को उनका हिस्सा अलग दे देना। पश्चात् जो धन बचे उसे जिनमंदिर बनवाने में जिनबिम्ब की प्रतिष्ठा कराने में तथा जिनेन्द्र के धर्म का आधार जिनसिद्धान्तों को लिखवाने में (छपवाने में) कृपणता छोड़कर उदार मन से पर से उपकार करने की बुद्धि से धन लगाना, उसके समान कोई प्रभावना नहीं है।

बाह्य आचरण में शुद्धता बढ़ाने की प्रेरणा– जो मन्दिर प्रतिष्ठा तो कराये किन्तु अनीति से पराया धन रख ले अन्याय का धन ग्रहण कर ले उसकी समस्त प्रभावना नष्ट हो जाती है। प्रतिष्ठा कराने वाला, मन्दिर बनवाने वाला यदि खोटा व्यवहार करता है, जिनकी हिंसादि महापापों में, अयोग्य निंद्य वचनों में तीव्र लोभ में प्रवलता है, कुशील है तथा अतिकृपणता करके परिणामों में संक्लेश रूप होकर धन खर्च करता है, उसकी समस्त प्रभावना नष्ट हो जाती है। इसलिए जिनबिम्ब की प्रतिष्ठा कराने वाले की जिनमंदिर बनवाने वाले की बाह्य प्रवृत्ति भी शुद्ध होना आवश्यक है। उससे प्रभावना होती है। मन्दिर में शिखर, कलश घण्टा, कपड़े का चंदोवा सिंहासन आदि उत्तम उपकरण आदि देना तथा स्वाध्याय में प्रवृत्ति वृद्धिक कार्यों से होने वाली प्रभावना दुःख का नाश करने वाली होती है।

प्रभावना शुद्ध आचरण द्वारा होती है– जो जिनवचनों का श्रद्धानी होता है वही धर्म की प्रभावना करता है। जैनियों का गाढ़ा प्रेम देखकर अन्य मिथ्यादृष्टियों के हृदय में भी जैन धर्म की बड़ी महिमा आती है। देखो जैनियों का धर्म, ये जैनी प्राण जाने पर भी अभक्ष्य भक्षण नहीं करते हैं। तीव्र रोग वेदना होने पर भी रात्रि में दवाई जलादि भी नहीं लेते हैं। धन अभिमानादि नष्ट होने पर भी असत्य वचनादि नहीं बोलते हैं, महान आपदा आने पर भी पराये धन में चित्त नहीं लगाते हैं। अपने प्राण जाने पर भी अन्य जीव का घात नहीं करते हैं। इस तरह शील की दृढ़ता परिग्रह परिमाणता, परम सन्तोष धारण करने से आत्मा तथा सन्मार्ग की प्रभावना होती है।

पद्मपुराण में रावण के जिनमंदिर बनवाने की महिमा का कथन आया है, परन्तु उससे प्रभावना नहीं हुई, क्योंकि रावण ने वह मन्दिर धन के मद में बनवाया और उसमें सोलह दिन तक ध्यान किया जो मिथ्यात्व को पोषण करने वाला है। ध्यान बगुला भी करता है, परन्तु वह ध्यान नहीं है क्योंकि मछली पकड़ने के लिए ध्यान, ध्यान नहीं होता। उसी प्रकार विषय भोगों की पूर्ति के लिए किया गया ध्यान, ध्यान नहीं है और वह धर्म की वृद्धि नहीं, ह्रास करता है, जिससे प्रभावना नहीं होती। प्रभावना तो गिद्ध पक्षी ने की। वह जानता था कि तू रावण से लड़कर अपने प्राणों का हनन करेगा फिर भी सीता की करुण पुकार सुनकर रावण से लड़ रहा। उस पक्षी ने मांसाहारी होते हुए भी करुणावश एक दुखिहारी को बचाने का संकल्प किया और माया, मिथ्या, निदान शल्य रहित पालन किया और अपने प्राणों की परवाह नहीं की।

आज का मानव चाहे गृहस्थ हो अथवा श्रमण सभी पैसे के पीछे भाग रहे हैं। उन्हें न पद की गरिमा का ध्यान है और न ही नीति-अनीति का विचार है। सम्पूर्ण विपरीत क्रियाओं को ध र्म मार्ग की प्रभावना का नाम देकर पर्दा डाल रहे हैं, जबकि वास्तविकता यह है कि ऐसी क्रियाओं से मार्ग की प्रभावना नहीं होती। हाँ उनकी विषय वासना की पूर्ति हो जाती है। आश्चर्य है हम आस्था की ओट में उनका पोषण भी कर रहे हैं। वस्तुत: मार्ग प्रभावना सोमशर्मा ने की। एक देश के मंत्री सोमशर्मा ने एक मुनिराज का प्रवचन सुना। मुनिराज ने अपने प्रवचन में अहिंसा का उपदेश दिया। उन्होंने प्रवचन में कहा, कि हिंसा दो प्रकार की होती है द्रव्य हिंसा और भाव हिंसा। भाव हिंसा प्रधान होती है क्योंकि भाव हिंसा से ही द्रव्य हिंसा होती है। यदि मन में हिंसा के भाव ही नहीं आयेंगे तो किसी के प्राणों का हनन भी नहीं होगा। इस प्रकार हिंसा का व्याख्यान सुनकर सोमशर्मा के भाव दया के बन गये और उसने उन मुनिराज से भाव हिंसा न करने का नियम ले लिया। फलस्वरूप उन्होंने काष्ठ की तलवार मात्र दिखाने के लिए रखनी शुरू कर दी। एक दिन मंत्री के खिलाफ चुगलखोर ने राजा से चुगली कर दी कि आपका मंत्री सोमशर्मा काष्ठ की तलवार रखता है। वह वक्त पड़ने पर आपकी क्या मदद करेगा। दुर्जन और विश्वासघाती बड़े पापी होते हैं। राजा के मन में बात बैठ गयी। एक दिन दरबार में राजपुत्रों ने

आकर राजा को नमस्कार किया। राजा ने आदेश दिया सभी अपनी-अपनी तलवार निकाल कर दिखायें सबने अपनी-अपनी तलवार दिखाई तब राजा ने सोमशर्मा मंत्री से कहा तुम भी अपनी तलवार म्यान से निकालकर दिखाओ। मंत्री सोमशर्मा ने म्यान सहित तलवार राजा के सामने रख दी और कहा-हे राजन! आप स्वयं निकाल कर देख लें। तलवार सूर्य की किरणों के समान चमकती हुई लोहे की निकली। तब राजा ने तीखी नजरों से चुगलखोर की तरफ देखा। मंत्री समझ गया और बोला-महाराज! इसमें इसका दोष नहीं है यह तलवार काष्ठ की है तब राजा ने कहा-कैसे? मंत्री ने कहा कि आप तलवार म्यान में डालकर मुझे दें। राजा ने तलवार लेकर मंत्री ने म्यान से तलवार निकाली तब वह काष्ठ की निकली। यह देख राजा ने आश्चर्य चकित होकर पूछा-यह कैसे हुआ? मंत्री ने कहा-यह नियम का प्रभाव है। इतना सुनते ही राजा को वैराग्य हो गया। इसको कहते हैं मार्ग की प्रभावना।

अब प्रश्न उठा कि मार्ग प्रभावना कैसे करे, तब गुरुवर उत्तर देते हैं कि चारित्र में दाग लग जाना अप्रभावना है। बस ऐसी प्रभावना न होने देना ही सच्ची मार्ग प्रभावना है। मुनिमार्ग एक सफेद चादर है। उस पर दाग न लगने देना। ग्रहण किये हुए व्रतों का निर्दोष पालन करना। भगवान महावीर के उपदेशों के अनुसार अपने जीवन को बना लेना ही सबसे बड़ी धर्म मार्ग की प्रभावना है। रावण ने आर्य होकर भी अनार्य कार्य किये और अन्त में मिथ्यामार्ग का पोषण किया। कुमार्ग को सच्चा मार्ग बताया इसलिए रावण राक्षस कहलाया। रावण द्वारा किये कुकृत्यों के कारण राक्षस नाम पड़ने से आज कोई भी अपने बच्चे का नाम रावण नहीं रखता, यह है अप्रभावना।

कहा है- **मेरी है सो खरी है, खरी है सो मेरी है**। इस पंक्ति में मिथ्यात्वी और सम्यक्त्वी का पूर्ण विवेचन है। पंक्ति के प्रथम भाग के अनुरूप जिनका जीवन है वे कुमार्गी तथा दूसरे भाग के अनुरूप जीवन वाले सन्मार्गी हैं। अगर हम दूसरे के हित के प्रति सजग रहते हैं तो वह प्रभावना होगी।

सबसे बड़ी मार्ग प्रभावना अपनी आत्मा के प्रति सजग रहने में है। अपनी आत्मा की गरिमा संभालने में है। अपनी आत्मा को विषय कषायों से मुक्त करके विभावों में मलिन होने से बचाकर स्वभाव में लाने से मार्ग प्रभावना होगी। राग से अप्रीति वीतरागता से प्रीति करना, भगवान महावीर के बताये मार्ग पर चलना इन सभी से मार्ग प्रभावना होगी। मार्ग प्रभावना रचनात्मक कार्य करने से होती है जैसे विद्यालय खुलवाना, औषधालय खुलवाना, पक्षियों के अस्पताल खोलना या खुलवाना, गरीबों को मुफ्त दवा वितरण करना, गरीब छात्रों को पुस्तकें उपलब्ध कराना, रास्ता चलते असहाय व्यक्तियों की सहायता करना आदि से मार्ग प्रभावना-धर्म प्रभावना होती है। इस प्रकार की गई प्रभावना ही वास्तविक मार्ग प्रभावना है जो कि कल्याणकारी है, श्रेयस्कर है और परम्परा से मोक्ष का कारण है।

प्रवचनवात्सल्य भावना

आज का विषय है प्रवचन–वात्सल्य भावना। वात्सल्य कैसे और किससे करना चाहिए, इसका फल क्या होता है–निम्न पद्य पर ध्यान दें–

गौरव भाव धरो मन से, मुनि-पुंगव को नित वत्सल कीजे।
शील के धारक भव्य के तारक, तासु निरंतर स्नेह धरीजे।।
धेनु यथा निज बालक के, अपने जिय छोड़ि न और पतीजे।
ज्ञान कहे भवि लोक सुनो, जिन वत्सल भाव धरे अघ छीजे।।

गौरव सहित भाव धारण करके मन से, विद्वान-मुनियों से प्रतिदिन वात्सल्य कीजिये, जिस प्रकार गाय अपने हृदय के प्रिय बालक से वात्सल्य होने का प्रतीक है। अन्य से नहीं। उसी प्रकार शील के धारी, भव्य जीवों के तारक (मुनिराजों) से निरन्तर स्नेह रखना चाहिए। ज्ञानी जन कहते हैं कि हे संसारी भव्य प्राणी, जो ऐसा वात्सल्य भाव रखता है वह समस्त पापों का विनाश करता है।

वात्सल्य अंग सदा जो ध्यावै, सो तीर्थंकर पदवी पावै।

जो वात्सल्य अंग को धारण करता है वह तीर्थंकर पद को प्राप्त करता है। अर्थात् वात्सल्य भाव तीर्थंकर पद को दिलाने वाला है। कहा गया है–

स्वयूथ्यान्प्रति सद्भावसनाथापेतकैतवा।
प्रतिपत्तिर्यथायोग्यंवात्सल्यमभिलप्यते।।

वीतरागी मतावलम्बी मुनि, आर्यिका, श्रावक, श्राविका और सम्यग्दृष्टि की सरलता से माया रहित यथायोग्य स्तुति, नमस्कार, दान, उच्च स्थान, प्रशंसा उपकरण आदि के द्वारा आदर सत्कार करना आदि वात्सल्य अंग कहलाता है।

प्रवचन वात्सल्य का अर्थ है–साधर्मियों के प्रति प्रेम भाव। साधर्मियों में गौ वत्स की तरह प्रेम करना ही प्रवचन वात्सल्य है। प्रवचन वात्सल्य का भी उतना ही महत्त्व है जितना दर्शन विशुद्धि भावना का। आचार्य कहते हैं कि जिसके अन्दर प्राणी मात्र के प्रति वात्सल्य भाव अर्थात् प्रेम भाव, करुणा भाव होगा वही भावों की वृद्धि करके तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध कर पावेगा जिसके अन्दर प्राणीमात्र के लिए ममता, करुणा नहीं होगी, जिसका हृदय करुणा से ओत-प्रोत नहीं होगा वह भावों की वृद्धि भी नहीं कर पावेगा और उसके अन्दर ऊपर उठने की योग्यता भी नहीं आयेगी। प्राणी मात्र के लिए नम्रता, करुणा भाव का होना ही प्रवचन वात्सल्य भावना

कहलाती है। प्रवचन अर्थात् देव गुरु-धर्म इनमें वात्सल्य अर्थात् प्रीतिभाव कहलाता है। जो चारित्रगुण सहित हैं, शील के धारी हैं, परम साम्य सहित हैं। बाईस परिषहों के सहने वाले हैं, देह में निर्ममत्व, समस्त विषयों से रहित, आत्महित में उद्यमी, पर का उपकार करने में सावधान ऐसे साधुजनों के गुणों में प्रीतिरूप परिणाम, वात्सल्य है।

व्रतों के धारी, पाप से भयभीत, न्यायमार्गी, धर्म में अनुराग के धारक, मंद कषायी, सन्तोषी श्रावक तथा श्राविका के गुणों में, उनकी संगति में अनुराग धारण करना, वात्सल्य है।

जो स्त्री पर्याय में व्रतों की सीमा को प्राप्त करके, समस्त गृहादि परिग्रह को छोड़कर कुटुम्ब का ममत्व छोड़कर, देह में निर्ममता धारण करके, पांच इन्द्रियों के विषयों को छोड़कर एक वस्त्रमात्र परिग्रह का अवलम्बन लेकर, भूमिशयन, क्षुधा, तृषा, शीत, उष्णादि परिषह सहन कर, संयम सहित ध्यान-स्वाध्याय सामायिक आदि आवश्यकों सहित होकर आर्यिका की दीक्षा ग्रहण कर, संयम सहित काल व्यतीत करती है, उनके गुणों में अनुराग वात्सल्य भाव है।

मुनिराज के समान वन में रहते हुए, बाईस परिषह सहते हुए, उत्तम क्षमादि धर्म के धारक देह में निर्ममत्व, आपके निमित्त बनाया औषधि-अन्न-पानादि ग्रहण नहीं करने वाले, एक वस्त्र कोपीन बिना समस्त परिग्रह के त्यागी उत्तम श्रावकों के गुणों में अनुराग वात्सल्य है। देव-गुरु-धर्म के सत्यार्थ स्वरूप को जानकर दृढ़ श्रद्धानी, धर्म में रुचि के धारक अव्रत सम्यग्दृष्टि में भी वात्सल्य करना चाहिए।

मोह की महिमा– इस संसार में अनादिकाल से ही अपने स्त्री, पुत्र, कुटुम्बादि में देह में, इन्द्रिय विषयों के साधनों में राग लगा चला आ रहा है। पिछला अनादि संस्कार ही ऐसा है कि तिर्यंच भी अपने स्त्री-पुत्रों में, विषयों में अति अनुरागी होकर उनके लिए कट जाता है, मर जाता है, अन्य को मार देता है। ऐसा मोह का अद्भुत माहात्म्य है। वे पुरुष धन्य हैं, जो सम्यग्ज्ञान से मोह नष्ट करके आत्मा के गुणों में वात्सल्य करते हैं।

पंचमकाल के धनिक संसारी के वात्सल्य का अभाव– संसारी तो धन की लालसा से अति आकुलित होकर धर्म में वात्सल्य छोड़ बैठे हैं। संसारी के जब धन बढ़ता है, तो तृष्णा और अधिक बढ़ जाती है। सभी धर्म का मार्ग भूल जाते हैं। धर्मात्माओं में वात्सल्य दूर से ही त्याग देता है। रात्रि-दिन-धन सम्पदा के बढ़ाने में अनुराग बढ़ाता है कि लाखों का धन हो जाये तो करोड़ों की इच्छा करता है। आरम्भ परिग्रह को बढ़ाता जाता है। पापों में प्रवीणता बढ़ाता जाता है तथा धर्म में वात्सल्य नियम से छोड़ देता है।

जहाँ दानादि में, परोपकार में धन लगता दिखाई देता है, वहाँ दूर से ही बचकर निकल जाता है। बहुआरम्भ, बहुपरिग्रह, अतितृष्णा, से समीप आ गया नरक का निवास भी उसे दिखाई नहीं

देता है। पंचम काल के धनाढ्य पुरुष तो पूर्व भव से ही मिथ्या-धर्म-कुपात्र-दान, कुदान आदि में लिप्त होकर ऐसे कर्म बांधकर आये हैं, कि उनकी नरक-तिर्यंच गति की परिपाटी असंख्यातकाल अनंतभव तक नहीं छूटेगी। उनका तन मन, वचन, धन, धर्म, कार्य में नहीं लगता है। अहर्निश तृष्णा व आरम्भ से ही वे दुःखी रहते हैं। उनको धर्मात्मा में तथा ध र्म के धारने मैं कभी वात्सल्य नहीं होता है। धन रहित यदि धर्मात्मा भी हो तो उसे भी नीचा मानते हैं।

धर्म तथा धर्मात्माओं में वात्सल्य की प्रेरणा– हे आत्महित के वाहक! धन-सम्पदा को महामद उत्पन्न करने वाली जानकर, देह को अस्थिर दुखदायी जानकर कुटम्ब को महाबन्धन मानकर इनसे प्रीति छोड़कर अपने आत्मा से वात्सल्य करो। धर्मात्मा में, व्रती में, स्वाध्याय में, जिन पूजन में वात्सल्य करो, जो सम्यकचारित्ररूप आभरण से भूषित साधुजन हैं उनका जो पुरुष स्तवन करते हैं गौरव करते हैं, उनके वात्सल्य गुण हैं वे सुगति को प्राप्त होते हैं। कुमार्ग का नाश करते हैं। वात्सल्य गुण के प्रभाव से ही समस्त द्वादशांग विद्या सिद्ध होती है। सिद्धान्त ग्रन्थों में तथा सिद्धान्त का उपदेश करने वाले उपाध्यायों में सच्ची भक्ति के प्रभाव से श्रुतज्ञानावरण कर्म का रस सूख जाता है। तब सफल विद्या सिद्ध हो जाती है। वात्सल्य गुण के धारक को देव भी नमस्कार करते हैं।

वात्सल्य के द्वारा ही अठारह प्रकार की बुद्धि- वात्सल्य से ऋद्धि, नौ प्रकार की आकाशगामिनी क्रिया-ऋद्धि, अनेक प्रकार की चारण ऋद्धि, ग्यारह प्रकार की विक्रिया-ऋद्धि, छह प्रकार की रस ऋद्धि, आठ प्रकार की औषधि ऋद्धि, दो प्रकार की क्षेत्र ऋद्धियां इत्यादि चौसठ ऋद्धियाँ व अनेक शक्तियाँ प्रकट हो जाती हैं।

वात्सल्य के द्वारा ही मंदबुद्धियों का भी मतिज्ञान-श्रुतज्ञान विस्तीर्ण हो जाता है। वात्सल्य के प्रभाव से पाप का प्रवेश नहीं होता है। वात्सल्य से ही तप की शोभा होती है। तप में उत्साह के बिना तप निरर्थक है। यह जिनेन्द्र का मार्ग वात्सल्य द्वारा ही शोभा पाता है। वात्सल्य से ही शुभध्यान की वृद्धि होती है। वात्सल्य से ही सम्यग्ज्ञान निर्दोष होता है, वात्सल्य से ही दान देना कृतार्थ सफल होता है। पात्र में प्रीति बिना तथा देने में प्रीति बिना दान निंदा का कारण है।

जिनवाणी में जिसे वात्सल्य होगा उसे ही प्रशंसा योग्य जिनवाणी का सच्चा अर्थ उद्योतरूप प्रकट होगा–जिसको जिनवाणी में वात्सल्य नहीं विनय नहीं उसे यथावत् अर्थ नहीं दिखेगा, वह तो विपरीत ही ग्रहण करेगा। इस मनुष्य जन्म का मंडन वात्सल्य ही है। वात्सल्य रहित बहुत मनोज्ञ, आभरण, वस्त्र धारण करना भी पद-पद में निंद्य होता है। इस लोक का कार्य जो यश का उपार्जन, धर्म का उपार्जन धन का उपार्जन है, वह भी वात्सल्य से ही होता है। परलोक

स्वर्गलोक में देवत्व भी वात्सल्य से ही होता है। वात्सल्य बिना इस लोक का समस्त कार्य नष्ट हो जाता है। परलोक में भी देवादि गति प्राप्त नहीं होती है।

जिसे अर्हन्तदेव, निर्ग्रन्थगुरु स्याद्वादरूप परमागम दयारूप धर्म में वात्सल्य है, वही संसार परिभ्रमण का नाश करके निर्वाण को प्राप्त करता है। वात्सल्य ही से जिन मन्दिर जिन सिद्धान्तों का सेवन, साधर्मियों की वैयावृत्य, धर्म में अनुराग दान देने में प्रीति होती है। जिन्होंने छहकाय के जीवों पर वात्सल्य दिखाया है, वे ही तीन लोक में अतिशयरूप तीर्थंकर प्रकृति का बंध करते हैं। इसलिए जो कल्याण के इच्छुक हैं, वे भगवान जिनेन्द्र द्वारा उपदेशित वात्सल्य गुण की महिमा जानकर सोलहवीं वात्सल्य भावना का स्तवन-पूजन करके उसका महान अर्घावतारण करते हैं। वे ही दर्शन की विशुद्धता पाकर, तपरूप आचरण करके, अहमिन्द्रादि देवलोक को प्राप्त होकर पश्चात् जगत के उद्धारक तीर्थंकर होकर निर्वाण को प्राप्त होते हैं। सोलहकारण धर्म की महिमा अचिन्त्य है। जिससे तीन लोक में आश्चर्यकारी अनुपम वैभव के धारक तीर्थंकर होते हैं। ऐसी सोलहकारण भावना का संक्षेप-विस्ताररूप वर्णन किया।

धर्म के दश लक्षण– धर्म का स्वरूप दश लक्षण रूप है। इन दश चिह्नों के द्वारा अंतरंग धर्म जाना जाता है। उत्तम क्षमा, उत्तम मार्दव, उत्तम आर्जव, उत्तम सत्य, उत्तम शौच, उत्तम संयम, उत्तम तप, उत्तम त्याग, उत्तम आकिंचन्य, उत्तम ब्रह्मचर्य ये दश धर्म के लक्षण हैं। धर्म तो वस्तु का स्वभाव है। स्वभाव को ही धर्म कहते हैं। लोक में जितने पदार्थ हैं, वे सब अपने-अपने स्वभाव को कभी नहीं छोड़ते हैं यदि स्वभाव का नाश हो जाये तो वस्तु का अभाव हो जाये किन्तु ऐसा नहीं होता है।

आत्मा नाम की वस्तु है, उसका स्वभाव क्षमादि रूप है। क्रोधादि कर्मजनित उपाधि हैं आवरण हैं। क्रोध नाम की कर्म की उपाधि का अभाव होने पर क्षमा नाम का आत्मा का स्वभाव स्वयं ही प्रकट हो जाता है। इसी प्रकार मान के अभाव से मार्दव गुण, माया के अभाव से आर्जव गुण, लोभ के अभाव से शौच गुण इत्यादि जो आत्मा के गुण हैं वे कर्म के अभाव से स्वयंमेव प्रकट होते हैं। उत्तम क्षमादि आत्मा के स्वभाव हैं वे मोहनीय कर्म के भेद क्रोधादि कषायों द्वारा अनादिकाल से आच्छादित हो रहे हैं। कषायों के अभाव से क्षमादि आत्मा के स्वाभाविक गुण प्रकट हो जाते हैं। अधोलिखित दृष्टान्तों से वात्सल्य भाव को समझा जा सकता है–

युधिष्ठिर का वात्सल्य

एक बार दुर्योधन को गन्धर्वों ने बन्दी बना लिया। धृतराष्ट्र ने धर्मराज युधिष्ठिर से दुर्योधन को मुक्त कराने के लिए निवेदन किया। तब युधिष्ठिर ने भीम से कहा–जाओ! दुर्योधन को छुड़ा लाओ। दुर्योधन का नाम सुनते ही भीम को क्रोध आ गया। उस पापी की मुक्ति की बात

करते हो जिसके कारण हमें बनवास की यातनाएं सहन करनी पड़ीं। उस अन्यायी नारकी कीड़े को छुड़वाने की बात करते हो जिसके कारण भरी सभा में द्रौपदी को निर्वसन करने का दुःसाहस किया गया। अगर आप किसी और की मुक्ति की बात करते तो अनुचित न होता किन्तु दुर्योध न को मैं मुक्त नहीं करा पाऊँगा। तब युधिष्ठिर के अन्दर का करुणा भाव आँखों में उतर आया। अर्जुन ने धर्मराज के वात्सल्य को समझा उसने अपना गांडीव धनुष उठाया और गन्धर्वों से युद्ध करके दुर्योधन को छुड़ा लाया। यह होती है वात्सल्य भावना। सभी को धर्मराज ने समझाया हम आपस में कौरव और पांडव हैं परन्तु बाहर वालों के लिए 105 ही हैं। अलग नहीं हमारे अन्दर यही भावना होना चाहिए, चाहे हम आपस में कितने ही लड़ लें। तब भीम का मस्तक लज्जा से झुक गया। आज के मानव की दशा भी भीम जैसी है। मानव की प्रकृति ऐसी हो गयी है कि साधर्मियों से द्वेष और विधर्मियों से प्रेम की भावना बनी हुई है जो कि विनाश का कारण है ऐसी प्रकृति से कभी सृजन नहीं हो सकता।

कुकर सिंह

एक लड़के ने एक कुत्ता पाल रखा था वह उसे बहुत प्यार करता था। कुत्ता बड़ा ही स्वामिभक्त होता है। वह अपनी माँ से बोला कि सभी लोग शेर सिंह, हाथी सिंह, अश्वसेन आदि नाम तो रख लेते हैं परन्तु कुकर सिंह कोई भी नाम नहीं रखता। माँ ऐसा कर मेरा नाम आज से अश्वसेन के स्थान पर कुकरसिंह रख दे। तब माँ ने जवाब दिया बेटा यदि तेरा नाम कुकर सिंह रख दिया तो अभी जो कुत्ता तेरी गोद में शान्त स्वभाव से बैठा है वह तेरे से विद्रोह कर बैठेगा, तेरे साथ लड़ने लगेगा, क्योंकि इसकी प्रकृति जाति द्रोह की होती है इसीलिए कोई भी कुकर सिंह नाम नहीं रखता।

आज भगवान महावीर के अनुयायी, भगवान महावीर के सिद्धान्तों को मानने वाले आपस में द्वेष के कारण अलग-अलग मंच पर खड़े होकर एक दूसरे के अन्दर खामियाँ निकाल रहे हैं। धर्म के नाम पर अलग-अलग खेमों में बंट गये हैं जिसके कारण दूसरे सम्प्रदाय वाले हमारी हंसी उड़ाते हैं। इस तरह भगवान महावीर के अनुयायी एक दूसरे पर दोषारोपण करके अपना नुकसान कर रहे हैं। कहाँ चली गयी वह साधर्मी के प्रति वात्सल्य भावना। इस प्रकार आज के मानव में और कुत्ते की पर्याय में क्या अन्तर रह गया? यदि खोटी पर्याय से बचना है तो सभी साधर्मियों को एक सूत्र में बंधना होगा अपने अन्दर वात्सल्य भाव तथा एक दूसरे के प्रति करुणाभाव पैदा करना ही होगा। आचार्य कहते हैं कि एक बार आपस में मतभेद हो जाये, विचारों में भिन्नता आ जाये तो मिटायी जा सकती है परन्तु यदि मन भेद आ गया तो तीन लोक में, तीन काल में कोई ऐसी शक्ति नहीं है जो इनकी उन्नति में सहायक बन सके। अवनति को

रोका नहीं जा सकता और आज भगवान महावीर के अनुयायियों की ऐसी ही स्थिति हो रही है। इसमें सुधार केवल साधर्मियों में एक दूसरे के प्रति करुणाभाव, वात्सल्यभाव ही ला सकता है। पानी की धारा जब प्रवाहित होती है तो निर्बाध बहती चली जाती है परन्तु एक पत्थर का टुकड़ा भी रास्ते में आ गया तो धारा को दो भागों में विभक्त कर देता है। इसी प्रकार वात्सल्य विहीन व्यक्ति भी पत्थर के समान होता है वह समाज में विघटन करके समाज को दो भागों में विभक्त कर देता है।

आक का दूध

एक बार आँक का दूध, गाय और भैंस के दूध से बोला–भाई मुझे भी अपने साथ मिला लो, मेरा भी उद्धार हो जायेगा। "न भाई यदि तुझे अपने में मिला लिया तो मैं भी फट जाऊँगा और मुझे फिर कोई नहीं पियेगा", गाय और भैंस के दूध ने कहा। तब आँक का दूध कहता है "भाई पानी भी मिल जाता है जो तुमसे विजातीय है, मैं तो फिर भी तुम्हारा सजातीय हूँ, तब मुझसे इतनी हिचकिचाहट क्यों।" गाय और भैंस के दूध ने कहा "हमारा वर्ण ही तो मिलता है, गुण तो अलग-अलग हैं तुम्हें मिलाया तो तुम हलचल मचा कर आपस में फाड़ पैदा कर दोगे, पानी विजातीय होते हुए भी मिलकर हमारा साथ देता है तुम्हारी तरह हलचल मचाकर फाड़ नहीं करता।" पानी का स्वभाव ऐसा है–जैसा मिले संग वैसा मेरा रंग।

बन्धुओ, बिजली के बल्व कितने भी प्रकाशित कर दिये जायें सब का प्रकाश एक साथ मिल जाता है। इसी प्रकार भगवान महावीर ने अपने जीवन में वात्सल्य रूपी अनेक प्रकाश भरकर प्रकाशित किया तो तीनों लोक आलोकित हो गये। जिस प्रकार सारे प्रकाश आपस में मिलकर एकमेव हो जाते हैं कोई भी विरोध नहीं रह जाता इसी प्रकार आँखों से निकली चेतनधारा भी दूसरी ओर से आने वाली चेतनधारा में मिल जाती है परन्तु जड़ के सम्पर्क में आकर दूसरे भी जड़ हो जाते हैं अगर अपनी आत्मा को सुखी बनाना है तो जैसी आत्मा है अर्थात् जैसा आत्मा का स्वभाव है उसी के अनुसार क्रिया करनी होगी तभी आत्मा सुखी बन सकती है। अपनी आत्मा से निर्विवाद वात्सल्य करना पड़ेगा तो तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध हो सकता है और एक दिन मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है। इसी प्रकार अगर सभी आपस में विवाद न करके मिलकर रहोगे तो सुखी हो सकते हो अन्यथा दु:ख तो भोग ही रहे हो।

संघे शक्ति

एक किसान के सात बेटे थे एक दिन किसान के मन में विचार आया मेरे मरने के बाद इनमें आपस में फूट न पड़ जाये इसलिए सातों को बुलाया और एक लकड़ी का गट्ठर बाँधकर सभी

को बारी-बारी से तोड़ने को दिया परन्तु कोई भी तोड़ नहीं पाया फिर सबके हाथ में एक-एक लकड़ी दे दी। वह सबने उसे फटाफट तोड़ दी तब किसान बोला कि देखो जिस प्रकार ये लकड़ियाँ जब एक साथ बंधी थी तब उन्हें कोई नहीं तोड़ पाया और अलग होते ही तुरन्त टूट गई उसी प्रकार जब तक तुम सातों भाई एक साथ मिलकर रहोगे तो तुम्हारा कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता और अगर तुम सातों अलग हो गये तब इन लकड़ियों की तरह तुम्हारा जीवन भी नष्ट हो जायेगा। इसलिए आपस में प्रेम से रहना, हमेशा सुखी रहोगे।

एक व्यक्ति ने एक सन्त की खूब सेवा की। एक दिन सन्त वहाँ से विहार करने लगा तब वह व्यक्ति बोला कि आप तो जा रहे हो मुझे कुछ देते जाइये। तब सन्त ने उसे तीन वस्तुएं दी मोम, सुई और घोड़े के बाल। तब उस व्यक्ति ने पूछा-मैं इन वस्तुओं के द्वारा भगवान से कैसे मिल सकूँगा। सन्त ने कहाँ मोमबत्ती की तरह जलो और दूसरों के लिए रोशनी पैदा करो। सुई की तरह खुद नंगे रहो और दूसरे के छेद बन्द करो। बालों की तरह मुलायम और लचीले रहो। ये तीन सहारे तुझे भगवान से मिला देंगे इनकी गाँठ बाँध लो।

दीवान अमरचन्द की उदारता

एक समय एक व्यक्ति दरिद्रता से तंग आकर मृत्यु का उपाय सोचने लगा। उसके पड़ौसी ने उसे जयपुर के दीवान अमरचन्द से मिलने की सलाह दी और कहा कि तुम्हारी समस्या का उपाय अवश्य हो जायेगा।

वह बेचारा दरिद्र दीवान जी से मिलने जयपुर पहुँचा परन्तु वहाँ पर द्वारपाल ने रोक दिया और कह दिया कि आज तो बहुत ही आवश्यक विचार-विमर्श चल रहा है इसलिए आज मुलाकात नहीं हो सकती तब उसे एक युक्ति सूझी उसने द्वारपाल से कहा कि दीवान जी से कहो कि आपका साढू भाई मिलने आया है वे अवश्य ही समय निकाल कर मुझसे मिलेंगे। द्वारपाल ने दरबार में जाकर दीवान जी से कहा कि आपके साढू आपसे मिलना चाहते हैं। तब दीवान जी बोले उनको आदर सहित अन्दर ले आओ।

उस गरीब के दरबार में पहुँचते ही सभी दरबारी ठहाका लगाकर हँस पड़े और कहने लगे दीवान जी ये आपके साढू हैं। तब दीवान जी ने जवाब दिया कि हँसते क्यों हो? यह भाई तो सत्य कह रहा है क्योंकि पुण्य और पाप दो भाई हैं पुण्य की पुत्री सम्पत्ति से मेरी शादी हो गयी और पाप की पुत्री विपत्ति से इसकी शादी हो गयी तब यह मेरा साढू हुआ अथवा नहीं। यह सुनकर सभी अवाक रह गये। व्यक्ति को हमेशा स्मरण रखना चाहिए-

सत्वेषु मैत्री गुणिषु प्रमोदं, क्लिष्टेषु जीवेषु कृपा परत्वम्।
माध्यस्थ भावं विपरीतवृत्तौ, सदा ममात्मा विदधातु देव॥

नितदेव! मेरी आत्मा धारण करे इस नेम को,
मैत्री करे सब प्राणियों से, गुणी जनों से प्रेम को।
उन पर दया करती रहे, जो दुःख-ग्राह-ग्रहीत हैं,
उनसे उदासी सी रहे जो धर्म से विपरीत हैं।

भगवान महावीर स्वामी को सर्प ने डसा तो दूध निकला क्योंकि उनके अन्दर प्राणी मात्र के लिए वात्सल्य था। एक नारी जब तक बच्चे को जन्म नहीं देती तब तक उसकी छाती से दूध नहीं निकलता और बच्चे को जन्म देते ही उस बच्चे के प्रति इतना वात्सल्य भाव उसके अन्दर आ जाता है कि उस वात्सल्य भाव के कारण उसकी छाती दूध से भर जाती है। उसके वात्सल्य भाव की यही पराकाष्ठा होती है। जब एक नारी में एक बच्चे के प्रति वात्सल्य भाव से दूध की उत्पत्ति हो सकती है तो भगवान महावीर के अन्दर तो तीन लोक में जितने भी जीव हैं सबके प्रति वात्सल्य भाव था तो उनका रक्त ही यदि दूध बन गया तो कोई अतिशयोक्ति नहीं है।

यदि तुम भी सुखी बनना चाहते हो तो विश्व प्रेम के सूत्र में बंधना होगा **'वसुधैव कुटुम्बकम्'** को अपनाना होगा अर्थात् तीन लोक में जितने भी चराचर जीव भरे हुए हैं सबको एक कुटुम्ब जानकर घृणा और द्वेष को अपने से दूर करना होगा। उनके दुःख को अपना दुःख समझना होगा। और यदि अपने स्वार्थ में अंधे होकर एक दूसरे पर अत्याचार करते रहे पर्याय को ही अपना मानते रहे तो सारे विश्व में शान्ति का होना कठिन ही नहीं बल्कि असम्भव है। जब तक आप अपने स्वार्थ में तल्लीन रहोगे तब तक स्वार्थवश दूसरे को सताते रहोगे अर्थात् उसके सुख में बाधा पहुँचाते रहोगे यह स्वाभाविक है और दूसरा भी दुःख पाकर उसके प्रतिकार रूप बदले के उपाय-साधन इकट्ठे करने में दुःखी होता रहेगा और तुम्हें भी दुःखी करता रहेगा। इस प्रकार किसी को भी शान्ति नहीं मिल सकती और प्रत्येक जीव एक दूसरे के प्रति कषायवश दुःख उठाता रहेगा और इसी उपक्रममें व्यस्त रहने से अपना कल्याण तीन काल में भी नहीं कर सकता।

इस प्रकार मनुष्य पर्याय पाकर भी यदि घर-बाहर, अपने कुटुम्बियों, पड़ोसियों, देश-वासियों तथा प्रत्येक प्राणियों के प्रति यदि मित्रता एवं प्रेम का बर्ताव नहीं कर सकता तो फिर मनुष्य और तिर्यंच में क्या अन्तर रह जायेगा? वह तो मनुष्य पर्याय पाकर भी तिर्यंच ही है। मनुष्य पर्याय जीव अपना कल्याण कर सकता है, अन्य पर्याय में नहीं, मनुष्य पर्याय को पाकर भी उसकी दृष्टि कल्याण मार्ग की तरफ नहीं लगती तो वह मिथ्यादृष्टि नास्तिक, काफिर है और अपने तथा दूसरों की सुख व शान्ति को नष्ट करने का उत्तरदायी है। बन्धुओ, यदि जीव को सुख-शान्ति चाहिए तो उसे आपस के वैषम्य को समाप्त कर वात्सल्य भाव को उत्पन्न करना होगा आपसी मन भेद व साम्प्रदायिकता को जड़ मूल से निकालना होगा, विचारों में उदारता और सहिष्णुता लानी होगी यही वास्तविकता है और यही प्रवचन वात्सल्य भावना है।

चतुर्थ अध्याय : दसलक्षण धर्म

पर्यूषण पर्व साल में तीन बार आता है माघ, चैत्र और भाद्रपद में परन्तु भाद्रपद माह का पर्व महत्त्वपूर्ण है। यह पर्व भाद्रपद सुदी पंचमी से भाद्रपद पूर्णिमा तक मनाया जाता है और इसका समापन अश्विनी कृष्णा प्रतिपदा को क्षमावणी दिवस के रूप में किया जाता है। उत्सर्पिणी अथवा अवसर्पिणी काल के अन्त होने वाले प्रलय के समय ज्येष्ठ वदी दशमी से 49 दिन तक अग्नि, पत्थर तेजाब आदि की वर्षा 7-7 दिन तक होती है जिससे एक योजन गहराई तक पृथ्वी नष्ट हो जाती है, फिर 49 दिन तक दूध, पानी, अमृत आदि की 7-7 दिन तक वर्षा होती है जिससे यह पृथ्वी पुन: अस्तित्व में आती है। सुवृष्टि से देवों द्वारा जो जोड़े विजयार्द्ध पर्वत की गुफाओं में छिपाये जाते हैं वे सभी वापस आकर पृथ्वी पर बसते हैं। यह प्रलयकाल केवल भरत एवं ऐरावत क्षेत्र में ही आता है अन्य जगह नहीं। इस प्रकार पुन: सृष्टि रचना भाद्रपद सुदी पंचमी से होती है। इस दृष्टि से भाद्रपद माह के दसलक्षण पर्व का विशेष महत्त्व है। दसलक्षण धर्म दस प्रकार का होता है—उत्तम क्षमा, उत्तम मार्दव, उत्तम आर्जव, उत्तम शौच, उत्तम सत्य, उत्तम संयम, उत्तम तप, उत्तम त्याग, उत्तम आकिंचन्य और उत्तम ब्रह्मचर्य। पर्यूषण पर्व में प्रत्येक दिन एक-एक धर्म की भावना भायी जाती है। इस प्रकार दस दिन तक यह पर्व मनाया जाता है।

जिस प्रकार एक वर्ष में दीपावली पर घरों की सफाई की जाती है तथा उन्हें सुन्दर बनाने के लिए रंग-रोगन सफेदी आदि करते हैं। कपड़ों को उज्ज्वल करने के लिए अनेक प्रकार के नील टिनोपाल आदि मसाले लगाते हैं। यह सभी पुद्गल को सुन्दर बनाने के लिए क्रियाएं हैं। परन्तु आज तक हमने यह नहीं विचार किया कि जो अपनी वस्तु है उसको भी कभी उज्ज्वल बनाएं। दस धर्मों द्वारा स्व में उज्ज्वलता लायी जा सकती है।

पर्वों का संबंध प्राय: खाने-पीने से जोड़ा जाता है जैसे—रक्षा बंधन के दिन खीर व लड्डू खाये जाते हैं, राखी बांधी जाती है। होली के दिन पकवान बनाये जाते हैं, रंग डाला जाता है होली जलाई जाती है, दीपावली पर लड्डू खाये जाते हैं एवं मिठाई मित्रों-सम्बन्धियों के घरों में बांटी जाती है आदि। लेकिन अष्टाह्निका और दस लक्षण पर्वों का संबंध खाने और खेलने से न होकर, त्याग से है। ये भोग के नहीं त्याग के पर्व हैं इसलिए महापर्व हैं। किसी भी व्यक्ति से जब यह प्रश्न पूछा जाता है कि दस लक्षण पर्व को कैसे मनाया जाता है, वह यही उत्तर देता है कि इन दिनों में सभी लोग संयम से रहकर पूजन पाठ करते हैं। व्रत नियम उपवास करते हैं। स्वाध्याय और तत्त्वचर्चा में अधिकांश समय बिताते हैं। सर्वत्र बड़े-बड़े विद्वानों द्वारा शास्त्र सभाएं होती हैं उनमें उत्तम क्षमादि दशधर्मों का स्वरूप समझाया जाता है। सर्वत्र धार्मिक वातावरण रहता है। पर्व दो प्रकार के हैं—

(1) शाश्वत (2) सामयिक अथवा तात्कालिक

तात्कालिक पर्व भी दो प्रकार के होते हैं-

(1) व्यक्ति विशेष से सम्बन्धित (2) घटना विशेष से सम्बन्धित।

दीपावली, महावीर जयन्ती, रामनवमी, जन्माष्टमी आदि पर्व व्यक्ति विशेष से सम्बन्ध रखते हैं। दीपावली और महावीर जयन्ती क्रमश: महावीर निर्वाण और जन्म से सम्बन्ध रखती है। रामनवमी और जन्माष्टमी राम और कृष्ण से सम्बन्ध रखती हैं।

घटना विशेष से सम्बन्धित पर्वों में रक्षाबन्धन, अक्षय तृतीया, होली आदि पर्व आते हैं क्योंकि ये प्रसिद्ध पुरानी घटनाओं से सम्बन्ध रखने वाले पर्व हैं। ऐतिहासिक घटनाओं से सम्बन्ध रखने वाले राष्ट्रीय पर्व स्वतंत्रता दिवस, गणतंत्र दिवस आदि हैं। शाश्वत पर्व न किसी व्यक्ति विशेष से सम्बन्धित होते हैं न किसी घटना से। वे तो आध्यात्मिक भावों से सम्बन्धित होते हैं। दस लक्षण पर्व ऐसा ही त्रैकालिक शाश्वत पर्व है, जो आत्मा के क्रोधादि विकारों के अभाव के फल स्वरूप प्रगटने वाले उत्तम क्षमादि भावों से सम्बन्ध रखता है।

घटनाओं और व्यक्ति से सम्बन्धित पर्व अनादि नहीं होते क्योंकि जब कोई व्यक्ति जन्म लेगा अथवा कोई घटना घटित होगी तभी वह पर्व मनाया जायेगा और उसके बाद कोई दूसरा महत्त्वपूर्ण व्यक्ति जन्म ले लेगा अथवा घटना घटित हो जायेगी तो पिछली को सभी भूल जाते हैं और वर्तमान को याद रखते हैं। जिस प्रकार प्रत्येक उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी काल में तीर्थंकर आदि महत्त्वपूर्ण पुरुष होते हैं परन्तु भूत को सभी भूल जाते हैं केवल याद रहता है तो वर्तमान। इसलिए वे ही पर्व सार्वभौम और सार्वकालिक होते हैं जो कि व्यक्ति विशेष से सम्बन्धित अथवा घटना से सम्बन्धित न होकर भावों से सम्बन्धित होते हैं। ऐसा ही यह पर्यूषण पर्व है जोकि शाश्वत है। सबका है और सदा ही रहेगा। यह पर्व किसी सम्प्रदाय विशेष का नहीं है। इसका सम्बन्ध विकारी भावों के त्याग एवं उदात्त भावों के ग्रहण पर आधारित है। जो सभी के लिए समान रूप से हितकारी है।

जिस प्रकार पर्वतों में मेरू, वृक्षों में कल्पवृक्ष, धातुओं में स्वर्ण, पीने योग्य पदार्थों में अमृत, रत्नों में चिन्तामणि रत्न, ज्ञानों में केवलज्ञान, चारित्रों में समता रूप चारित्र, आप्तों में तीर्थंकर, गायों में कामधेनू, मनुष्यों में चक्रवर्ती देवों में इन्द्र महान और उत्तम हैं उसी प्रकार सभी पर्वों में उत्तम यह दसलक्षण पर्व है।

पुन: प्रश्न उठता है कि यहाँ पर दस धर्म क्यों हैं? आत्मकल्याण के लिए मात्र एक ही ध र्म काफी है। बन्धुओं, यहाँ पर धर्म शब्द को एक वचन के अन्तर्गत रखा है क्योंकि धर्म तो एक ही है। दसधर्म एक ही धर्म शब्द में निहित है। उसे समझाने के तरीके भिन्न-भिन्न हैं जैसे मकान

तो एक है उसमें खिड़की और दरवाजे अनेक हैं। मकान में प्रवेश किसी भी दरवाजे से करें परन्तु प्रवेश मकान के अन्दर ही होगा। इसी प्रकार इन दस धर्मों में यदि किसी एक का भी मानव पालन कर लेता है तो इन समस्त धर्मों का पालन स्वतः ही हो जाता है। यह तो उसी प्रकार है जैसे किसी विद्यालय में एक कक्षा के कई विभाग होते हैं। कक्षा के किसी भी विभाग में विद्यार्थी बैठे पास होने पर उन्हें अगली कक्षा में प्रवेश मिल जायेगा। इसी प्रकार समझने के लिए धर्म को दस भागों में बाँटा गया है।

कोई भी व्यक्ति जन्म से धार्मिक नहीं होता है बल्कि उसके साथ पूर्व जन्म के धार्मिक संस्कार होते हैं। धार्मिक होना उसकी एक उपलब्धि है, जो पुरुषार्थ से होती है। किसी हिन्दू के घर में जन्म लेने से हिन्दू और जैन के घर में जन्म लेने से जैन बन गया इससे धर्म का कोई सम्बन्ध नहीं। धर्म का सम्बन्ध तो आचरण से है। एक डॉक्टर का लड़का मिनिस्टर नहीं होता। पिता के खून से पिता का ज्ञान नहीं होता और न ही पिता के खून के साथ पिता की अनुभूतियाँ हैं। माँ-बाप तो केवल निमित्त हैं। धर्म तो स्वयं की साधना से उपलब्ध किया जाता है। यह चर्चा किसी जाति विशेष या पक्ष विशेष अथवा विशेषण विशेष धर्म की नहीं हो रही है बल्कि उस धर्म की हो रही है जिसके साथ कोई विशेष नहीं लगा है। जिस धर्म में किसी का स्वामित्व नहीं है वह है वीतरागधर्म। जो स्वयं को स्वयं की साधना से प्राप्त हो सकता है।

बन्धुओं, मानव ही एक ऐसा है जो अधूरा जन्म लेता है और बाद में अपने पुरुषार्थ से पूर्णता को प्राप्त होता है जिसका स्वयं के पुरुषार्थ से विकास होता है। जो पूर्ण जन्म लेगा वह पुरुषार्थ ही क्यों करेगा? फिर उसके अन्दर विकास की गुंजाइश भी नहीं होगी। विकास उसी का होता है जो अधूरा होता है।

मनुष्य अधूरा जन्मता है इसी से धर्म का प्रारम्भ होता है और बीज रूप सम्भावनाओं को फूल रूप में परिवर्तित करने के लिए अपनी शक्ति अनुसार व्यापक पुरुषार्थ करना होता है। मानव द्विज भी कहलाता है क्योंकि एक जन्म तो उसे माता के गर्भ से मिलता है और दूसरा गुरु द्वारा धर्म के संस्कार से मिलता है। जिस प्रकार माता के गर्भ से जन्मने पर मुण्डन होता है उसी प्रकार जब गुरु धर्म के संस्कारों से संस्कारित करता है तब भी मुण्डन होता है जिसे केशलोंच कहते हैं। जो मानव प्रथम जन्म पर ही रुक जाते हैं वे वास्तविक जन्म से वंचित रह जाते हैं।

एक बार एक व्यक्ति ने प्रश्न किया कि धर्म को प्राप्त करने के लिए आत्मा को उपलब्ध करने के लिए, क्या करना होगा? उस व्यक्ति को उत्तर दिया गया कि दूसरा जन्म लेना होगा। उत्तर सुनते ही वह व्यक्ति हैरान रह गया। घबराकर पूछने लगा कि दूसरे जन्म का क्या अर्थ है? क्या अभी मेरा जन्म नहीं हुआ है? दूसरा जन्म गुरु के माध्यम एवं स्वयं की साधना, पुरुषार्थ से उपलब्ध होगा।

जो व्यक्ति मात्र माता के उदर से जन्म लेने मात्र से सन्तुष्ट हो जाते हैं वे कभी भी अपने जीवन का विकास नहीं कर सकते। जो अपने जीवन से तृप्त हैं, सन्तुष्ट हैं वे धार्मिक हो नहीं सकते क्योंकि उन्होंने अपने को पूर्ण मान लिया है। जो संतुष्ट होने के प्रयास में हैं वे ही धार्मिक हैं।

आज का मानव बाहर से समृद्धिशाली हो रहा है परन्तु भीतर में दरिद्रता का विकास कर रहा है। उनके लिए धर्म नहीं है। क्योंकि धर्म की शुरूआत आन्तरिक दरिद्रता के अनुभव से आन्तरिक असन्तोष से होती है। जैसे हम पैदा हुए हैं वही होना हमारी नियति और भाग्य नहीं है उससे भी भिन्न बहुत कुछ है क्योंकि अनन्त की संभावना का बीज मनुष्य है। अशान्ति को शान्ति में, दुख को आनन्द में, अंधकार को प्रकाश में कैसे परिणति करें? विसंगति, अराजकता कैसे समाप्त हो इन सबके विज्ञान का नाम ही धर्म है। धर्म के वास्तविक स्वरूप को प्रस्तुत दृष्टान्त से समझा जा सकता है।

विवेकी मुनिराज– एक देश का राजा सर्वगुण सम्पन्न, प्रजा को पुत्रवत् चाहने वाला कुशल एवं नीतिपूर्वक राज्य कर रहा था। सभी अनुशासन से रहने वाले राजा को चाहते थे और राजा का कोई शत्रु भी नहीं था। राजा के अनेक सुन्दर, सर्वगुण सम्पन्न रानियाँ तथा पुत्र थे। एक दिन राजा वन-क्रीड़ा हेतु जंगल में जा रहा था कि मुनिराज को नगर के बाहर एक वृक्ष के नीचे बैठे देखा तो बहुत पुलकित हुआ और बोला–हे मुनिवर आप ऐसी गर्मी में इस वृक्ष के नीचे बैठकर तथा नग्न रहकर अपने शरीर को कष्ट क्यों पहुँचा रहे हैं? आप कृपा करके हमारे राजमहल में पधारिये और वहाँ पर आप सभी प्रकार के सुखों को भोगिये।

मुनिराज राजा की बात सुनकर बोले हे राजन्! आपकी राजधानी अर्थात् राजमहल में हमको दुर्गन्ध आती है। अत: हम आपके राजमहल में कैसे रह सकते हैं। राजा सोचने लगा कि जहाँ महल के कोने-कोने को प्रतिदिन साफ करके सुगन्धित इत्र व सेन्ट का छिड़काव होता है चारों ओर सुगन्धी फैली रहती है आगन्तुकों का मनमोह लेती है और मुनिराज कह रहे हैं कि दुर्गन्ध आती है। हो सकता है हमारे आने के बाद कोई बात हो गयी हो जिसकी वजह से मुनिराज कह रहे हैं और मुनिराज को नमोऽस्तु करके वापस राजमहल चला आता है।

राजा ने राजमहल के कोने-कोने का निरीक्षण कर डाला कहीं भी दुर्गन्ध महसूस नहीं हुई। अब राजा ने विचार किया कि मुनिराज तो झूठ बोलते नहीं फिर क्या कारण है? तब वह फिर मुनिराज के पास पहुँचता है और मुनिराज से निवेदन करता है।

महाराज! कल आपने कहा कि राजमहल से दुर्गन्ध आती है तो मैंने राजमहल जाकर सारा निरीक्षण किया मुझे कहीं भी दुर्गन्ध नहीं आयी तो इसका कारण बताइये। दुर्गन्ध कहने का अभिप्राय क्या है? मुझ नादान, अल्पज्ञ को इसका आशय समझाइये। आप झूठ तो कभी बोलते

नहीं। मुझे अपनी सेवा करने का अवसर प्रदान कीजिये जिससे अपना जीवन सार्थक कर सकूँ।

तब मुनिराज उठकर चल देते हैं कहते हैं चलो राजमहल में चलते हैं। चलते-चलते जब जंगल से आकर बस्ती में प्रवेश करते हैं तो भंगियों की बस्ती में मुनिराज रुक जाते हैं और एक स्थान में बैठ जाते हैं। राजा कहता है हे मुनिराज! जल्दी चलिये यहाँ तो बहुत बदबू आ रही है। तब मुनिराज बोले यहाँ पर दुर्गन्ध तो नहीं है। मुनिराज ने दो-तीन बच्चों को बुलाकर पूछा क्या तुम्हें दुर्गन्ध आ रही है बच्चों ने मना कर दिया तब राजा ने कहा–ये यहाँ रहते-रहते अभ्यस्त हो गये हैं इसलिए इन्हें दुर्गन्ध नहीं आ रही है। ये इसी मकान में चमड़े को पकाते हैं और यहीं पर बैठकर भोजन करते हैं। सोते, उठते-बैठते हैं इन्हें दुर्गन्ध नहीं आती। तब मुनिराज ने कहा हे राजन! इसी प्रकार आपको भी राजमहल में दुर्गन्ध नहीं आती। जिस प्रकार यह चमारों का मोहल्ला आपको अच्छा नहीं लगता उसी प्रकार हमें राजमहल अच्छा नहीं लगता।

तब राजा ने कहा हे मुनीश्वर! राजमहल में किसकी दुर्गन्ध आती है कुछ हमें भी तो बताइये। तब मुनिराज कहते हैं कि हे राजन! सुनो! जब रानियों को देखते हो तो मोह उत्पन्न होता है तो यह पहली दुर्गन्ध है। जब किसी राजा की रूपवती स्त्री अथवा कन्या को देखते हो और पाने की लालसा से हरण करने की इच्छा उत्पन्न होती है यह दूसरी दुर्गन्ध है। जब किसी के वैभव को देखकर उससे युद्ध करने की इच्छा उत्पन्न होती है उस युद्ध में असंख्यात जीवों का घात होता है। उस युद्ध में किसी का पति, किसी का भाई किसी का पुत्र किसी का पिता और न जाने कितने परिवार नष्ट हो जाते हैं उसका पाप लगता है। यह तीसरी दुर्गन्ध है। राजमहल में रहकर स्वार्थ पूरा करने में कोई सीमा नहीं रहती यह चौथी दुर्गन्ध है। इसी प्रकार अनेकों दुर्गन्ध हैं जो राजमहल में व्याप्त रहती हैं। इस प्रकार राजमहल पाप की खान है जिसका परिणाम नरक है।

तब राजा कहता है कि हे मुनिवर! मैंने अज्ञानता में अनेक पाप किये हैं। मुझे कल्याण मार्ग का उपदेश दीजिये। मैं आपकी शरण में हूँ और राजा अनेक प्रकार से पश्चाताप करता है।

राजा की ऐसी दशा देखकर मुनिवर कहते हैं कि हे राजन! अभी कुछ नहीं बिगड़ा है। अभी भी समय है आप अपना कल्याण कर सकते हो। जैसे विद्यार्थी पूरे साल मेहनत न करे और अन्तिम परीक्षा के समय भी वह सम्यक् पुरुषार्थ कर ले तो परीक्षा को पास कर लेता है इसी प्रकार मानव जीवन के अन्त में भी संभल जाये तो वह अपने जीवन को सफल बना सकता है। कहा भी है–

बहुत गई थोड़ी रही, थोड़ी भी अब जात।
अब मत चूकिये, आत्मन् फल मिलने की बात।।

अत: हे राजन्! तुमने सारा जीवन राज्य के विषय-भोगों में व्यतीत कर दिया और जो कुछ शेष है वह भी निकला जा रहा है।

आयु घटती है दिन रात, ज्यों करोत युत काष्ठ।
अपना हित जल्दी करो, पड़ा रहेगा ठाठ।।

हे राजन! अब आयु का कोई भरोसा नहीं। जो कुछ भी करना है शीघ्र करो।

प्राणी झटपट सुकृत करे, सट पट दिन खोय।
काल झपट भरपट करे, फिर अरपट नहीं होय।।

अच्छा कार्य करने में विलम्ब नहीं करना चाहिए समय तो पलक झपकते ही चला जाता है, फिर लौटकर वापस नहीं आता। काल सबका भक्षण करने वाला है यह अवस्था को नहीं देखता।

काल करे सो आज कर, आज करे सो अब।
समय बित्यो जात है, बहुरि करेगा कब।।

इस प्रकार मुनिराज से सम्बोधित राजा मुनिराज को नमोऽस्तु करके वापस राजमहल में जाता है परन्तु राजा के अन्दर विरक्ति आ चुकी थी। जिससे उसका मन राजमहल में नहीं लगता है और वह अपने प्रियजनों से संन्यास और वैराग्य की बातें करता है। उसे सभी समझाते हैं अपना-अपना स्वार्थ सामने रखकर अनुरोध करते हैं। परन्तु राजा विरक्त हो चुका था। वह सबको छोड़कर मुनिराज की शरण में आ जाता है और दीक्षा धारण कर लेता है। वह राजा ज्ञान की धारा में डुबकी लगाकर ज्ञान प्राप्त करता हुआ घोर तपस्या करने लगा और एक दिन उसने मोक्षपद को प्राप्त कर लिया।

बन्धुओं, आप भी यह समझिए कि जिस प्रकार राजमहल से दुर्गन्ध आ रही थी उसी प्रकार आपके मकानों से भी दुर्गन्ध आती है। किसी स्त्री को देखकर या पड़ोसी को देखकर मन में ईर्ष्या का जागृत होना, परिवारजनों का पालन करने में हिंसा आदि पाप करना। परिवारजनों के बीच रह कर कषायें, राग-द्वेष स्नेह आदि उत्पन्न होना ये सभी महान् दुर्गन्ध हैं, जो नीचगति को ले जाने वाली हैं।

जिन्दगी है जब तलक फुरसत न मिलेगी काम से,
एक वक्त ऐसा निकालो प्रेम करो भगवान से।
अत: हर समय भगवान का नाम रटते रहो,
श्वाँस-श्वाँस में प्रभु रटते हुए श्वाँस व्यर्थ मत खोओ,
न जाने फिर श्वाँस का या मन होय न होय।।

अत: ऐसा जानकर जितना भी धर्म सेवन कर सको, करो, यही धर्म सब कुछ देने वाला है।

मनु के अनुसार धर्म के दस लक्षण–

धृतिक्षमादमस्तेयं, शौचमिन्द्रियनिग्रह:
धीविद्यासत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्।

धैर्य, क्षमा, दम, अचौर्य, शौच, इन्द्रिय निग्रह, धी (बुद्धि) विद्या, सत्य और अक्रोध ये धर्म के दस लक्षण हैं।

पातञ्जलि ऋषि के अनुसार धर्म के दस लक्षण–पाँच यम–

अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह।

पाँच नियम–

शौच, संतोष, स्वाध्याय, तप और ईश्वरप्रणिधान।

धर्म नहीं अधर्म है–

कायरों की क्षमा, स्वार्थियों की विनय, मूर्खों की सरलता बगुले भक्तों की पवित्रता, एकान्तवादियों का सत्य, रोगियों का संयम, ढोगियों का तप, नामधारियों का त्याग, गरीबों का आकिंचन और नपुंसक का ब्रह्मचर्य ये धर्म नहीं अधर्म हैं।

बन्धुओं, दस धर्म के लक्षण और पर्युषण पर्व क्या होता है, भली प्रकार समझ कर अपने जीवन में उतारो और अपना कल्याण करके शाश्वत सुख का अनुभव करो।

उत्तमक्षमा धर्म

अब उत्तम क्षमा गुण के स्वरूप का वर्णन करते हैं। क्रोध को जीतना उत्तम क्षमा है। इस जीव के निवास स्थान में जो संयम भाव, संतोष मन व निराकुलताभाव, सम्यकदर्शन आदि रत्नों का भण्डार है उन्हें जलाने के लिये क्रोध अग्नि के समान है। क्रोध यश का नाश कर देता है अपयशरूप कालिमा को बढ़ाता है और धर्म-अधर्म का विचार नष्ट कर देता है। क्रोधी के मन-वचन-काय अपने वश में नहीं रहते। वह बहुत दिनों की प्रीति को क्षणमात्र में बिगाड़कर महान् बैर उत्पन्न कर देता है। जो क्रोधरूप राक्षस के वश में हो जाता है वह असत्य वचन, लोकनिंद्य वचन, एवं चाण्डालादि के बोलने योग्य वचन बोलने लगता है। क्रोधी समस्त धर्म का लोप कर देता है। क्रोधी पिता को मार डालता है, माता को, पुत्र को, स्त्री को, बालक को, स्वामी को, सेवक को, मित्र को भी प्राणरहित कर देता है। तीव्र क्रोधी तो विष से या शस्त्र से, स्वयं

का भी घात कर लेता है। ऊँचे मकान से, पर्वतादि से गिरकर, कुएं में कूदकर मर जाता है। क्रोधी से किसी प्रकार की प्रीति नहीं करना। क्रोधी यमराज तुल्य है। क्रोधी पहले अपने ज्ञान, दर्शन, क्षमादि गुणों का घात करता है पश्चात् भले ही कर्म के वश से अन्य का घात हो या न हो। क्रोध के प्रभाव से महातपस्वी दिगम्बर मुनि भी धर्म से भ्रष्ट होकर नरक गये हैं। क्रोध दोनों लोकों का नाश करने वाला है एवं पापबंध कराकर नरक पहुँचाता है। बुद्धि भ्रष्ट करता है। निर्दयी बना देता है। दूसरे के द्वारा किये गये उपकार को भुला कर कृतघ्नी बना देता है। अतः क्रोध के समान पाप अन्य नहीं है। इस लोक में क्रोधादि कषायों के समान अपना घात करने वाला दूसरा नहीं है। लोक में वे पुण्यवान है, महा भाग्यवान हैं जिनके दोनों लोक सुधरते हैं उन्हीं के क्षमा गुण प्रकट होता है।

क्षमा अर्थात् पृथ्वी उसके समान रहने का भाव होना वह क्षमा है। अपने सम्यक स्वरूप को हित अहित को समझकर, असमर्थों द्वारा किये हुये उपद्रवों को समर्थ होकर भी राग-द्वेष रहित होकर सहना, विकारी नहीं होना उसे उत्तम क्षमा कहते हैं।

यश उत्तम शब्द सम्यक का बोध कराने के लिये है। उत्तम क्षमा तीन लोक में सार है। उत्तम क्षमा संसार समुद्र से तारने वाली है। रत्नत्रय को धारण कराने वाली है। दुर्गति के दुखों को हरने वाली है। जिसके उत्तम क्षमा होती है उसका नरक तिर्यंच दोनों गतियों में गमन नहीं होता है। उत्तम क्षमा के साथ अनेक गुणों का समूह प्रकट होता है। मुनिराजों को तो अति प्यारी उत्तम क्षमा ही है। उत्तम क्षमा की प्राप्ति को ज्ञानीजन चिन्तामणि रत्न के समान लाभप्रद मानते हैं। उत्तम क्षमा ही मन की उज्ज्वलता है। क्षमा गुण के बिना मन की उज्ज्वलता तथा स्थिरता कभी नहीं होती है। वांछित अभिप्राय की सिद्धि करने वाली एक उत्तम क्षमा ही है।

क्रोध को जीतने का उपाय– कोई आप को दुर्वचनादि कहकर दुःखी करे, गाली दे, चोर अन्यायी, ,पापी, दुराचारी, दुष्ट, नीच, दोगला, चाण्डाल, कृतघ्नी–ऐसे अनेक दुर्वचन बोले तो ज्ञानी को ऐसा विचार करना चाहिए कि मैंने इसका अपराध किया है या नहीं किया है, यदि मैंने इसका अपराध किया है तथा राग-द्वेष-मोह के वश होकर किसी बात से इसका चित्त दुखाया है तो मैं अपराधी हूँ, मुझे गाली देना, नीच, चोर, कपटी, अधर्मी कहना न्याय है मुझे इससे अधिक दण्ड देता तो भी ठीक था। मैंने अपराध किया है। अब मुझे गाली सुनकर क्रोध नहीं करना ही उचित है। अपराधी को नरक में भी दण्ड भोगना पड़ता है। मेरे निमित से इसको दुःख हुआ है, तब दुःखी होकर दुर्वचन कह रहा है ऐसा विचार कर दुःखी न होकर क्षमा ही करता है।

यदि दुर्वचन कहने वाला मंदकषायी हो तो आप जाकर उससे क्षमा मांगकर उसे क्षमा ग्रहण करने को कहे। हे कृपालु! मैं अज्ञानी हूँ मैंने प्रमाद व कषाय के वश होकर आपका चित्त दुखाया

है। अत: अब मैं अपने अपराध की माफी चाहता हूँ। भविष्य में ऐसा कार्य भूलकर भी नहीं करूँगा। एक बार किसी से भूल हो जाये तो बड़े लोग उसे माफ कर देते हैं। यदि सामने वाला न्याय रहित तीव्र कषायी हो तो उसके पास अपराध माफ कराने नहीं जाये, कालान्तर में उसका क्रोध उपशान्त होने के पश्चात् क्षमा माँगे।

यदि आपने अपराध किया नहीं हो किन्तु ईर्ष्याभाव से न केवल दुष्टता से आपको दुर्वचन कहता है तथा अनेक दोष लगाता है तो ज्ञानी कुछ भी संक्लेश नहीं करे किन्तु इस प्रकार विचार करे–यदि मैंने इसका धन हरण किया हो जमीन जगह छीनी हो, इसकी जीविका बिगाड़ी हो, चुगली खाई हो तो इसके दोष कहकर मैंने अपराध किया है। ये दुर्वचन नाम को कहता है तथा कुल को कहता है, किन्तु नाम मेरा स्वरूप नहीं है जाति कुलादि मेरा स्वरूप नहीं है मैं तो ज्ञायक हूँ। जिसको ये कहता है वह मैं नहीं हूँ। जो मैं हूँ उस तक दुर्वचन पहुँचते ही नहीं है अत: मुझे क्षमा करना ही श्रेष्ठ है। वह जो दुर्वचन कहता है, मुख उसका, अभिप्राय उसका, जिह्वा दंत ओष्ठ उसका, भाषा रूप पुदगल शब्द उसके भावों के निमित्त से उत्पन्न हुए है जिन्हें सुनकर यदि मैं विकार को प्राप्त होता हूँ तो यह मेरी बड़ी अज्ञानता है।

जो ईर्ष्यावान् दुष्ट पुरुष मुझे गाली देता है यदि स्वभाव से देखो तो गाली कोई वस्तु ही नहीं है। मुझे कहीं पर भी गाली लगी हुई दिखाई नहीं देती है। अत: अवस्तु में लेने-देने का व्यवहार ज्ञानी होकर कैसे स्वीकार करें?

जो मुझे चोर, अन्यायी, कपटी, अधर्मी इत्यादि कहता है तब ज्ञानी इस प्रकार विचार करता है–हे आत्मन्! तू अनेक बार चोर हुआ, अनेक जन्मों में व्याभिचारी, जुआरी, अभक्ष्यभक्षी, नीच पशु इत्यादि तिर्यंच तथा अधर्मी पापी कृतघ्नी हो-होकर आया है तथा संसार में भ्रमण करते हुए अनेक बार होगा। अब यदि कोई मुझे कूकर, शूकर, चोर, चांडाल, कहता है उसे सुनकर तेरा दु:ख होना बड़ा अनर्थ है ये दुष्टजन तो दुर्वचन कहते हैं वह इनका अपराध नहीं है हमारे द्वारा पूर्व जन्मों में बांधे गये कर्मों का उदय है, इसके द्वारा दुर्वचन कहने से हमारे उन कर्मों की निर्जरा होती है यह हमें बड़ा लाभ है इनका यह भी उपकार है कि ये दुर्वचन कहने वाले हमारे लिये दुर्वचन कहकर अपने पुण्य के समूह का तो नाश करते हैं तथा मेरे पापों को दूर करके उनकी निर्जरा करते हैं। ऐसे उपकारी पर यदि मैं क्रोध करूँ तो मेरे समान अधम कोई नहीं है।

इसने मुझे दुर्वचन ही तो कहे हैं मारा-पीटा तो नहीं है। क्रोधी तो मारने भी लग जाता है अपने पुत्र-पुत्री, स्त्री, बालक को भी मारता है किन्तु इसने मुझे मारा तो नहीं है, यदि दुष्ट आपको मारे तो ऐसा विचार करना चाहिए कि इसने मुझे पीटा ही तो है प्राण रहित तो नहीं किया है, दुष्ट तो अपना मरण नहीं गिन करके भी अन्य को मार डालता है किन्तु इसने मुझे प्राणरहित तो नहीं किया है यही लाभ है यदि प्राण रहित कर देता है तो ऐसा विचार करना चाहिए–इस बार

तो मरना ही था अच्छा ही हुआ कर्म का ऋण चुका। हम यहाँ पर ही कर्म के ऋण से रहित हो गये हमारा धर्म तो नष्ट नहीं हुआ है यही लाभ है। प्राण धारण करना तो धर्म से ही सफल है। ये द्रव्य प्राण तो पुद्‌गलमय हैं मेरे ज्ञान-दर्शन, क्षमादि धर्म ये भावप्राण है इनका घात मैंने क्रोध करके नहीं किया इस समान लाभ मुझे अन्य कुछ भी नहीं है।

जो कल्याण रूप कार्य है उनमें अनेक विघ्न आते ही हैं मुझे भी विघ्न आया वह ठीक ही हैं मैं तो अब साम्यभाव की शरण लेता हूँ। यदि उपद्रव आने पर मैं क्षमा छोड़कर क्रोध से विकार रूप हो जाऊँगा तो मुझे देखकर अन्य मन्दज्ञानी तथा कायर त्यागी तपस्वी धर्म से शिथिल हो जायेंगे, तब मेरा जन्म केवल दूसरों को दु:खी करने के लिए ही कहलाया। यदि मैं वीतराग धर्म धारण करके भी क्रोधी, विकारी, दुर्वचनी हो जाऊँ तो मुझे देखकर अन्य भी क्रोध करने लगेंगें तब धर्म की मर्यादा भंग करके पाप की परिपाटी चलाने वाला मैं ही प्रधान बन गया। अत: प्राण जाने पर भी, धन व अभिमान नष्ट होने पर भी मुझे क्षमा गुण छोड़ना उचित नहीं है।

पूर्वभव में मैंने जो अशुभ कर्म बांधे थे उनका फल में ही भोगूँगा। ये अन्यजन तो निमित्त मात्र हैं यदि इनके निमित्त से पाप कर्म उदय में नहीं आता तो किसी अन्य के निमित्त से आता। उदय में आया हुआ कर्म तो फल दिये बिना टलता नहीं है। ये लौकिक अज्ञानी मेरे ऊपर क्रोधी होकर दुर्वचन आदि के द्वारा उपद्रव करते हैं यदि मैं भी दुर्वचनादि के द्वारा इनको उत्तर दूँ तो मैं तत्त्वज्ञानी और ये अज्ञानी दोनों ही समान हुये मेरा तत्त्वज्ञानीपना निरर्थक हुआ न्याय मार्ग से देखो, तो उदय में आया मेरा पापकर्म उसकी निर्जरा होने पर, कौन विवेकी अपनी आत्मा को क्रोधादि के वशीभूत करेगा? हे आत्मन्! पूर्व भवों में बंधे हुए असाता कर्मों का अब उदय आया है उसे इलाज रहित न रुकने वाला जानकर समभावों से सहो। यदि दु:खी होकर भोगोगे तो असाता को भोगोगे ही नये और बहुत असाता कर्मों का भी बंध करोगे। अत: होने वाले दु:ख को नि:शंक होकर समभावों से ही सहो। ये दुष्टजन तो बहुत हैं वे अपनी सामर्थ्य के द्वारा मुझमें क्रोधरूप अग्नि को प्रज्ज्वलित कराकर मेरी समभावरूप सम्पत्ति को जला देना चाहते हैं। अब यहाँ यदि मैं असावधान होकर क्षमा को छोड़कर क्रोधी हो जाऊँगा तो अवश्य ही अपना साम्यभाव नष्ट करके, अपना धर्म व यश का नाश करने वाला हो जाऊँगा। इसलिए दुष्टों से संसर्ग होने पर सावधान रहना ही उचित है ज्ञानी मनुष्य तो असह्य दु:ख उत्पन्न होने पर भी अपने पूर्व कर्म का नाश होना जानकर हर्षित होते हैं। यदि दुर्वचन रूपी कांटों से पीड़ित होकर मैं क्षमा छोड़ दूँगा तो क्रोधी और मैं, दोनों ही समान हुए। बैरी यदि अनेक प्रकार के दुर्वचन, पीड़न मारण द्वारा मेरा इलाज नहीं करता तो मैं अपने पुराने संचित कर्मों से कैसे छूटता। अत: बैरी ने तो मुझ पर उपकार ही किया है जो मुझे अशुभ कर्मों से छुड़ा दिया है।

मैंने विवेकी होकर जो जिनागम के प्रसाद से साम्यभाव का अभ्यास किया है उसकी परीक्षा लेने को ये बैरी रूप परीक्षा का स्थान प्रकट हुआ है यहाँ पर मेरे भावों की परीक्षा हो गई। परीक्षा लेने को ही ये कर्म उदय में आये हैं। यदि मैं समभाव मर्यादा को तोड़कर बैरियों पर क्रोध करूँगा तो मैं जानने का धारी होकर भी समभाव को नहीं प्राप्त कर क्रोध रूप अग्नि में जलकर भस्म हो जाऊँगा। मैं वीतराग मार्ग पर चलने वाला, संसार की स्थिति छेदने का उद्यम करने वाला, यदि मेरा ही चित क्रोध रूप हो जायेगा तो संसार के मार्ग में प्रवर्तन करने वाले अन्य मिथ्यादृष्टियों के समान ही मैं ठहरा। यदि दुष्ट अज्ञानियों को न्याय रूप धर्म का मार्ग बताया, समझाया, क्षमा ग्रहण कराया, किन्तु वे नहीं समझे क्षमा ग्रहण नहीं करे तो ज्ञानीजन उनसे क्रोध नहीं करते। जैसे विष दूर करने वाला वैद्य किसी का विष दूर करने के लिए अनेक औषधि आदि देकर विष दूर करना चाहता है किन्तु यदि रोगी का जहर दूर नहीं हो, तो वैद्य स्वयं जहर नहीं खा लेता है-कि इसका विष दूर नहीं हुआ तो मैं ही विष खाकर मर जाऊँ ऐसा न्याय भी नहीं है। उसी प्रकार ज्ञानीजन भी पहले दुष्टों की दुष्टता की जाति पहचानते हैं कि-यह दुष्टता छोड़ेगा या अधिक दुष्टता धारण करेगा। ऐसा विचार कर जिसे विपरीत परिणमता देखे तो उसे तो उपदेश ही नहीं देना जो कुछ समझने लायक योग्यता वाला दिखें उसे न्याय के वचन हित-मित रूप कहना। यदि दुष्टता नहीं छोड़े तो आप क्रोधी नहीं होना।

यदि यह मुझे दुर्वचनादि उपद्रव द्वारा भयभीत नहीं करता तो मैं प्रथम भाव द्वारा धर्म की शरण कैसे ग्रहण करता? जो मुझे पीड़ा देने वाला है, उसने मुझे पाप से भयभीत कराकर धर्म से सम्बन्ध कराया है। इस प्रकार पीड़ा देने वाले ने मेरा प्रमादीपना छुड़ाकर मुझ पर बड़ा उपकार ही किया है।

जगत में कितने उपकारी ऐसे हैं जो दूसरों को सुखी करने के लिए अपना शरीर छोड़ देते हैं, धन छोड़ देते हैं, तो दुर्वचन बन्धनादि सहने में मेरा क्या चला जायेगा? मुझे दुर्वचन कहने से ही यदि दूसरे को सुख होता है तो मेरी क्या हानि है? मुझे पीड़ा देने पर यदि मैं क्रोध नहीं करता तो बैरी के पुण्य नाश हो जायेगा व मेरे आत्मा के हित की सिद्धि होगी यदि पीड़ा देने पर मैं क्रोध करूँगा तो मेरे पुण्य का नाश हो जायेगा, हित का नाश हो जायेगा दुर्गति मिलेगी प्राण नाश होने पर भी दुष्टों के प्रति क्षमा करना ही एक हित है, ऐसा सत्पुरुष कहते हैं। अत: आत्मकल्याण की सिद्धि के लिए मुझे क्षमा ही ग्रहण करना चाहिए।

बहुत समय से शास्त्र का अभ्यास करके व साम्यभाव करके क्या साध्य है यदि प्रयोजन के समय वह व्यर्थ हो जाय? इसलिए धैर्य ही प्रशंसा योग्य है, जो दुष्टों के कुवचनादि होने पर भी नहीं छूटे, दृढ़ बना रहे। उपद्रव आये बिना तो सभी लोग सत्य, शौच क्षमा के धारक बने रहते हैं जैसे-चंदन के वृक्ष को कुल्हाड़ी काटे तो चंदन का वृक्ष कुल्हाड़ी के मुख को सुगंधित ही

करता है। वैसे ही जिसकी जैसी प्रवृत्ति होती है उसको वैसी ही सिद्धि प्राप्त होती है। अन्य के द्वारा किये उपसर्ग से तथा स्वमेव आये उपसर्ग से जिसका चित्त कलुषित नहीं होता है वह अविनाशी सम्पदा को प्राप्त होता है। अज्ञानी अपने भावों द्वारा पूर्व में किये गये पाप कर्मों पर तो क्रोध नहीं करता है किन्तु कर्म का फल जो देने के बाह्य निमित्त है उनके ऊपर क्रोध करता है जिस कर्म के नाश होने से मेरे संसार का संताप नष्ट हो जाये यदि वह कर्म स्वमेव भोगने में आ गया और नष्ट हो गया तो मुझे वांछित सुख की सिद्धि हो गई। इस संसार रूप वन में अनन्त संक्लेश भरे हैं। इसमें रहने वालों को अनेक प्रकार के दु:ख क्या सहने योग्य नहीं हैं? संसार में तो दुख ही हैं यदि इस संसार में सम्यग्ज्ञान विवेक से रहित जिन सिद्धान्तों से द्वेष करने वाले, महानिर्दय परलोक के हित का विचार करने की जिनके पास बुद्धि नहीं है क्रोधरूप अग्नि से प्रज्ज्वलित दुष्टता सहित, विषयों की लोलुपता से अंधे हठाग्रही, महान अभिमानी, कृतघ्नी ऐसे बहुत दुष्टजन नहीं होते तो उज्ज्वल बुद्धि के धारक सत्पुरुष व्रत तपश्चरण करके मोक्ष के लिए उद्यम कैसे करते? ऐसे क्रोधी दुर्वचन बोलने वाले, हठाग्रही, अन्यायमार्गियों की अधिकता देख करके ही सत्पुरुष वीतरागी हुए हैं।

मैं बड़े पुण्य के प्रभाव से परमात्मा के स्वरूप का ज्ञाता हुआ तथा सर्वज्ञ द्वारा उपदेशित पदार्थों का भी निर्णय रूप ज्ञान किया, संसार के परिभ्रमण के दु:खों से भयभीत होकर वीतराग के मार्ग में भी प्रवर्तन किया अब यदि मैं भी क्रोध के वश में होऊँगा तो मेरा ज्ञान-चारित्र सभी निष्फल हो जायेगा तथा धर्म का अपयश कराने वाला होकर दुर्गति का पात्र हो जाऊँगा।

आचार्य पद्मनंदि ने तो और भी कहा है–मूर्खजनों द्वारा बाधा, पीड़ा, क्रोध के वचन हास्य अपमानादि होने पर भी जो उत्तम पुरुषों का मन विकार को प्राप्त नहीं होता है उसे उत्तम क्षमा कहते हैं वह क्षमा मोक्षमार्ग में प्रवर्तते पुरुष की परम सहायक होती है। विवेकी ऐसा चिंतन करते हैं हम रागद्वेषादि मलरहित उज्ज्वल मन से युक्त हैं अन्य लोग हमें खोटा युक्त या भला कहें हमें उससे क्या प्रयोजन है। वीतराग धर्म के धारकों को अपने आत्मा का शुद्धपना साधने योग्य है।

यदि हमारे परिणाम दोष सहित हैं तथा कोई हितैषी हमें भला कहता है तो हम भले नहीं हो जायेंगे। यदि हमारे परिणाम दोष रहित हैं तथा कोई बैर बुद्धि से हमें खोटा कहता है तो हम खोटे नहीं हो जायेंगे। फल तो जैसी हमारी चेष्टा, परिणाम आचरण होगा वैसा प्राप्त होगा। जैसे किसी ने काँच को रत्न कह दिया तथा रत्न को काँच कह दिया, तो भी मूल्य तो रत्न का ही पायेगा, काँच के टुकड़े का बहुत धन कौन देगा?

दुष्ट जन का स्वभाव तो पर के दोष कहने का है पर में बिल्कुल भी दोष नहीं हो तो भी पर के दोष कहे बिना उसे सुख नहीं मिलता है। अत: दुष्टजनों, मुझमें जो दोष है ही नहीं, वे

लोगों के घर-घर में जाकर सभी मनुष्यों को कहकर सुखी होओ जो धन चाहता हो वह मेरा सब कुछ ग्रहण कर सुखी हो जाओ जो बैरी मेरे प्राण हरण करना चाहता है वह शीघ्र ही प्राण हरण कर ले जो मेरा स्थान चहाता है वह स्थान छीन ले मैं तो मध्यस्थ हूँ। राग-द्वेष रहित हूँ सभी संसार के प्राणी तो मेरे निमित्त से सुखरूप रहो। मेरे निमित्त से किसी भी प्राणी को किसी भी प्रकार का दु:ख न हो-मैं यह घोषणा करता हूँ- मेरा जीवन तो आयुकर्म के आधीन हैं, धन तथा स्थान का चला जाना बना रहना पाप-पुण्य के आधीन हैं हमारा किसी अन्य जीव से बैर विरोध नहीं है सभी के प्रति क्षमा हैं।

हे आत्मन्! मिथ्यादृष्टि, दुष्टतासहित, हित-अहित के विवेक रहित, मूढ़ मनुष्यों द्वारा किये गये दुर्वचनादि उपद्रवों से अस्थिर चित्त होकर बाधा मानकर क्यों दुखी हो रहे हो? क्या तुम तीन लोक के चूड़ामणि भगवान वीतराग को नहीं जानते हो? क्या तुमने वीतराग धर्म की उपासना नहीं की है? जगत के लोग मूर्ख हैं, क्या तुम ऐसा नहीं जानते हो? मोही, मिथ्यादृष्टि, मूढ़ों का ज्ञान तो विपरीत ही होता है; वे सब तो कर्मों के वश हैं इसलिए उनमें क्षमा ग्रहण करना ही योग्य है।

क्षमा ही इस लोक में परम शरण है, माता के समान रक्षा करने वाली है बहुत क्या कहे? जिनधर्म का मूल क्षमा है इसी के आधार से सकल गुण हैं कर्मों की निर्जरा का कारण है हजारों उपद्रव दूर करने वाली है इसलिए धन व जीवन चले जाने पर भी क्षमा को छोड़ना योग्य नहीं है। कोई दुष्टता से आपको प्राणरहित करता हो उस समय में भी कटु वचन नहीं कहो। मारने वाले से भी अंतरंग बैर छोड़कर ऐसा कहो-आप हमारे रक्षक ही हैं परन्तु हमारी मृत्यु आ गई है। उसमें क्या कर सकते हैं हमारा पापकर्म का उदय आ गया है तो भी हमारा बड़ा भाग्य है जो आप सरीखे महापुरुषों के हाथ आदि से हमारा मरण हो रहा है। यदि हम सरीखे अपराधी को आप दण्ड नहीं दोगे तो न्याय का मार्ग बदनाम हो जायेगा। हम अपने अपराध का फल नरक तिर्यंचगति में आगे भोगते, किन्तु आपने हमें यहीं परकर्म के ऋण से रहित कर दिया।

मैं मन-वचन काय से बैर विरोध छोड़कर आपसे क्षमा मांगता हूँ। आप भी मुझे अपराध का दण्ड देकर क्षमा ग्रहण करो-मैं क्षमा करता हूँ। मैं रोगादि कष्टों को भोगकर अत्यंत दु:ख से मरण करता, किन्तु अब धर्म की शरण लेकर, कर्म के ऋण से रहित होकर आप जैसे सज्जन की कृपा सहित मरण करूँगा। इस प्रकार मारने वाले से भी बैर छोड़कर समभाव धारण करना वह उत्तम क्षमा है।

क्रोध के कारण अर्थात् कषाय से उत्पन्न होने वाले दु:खों से मानव किस प्रकार दु:खी होता है इसकी चर्चा अभी की गई इसका उल्टा होता है प्रेम। प्राणी मात्र से प्रेम करके जीव किस प्रकार सुखी हो संकता है इसकी चर्चा अब आगे की जायेगी।

विद्वान मुनिजन कहते हैं कि जिसका जीवन ही दुखों से भरा है। वह दूसरों को आनन्द कैसे दे सकता है बल्कि यों कहें कि जो स्वयं अधर्म मार्ग पर चल रहा हो वह दूसरों को धर्म मार्ग पर चलने की प्रेरणा कहाँ से दे सकता है अर्थात् कैसे सहायक बन सकता है, नहीं बन सकता। जो स्वयं सभी जीवों से प्रेम करता होगा वही दूसरों को भी प्रेम से भर सकता है। अन्यथा प्रेम के नाम पर धोखे से दूसरों के जीवन में घृणा भर देगा। प्रेम, आनन्दे आदि संजोकर रखने की वस्तु नहीं बल्कि बाँटने की वस्तु है उन्हें जितना बाँटेगें उतनी ही वृद्धि को प्राप्त होगी।

भगवान महावीर ने कहा है धर्म तो आत्मा का स्वभाव है और आत्मा का स्वभाव दया, क्षमा है उनको तो जितना लुटाओगे वे उतनी ही बढ़ती जायेगी और यही विश्व के सभी धर्मों ने भी स्वीकार किया है।

पोथी पढ़-पढ़ पर जग मुआ, पण्डित भया न कोय।
ढ़ाई अक्षर प्रेम का पढ़ै, सो पण्डित होय।।

वास्तविक आनन्द तो वही है, वास्तविक प्रेम तो वही है जिसके संयोग से आत्मा का विकास हो जाये, सोई हुई प्रभु की शक्ति जाग जाये सारा विश्व मंगलमय हो जाये। बस इसी आत्मिक प्रेम का नाम धर्म है। प्रेम प्रदर्शन की वस्तु नहीं है यह तो आत्मा का गुण है जो परिणामी में कषायों के क्षीण होने पर विशुद्धि आने से उत्पन्न होता है और धर्म आत्मा का स्वभाव है जो आत्मा पर चिपके कर्मों की धूल के कणों की मंदता से उजागर होता है। इसलिए धर्म का संवेदन होता है, प्रदर्शन नहीं। धर्म का आचरण करना होता है। धर्म रूपी मार्ग पर स्वयं ही स्वयं के कदमों से चलना होता है तभी मंजिल को पाया जा सकता है।

इन दस धर्मों में उत्तम क्षमा धर्म को प्रथम स्थान क्यों दिया गया है यह विचारणीय तथ्य है। समझने आत्मबोध, आत्मज्ञान की प्राप्ति के लिए शान्त, निष्पक्ष एवं एक अबोध बालक की भांति सरल बुद्धि होना नितान्त आवश्यक है। इस शुद्ध सात्विक स्थिति के प्राप्त होने पर ही धर्म का आत्मप्रवेश संभव है। धर्म प्रवेश का यह अर्थ नहीं कि धर्म कहीं बाहर है और उसे आकर आत्मा के अन्दर प्रवेश करवाना है। धर्म तो हमारे अन्तस् की अन्तरात्मा की अमूल्य निधि है। जिसको हमने आज तक जाना ही नहीं और न जानने का सम्यक् प्रयत्न किया। उत्तम क्षमा त्रिलोक में सार है और यही भवसागर से पारकारिणी है। उत्तम क्षमा दुर्गति के दुखों का हनन करने वाली है। उत्तम क्षमा विद्वानों के लिए चिन्तामणि है इससे निराकुलता आती है। यह मिथ्यात्व रूपी अन्धकार का नाश करने में समर्थ है।

जहाँ किसी के आक्रोश वचनों को सुनकर सहन करके पवित्र भावों का अविर्भाव होता है तथा पर दोष दूषणों को जानकर चैतन्य आत्मा के गुणों में चित्त को समाहित किया जाता है। वहाँ जिनेन्द्र भगवान ने उत्तम क्षमा होनी बताया है।

आज पर्व का पहला दिन है। क्षमा सबसे उत्तम धर्म है। जिसके अन्दर क्षमा आ गई उसके मार्दव, आर्जव और शौच धर्म भी प्रकट हो जायेगे। क्षमा आत्मा का स्वभाव है जैसे स्फटिक स्वभावत: स्वच्छ होता है पर उपाधि के संसर्ग में अन्य रूप हो जाता है तो क्या वह अपना स्वभाव छोड़कर अन्य रूप हो जाता है जैसे अग्नि के संसर्ग में जल उष्ण हो जाता है परन्तु जल का स्वभाव शीतल है तो क्या वह अपना स्वभाव छोड़ देता है नहीं। गर्म जल को अगर अग्नि पर डाला जाय तो भी वह अग्नि का शमन ही करता है उसको प्रज्ज्वलित नहीं करता और जब उसे अग्नि से दूर कर दिया जाता है तो वह फिर अपने स्वभाव में लौट आता है अर्थात् फिर ठंडा हो जाता है।

इसी प्रकार राग-द्वेष मोह के कारण यह आत्मा अपने स्वरूप को भूल कर मलिन हो रही है और जैसे ही इसको राग-द्वेष, मोह आदि से दूर किया जायेगा यह अपने स्वरूप में आ जायेगा और जैसे यह स्वभावत: शुद्ध है फिर उसी शुद्धता, उज्ज्वलता को प्राप्त हो जावेगी। आज मानव प्रवृत्ति कुक्कुर के समान है। जिस प्रकार कुत्ते को लाठी से मारने पर वह लाठी पर झपटता है उसी प्रकार यह विभावों को अपना समझकर उसमें लीन रहता है। परन्तु सिंह जिस प्रकार बन्दूक पर न झपटकर चलाने वाले पर झपटता है उसी प्रकार अगर हमारी दृष्टि हो जाये अर्थात् विभावों को पैदा करने वाले राग-द्वेष मोह कषाय आदि को ही हम अपने से अलग कर दे तो विभाव में लीन होकर स्वभाव को भूलने की स्थिति आयेगी ही नहीं और जो मूल तत्त्व आत्मा है वह अपने शुद्ध स्वरूप, जो कि स्फटिक के समान निर्मल है, में स्थित हो जावेगी।

क्रोधादि कषायों के अभाव में प्रकट होने वाला गुण संयम है और राग-द्वेष मोह आदि के क्षीण होने से उत्पन्न अवस्था को चारित्र कहते हैं।

उत्तम क्षमाभाव के धारी दिगम्बर मुनिराज होते हैं। इसी कारण 500 मुनिराजों को धानी में पेल दिया गया। 700 मुनियों पर हस्तिनापुर में उपसर्ग हुआ। मुनि गजकुमार के सिर पर अंगारों भरी सिगड़ी रख दी गई परन्तु वह क्षमाभाव के कारण साम्यभाव से सहन कर गये और अपने शुद्ध स्वरूप में लीन हो गये। परन्तु द्वीपायन मुनि ने क्षमा छोड़ दी परिणाम स्वरूप वे नरक में गये। अगर क्षमा धारण कर लेते तो नरक में नहीं जाना पड़ता। कहते हैं क्षमा गुण की वास्तविक पहचान तो प्रतिकूल परिस्थितियों में ही होती है अनुकूल परिस्थितियों में तो सभी क्षमावान् कहलाते हैं।

एक बार वर्णी जी माता चिरौंजा बाई से कहने लगे माँ अब तो मेरा क्रोध बहुत शान्त हो गया है मेरे अन्दर क्षमा गुण आ गया है तो माता बोली बेटा यह तो समय बतायेगा। एक दिन वर्णी जी को खीर खाने की इच्छा जागृत हुई इसलिए उन्होंने खीर बनाने के लिए सुबह दूध और बाजार से मेवा आदि ले आये और माता से कहा कि माँ आज खीर बनाना और सारा सामान

सामने रख दिया। तब चिरौंजाबाई ने विचार किया कि आज परीक्षा का समय आया है। और माता ने खीर के साथ-साथ खाली चावल भी पानी में उबाल कर रख लिए और वर्णी जी को पहले खाली चावल उबले हुए परोस दिये और कहा बेटा खीर ठंडी करके खाना तो जैसे ही वर्णी जी ने वे चावल उठाकर मुख में रखे वे क्रोध से लाल-पीले हो गये और थाली फैंक दी। तब माता चिरौजाबाई बोली बेटा तुम तो कहते थे कि मैंने क्रोध पर विजय प्राप्त कर ली है तो यह क्या है? अनुकूल परिस्थितियों में तो सभी क्षमावान् हो जाते हैं परन्तु प्रतिकूल परिस्थितियों में क्षमावान् बनो तो सत्य है और जो असली खीर थी उसे परोस दिया।

दक्षिण में एक संत पुरुष तिरुवल्लवर गृहस्थ में रहकर व्यवसाय करते और अपना तथा अपने आश्रितों का पालन करते थे। उसी नगर में एक धनिक व्यापारी पुत्र देवदत्त था। जो कुछ दुष्ट प्रकृति का था। एक दिन किसी व्यक्ति ने तिरुवल्लवर सन्त के आत्मसंयम की प्रशंसा देवदत्त के समक्ष कर दी तब देवदत्त ने अहंकारपूर्वक घोषणा की कि मैं उन्हें क्रुद्ध और उत्तेजित कर सकता हूँ।

एक दिन सन्त बाजार में हाथ के बुने चादरें बेच रहे थे तब देवदत्त उनके पास पहुँचा और एक चद्दर उठाकर बोला कितने की है? सन्त बोले-दो रुपये। तब देवदत्त ने चादर के दो टुकड़े करके आधी चादर के दाम पूछे सन्त बोले-एक रुपया। तब देवदत्त ने उसके भी दो टुकड़े करके एक टुकड़े की कीमत पूछी। तब सन्त ने कहा-आठ आने और देवदत्त उस चार के टुकड़े करता रहा और सन्त उसके दाम बताते रहे परन्तु चेहरे पर जरा भी क्रोध नहीं आया अन्त में देवदत्त बोला मैं इनका क्या करूँगा यह सब बेकार हैं तब सन्त बोले ठीक कहते हो फिर देवदत्त बोला अच्छा तुम इनके बदले दो रुपये ले लो तब सन्त बोले तुम्हारे रुपये स्वीकार करने पर तुम्हारा अहंकार बना रहेगा और ये टुकड़े किसी काम नहीं आयेंगे मैं तो इन टुकड़ों को सी लूँगा और स्वयं प्रयोग कर लूँगा इस प्रकार इनकी उपयोगिता बनी रहेगी और हानि की पूर्ति भी हो जायेगी। देवदत्त के अहंकार के टुकड़े-टुकड़े हो गये और वह सन्त के पैर पकड़कर क्षमा माँगने लगा।

दरभंगा में दो भाई थे दोनों ही इतिहास के विद्वान थे। एक दिन एक बात पर दोनों का विवाद हो गया दोनों में लड़ाई हो गयी। मुकदमा चला और दोनों ही जागीरदार से किसान की हालत में आ गये। क्षमा सर्वगुणों की भूमि है इसमें सभी गुण सरलता से विकसित हो जाते हैं। जिसने इस भूमि को शुद्ध कर लिया उसने सब कुछ प्राप्त कर लिया।

एक गाँव में दो आदमी रहते थे, एक चित्रकार और दूसरा अचित्रकार। अचित्रकार चित्र बनाना तो जानता नहीं था पर था प्रतिभाशाली। चित्रकार बोला कि मेरे समान कोई चित्र नहीं बना सकता। दूसरे को उसकी गर्वोक्ति सहन नहीं हुई। उसने झट से कह दिया कि मैं तुमसे अच्छा चित्र बना सकता हूँ। विवाद चल पड़ा। अपना-अपना कौशल दिखाने के लिए दोनों तुल पड़े।

यह तय हुआ कि दोनों चित्र बनायें और फिर परीक्षकों से परीक्षा कराई जाये। एक कमरे में आमने-सामने की दीवार पर दोनों को चित्र बनाने को कहा गया और दोनों के बीच में परदा डाल दिया गया। दोनों को निश्चित समय दे दिया गया दोनों अपने-अपने कार्य में जुट गये। समय पूरा होने पर चित्रकार ने चित्र बनाकर तैयार कर दिया और दूसरे को चित्र बनाना तो आता नहीं था उसने दीवार को मांजकर शीशे की तरह चमका दिया। परीक्षकों ने आकर बीच से परदा हटाया तो चित्रकार का चित्र सामने की दीवार में चमकने लगा परीक्षकों ने चित्र से ज्यादा उत्तम उसका प्रतिबिम्ब घोषित कर दिया। इसी प्रकार आप भी अपनी आत्मा को मांजकर इतनी उज्ज्वलता ला दें कि उसमें तीनों लोक झलकने लगे तो तीनों लोक में पूज्यता को प्राप्त हो जायेंगे।

एक बार एक लड़का आग ताप रहा था उसके पिता ने बाजार से आकर एक नोटों की गड्डी उसके पास लाकर रख दी लड़के ने खेल-खेल में उस नोटों की गड्डी को आग में डाल दिया यह देखकर उसके पिता को क्रोध आ गया और उसने लड़के को उठाकर कुएं में फेंक दिया। जब उसका क्रोध शान्त हुआ तब उसने विचारा कि पैसा भी गया और पुत्र भी गया अब तेरा जीवित रहना भी व्यर्थ। उसने भी कुएं में छलांग लगा दी। इस प्रकार क्रोध में सब कुछ समाप्त हो गया।

क्षमा बड़न को चाहिये छोटन को उत्पात।
का रहिम हरि को घट्यो जो भृगु मारी लात।।
पीडै दुष्ट अनेक, बाँध मार बहु विधि करै।
धरिये क्षमा विवेक, कोप न कीजै प्रीतमा।।
उत्तम क्षमा गहो रे भाई, इह भव जस पर-भव सुखदायी।
गाली सुनी मन खेद न आनो, गुण को अवगुण कहे अयानो।।
कहिये अयानो वस्तु छीने, बाँध मार बहुविधि करै।
घर ते निकारैं तन विदारै, बैर जो न तहाँ धरैं।
ते करम पूरब किये खोटे, सहै क्यों नहिं जीयरा।
अति क्रोध-अगनि बुझाय प्रानी साम्य जल ले सीयरा।।

बन्धुओ, उत्तम क्षमा सभी धर्मों में सर्वोपरि है क्योंकि जिस व्यक्ति का अन्तरंग दया से भीगा हुआ होगा अर्थात् जिसके रोम-रोम में दया समाई होगी वही व्यक्ति-दूसरे पर दया कर सकता है और जिसका अन्तरंग संवेदनशील होगा वही दूसरे की गलतियों को क्षमा कर सकता है। क्षमावान व्यक्ति के अन्दर दया धर्म स्वत: ही समाहित हो जाते हैं और दया का उल्टा याद है तो उसको तीनों लोक के जीव याद करते हैं और तीनों लोक में पूज्य हो जाता है। इसलिए

बन्धुओ क्षमा के भाव को अपनाओ और क्षमा आत्मा का गुण मानकर उसके रस का रसास्वादन करके अनन्त सुख का पान करो।

उत्तममार्दव धर्म

उत्तममार्दव धर्म दस लक्षण धर्म का दूसरा धर्म है। इस धर्म को पालन करने के लिए मनुष्य की कैसी प्रकृति होनी चाहिए, इस धर्म के क्या लक्षण हैं, आदि पर विवेचन किया जायेगा। आज का विषय है उत्तममार्दव धर्म।

कुलरूवजादिबुद्धिसु तवसुदसीलेसु गारवं किंचि।
जो ण वि कुव्वदि समणो मद्दव धम्मं हवे तस्स॥

जो श्रमण कुल, रूप, जाति, बुद्धि, तप, शास्त्र, ज्ञान, शील, आदि का किंचित भी मद नहीं करता उसके मार्दव धर्म होते हैं।

मार्दव का अर्थ कोमलता है। कोमलता से अनेक गुणों की वृद्धि होती है यदि कठोर जमीन में बीज बोया जाय तो व्यर्थ जायेगा। पानी से जो जमीन कोमल हो जाती है उसी में बीज जमता है।

उत्तममार्दव गुण का स्वरूप—मान कषाय से आत्मा में जो कठोरता होती है उस कठोरता का अभाव होने पर उत्पन्न कोमलता मार्दव नाम का आत्मा का गुण है। आत्मा और मान कषाय के भेद को अनुभव करके मान को छोड़ना उसका नाम मार्दव गुण है। मान कषाय संसार का बढ़ाने वाला है किन्तु मार्दव संसार परिभ्रमण का नाश करने वाला है। यह मार्दव गुण दयाधर्म का कारण है।

अभिमानी के दयाधर्म का मूल से ही अभाव होता है। कठोर परिणामी निर्दयी होता है। मार्दव गुण से सभी का हित होता है। जिनके मार्दवगुण है, उन्हीं का व्रत पालना, संयम धारण करना, ज्ञान का अभ्यास करना आदि सफल है। अभिमानी के व्रतादि सब निष्फल होते हैं। मार्दव नाम का गुण मान कषाय का नाश करने वाला है तथा पाँच इन्द्रियों व मन को दण्ड देने वाला है। मार्दव धर्म के प्रसाद से चित्तरूप भूमि में करुणारूप नवीन बेल फैलती है। मार्दव द्वारा ही जिनेन्द्र भगवान में तथा शास्त्रों में भक्ति का प्रकाश होता है। मद के कारण जिनेन्द्र के गुणों में अनुराग नहीं होता है। मार्दव गुण से कुमतिज्ञान के प्रसार का नाश होता है, कुमति नहीं फैलती है। अभिमानी के अनेक प्रकार की कुबुद्धियाँ उत्पन्न होती हैं। मार्दव गुण से बहुत विनय प्रवर्तती है। मार्दव से बहुत समय का पुराना बैरी भी बैर छोड़ देता है। मान घटने पर परिणामों में उज्ज्वलता आ जाती है।

कोमल परिणामों द्वारा दोनों लोकों की सिद्धि होती है। इस लोक में सुयश होता है तथा परलोक में देवगति की प्राप्ति होती है। बहिरंग तप शोभित होते हैं। अभिमानी का तप निंदा योग्य है। मार्दव द्वारा जिनेन्द्र का शासन जाना जाता है। मार्दव द्वारा ही समस्त दोषों का नाश होता है मार्दव परिणाम संसार समुद्र से पार कर देता है। अत: मार्दव परिणाम को सम्यग्दर्शन का अंग जानकर निर्मल मार्दव धर्म का स्तवन करो।

उत्तममार्दव मान का प्रतिपक्षी है। दौलतराम जी ने छहढाला में कहा है-

पिता भूप बा मातुल नृप जो, होय न तो मद ठानै।
मद न रूप को मद न ज्ञान को, धन बल को मद भानै॥
तप को मद न मद जु प्रभुता को, करै न सो निज जानै।
मद धारै तौ यही दोष वसु, समकित को-मल हानै॥

सम्यग्दृष्टि जीव पिता आदि पितृपक्ष के तथा मामा आदि मातृपक्ष के राजा आदि होने का, सुन्दरता का, धन का, ज्ञान का, तप का और प्रभुता का घमण्ड नहीं करता है तब आत्मस्वरूप की पहचान कर सकता है यदि इनका मान करता है तो अपने सम्यग्दर्शन को दूषित करता है। आचार्य समन्तभद्र ने कहा है-

ज्ञानं पूजां कुलं जातिं, बलमृद्धिं तपो वपु:।
अष्टावाश्रित्य मानित्वं, स्मयमाहुर्गतस्मया:॥

- रत्न. श्रा., 25

ज्ञान, पूजा, कुल, जाति, बल, ऋद्धि, तप और शरीर ये आठ मद हैं। इनमें से एक का भी मद करने पर मार्दव धर्म नहीं हो सकता।

मान के चार भेद होते हैं।

1. **अनन्तानुबंधी**–पत्थर के समान।
2. **अप्रत्याख्यान**–हड्डी के समान
3. **प्रत्याख्यान**–काष्ठ के समान
4. **संज्वलन**–बेंत के समान

संसारी जीवों के अनादिकाल से मिथ्यादर्शन का उदय हो रहा है। उसके उदय से पर्याय बुद्धि हुआ जाति को, कुल को, ऐश्वर्य को, तप को, रूप को, धन को शरीर को बल को अपना स्वरूप मानकर इनके गर्वरूप हो रहा है। उसे यह ज्ञान नहीं है कि ये जाति कुलादि सब कर्म के उदय के आधीन पुद्गल के विकार हैं विनश्वर हैं। मैं अज्ञान, ज्ञान-स्वाभावी अमूर्तिक हूँ।

मैंने अनादिकाल से अनेक जाति, कुल, बल, ऐश्वर्य आदि प्राप्त कर करके छोड़े हैं। मैं अब किसमें अपनापन करूँ? समस्त धन यौवन, इंद्रिय जनित ज्ञान आदि विनश्वर क्षणभंगुर हैं। इनका गर्व करना संसार में परिभ्रमण का कारण है।

इस संसार में स्वर्गलोक का महाऋद्धिधारी देव मरकर एक समय में एकेन्द्रिय में आकर उत्पन्न हो जाता है तथा कूकर, शूकर, चांडाल आदि पर्यायों को प्राप्त हो जाता है। नवनिधिचौदह रत्नों का धारक चक्रवर्ती एक समय में मरकर सातवें नरक का नारकी हो सकता है। बलभद्र नारायण का ऐश्वर्य भी नष्ट हो गया, अन्य की क्या कहें? जिनकी हजारों देव सेवा करते थे उनका पुण्य क्षय होने पर कोई एक मनुष्य पानी देने वाला भी नहीं रहा, अन्य पुण्य रहित जीव क्यों मदोन्मत्त हो रहे हैं?

जो उत्तम ज्ञान से जगत में प्रधान हैं, उत्तम तपश्चरण करने में उद्यमी हैं उत्तम दानी हैं जो अपनी आत्मा को बहुत छोटा मानते हैं, उनके मार्दव धर्म होता है।

यह विनय सम्पन्नता मदरहितपना समस्त धर्म का मूल है समस्त सम्यग्ज्ञानादि गुणों का आधार है यदि सम्यग्दर्शनादि गुणों का लाभ चाहते हो, अपना उज्ज्वल यश चाहते हो, बैर का अभाव चाहते हो तो मदों को त्यागकर कोमलपना ग्रहण करो। मद नष्ट हुए बिना विनय आदि गुण-वचन में मिष्टता, पूज्य पुरुषों का सत्कार, दान, सम्मान एक भी गुण प्राप्त नहीं होगा। अभिमानी के, बिना अपराध ही समस्त लोग बैरी हो जाते हैं सभी लोग अभिमानी की निन्दा करते हैं, सभी लोग अभिमानी का पतन देखना चाहते हैं। स्वामी भी अभिमानी सेवक को छोड़ देता है। गुरुजन भी अभिमानी को विद्या देने में उत्साह रहित हो जाते हैं अभिमानी का अपना सेवक भी पराड़मुख हो जाता है। मित्र, भाई, हितैषी, पड़ोसी भी उसका पतन चाहते हैं। पिता गुरु उपाध्याय को, पुत्र को, शिष्य को विनयवन्त देखकर ही आनंदित हो जाते हैं। अविनयी-अभिमानी पुत्र व शिष्य बड़े पुरुषों के मन को भी दु:खी करते हैं। पुत्र का, शिष्य का, सेवक का तो ये धर्म है कि नया कार्य करना हो, वह पिता, गुरु स्वामी को बतलाकर करे, आज्ञा माँगकर करे यदि आज्ञा माँगने का समय नहीं मिले तो अवसर देखकर शीघ्र ही बतला देवे। यह ही विनय है। यह ही भक्ति है।

जिसके मस्तक पर गुरु का आशीष है वे धन्य भाग्य हैं। विनयवन्त मदरहित जो पुरुष हैं वे अपने सभी कार्य गुरु को बतला देते हैं वे धन्य हैं जो इस कलिकाल में मदरहित कोमल परिणामों द्वारा समस्त लोक में प्रवर्तते हैं। उत्तम पुरुष बालक में, वृद्ध में, निर्धन में, रोगियों में, बुद्धिरहित मूर्खों में तथा जाति कुलादि हीनों में भी यथायोग्य प्रियवचन आदर, सत्कार, स्थान दान आदि देने से कभी नहीं चूकते हैं तथा प्रियवचन ही कहते हैं।

उत्तम पुरुष उद्धतता के वस्त्र आभरण नहीं पहनते हैं। उद्धतपने का, परके अपमान का कारण लेन-देन विवाहादि व्यवहार कार्य नहीं करते हैं। उद्धत होकर अभिमान से चलना, बैठना,

झाँकना, बोलना दूर से ही छोड़ देते हैं उनको लोक में पूज्य मार्दवगुण होता है। धन पाना, रूप पाना, ज्ञान पाना, विद्या-कला-चतुराई पाना, ऐश्वर्य पाना, बल पाना, जाति-कुलादि उत्तम गुण, जगतमान्यता इत्यादि पाना उनका ही सफल है जो उद्धतारहित अभिमानरहित, नम्रता सहित, विनय सहित प्रवर्तते हैं। जो अपने मन में अपने को सबसे छोटा मानते हुए कर्म के परवश जानते हैं वे कैसे गर्व कर सकते हैं? नहीं करते हैं। हे भव्यजनों! सम्यक्दर्शन का अंग इस मार्दव अंग को जानकर चित्त में ध्यान करो, स्तवन करो।

उत्तम मार्दव धर्म भव का मर्दन करने वाला है। यह मान कषाय का पराभवकारी है। दया धर्म का मूल मार्दव है। यह सबका हितकारी गुणों का सार है। उत्तम मर्दव सम्पूर्ण व्रतों तथा संयम का आधार है।

उत्तम मार्दव धर्म से परिणाम विशुद्धि को प्राप्त होते हैं। उत्तम मार्दव उभयलोक में सिद्धि प्रदाता है। उत्तम मार्दव के शासन से जिनशासन का परिज्ञान होता है तथा आत्मस्वरूप एवं परद्रव्य स्वरूप भासित होते हैं। उत्तम मार्दव धर्म आत्मा का परिणाम है तथा सम्यग्दर्शन का अंग है। इसको आत्मा में धारण करना चाहिए।

बड़े बड़ाई ना करै, बड़े न बोले बोल।
हीरा मुख से ना कहै, लाख हमारौ मोल।।
बड़ा हुआ तो क्या हुआ, जैसे पेड़ खजूर।
पंछी को छाया नहीं, फल लागे अति दूर।।

बहती रहती कषाय नाली, शान्त क्षुधा भी झरती है,
भव की पीड़ा को वही प्यार कर, मुक्ति रमा मन हरती है।
तीन लोक भी आलोकित है, शुचिमय चिन्मय लीला है,
अद्भुत से अद्भुततम महिमा, आतम की जयशीला है।।

जब भी हम मानव के विराट स्वरूप का गहराई से अध्ययन करते हैं। आत्मा की गहराई में उतरते हैं तब हमें स्वयं की आत्मा में कषाय और शान्ति का, अच्छाईयों और बुराईयों का एक अतिविचित्र अद्भुत ताना-बाना परिलक्षित होता है।

एक ओर हमें परम पुनीत, शान्ति प्रदायक आध्यात्मिक भावना की शीतल उज्ज्वल एवं निर्मल धारा प्रवाहित होती हुई परिलक्षित होती है तो वहीं दूसरी ओर समस्त कषायों की दुर्वासनाओं की गंदी सड़ी अत्यन्त बदबूदार नालियाँ भी बहती हुई दृष्टिगोचर होती हैं।

एक ओर सद्गुणों के सुरभियुक्त सुन्दर पुष्पों का अनुपम त्याग खिला हुआ है तो दूसरी ओर दुर्गुणों के विषकंटकों का अत्यन्त दुर्गम, भयानक जंगल भी व्याप्त है। कौन से ऐसे कारण हैं

जो मानव को उसके जीवन में चहुँओर से घेरे हुए हैं? कौन से बंधन हैं जो उसे बाँधे हुए हैं? वे कौन से चार बोझ हैं जो उसे मुक्तिपथ की ऊँचाइयों को छूने नहीं देते? उसकी दासता के लिए कौन उत्तरदायी है? कौन इसका निर्माण करता है? कौन सी वह अदम्य शक्ति है जो उसे इन सब बंधनों को स्वीकार करने के लिए बाध्य करती है?

वस्तुत: अहंकार ही इन सबका मूल कारण है। अहंकार आत्मा की विभाव परिणति है, स्वभाव परिणति नहीं है। जीव का स्वभाव अहंकार की प्रेरणा कभी नहीं देता। कारण अहंकार में पशुता छिपी हुई हो और जहाँ मानवता के साथ-साथ पशुता का समावेश हो, वहाँ पर श्रेष्ठ मानवता का होना संभव ही नहीं है, श्रेष्ठ मानवता का प्रादुर्भाव तो अहंकार के अभाव में ही संभव है। अहंकार के सम्पूर्ण विसर्जन के बाद ही तो प्रभुता संभव है। मार्दव में ही तो परमात्मा का वास है। हृदय में ही वह छिपा होता है।

मार्दव धर्म की उपलब्धि-सर्व साधारण को नहीं हो पाती। मार्दव को वीरस्य भूषणम् कहा है। वीर भी वही होता है जो भव के समस्त क्लेशों का मर्दन करके उन पर विजय प्राप्त कर असीम शान्ति का अनुभव करता है उसे हम इस प्रकार भी कह सकते हैं कि मार्दव धर्म संयमी का परम आभूषण है। आत्मा ज्योति जगाने वाला परम विज्ञान है।

मार्दव धर्म आत्मशक्ति को संग्रहीत करता है आत्मा को अद्‌भुत रूप से शक्तिशाली बनाता है। इसके विपरीत अहंकार मानव को कमजोर बनाता है। कमजोर मानव को आदर मान प्रतिष्ठा की अत्यधिक चाह होती है। अहंकार उसकी सबसे बड़ी कमजोरी है और इस कमजोरी को समझकर भी उसे ढोते हुए वह अपना सम्पूर्ण जीवन व्यतीत करता है। वह इस कमजोरी के लिए जीता है और इसी की खातिर मृत्यु का भी आलिंगन करता है। मैं भी कोई हूँ कुछ हूँ बस इसी की पुष्टि-तुष्टि के लिए वह जीवन पर्यन्त संघर्षरत रहता है अथक परिश्रम करता है परिणाम स्वरूप उसके जीवन में दुखों का, अनन्त पापों का आस्रव ही होता है। जीवन में दुख पीड़ा संताप आदि के अलावा उसके जीवन में कोई सार नहीं रहता, वह खोखला हो जाता है। अहंकार की आँधी सब कुछ बहा कर ले जाती है। किनारों पर मात्र पापों की दुर्गन्धित गन्दगी भर रह जाती है।

मान रावण ने किया, रावण कहता रहा कि रामचन्द्र जी भूमि गोचरी हैं यह मच्छर के समान हैं ये मुझे कैसे जीत सकते हैं? वह रावण उसी के द्वारा मारा गया। नरक में जाना पड़ा। रावण और बाली का विरोध था बाली तो मुनि बन गया। एक दिन रावण का विमान पर्वत के ऊपर से जा रहा था विमान रुक गया। उसने उतर कर देखा बाली बैठा है। मुझे इसे कष्ट देना चाहिए। रावण ने पहाड़ उठा लिया। बाली विचारने लगा कि पर्वत पर जितने जीव हैं सब मारे जायेंगे,

बाली को करुणा आयी और उसने पैर का अँगूठा रखा। रावण पर्वत के नीचे दबकर रोने लगा तभी इसका नाम रावण पड़ा। मंदोदरी ने बाली से प्रार्थना की कि इसे माफ कर दो तभी बाली ने अँगूठा उठा लिया। रावण का मान खण्डित हो गया। सनत्कुमार चक्रवर्ती ने रूप का मान किया, खण्डित हुआ। एक बार देवों में चर्चा हुई कि सनत्कुमार बहुत रूपवान है। एक देव रूप देखने को आया। सनत्कुमार कहने लगा कि अब रूप क्या देखते हो रूप तो कल राजसभा में देखना। सनत्कुमार अगले दिन श्रृंगार करके राजसभा में आया और बैठा। देव रूप देखकर बोला जो रूप कल था आज नहीं है तभी उसके रूप का गर्व खण्डित हो गया। आज अहंकारी लोगों को यदि थोड़ी सी सम्पत्ति मिल जाये तो आसमान से ऊँचे हो जाते हैं।

एक बार एक महिला ने मान में आकर दास्ताने बनवाये। अभिप्राय क्या था कि मुझे दुनियां साहूकारिणी कहेगी लेकिन किसी ने भी नहीं पूछा कि बहन दास्ताने कब बनवाये। दिन रात परेशान रहती कि कोई पूछता ही नहीं। सोचा क्या करूँ? उसने अपने मकान में आग लगा ली। बार-बार पानी से आग बुझाये। कभी हाथ इधर करती, कभी उधर करती। एक बहन कहने लगी कि बहन दास्ताने कब बनवाये। कहने लगी अगर पहले पूछ लेती तो मकान में आग क्यों लगाती। तो भैया मान के कारण उसने घर में आग लगा दी।

विद्या ददाति विनयं, विनयाद्याति पात्रताम्।
पात्रत्वाद् धनमाप्नोति, धनाद् धर्म ततः सुखम्॥

विद्या विनय को देती है। विनय से पात्रता आती है। पात्रता से धन मिलता है। धन से धर्म और धर्म से सुख प्राप्त होता है। जिसने अपने ह्रदय में विनय धारण नहीं की। वह धर्म का अनुयायी कैसे हो सकता है?

एक स्थान पर एक पण्डित जी रहते थे। पहले गुरुओं के घर पर ही छात्र रहते थे तथा गुरु उन पर पुत्रवत् स्नेह रखते थे। पण्डित जी का एक छात्र पर विशेष स्नेह था। पण्डितानी उनको बार-बार कहा करती सभी लड़के तो आपकी विनय करते हैं, आपको मानते हैं फिर आप इसी की प्रशंसा क्यों करते हो। पण्डित जी ने कहा कि इस जैसा मुझे कोई नहीं चाहता। यदि तुम इसकी परीक्षा करना चाहती हो तो मेरे पास बैठ जाओ। आम का मौसम था। गुरु ने अपने हाथ पर पट्टी के भीतर आम बाँध लिया और दुःखी जैसी हालत में कराहने लगे। समस्त छात्र गुरु के पास दौड़े आये गुरु ने कहा दुर्भाग्यवश भारी फोड़ा हो गया है। छात्रों ने कहा कि हम अभी वैद्य को लाते हैं ठीक हो जायेगा। गुरु ने कहा कि बेटा यह वैद्य से अच्छा नहीं होता यह पहले भी एक बार मुझे हुआ था तब मेरे पिता ने ही उसे चूसकर अच्छा किया था। यह चूसने से ही अच्छा हो सकता है। मवाद से भरा फोड़ा कौन चूसे? सब ठिठक कर रह गये। इतने में वह छात्र आ गया जिसकी गुरु जी प्रशंसा किया करते थे। आकर बोला गुरु जी क्या है? तब

गुरु जी बोले बेटा फोड़ा है। चूसने से ही ठीक हो सकेगा। गुरु जी के कहने की देर थी कि उस छात्र ने उसे अपने मुंह में ले लिया। फोड़ा तो था नहीं वह तो आम का फल था। पंडितानी को अपने पति के वचनों पर विश्वास हो गया। आज का छात्र तो अपने गुरु को नौकर के समान समझ उसका बहुत ही अनादर करते हैं। यही कारण है कि उसके हृदय में वास्तविकता का प्रवेश नहीं होता। क्या कहें आज की बात, आज तो विनय रह ही नहीं गई। सभी अपने आपको बड़ा से बड़ा होने का अनुभव करते हैं। मेरा मान न चला जाय। इस फिकर में सब पड़े हैं पर इस तरह किसका मान रहा है। आप किसी को सिर झुकाकर या हाथ जोड़कर उसका उपकार नहीं करते। बल्कि अपने हृदय में मान रूपी शत्रु को हटाकर अपना उपकार करते हैं। किसी ने किसी की बात की उसे हाथ जोड़ दिये, सिर झुका दिया इतने से ही वह खुश हो जाता है और कहता है कि इसने हमारा मान रख लिया। अरे मान क्या रख लिया अपितु खो दिया। आपके हृदय में जो अहंकार था उसे अपनी शारीरिक क्रिया से दूर कर दिया।

उत्तममार्दव धर्म का महत्त्व

दिल्ली में लाला हरसुखराय ने सन् 1807 में एक दर्शनीय एवं भव्य जैन मन्दिर बनवाया था जिसकी उस समय की लागत 8 लाख रुपये थी। यह मन्दिर 6 वर्ष में बनकर तैयार हुआ था। एक दिन लोगों ने देखा कि मन्दिर का सारा काम पूर्ण हो चुका है। केवल शिखर का एक-दो दिन का काम बाकी है किन्तु काम बन्द पड़ा है। राजा साहब (बादशाह राजा की उपाधि दिया करते थे) जो सर्दी गर्मी बरसात में हर समय मजदूरों के बीच में खड़े हो करके काम करवाते थे आज वहाँ नहीं हैं।

लोगों को अनुमान लगाते देर न लगी जब हर मुस्लिम राज्य में पुराने जैन मन्दिरों की रक्षा करना मुशिकल हो रहा है तब नया मन्दिर कौन बनने देगा फिर शिखर बंध मन्दिर कैसे बन सकता है। किसी ने कहा—अरे भाई राजा साहब का क्या बिगड़ा वे तो मुँह छिपाकर घर बैठे है नाक तो हमारी कटी। भला हम किसी को मुँह नहीं दिखायेंगे। इस दुरदशा से तो अच्छा यही था कि नींव ही नहीं खुदवाते।

जिन्हें धर्म से अनुराग था उन्होंने सुना तो अन्न जल का त्याग कर दिया और अपना दुख लेकर राजा हरसुखराय के पास पहुँचे और बोले आपके रहते जिनमन्दिर अधूरा पड़ा रह जाय तो समझो कि भाग्य ही हमारे प्रतिकूल है। आप तो कहते थे कि बादशाह सलामत ने शिखर बनवाने की इच्छा प्रकट की है फिर शिखर अधूरा रहने का रहस्य क्या है? सेठ जी मुँह लटकाकर सकुचाते हुए बोले—भाइयों अब पर्दा रखना ठीक नहीं है। दरअसल यह बात है कि

मेरी जितनी सामर्थ्य थी वह मैंने पूरी कर दी और मैं कर्ज लेने का आदी नहीं हूँ। अत: सोचता हूँ समाज से चन्दा इकट्‌ठा कर लूँ मगर कैसे? हिम्मत है ही नहीं?

यह सुनकर सभी बोल पड़े–बस राजा साहब इतनी सी बात है। ऐसा कहकर एक सज्जन ने अशर्फियों का ढेर लगा दिया और कहा कि आप चन्दा माँगने जायेंगे। धिक्कार है जो हम आपको चन्दा माँगने भेजें। तब लाला हरसुखराय बोले कि अब जो पैसा लगेगा वह समाज से लूँगा किसी एक व्यक्ति से नहीं। आखिर ऐसा ही हुआ। प्रत्येक घर से नाम मात्र चन्दा लिया गया जब कलशारोहण का समय आया तो राजा साहब ने स्पष्ट कह दिया। मन्दिर जी समाज के चन्दे से बना है अत: वेही कलशारोहण करें। लोगों को चन्दा लेने का रहस्य समझ में आ गया।

दिल्ली में पंच कल्याणक हुआ था। पंचकल्याणक के बाद लड्डू बाँटने की प्रथा थी। लाला हरसुखराय ने नौकर के द्वारा सबके पास लड्डू भेजे। लोगों ने सानन्द लड्डू ले लिये। पर एक आदमी ने जिसने गुड़ चने की दुकान कर रखी थी यह विचार कर उसने लड्डू लेना अस्वीकार कर दिया कि मैं राजा को पानी नहीं पिला सकता तब उनके लड्डू का व्यवहार कैसे पूर्ण कर सकूँगा। शाम के समय जब लाला जी को पता चला तो दूसरे दिन वे स्वयं लड्डू लेकर नौकर के साथ गाड़ी पर सवार होकर उसकी दुकान पर पहुँचे और बड़ी विनय से दुकान पर बैठकर गुड़ और चने लेकर खाये और पानी पीकर बोले भाई अब तो मैंने तुम्हारा पानी पी लिया अब ये लड्डू ले लो। दुकानदार अपने व्यवहार और लाला जी की सौजन्य पूर्वक प्रवृत्ति से दंग रह गया और उसने लड्डू लिये। उनकी महानता को देखकर उसकी आँखों में आँसू आ गये कि मुझ गरीब को भी वे भुला नहीं सके।

अन्त में इतना ही कहूँगा कि अहकार मानव का घातक है, बैरी है तथा मार्दव धर्म उसका परम सखा, परम हितैषी मित्र है। मानव जीवन में सौन्दर्य के पुष्प मार्दव के माध्यम से खिलते हैं।

अहंकार उस कागज की नाव के समान है जो एक न एक दिन निश्चित ही आपको ले डूबेगी, आपकी समस्त महत्त्वाकांक्षाएं बिखर जायेंगी। अत: आप निश्चयपूर्वक इसका परित्याग करें। विनम्र बने। अहंकार की नींव पर कभी भी धर्मरूपी दृढ़ भवन का निर्माण नहीं हो सकता।

अहंकारी मानव अन्दर ही अन्दर घुटता रहता है। रोता, तड़पता सा प्रतीत होता है, अन्तरंग से उसे सुखा डालता है। जबकि मृदुता उसे इन समस्त जटिलताओं में धैर्य बँधाती है परमशक्ति प्रदान करती है।

जहाँ अहंकार है वहाँ जेष्ठ की दोपहरी है। जहाँ मृदुता है वहाँ शीत की शीतलता है बसन्त की अनुपम बहार है। अपूर्व शान्ति है। पूजन में कहा गया है –

मान महा विषरूप, करहिं नीचगति जगत में,
कोमल सुधा अनूप, सुख पावै प्राणी सदा।।
उत्तम मार्दव गुण मनमाना, मान करन को कौन ठिकाना।
वस्यौ निगोद माहितै आया, दमरी रूकन भाग बिकाया।
रूकन बिकाया भाग-बशते, देव एक-इन्द्रियभया,
उत्तम मुआ चाण्डाल हुआ, भूप कीडों में गया।
जीतव्य जोवन धन गुमान, कहा करै जल बुदबुदा,
करि विनय बहु गुण बड़े जनकी, ज्ञान का पावैं उदा।।

उत्तमआर्जव धर्म

आर्जव का अर्थ सरलता होता है अर्थात् अपने जीवन से मायाचारी को निकाल देना ही आर्जव धर्म है। अपने जीवन से मायाचारी को कैसे निकाला जाय आज इसी पर विचार करना है। सर्व प्रथम यह प्रश्न उठता है कि माया चारी होती क्या है? तब इसे निकालने का प्रयत्न हो सकता है।

मोत्तूण कुडिलभावं, णिम्मलहिदएण चरदि जो समणो।
अज्जवधम्मं तइयो तस्स दु संभवदि णियमेण।।

जो श्रमण कुटिल अर्थात् मायाचारी त्याग कर निर्मल भाव से चारित्र पालता है उसी के आर्जव धर्म होता है।

आज जैसी दशा मनुष्य की है और जितनी जड़ता उसमें दिखती है वैसी दूसरे प्राणियों की नहीं है। मानव की इस हीन स्थिति का कारण क्या है? क्या इतनी जड़ता या वक्रता मनुष्य को परमात्मा से किसी प्रकार का सम्बन्ध रखने देगी। परमात्मा से सम्बन्ध स्थापित करने की सर्वप्रथम शर्त होती है अपने अन्दर से सारी वक्रता को निकाल देना जो भी तत्त्व उसे वक्र बनाने में निमित्त हैं उनको अपने से अलग हटा देना। जो साधन अनुभूतियां चैतन्य आत्मा के दर्शन कराने वाले हैं उन साधनों अथवा अनुभूतियों से संलग्न हो जाये। वक्रता से पीड़ा है संताप है और घनीभूत अंधकार है। मनुष्य में आनन्द है मुक्त गमन की उन्मुक्त यात्रा है।

आत्मा में वक्रता नहीं होती है। उसमें कहीं भी अंधकार नहीं है। मन की वक्रता से मुक्त होने की दशा में ही सफलता के उच्चतम शिखर पर स्पर्श किया जा सकता है। हमारा मन इतना निष्कपट, इतना सरल हो जितना कि भोले-भाले सरल चित्त बच्चों का होता है। मन की उलझन

पूर्ण वक्रता के कारण ही मानव जीवन में संकट है, पीड़ा है। अब विचार करने की बात है कि मन की वक्रता कैसे दूर हो? चित्त में किस प्रकार वाँछित ऋजुता स्थापित हो।

आर्जव का अर्थ सरलता है। मन-वचन-काय की कुटिलता का अभाव आर्जव है। आर्जव धर्म पाप का खण्डन करने वाला है तथा सुख उत्पन्न करने वाला है। अत: कुटिलता छोड़कर कर्म का क्षय करने वाला आर्जव धर्म धारण करो। कुटिलता अशुभ कर्म का बंध करने वाली है जगत में अतिनिंद्य है। आत्मा का हित चाहने वालों को आर्जव धर्म का अवलंबन लेना उचित है। जैसा मन में विचार करते हैं वैसा ही शब्दों द्वारा अन्य को कहना तथा वैसा ही बाह्य में शरीर द्वारा प्रवर्तन करना, उसे सुख का संचय करने वाला आर्जव धर्म कहते हैं। मायाचार रूप शल्य मन से निकालकर उज्ज्वल पवित्र आर्जव धर्म का विचार करो। मायाचारी का व्रत, तप, संयम सभी निरर्थक हैं। आर्जव धर्म निर्वाण के मार्ग का सहायक है। कुटिलवचन नहीं बोलना आर्जव धर्म है। यह आर्जव धर्म सम्यकदर्शन ज्ञान-चारित्र का अखण्ड स्वरूप है तथा अतींद्रिय सुख का पिटारा है। आर्जव धर्म के प्रभाव से अतीन्द्रिय अविनाशी सुख प्राप्त होता है। संसार रूपी समुद्र से तिरने के लिए जहाजरूप आर्जव धर्म ही है।

जिस समय मायाचार जान लिया जाता है उसी समय प्रीति भंग हो जाती हैं जैसे कांजी डालने से दूध फट जाता है। मायाचारी अपना कपट बहुत छिपाता है किन्तु वह प्रकट हुए बिना नहीं रहता है। दूसरे जीवों की चुंगली करना व दोष बतलाना, वे स्वयं ही प्रकट हो जाते हैं। मायाचार करना अपनी प्रीति का बिगाड़ना है धर्म का बिगाड़ना है। मायाचारी के समस्त हितैषी बिना प्रयोजन के ही बैरी हो जाते हैं।

जो व्रती हो, त्यागी हो, तपस्वी हो किन्तु उससे कपट एक बार भी हो जाय तो सभी उसे अधर्मी मानकर प्रीति नहीं करते कपटी की तो माता भी प्रीति नहीं करती है कपटी तो मित्र द्रोही, स्वामी द्रोही, धर्म द्रोही, कृतघ्नी है तथा यह जिनेन्द्र का धर्म तो छल कपट रहित है जिस प्रकार टेढ़े म्यान में सीधी तलवार प्रवेश नहीं करती है उसी प्रकार कपट से वक्र परिणामी के हृदय में जिनेन्द्र का आर्जव सरल धर्म प्रवेश नहीं करता है। कपटी के दोनों लोक नष्ट हो जाते हैं यदि यश चाहते हो धर्म चाहते हो, प्रीति चाहते हो तो मायाचार का त्याग करके आर्जव धर्म धारण करो। कपट रहित की बैरी भी प्रशंसा करते हैं।

मान और लोभ के बीच में माया का वर्णन आया है उसका कारण है कि माया मान और लोभ दोनों के साथ सम्पर्क रखती है। दोनों से ही उसकी उत्पत्ति होती है। मान के निमित्त से मनुष्य को यह इच्छा उत्पन्न होती है कि मेरे बड़प्पन में किसी प्रकार की कमी न आ जाये। परन्तु शक्ति की न्यूनता से बड़प्पन का कार्य करने में असमर्थ रहता है। मनुष्य जिस रूप में है उसे उसी रूप में अपने आप को प्रगट करना चाहिए। परन्तु वह दम्भ और माया के कारण ऐसा नहीं

करता। आगम में कहा है कि शक्ति अनुसार ही कार्य करना चाहिए और अपने असली रूप में प्रगट रहो। व्रत के लक्षण में जो 'नि:शल्यो व्रती' कहा गया है उसका भी यही तात्पर्य है। दम्भाचरण के कारण जीव वास्तव में व्रती नहीं है। लोभ के वशीभूत होकर व्यक्ति इच्छित प्राप्ति के लिए निरन्तर अध्यवसाय करता है वह तरह-तरह की छल क्षुद्रताओं को करता है, वह लोभ केवल धन विषयक नहीं होता अपितु उसमें लोकेषणा प्रमुख होने के कारण दम्भाचरण में प्रवृत्ति होती है और वह इस दम्भाचरण के द्वारा किये गये पाप को छिपाने का प्रयत्न करता है। परन्तु वह रूई में लपेटी गई अग्नि के समान स्वयं प्रकट हो जाता है। किसी का जल्दी प्रकट हो जाता है और किसी का देर से। परन्तु यह निश्चित है कि प्रगट होगा। मायावी मनुष्य ऐसी मुद्रा बनाता है कि देखने में तो बड़ा भद्र दिखाई देता है परन्तु उसका अन्तरंग कलुषित होता है।

जब भी कपट रूप परिणमन होगा स्वभाव में विकार आ जायेगा और मनुष्य कपट रूप परिणमन करता है अभिलाषा के कारण। मैं लोगों के द्वारा प्रशंसा पाऊँ सभी मुझे अच्छा समझे इस भाव अर्थात् अभिलाषा के कारण छल-कपट करता है और वह दु:ख पाता है। जहाँ इस प्रकार की प्रवृत्ति होगी वहाँ आर्जव धर्म हो नहीं सकता क्योंकि मायाचारी और आर्जव दोनों एक दूसरे के विपरीत हैं। यह आत्मा अपने स्वभाव से च्युत होकर कुटिलता के कारण चारों गतियों में भ्रमण करती रहती है। मायाचारी व्यक्ति बगुले के समान होता है जैसे बगुला जिस समय मछली पकड़ता है तो एक टांग पर खड़ा हो जाता है वैसे ही जैसे योगीजन ध्यान करते हैं और जैसे ही कोई मछली आती झट-झपट कर उसे पकड़ लेता है–

तन गोरा मन साँवरा, बगुले जैसा भेष।
तोसो तो कागा भला, बाहर भीतर एक।।

एक बार एक बिल्ली एक घर में मिट्टी की हांडी में दूध पी रही थी। इतने में उस घर का कोई व्यक्ति आया उसकी आहट से डरकर बिल्ली ने जो मुंह हटाया वह हांड़ी फूट गयी और उसका घेरा उसके गले में रह गया। अब उस घेरे से बिल्ली को बड़ी परेशानी होने लगी वह भाग दौड़ भी नहीं सकती थी। इससे भूखी रहने लगी तब उसने मायाचारी की और एक युक्ति सोची। जिस मार्ग पर चूहों का आवागमन था बीच में बैठ गयी तो चूहे बिल्ली को देखकर वापस जाने लगे तब वह बोली तुम लोग वापस क्यों जा रहे हो? चूहे बोले कि हमारी तुम्हारी शत्रुता अनादि काल से चली आ रही है तुम हमारे वंशजों को पकड़कर भक्षण कर जाती हो। तुम्हारा विश्वास किस तरह करें। तुम लोग सही कह रहे हो परन्तु मेरी भी एक बात ध्यान से सुनो। फिर जो तुम्हारे मन में आये करना। अभी-अभी मैं बनारस यात्रा करने गयी वहाँ मैंने हिंसा न करने का व्रत लिया है उसका प्रमाण यह मेरे गले में लटकी माला है अभी तक अनगिनत जीवों की हिंसा की है अब मैं उसका प्रायश्चित कर रही हूँ। अब मेरा मन धर्म में लग गया है।

तब चूहे बिल्ली की बात पर विश्वास करके जाने लगे तो पहले तो उसने चूहों को कुछ नहीं कहा जब सारे चूहे चले गये तो जो सबसे अन्त में था उसे चुपके से झपट कर पकड़ लिया। इस तरह अनेक चूहे नष्ट कर गयी। एक दिन उनका प्रधान चूहा जिसकी पूँछ कटी हुई थी वह गायब हो गया तब चूहों को शंका हुई। उन्होंने गिनती की तो पता चला कि हमारी तो संख्या ही घट गई है। तब अनुमान लगाया कि यह बिल्ली हमारे साथ धोखा कर रही है। तो बिल्ली से बोले तूने हमारे काफी साथी हजम कर लिए हैं हमारा पूँछ कटा नेता भी हजम कर गई हो। तुमने हमारे साथ छल किया है और हमें तुम्हारे ऊपर विश्वास नहीं रहा। इसी प्रकार छलकपट मायाचारी पर आधारित व्यवसाय भी अधिक दिन स्थाई नहीं रहता। एक दिन तो नष्ट हो ही जाता है। मिलावट करना जैसे असली में नकली, दूध में पानी, वनस्पति घी को देशी घी में मिलाना छलकपट आदि सभी हैं। जैसे एक हलवाई दूध में पानी मिलाता था एक दिन पाप का घड़ा भर गया और हलवाई का सभी कुछ नष्ट हो गया। छलकपट एक साधु ने किया वह मरकर तिर्यंचगति का त्रिलोक मण्डन नामक हाथी हुआ।

एक बार एक मुनिराज एक नगरी में चातुर्मास कर रहे थे वे बहुत तपस्वी थे उनकी ख्याति चारों तरफ फैल गयी। वर्षा योग समाप्त होने पर वे मुनिराज विहार कर गये। तभी वहाँ दूसरे मुनिराज आ गये लोगों ने समझा ये वे ही मुनिराज हैं और उनकी खूब सेवा करने लगे। तब उन्होंने मायाचारी वश अपने को छिपा लिया और बताया नहीं कि मैं वह नहीं हूँ। जिसके कारण मरण करके तिर्यंच योनि में हाथी की पर्याय प्राप्त की। यह मायाचारी चार प्रकार की होती है।

1. अनन्तानुबंधी–बाँस की जड़ के समान टेड़ी।
2. अप्रत्याख्यान–मेढे के सींगके समान।
3. प्रत्याख्यान–गौमुख के समान।
4. संज्वलन–खुरपा के समान।

एक संन्यासी कहा करता था कि माया को घुसने तक नहीं दूँगा। मैं नग्न होकर बिचरूँगा। माया ने कहा–मैं तेरे आगे पीछे ही चलूँगी। इस तरह वह संन्यासी जंगल में रहता और कंकड़ रेत एक समान, कहकर रेत पर सोया करता। एक दिन माया से पूछा–तू कहाँ है? तब माया ने समझ लिया इसको घमण्ड आ गया है। तब उसने उत्तर दिया मेरे जाने की क्या जरूरत है मैं अपने बड़े पुत्र अहंकार को तेरी खिदमत में भेज चुकी हूँ। माया इस तरह ठगनी है इसलिए ज्ञानीजन कहते हैं कि इसके फंदे में कभी नहीं पड़ना चाहिए।

एक वेश्या ने बहुत धन कमाया। एक दिन उसके मन में विचार आया कि मैंने बहुत पाप किये और पाप से धन भी खूब कमाया अब उस धन का दान करके कुछ पुण्य कमाना चाहिए।

तब वह दान करने के लिए गंगा के तट पर गई। वहाँ उसका विचार एक ठग ने जान लिया सो वह वदन में राख मलकर सबसे अलग एकान्त में बैठ गया। उस वेश्या ने चारों तरफ घूमकर देखा कि मैं किस साधु के पास दान करूँ जो मुझे फलदायक होगा। असली से अधिक आकर्षण नकली में होता है। इसी प्रकार और साधुओं से ज्यादा आकर्षण उस ठग बने साधु में था सो वेश्या ने उसी के पास दान करना तय किया और बोली–महाराज मैं दान करना चाहती हूँ। तब साधु बोले–कि तू कौन है? मैं एक वेश्या हूँ उसने बताया। तब वे बोले तू वेश्या होकर इतने बड़े महात्मा से बात कर रही है इसका तो प्रायश्चित लेना पड़ेगा। अच्छा बता क्या दान करना चाहती है। वेश्या ने कहा मैं अपनी सारी सम्पत्ति दान करना चाहती हूँ। साधु महाराज ने उसकी सारी सम्पति लेकर कई तरह के संकल्प कराये फिर अन्त में एक दोहा पढ़कर उसको आशीर्वाद दिया–

गंगा जी के घाट पर खाई खीर और खांड़,
यौका धन यो ही गया, तू वेश्या मैं भांड़।।

एक साधु था। एक आदमी कहीं जा रहा था। बर्षा का मौसम था। रास्ते में एक जंगल में साधू ने उस आदमी को कपट से मारना चाहा। उसने कहा कि देख तू मुझे कपट से मारेगा तो एक दिन तेरा कपट प्रगट हो जायेगा। साधु ने हँसकर कहा मुझे यहाँ पाप करते कौन देख रहा है? तब उसने कहा कि ये पानी के बुलबुले तुझे देख रहे हैं। थोड़ी देर में तुम्हारे नीचे की घास उठकर तुम्हारे ऊपर अभियोग चलायेगी। निर्जीव पत्थर व हरे-भरे वृक्षों को जबान लग जायेगी। ये तुम्हारे विरुद्ध आवाज उठायेंगे। तब साधु ने हँसकर कहा कि मेरा क्या कर सकते हैं? और उसे मार दिया पुलिस को खबर लगी तब सी.आई.डी. द्वारा खोज की जाने लगी। उस साधु पर शक होने पर सी.आई.डी. का आदमी साधु के पास रहने लगा और परम भक्त बन गया। कुछ दिनों बाद उसने साधु का विश्वास पूर्णरूप से जीत लिया।

एक समय की बात है कि बरसात का मौसम था पानी के बुलबुले उठ रहे थे। उन्हें देखकर साधु को हँसी आ गई तब शिष्य ने पूछा कि महाराज! हँसी क्यों आई? यूँ ही आ गई, साधु ने कहा। महाराज मैं आपका अभिन्न अंग हूँ आपको बात तो बतानी ही होगी। तब साधु ने सारी बात उसको बता दी। वह सी.आई.डी. का आदमी था उसने सारी बात जानकर पुलिस को खबर कर दी कि हम दोनों उस तरफ से आये तो गिरफ्तार कर लेना और उनको गिरफ्तार कर लिया गया। इस प्रकार कपट कभी भी छिपता नहीं वह कभी-न-कभी प्रकट अवश्य हो जाता है।

कपट छिपाया न छिपे, छिपे न मोटा भाग।
छबी दुबी न रहे, रूई लपेटी आग।।

कपट न कीजै कोय, चोरन के पुर न बसै।
सरल सुभावी हो, ताकै घर बहु संपदा।
उत्तम आर्जव रीति बखानी, रंचक दगा बहुत दुःखदानी।
मन में होय सो वचन उचरिये, वचन होय सो तन सो करिये।
करिये सरल तिहुँ जोग अपने, देख निरमल आरसी।
मुख करै जैसा लखै तैसा, कपट-प्रीति अंगार सी।।
नहिं लहै लछमी अधिक छलकरि, कर्म-बंध-विशेषता।
भय त्यागि दूध बिलाव पीवै, आपदा नहिं देखता।।

बन्धुओं, आपने देखा छलकपट करने का फल क्या होता है और पाप द्वारा कमाया धन किस प्रकार निरर्थक होता है यदि धन अच्छे काम में लगाना चाहो तो भी नहीं लगता और छलकपट से किया गया कोई भी कार्य छिपता नहीं एक न एक दिन तो खुल ही जाता है और अपनी आत्मा को मलिन करता है। इसलिए छलकपट और पाप का त्याग करके अपनी आत्मा को मलिन होने से बचायें और जब आगे आत्मा मलिन होने से बचेगी तो धीरे-धीरे पिछली मलिनता भी साफ होनी शुरू हो जायेगी और एक दिन ऐसा आयेगा जब आत्मा पूर्ण शुद्ध हो जायेगी तथा अपने शुद्ध स्वरूप में स्थित होकर शाश्वत अनन्त सुख का रसास्वादन चिरकाल तक करेगी।

उत्तमशौच धर्म

कंखाभावणिवित्तिं किच्चा बेरग्गभावणाजुत्तो।
जो वट्टदि परममुणी तस्स दु धम्मो हवे सौच्चं।।

जो परम मुनि इच्छाओं को रोककर और वैराग्य रूप विचारों से युक्त होकर आचरण करता है उसको शौच धर्म होता है।

आत्मा का जो पवित्र शुचि भूत परिणाम है वही शौच धर्म है। लोभ परिणति का न होना पवित्रता है। मन के साथ उत्तम विशेषण लगा है। सम्यक् रीति से अंतस में पवित्र भावना को ही उत्तम कहा है। यहाँ पर सम्यक् का अर्थ अन्तस का स्नान लिया है। शरीर को तो अनेक बार स्नान कराया, धोया परन्तु अन्तस को आज तक स्नान नहीं कराया उसकी शुचिता करने का एक बार भी प्रमाणिक प्रयास नहीं किया।

शरीर तो पशु-पक्षी भी धोते हैं परन्तु शरीर धोना मात्र धोना नहीं है अपितु बहिरंग के साथ-साथ इस अन्तर्मन को, अन्तरंग को शुचि पवित्र करना है। मन के भीतर जो लोभ के परिग्रह

का विष एकत्रित हो रहा है उसे निकालना होगा। मन को विरक्त करना होगा तभी सत्य का त्वरित आगमन होगा और प्रभु सत्ता के दर्शन हो सकेंगे। उसकी अनुभूति से वंचित हैं हम आज भीतर ही भीतर विष घोल रहे हैं। सतत् अनन्त इच्छाओं को जन्म दे रहे हैं। हमारा यह जीवन वासनाओं की काल कोठरी में कैद हो गया है मुक्त द्वार बन्द हो गये हैं। अनेक पट हमें खोलने हैं। सभी ताले टूटने पर ही अन्तरंग का मंगल स्नान संभव है। इस पावन स्नान के बिना सत्य की सुखद अनुभूति सम्भव नहीं है। हम शौच का ठीक-ठीक यथार्थ अर्थ समझ लें क्योंकि शरीर की शुद्धि मात्र से काम नहीं चलेगा। मन की शुद्धि भी अत्यन्त आवश्यक है।

जिन्होंने त्याग दिया घर बार, उन्हें धन माल क्या करना।
जिनकी आत्मा है शुद्ध, उन्हें स्नान क्या करना।।

शौच का अर्थ पवित्रता उज्ज्वलता है। स्नानादि करने से देह की उज्ज्वलता को शौच नहीं कहते हैं क्योंकि देह तो सप्त धातुमय मलमूत्र से भरी जल से धोने से शुचिपने को प्राप्त नहीं होती हैं जैसे मल से बना, मल से भरा घड़ा जल से धोने से शुद्ध नहीं होता है उसी प्रकार शरीर भी शुद्ध उज्ज्वल जल से धोने से शुद्ध नहीं होता है। शरीर को शुद्ध मानना वृथा है। शौच धर्म तो आत्मा को उज्ज्वल करने से होता है। लोभ से हिंसा से आत्मा अत्यन्त मलिन हो रही है, अत: आत्मा के लोभमल का अभाव होने से शुचिता होगी। जो अपने आत्मा को देह से भिन्न ज्ञानोपयोग-दर्शनोपयोगमय, अखण्ड, अविनाशी, जन्म जरा-मरण-रहित, तीन लोकवर्ती समस्त पदार्थों का प्रकाशक सदाकाल अनुभव करता है, ध्याता है उसे शौचधर्म होता है। मन को मायाचार, लोभादि से रहित उज्ज्वल करने से शौचधर्म होता है जिनका मन काम, लोभादि से मलिन हो रहा है उसे शौचधर्म नहीं होता है। धन की गृद्धता व अतिलम्पटता का त्याग करने से शौच धर्म होता है।

परिग्रह की ममता छोड़कर, इन्द्रियों के विषयों का त्यागकर, तपश्चरण के मार्ग में प्रवर्तन करना शौचधर्म है। ब्रह्मचर्य धारण करना शौचधर्म है। आठ मदों से रहित विनयवान होना भी शौचधर्म है। अभिमानी मद सहित होने से महामलिन है उसके शौचधर्म कैसे होगा? वीतराग सर्वज्ञ के परमागम का अनुभव करके अंतरंग मिथ्यात्व कषायादि मल का धोना शौचधर्म है। उत्तम गुणों की अनुमोदना करने से शौचधर्म होता है। परिणामों में उत्तम पुरुषों के गुणों का चिंतन करने से आत्मा उज्ज्वल होती है। कषाय मल का अभाव करने से उत्तम शौचधर्म होता है। आत्मा को पाप से लिप्त नहीं होने देना, शौचधर्म है।

जो समभाव-संतोषभाव रूप जल से तीव्र लोभ रूप मल के पुंज को धोता है भोजन में अतिलम्पटता रहित है, उसके निर्मल शौचधर्म होता है। भोजन का लंपटी अति अधम है, अखाद्य वस्तु भी खा लेता है हीनाचारी होता है, लज्जा नष्ट हो जाती है। संसार में जिह्वा इंद्रिय व उपस्थ

इंद्रिय के वशीभूत हुए जीव अपना स्वरूप भूलकर नरक-तिर्यंचगति के कारण महानिंद्य परिणामों को प्राप्त हो जाते हैं।

संसार में परधन की इच्छा, परस्त्री की वांछा, भोजन की अतिलंपटता ही परिणामों को मलिन करने वाली है। इनकी वांछा से रहित होकर अपने आत्मा की संसार में पतन से रक्षा करो। परस्त्री, परधन के इच्छुक तथा जीवघात करने वाले करोड़ों तीर्थों में स्नान, समस्त तीर्थों की वंदना, करोड़ों का दान, करोड़ों वर्षों तक तप, समस्त शास्त्रों का पठन-पाठन आदि से भी शुचिता कभी नहीं प्राप्त कर सकते हैं।

अन्याय, अनीति तथा अभक्ष्य भक्षण करने वालों के परिणाम इतने मलिन होते हैं कि करोड़ों बार धर्म का उपदेश व समस्त सिद्धान्त शास्त्रों की शिक्षा बहुत वर्षों से सुनते रहने पर भी वह कभी उनके हृदय में प्रवेश नहीं करती हैं। प्रत्यक्ष ही देखते हैं–जिनको पचास वर्ष शास्त्र सुनते हुए हो गये हैं किन्तु जिन्हें धर्म के स्वरूप का ज्ञान ही नहीं हुआ है, वह सब अन्याय का ध न तथा अभक्ष्य-भक्षण का फल है।

इसलिए यदि अपनी आत्मा की पवित्रता चाहते हो तो अन्याय का धन मत ग्रहण करो, अभक्ष्य भक्षण नहीं करो, परस्त्री की वांछा नहीं करो। शौचधर्म तो परमात्मा के ध्यान से होता है। अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य तथा परिग्रह के त्याग से शौचधर्म होता है।

जो पाँच पापों में प्रर्वतने वाले हैं वे सदाकाल मलिन हैं। जो पर के उपकार को लोप करते हैं वे कृतघ्नी सदा ही मलिन हैं। जो गुरुद्रोही, धर्मद्रोही, स्वामीद्रोही, मित्रद्रोही उपकार को लोपने वाले हैं उनके पाप का संतानक्रम असंख्यात भवों तक करोड़ों तीर्थों में स्नान करने से, दान करने से दूर नहीं होता है। विश्वासघाती सदा ही मलिन है।

अत: भगवान के परमागम की आज्ञा के अनुसार शुद्ध सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र के द्वारा आत्मा को पवित्र बनाओ। क्रोधादि कषायों का निग्रह करके उत्तम क्षमादि गुण धारण करके आत्मा को उज्ज्वल करो। समस्त व्यवहार कपट रहित उज्ज्वल करो। पर का वैभव, ऐश्वर्य, यश, उत्तम विद्या, प्रभाव आदि देखकर उनके प्रति ईर्ष्या भावरूप मलिनता छोड़कर शौचधर्म अंगीकार करो। दूसरों का पुण्य का उदय देखकर दु:खी नहीं होओ। इस मनुष्य पर्याय को तथा इंद्रिय, ज्ञान, बल, आयु, संपदादि अनित्य, क्षणभंगुर जानकर, एकाग्रचित से अपने स्वरूप में दृष्टि रखकर, आत्मा को शुचि करो। मोक्ष का मार्ग प्रशस्त होगा।

जो इस अपवित्र शरीर से भिन्न शुद्धात्मा का ध्यान करना है और उसी में रत रहता है तथा मैं सदा शुद्ध बुद्ध हूँ, निर्मल हूँ, स्फटिक के समान हूँ मेरी आत्मा शुद्ध है इस तरह हमेशा अपने अन्दर ही ध्यान करता है वह शुचित्व है। आत्मा का स्वरूप ही शौचधर्म है। इसलिए ज्ञानी मुनि

इसी का ध्यान करते हैं। बाह्य शरीर आदि की शुचि करना, स्नान करना, गंगा यमुना आदि नदी, तालाब या समुद्र में स्नान करना आदि को जो लोग अपने को शुचि मानते हैं, वे केवल बाह्य से शुद्ध हैं परन्तु वह शरीर की शुचि अधिक देर तक स्थिर कहाँ रह सकती है अगर इसको सदा किसी नदी या तालाब में डुबोकर रखोगे तो भी यह सप्त धातुमय अपवित्र दुर्गन्धमय शरीर कभी शुद्ध नहीं हो सकता।

आजकल लोग शरीर पवित्र करने के लिए कई घंटे तक आठ-आठ, दस-दस बाल्टी पानी से स्नान करने में लगे रहते हैं, साबुन से भी खूब रगड़-रगड़ कर स्नान करते हैं। तेल, फुलेल चन्दन के उबटन, सुगन्धित गुलाब, चम्पा, चमेली, केवड़ा एवं और भी अनेक प्रकार के फूलों के हार, अच्छे-अच्छे कपड़े तथा जेवर इत्यादि को अपवित्र शरीर के स्पर्श से वे निर्गन्ध कर देते हैं। जिस प्रकार हजारों मन साबुन लगाकर कोयले को धुलवाया जाय, तो भी वह कोयला अपने कालेपन को नहीं छोड़ता उसी प्रकार यह शरीर भी साबुन, तेल, फुलैल, इत्र, चन्दन आदि से कभी भी सुगन्धित नहीं हो सकता या पवित्र नहीं हो सकता। ज्ञानी महात्मा मुनियों ने शरीर को शुचि नहीं बनाकर उस शरीर में स्थित शुद्ध आत्मतत्त्व को ही शुचि माना है। जैसे किसान अपने खेत में उत्तम धान की पैदावार के लिए खेत में खूब हल चलाकर उसकी मरम्मत करता है और उस खेत में दुर्गन्धित खाद आदि वस्तुओं को खेत में डालकर अपनी जिन्दगी को मंगलमय तथा सुखद बनाने के लिए बहुत बढ़िया गेहूँ की पैदावार करता है और उम्रभर बैठकर खाता है। उसी तरह आत्मज्ञानी महान साधु लोग इस शरीर के माध्यम से भीतर छिपे हुए सम्यग्दर्शन, ज्ञान चारित्र रूपी तीन रत्नों की प्राप्ति नहीं कर लेते तब तक इसकी रक्षा करते हैं। परन्तु शरीर को अच्छा मानकर उसके प्रति प्रेम नहीं करते। जैसे किसी गन्दे नाले में यदि अमूल्य रत्न गिर जाये तो कौन बुद्धिमान उसे छोड़कर आगे बढ़ेगा अर्थात् कोई नहीं और उसे उस गन्दे नाले से रत्न निकालने में जरा भी ग्लानि नहीं आयेगी। अगर उसको ग्लानि आ गयी तो वह रत्न वह कभी भी प्राप्त नहीं कर सकता। इसी से सम्यग्दृष्टि जीव इस शरीर को बाह्य उपचार द्वारा तब तक संभालता है जब तक उसको आत्मस्वरूप की प्राप्ति नहीं हो जाती।

अनादिकाल से आत्मा के साथ लगे हुए क्रोध, मान, माया, लोभ, ख्याति और इन्द्रिय जन्य वासनाओं को बढ़ाने वाले विषय रूपी विष को वैराग्य, ज्ञान ध्यान रूपी जल से धोते रहना चाहिए और उसमें शुद्धात्मा को मलिन होने से बचाने का प्रयत्न करना चाहिए यही शौचधर्म है। अन्तरंग की शुद्धि न करके बाह्य की शुद्धि कार्यकारी नहीं है मुख्यता तो अन्तरंग की है।

सबसे अपवित्र शरीर

सद्गुरु के पास एक व्यक्ति संसार से विरक्त होकर दीक्षा लेने आया और गुरु से प्रार्थना कर अपने को संसार रूपी समुद्र से पार होने को कहा–हे मुनीवर! मुझे अपना शिष्य स्वीकार

कर साधु बना लीजिये। तब गुरु ने कहा कि बेटा सबसे पहले सारे संसार में घूमकर देख आओ कि इस दुनिया की सबसे बुरी और अपवित्र वस्तु क्या है? तब आप को दीक्षा मिलेगी। गुरु की आज्ञानुसार शिष्य ने सारा संसार घूमकर देखा परन्तु उसे कोई भी वस्तु बुरी और अपवित्र नहीं दिखाई दी। बाद में लौटकर गुरु के पास आया तब गाँव के बाहर पगडण्डी पर चला आ रहा था कि रास्ते के किनारे विष्टा पर मक्खी भिनभिना रही थी और उसमें से दुर्गन्ध आ रही थी तो वह कहने लगा कि सारे संसार में इससे बुरी और अपवित्र कोई वस्तु नहीं है। इस बात को सुनकर विष्टा ने कहा कि तेरे शरीर के स्पर्श से मेरी यह दशा हुई और मैं गाँव के बाहर निन्द्य स्थान में फेंका गया। मैं तो बाजार में संतरा, मौसमी, बर्फी, लड्डू आदि उत्तम पदार्थ के रूप में दुकान में रखा था। राजा, महाराजा, सेठ साहूकार सभी मेरी कदर करते थे और जिस समय मेरा मानव शरीर से संसर्ग हुआ तो उसी क्षण हमारी दशा बदल कर निन्दनीय और अपवित्र दुर्गन्ध मय हो गयी इसलिए सबसे बुरी और अपवित्र वस्तु तो यह शरीर है जिसके संसर्ग में आने मात्र से अच्छी वस्तु भी खराब हो जाती है। तब शिष्य गुरु के पास पहुँचकर कहता है कि मैंने सब जगह घूमकर देख लिया इस शरीर से बुरी और अपवित्र वस्तु कोई नहीं है। सबसे अमंगल तो यह शरीर है।

बुरा जो देखन मैं चला, बुरा न मिलिया कोय।
जो दिल खोजा आपनो, मुझसे बुरा न कोय॥

तब गुरु ने प्रश्न किया कि तुझे शरीर से वैराग्य हुआ है अथवा अन्य किसी सांसारिक वस्तु से। शिष्य ने कहा–शरीर से। गुरु बोला तब बेटा तू शरीर को अमंगल और क्षणिक समझकर शरीर में स्थित शुद्ध तथा पवित्र शुचिमय आत्मा के स्वरूप को प्राप्त करो। क्योंकि उसकी प्राप्ति इसी क्षणिक, अपवित्र शरीर से ही हो सकती है।

शौच का अर्थ पवित्र है यह लोभ कषाय के अभाव से प्रगट होता है। लोभ के कारण ही संसारी प्राणी दुःखी है। विषय वासना रूपी गर्त प्रत्येक प्राणी के सामने खुदा है ऐसा गर्त जिसमें सारे संसार का वैभव परमाणु के समान है इसको जैसे-जैसे विषय से भरा जाता है वैसे-वैसे वह गहरा होता जाता है। तृष्णा के वशीभूत हुआ प्राणी क्या-क्या नहीं करता। वह इष्ट से इष्ट व्यक्ति का प्राणान्त करने में भी पीछे नहीं हटता। आज का मानव निरन्तर और-और चिल्लाता रहता है उसके मुख से कभी बस नहीं निकलता। बिना सन्तोष के कैसे निकले? लोभ मीठा शत्रु है। यद्यपि सभी कषायें नवें गुणस्थान में समाप्त हो जाती हैं परन्तु लोभ दसवें गुणस्थान तक रहता है। लोभ से ही समस्त पापों में इस प्राणी की प्रवृत्ति होती है। आचार्यों ने लोभ को पाप का बाप बताया है। शास्त्रों में ब्राह्मण पुत्र की कथा प्रसिद्ध है। किस प्रकार उसने लोभ के कारण वैश्या के हाथ से भोजन करना स्वीकार कर लिया और उसके हाथ से गाल पर थप्पड़ खाकर लोभ पाप का

बाप है यह पाठ पढ़ लिया, यह सब महिमा लोभ की है। मोहरों के लोभ ने उसके धर्म से भ्रष्ट कर दिया है। शौच बाह्य व आभ्यन्तर के भेद से दो प्रकार का होता है। अपने-अपने पद के अनुसार लौकिक शुद्धि का विचार रखना बाह्य शुद्धि है और अन्तरंग में लोभादि का कम करना आभ्यन्तर शुद्धि है। गंगा स्नान मुक्ति को जिन शासन नहीं मानता उससे शरीर की लौकिक शुद्धि हो सकती है पर वास्तविक शुद्धि तो आत्मा में लोभादि कषायों के कृश करने से ही होती है। अर्जुन के प्रति उपदेश है कि–संयम ही जिसका पवित्र घाट है। सत्य का जिसमें पानी भरा है। शील जिसके तट हैं और दया रूपी भँवरे जिसमें उठा करती हैं। ऐसी आत्मा रूपी नदी में हे अर्जुन! तुम अभिषेक करो क्योंकि पानी मात्र से अन्तरात्मा शुद्ध नहीं होती।

लोभ पाप का बाप

एक बार एक आदमी काशी पढ़ने गया। उस समय छोटी अवस्था में विवाह हो जाता था इसलिए उसका भी विवाह हो गया था। वह स्त्री घर छोड़ गया। कुछ समय बाद वापस लौटने पर गाँव वालों ने उसका सत्कार किया जब वह घर पहुँचा तो उसकी स्त्री ने कहा कि आप मुझे अकेली छोड़कर पढ़ने गये तो अब मेरे प्रश्न का उत्तर देंगे तो घर में प्रवेश करेंगे अन्यथा नहीं। और स्त्री ने प्रश्न किया कि बताओ? पाप का बाप कौन? यह प्रश्न सुनकर वह घबरा गया उसने सभी ग्रंथ ढूँढ डाले परन्तु उसे कहीं भी उसका उत्तर नहीं मिला तब उसकी स्त्री ने कहा कि फिर से जाइये और पढ़कर आइये। पुन: वह विचार करता हुआ चल दिया और पागलों की तरह सबसे पूछता भ्रमण करने लगा। एक दिन वह एक वेश्या के घर के नीचे खड़ा था तब वेश्या ने ऊपर बुलाया और कहा कि पाप का बाप कौन? मैं बता सकती हूँ। वह झटपट ऊपर पहुँचा और उसे वेश्या जानकर बड़ा दुखी हुआ तब नीचे उतरने लगा। वेश्या बोली–महाराज ठहरिये। जिस सड़क पर आप चल रहे थे उस पर तो सभी चलते हैं फिर उससे तो यह मकान अच्छा है। आप इतनी घृणा क्यों करते हैं? आपने हमारा घर अपने चरणरज से पवित्र किया। इसलिए एक मुहर देती हूँ और एक मुहर दे दी तब वह कुछ समय ठहर कर वापस चलने लगा तब वेश्या कहती है कि महाराज! दो मुहर ले लीजिये और दुकान से सामान लाकर भोजन बना लीजिये फिर जाइये। तब उसने दो मुहर लेकर विचारा कि दुकान से सामान लाकर भोजन बनाने में क्या हर्ज है? इससे वेश्या का तो कोई सम्बन्ध है नहीं और वह सामान लाकर भोजन बनाने का उपक्रम करने लगा तब वह वेश्या बोली–मैंने जीवन भर पाप किये हैं यदि मैं अपने हाथ से भोजन परोस सकूँ तो मैं पाप से मुक्त हो जाऊँगी और इस कार्य के लिए 5 मोहरें आपको देती हूँ। पाँच मोहरों का नाम सुनकर उसके मुँह में पानी आ गया। उसने सोचा बनाया तो मैंने है यह तो केवल थाली में रखने को कह रही है तो इससे कौन-सा अधर्म हुआ जाता है। यह विचार कर उसने वेश्या को भोजन परोसने की आज्ञा दे दी। वेश्या ने थाली में भोजन परोस दिया।

तत्पश्चात् बोली–महाराज एक भावना और बाकी रह गई। मैं चाहती हूँ कि एक ग्रास थाली से उठाकर आपके मुँह में दे दूँ तो मेरे जन्म-जन्म के पाप कट जायेंगे। इसके लिए मैं आपको दस मोहरें देती हूँ। दस मोहरों को देखकर उसने वेश्या के हाथ का ग्रास लेना स्वीकार कर लिया। वेश्या ने ग्रास उठाकर मुंह में देने के लिए हाथ बढ़ाया परन्तु ग्रास मुंह में देने के बजाय नीचे छोड़कर उसके गाल पर जोर से थप्पड़ मार दिया और कहा कि समझे पाप का बाप कौन? पाप का बाप लोभ है। कहाँ तो आप घर में आने को तैयार नहीं थे और कहाँ मेरे हाथ का ग्रास तक खाने को तैयार हो गये। यह सब लोभ की महिमा है। मोहरों के लोभ ने आपको धर्म से अलग कर दिया।

एक लोभी व्यक्ति को कुछ समय के लिए पारस मणि मिल जाती है। वह पारसमणि से सोना बनाने के लिए लोहा खरीदने चल दिया। काफी समय तक घूमता रहा अन्त में लोहा खरीद कर रवाना कर दिया परन्तु जब तक लोहा आये उसकी मियाद ही समाप्त हो गई। ठीक इसी प्रकार हमारी दशा है, हम यह सोचते हैं कि समय आ जायेगा और मनुष्य पर्याय छूट जायेगी परन्तु आचार्य कहते हैं कि जब भी अच्छा समय आये तभी कल्याण कर लो इंतजार मत देखो। लोभ में पड़ कर कभी कुछ हासिल नहीं कर सकते लोभ में पड़कर भाई-भाई को, बहन-भाई को कुछ नहीं समझता।

लोभ के वशीभूत प्रत्येक प्राणी दु:खी है। एक समय की बात है एक भाई ने बहन की शादी कर दी और स्वयं फौज में नौकरी करने चला गया। काफी समय बाद वह छुट्टी लेकर वापस गाँव आने का विचार किया परन्तु उसने सीधे घर ना जाकर पहले बहन के घर चला गया और वहाँ बैग में से कुछ रुपये निकालकर बहन को दिये बहन की नजर नोटों से भरे बैग पर पड़ गयी। बहन के मन में लोभ आ गया कि यदि भाई को मार दे तो ये सारे रुपये मुझे मिल सकते हैं। इस लोभ के वशीभूत बहन भाई को मारने के लिए चाकू खरीदने बाजार जाती है इधर बहन का पुत्र आकर अपने मामा की चारपाई पर सो जाता है। बहन बाजार से चाकू लाकर कुछ देखती-सोचती-समझती नहीं है और पैसे के लोभ में चाकू का वार कर देती है चाकू लड़के को चीर देता है। लड़का मर जाता है और भाई बच जाता है। लड़का भी गया और पैसा भी नहीं मिला। इसलिए लोभ का हमेशा नुकसान ही देता है उससे प्राप्त कुछ भी नहीं होता।

लोभ कषाय चार प्रकार की होती है–

(1) अनन्तानुबंधी (2) अप्रत्याख्यान (3) प्रत्याख्यान और (4) संज्वलन।

अनन्तानुबंधी–किरमजी के रंग के समान।

अप्रत्याख्यान–गाड़ी के पहिये के मल के समान (कीच के समान)

प्रत्याख्यान–कीचड़ के समान।

संज्वलन–हल्दी के रंग के समान।

एक नगर में कंजूस व्यक्ति रहता था उसने कभी भी अपने जीवन में न तो कभी दान किया न किसी पर कोई उपकार किया। न कभी किसी साधु-संत के पास जाकर नमस्कार किया केवल पैसा कमाने का कार्य किया। एक बार उसने बाहर दूसरे देश में जाकर खूब धन कमाया परन्तु इतना लोभी था कि पैसा पास होते हुए भी भोजन ठीक से नहीं करता था। एक दिन वह सम्पूर्ण धन को लेकर वापस आ रहा था। रास्ते में पैसे के लोभ के कारण भोजन न करके कढ़ी में नमक तेज करके पी गया रास्ते में जंगल में उसे प्यास लगी परन्तु पानी न मिलने के कारण वह मृत्यु को प्राप्त हो गया। तब उसके शरीर को खाने के लिए एक कुत्ता और एक गीदड़ दोनों पहुँचते हैं, तो कुत्ता उसके शरीर को सूंघकर पीछे हट जाता है और गीदड़ से कहता है–

हे गीदड़ इस पापी कन्जूस सेठ ने कभी हाथों से दान नहीं दिया है तथा कानों से कभी शास्त्र या भगवान का नाम नहीं सुना है, पैरों से कभी तीर्थयात्रा नहीं की है। अन्याय से धन को संचय करके अपने पेट को भरा है तथा मद से मतवाला होकर मस्तक को ऊँचा रखा है। अत: हे भाई! इस निन्द्य शरीर को दूर ही छोड़ दो क्योंकि यदि इस पापी के शरीर को खाया तो हमारी भी यही दुर्दशा होगी। दोनों ही मुर्दा शरीर को छोड़कर चले गये। सचमुच लोभ पिशाच में फँसा हुआ मानव इह लोक और परलोक में अनेक कष्ट उठाता है। पशु भी उसे नहीं खाते।

चाह गई चिन्ता गई, मनुवा बे परवाह।
जिन्हें कुछ नहीं चाहिये वे शाहनपतिशाह।।
आशा के जो दास हैं, ते सब जग के दास।
दासी जिनकी आश है, उनका सब जग दास।।
धरि हिरदै संतोष, करहु तपस्या देह सों।
शौच सदा निरदोष, धरम बड़ों संसार में।।

उत्तम शौच सर्व जग जाना, लोभ पाप को बाप बखाना।
आशा-पास महादुखदानी, सुख पावै संतोषी प्रानी।।
प्रानी सदा शुचि शील जप, तप, ज्ञान ध्यान प्रभावतै।
नित गंग जमुन समुद्रन्हाये, अशुचि-दोष सुभावतै।।
ऊपर अमल मल भरयो भीतर, कौन विधि-घट शुचि कहै।
बहुदेह मैली सुगुन थैली, शौच गुन साधु लहै।।

बन्धुओं, इस प्रकार शरीर को अशुचि जानकर आत्मा से प्रीति करो और लोभ का त्याग कर संतोष धारण करो तभी तुम्हारा जीवन सफल होगा और यह नर पर्याय पाना सार्थक होगा। इस प्रकार इस शरीर के माध्यम से लोभ को त्याग कर अन्तरंग को पवित्र करके अपनी आत्मा की पवित्रता में रमण करके अपना मनुष्य जन्म सफल बनावें।

इस प्रकार जब तक हम पुद्गल द्रव्य को अपना माने हुए अज्ञानी थे। तब तक पुद्गल हमारे ऊपर अपना प्रभाव जमाये था और जिस काल हमारे निज स्वरूप का ज्ञान भानु उदित हुआ तब अज्ञान के चमगादड़ उड़ गये। पुद्गल को पुद्गल और आत्मा को आत्मा जान लिया।

उत्तमसत्य धर्म

परसंतावयकारणवयणं मोत्तूण सपरहिदवयणं।
जो वददि भिक्खु तुरियो तस्स दु धम्मो हवे सच्चं॥

जो मुनि दूसरे को क्लेश पहुँचाने वाले वचनों को छोड़कर अपने और दूसरे के हित करने वाले वचन कहता है उसके उत्तमसत्य धर्म होता है।

परमात्म स्वरूप सत्य की महिमा वर्णनातीत है। इसकी महिमा का शब्दों में वर्णन करना मानव के वश की बात नहीं है। यह तो गूंगे का गुड़ है जिसे इसकी अनुभूति हो जाये, इसकी प्रतीति हो जाये वही इसे समझ सकता है।

जो व्यक्त किया जा सकता है, किया जाता है वह पूर्ण सत्य नहीं होता है, वह मात्र आंशिक सत्य ही होता है।

वास्तव में सत्य एक अत्यन्त सुन्दर सुखद अनुभूति है। यह आत्मगत वस्तु है। विषय कषायों के उपशम के उपरान्त ही सत्य का आत्मा में जागरण होता है तथा शान्ति के सद्भाव में ही इसका शुभागमन होता है। सत्य की एक अत्यल्प किरण भी समस्त जीवन को रूपान्तरित कर डालती है। अज्ञानान्धकार कितने भी युगों का गहरा क्यों न हो सत्य के प्रकाश की अल्प किरण समस्त अन्धकार को तिरोहित करने में पूर्ण समर्थ होती है। सत्य शास्त्रों में नहीं आत्मा की गहराई में मिलेगा उसे प्राप्त करने वाला महान मार्ग साधना के उपरान्त स्वमेव ही खुलता है। बाहर ही नहीं भीतर भी एक लम्बी यात्रा होती है जो प्राणी को सत्य तक ले जाती है जो बाहर की यात्रा में लगे हैं उन्हें सत्य की प्राप्ति कदापि नहीं हो सकती। सूर्य की किरण सूर्य को यथार्थता का पता देती है। इसी तरह मात्र सत्य की एक किरण की खोज ही सम्पूर्ण सत्य से साक्षात्कार करने के लिए पर्याप्त है। बस इसी की प्राप्ति के लिए तन, मन, धन से जुट जाना ही हमारा लक्ष्य है।

जो सत्य वचन हैं वह ही धर्म है। यह सत्य वचन दया धर्म का मूल कारण है अनेक दोषों का निरावरण करने वाला है इस भव में तथा परभव में सुख का करने वाला है सभी के विश्वास करने का कारण है एवं समस्त धर्मों में सत्य वचन प्रधान है। समस्त सुखों का कारण सत्य ही है। सत्य से ही मनुष्य जन्म की शोभा है सत्य से ही समस्त पुण्य कर्म उज्ज्वल होते हैं। सत्य के प्रभाव से देव भी सेवा करते हैं। सत्य सहित ही अणुव्रत-महाव्रत होते हैं। सत्य के बिना समस्त व्रत, संयम नष्ट हो जाते हैं। सत्य से सभी आपत्तियों का नाश होता है। अत: जो भी वचन बोलो वह अपने और पर के हित रूप कहो, प्रामाणिक कहो, किसी को दु:ख उत्पन्न करने वाला वचन नहीं कहो। दूसरे जीवों को बाधा पहुँचाने वाला सत्य भी नहीं कहो।

यह जीव अनन्तानन्त काल तो निगोद में ही रहा है वहाँ पर वचन रूप वर्गणा ग्रहण नहीं की। पृथ्वीकाय, जलकाय, अग्निकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय इनमें भी अनन्तकाल रहा, वहाँ तो जिह्वा इंद्रिय ही नहीं पाई, हवा नहीं पाई। जब विकल चतुष्क में उत्पन्न हुआ, पंचेन्द्रिय तिर्यंच में उत्पन्न हुआ वहाँ जिह्वा इन्द्रिय पाकर भी अक्षर स्वरूप शब्दों का उच्चारण करने की सामर्थ्य नहीं मिली। एक मनुष्य भव में ही वचन बोलने की शक्ति प्रकट होती है। ऐसी दुर्लभ वचन बोलने की सामर्थ्य को पाकर उसे असत्य वचन बोलकर बिगाड़ देना बड़ा अनर्थ है। मनुष्य जन्म की महिमा तो एक वचन शक्ति से ही है। नेत्र, कर्ण, जिह्वा नासिका तो तिर्यंचों के भी होते हैं। खाना पीना काम भोगदि पुण्य पाप के अनुकूल जानवरों को भी प्राप्त हो जाते हैं। आभरण, वस्त्रादि, कूकर, वानर, गधा, घोड़ा, ऊँट, बैल इत्यादि को भी मिल जाते हैं परन्तु वचन कहने की शक्ति, सुनने की शक्ति, उत्तर देने की शक्ति, पढ़ने पढ़ाने का कारण वचन शक्ति तो मनुष्य जन्म में ही प्राप्त होती है। जिसने मनुष्य जन्म पाकर वचन बिगाड़ लिये उसने समस्त जन्म बिगाड़ दिये। मनुष्य जन्म में ही कहना-सुनना, लेना-देना, धर्म-कर्म, प्रीति-बैर, इत्यादि जितने भी प्रवृत्ति रूप व निवृत्ति रूप कार्य हैं वे सभी वचन के अधीन हैं। जिसने वचन को ही दूषित कर दिया उसने समस्त मनुष्य जन्म का व्यवहार बिगाड़ कर दूषित कर लिया। अत: प्राण जाने पर भी अपने वचन को दूषित नहीं करना चाहिए।

शास्त्रों में बताये गये अधोलिखित चार प्रकार के असत्य वचनों का त्याग करना चाहिए-

(1) **विद्यमान अर्थ का निषेध करना :-** जैसे - कर्मभूमि के मनुष्यों व तिर्यंचों की अकाल मृत्यु नहीं होती हैं इस विद्यमान अर्थ का निषेध करना असत्य वचन है। देव नारकी तथा भोगभूमि के मनुष्यों व तिर्यंचों की तो आयुकर्म की स्थिति पूर्ण हो जाने पर ही मरण होता है बीच में आयु छेदी नहीं जा सकती है, जितनी स्थिति बांधी थी उतनी भोग करके ही मरण करता है।

बाह्य निमित्त की मुख्यता से कथन:- कर्मभूमि के मनुष्य-तिर्यंचों की आयु का नाश विष

खाने से, पीटने से, मारने से, छेदने से, बन्धनादि की वेदना से, रोग की तीव्र वेदना से, शरीर के रक्त निकल जाने से तथा दुष्ट मनुष्य-दुष्ट तिर्यंच भयंकर देवों द्वारा उत्पन्न किये गये भय से, वज्रपातादि के स्वचक्र-परचक्रादि के भय से, शस्त्र के घात से, पर्वत आदि के गिरने से, अग्नि पवन-जल-कलह-विंसवादादि से उत्पन्न क्लेश से, श्वास उच्छवास के रुक जाने से, आहार-पानादि का निरोध होने से आयु का नाश हो जाता है। आयु की लम्बी (दीर्घ) दिखने वाली स्थिति भी विष भक्षण, रक्तक्षय, भय, शस्त्रघात, संक्लेश श्वासोच्छवास निरोध, अन्नपान का अभाव आदि से तत्काल नाश को प्राप्त हो जाती है।

प्रश्न- कितने ही लोग कहते हैं कि आयु पूर्ण हुए बिना मरण नहीं होता है?

उत्तर- यदि बाह्य निमित्त से आयु नहीं छिदती है तो विष भक्षण से कौन डरते। शस्त्रघात करने वाले से डरकर क्यों भागते, सर्प, सिंह, व्याघ्र, हाथी दुष्ट मनुष्य, दुष्ट तिर्यंचों को दूर से ही क्यों छोड़ते, नदी, समुद्र, कुआ, बावड़ी में अग्नि की ज्वाला में गिरने से कौन भय खाता? रोग का इलाज क्यों करते? अधिक कहने से क्या? यदि आयुघात होने का बहिरंग कारण मिल जाता है तो जिसकी आयु का घात होना ही है उसकी आयु का घात होता है।

अन्य कर्म भी बहिरंग कारण मिलने पर उदय में आ ही जाते हैं। सभी जीवों के पाप कर्म-पुण्य कर्म सत्ता में विद्यमान हैं, बाह्य, द्रव्य, क्षेत्र, काल भावादि परिपूर्ण सामग्री के मिलने पर अपना रस देते ही हैं यदि बाह्य निमित नहीं मिलता है तो उदय में नहीं आते हैं, बिना रस दिये ही निर्जरित हो जाते हैं।

(2) **असद्भूत को (अविद्यमान अर्थ को) प्रकट करना** :- यह दूसरा असत्य वचन है। जैसे देवों की अकाल मृत्यु कहना, देवों को भोजन ग्रासादि रूप से करने वाला कहना, देवों को मांस भक्षी कहना, मनुष्यनी को देव के साथ काम सेवन व देवांगना को मनुष्य के साथ काम सेवन इत्यादि कहना वह दूसरा असत्य वचन है।

(3) **वस्तु स्वरूपको अन्य विपरीत स्वरूप कहना** :- वह तीसरा असत्य वचन है।

(4) **चरणानुयोग का कथन** :- गर्हित वचन कहना यह चौथा असत्य वचन है गर्हित वचन के तीन भेद हैं (1) गर्हित (2) सावद्य और (3) अप्रिय।

1. **गर्हित वचन** :- पैशून्य, हास्य, कर्कश, असमंजस, प्रलपित, इत्यादि अन्य और भी आगम विरुद्ध वचन कहना गर्हित वचन हैं। दूसरे के विद्यमान व अविद्यमान दोषों को पीठ पीछे कहना, जिस वचन से दूसरे के धन का विनाश जीविका का विनाश, प्राणों का विनाश हो जाय, जगत में निंद्य हो जाय अपवाद हो जाय ऐसे वचन कहना पैशून्य नाम का गर्हित असत्य वचन है। हास्य, लीला, भण्ड वचन सुनने वालों को अशुभ राग उत्पन्न करने वाले

वचन कहना वह हास्य नाम का गर्हित वचन है तू ढांढ़ा है, गधा है, मूर्ख हैं, अज्ञानी है, मूढ़ है इत्यादि वचन कर्कश नाम का गर्हित वचन् है। देशकाल के अयोग्य वचन कहना जिससे स्वयं को तथा दूसरे को महांसताप उत्पन्न हो जाय वह असंमजस नाम का गर्हित वचन है। प्रयोजन रहित ढीठपने से बकवाद करना वह प्रलपित नाम का गर्हित वचन है।

2. **सावद्य वचन** :- जिस वचन के द्वारा प्राणियों का घात हो जाय, देश में उपद्रव हो जाय, देश लुट जाय, देश के स्वामियों में महाबैर हो जाय, गाँव में अग्नि लग जाय, घर जल जाय, वन में अग्नि लग जाय, कलह विसंवाद युद्ध होने लगे दु:ख से कोई मर जाय बैर बांध ले। छ: काय के जीवों का घात प्रारंभ हो जाय महाहिंसा में प्रवृत्ति होने लगे वे सावद्य वचन हैं। पर को चोर कहना, व्याभिचारी कहना वह सब सावद्य वचन दुर्गति के कारण हैं। अत: त्यागने योग्य हैं।

3. **अप्रिय वचन** :- त्यागने योग्य अप्रिय वचन प्राण जाते हुए भी नहीं कहना चाहिए। अप्रिय भाषा के दस भेद इस प्रकार जानना- कर्कशा, कटुका, परुषा, निष्ठुरा, परकोपनी, मध्यकृषा, अभिमाननी, अनयकारी, छेदकारी, भूतवधकारी। इन महापापरूप महानिंद्य दश भाषा बोलने का सत्यवादी त्याग करता है।

तू मूर्ख हैं, बैल है, ढोर हैं, रे मूर्ख, तू क्या समझेगा, इत्यादि कर्कशा भाषा है। तू कुजाति है नीच जाति का है अधर्मी है महापापी है तू स्पर्श करने योग्य नहीं है तेरा मुख देखने से बड़ा अनर्थ होता हैं इत्यादि उद्वेग करने वाली कटुका भाषा है। तू आचार भ्रष्ट है। भ्रष्टाचारी है इत्यादि मर्म छेदने वाली परुषा भाषा है। मैं तुझे मार डालूँगा तेरी नाक काटूँगा, तुझे गर्म सलाख लगाऊँगा, तेरा मस्तक काट डालूँगा, तुझे खा जाऊँगा इत्यादि निष्ठुरा भाषा है। रे निर्लज्ज, वर्ण शंकर, तेरे जाति कुल आचार का ठिकाना नहीं है तेरा क्या तप है तू कुशीली है तू हँसने योग्य है, तू महानिन्द्य है तू अभक्ष्य भक्षण करने वाला है, तेरे नाम लेने से कुल लज्जित होता है इत्यादि परकोपनी भाषा है।

जिस वचन को सुनने से ही हड्डियों की ताकत नष्ट हो जाती है सामर्थ्य नष्ट हो जाती है वह मध्यकृषा भाषा है। लोगों में अपने गुण प्रकट करना दूसरों के दोष कहना, अपना कुल-जाति-रूप-बल-विज्ञान आदि का मद सहित वचन बोलना वह अभिमाननी भाषा है। शील का खण्डन करने वाली तथा विद्वेष करने वाली अनयकारी भाषा है। वीर्य शील गुणादि को निर्मूल करने वाली असत्य दोष प्रकट करने वाली जगत में मिथ्या कलंक प्रकट करने वाली छेदकारी भाषा है। जिस वचन से अशुभ वेदना प्रकट हो जाय ऐसी प्राणों का घात करने वाली भूतवध कारी भाषा है। ये दश प्रकार के निन्द्य अप्रिय वचन, त्यागने योग्य हैं।

स्त्रियों के हाव भाव, विलास, विभ्रम, क्रीड़ा, व्यभिचारादि की कथा, काम को जगाने ब्रह्मचर्य का नाश करने वाली स्त्रियों की कथा, भोजन पान में राग कराने वाली भोजन की कथा; रौद्र भाव कराने वाली राजकथा; चोरों की कथा; मिथ्यादृष्टि कुलिंगियों की कथा; धन उपार्जन करने की कथा; बैरी दुष्टों की कथा तिरस्कार करने की तथा हिंसा को पुष्ट करने वाली वेद, स्मृति पुराण आदि कुशास्त्रों की कथा कहने योग्य नहीं हैं सुनने योग्य नहीं हैं। पाप के आस्रव का कारण होने से विकथारूप अप्रिय भाषा त्यागने योग्य है।

हे ज्ञानी जनो! चार प्रकार की असत्य वचन रूप निंद्य भाषा हँसी में, क्रोध में, मद से, छल से, द्वेष से कभी नहीं कहो। अपने तथा पर के हितरूप ही वचन बोलो। इस जीव को जैसा सुख हितरूप अर्थ सहित मिष्ठ वचन करता है निराकुल करता है आताप हरता है वैसा आताप हरने वाला चंद्रमा, चंदकांत मणी, जल चंदन, मोती आदि कोई भी पदार्थ नहीं है।

जहाँ अपने बोलने से धर्म की रक्षा होती हो प्राणियों का उपकार होता हो वहाँ बिना पूछे ही बोलना तथा जहाँ आपका व अन्य का हित नहीं हो वहाँ मौन सहित ही रहना उचित है सत्य बोलने से समस्त विद्याएं सिद्ध होती हैं। जहाँ विद्या देने वाला सत्यवादी हो तथा सीखने वाला भी सत्यवादी हो उसे समस्त विद्याएं सिद्ध होती हैं। कर्म की निर्जरा होती है। सत्य के प्रभाव से अग्नि, जल, विष, सिंह, सर्प, दुष्ट, देव, मनुष्यादि बाधा नहीं कर सकते हैं।

सत्य के प्रभाव से देवता वश में हो जाते हैं प्रीति दृढ़ होती है। सत्यवादी माता के समान विश्वास योग्य है, गुरु के समान पूज्य होता हैं मित्र के समान प्रिय होता हैं उज्ज्वल यश को प्राप्त होता है। तप संयम आदि सभी सत्य वचन से शोभित होते हैं जैसे विष मिल जाने से मिष्ठ भोजन का नाश हो जाता है उसी प्रकर असत्य वचन से अहिंसा आदि सभी गुणों का नाश हो जाता है।

असत्य वचन से अप्रीति-अकीर्ति, अपवाद संक्लेश, अरति कलह, बैर, भय, शोक, बंध, बंधन, मरण, सर्वस्व हरण, बन्दीगृह में प्रवेश, दुर्ध्यान, अपमृत्यु, व्रत तप शील संयम का नाश, नरकादि दुर्गति में गमन, भगवान की आज्ञा का भंग, परमागम से पराङ्मुखता, घोर पाप का आस्रव इत्यादि हजारों दोष प्रकट होते हैं। इसलिए हे ज्ञानीजन! लोक में प्रिय, हित, मधुर वचन बहुत हैं, सुन्दर शब्दों की कमी नहीं हैं फिर निंद्य असत्य वचन क्यों बोलते हो सत्य के प्रभाव से यहाँ उज्ज्वल यश, वचन की सिद्धि द्वादशांगादि श्रुत का ज्ञान पाकर फिर इन्द्रादि महर्द्धिकदेव होकर, तीर्थंकर आदि उत्तम पद पाकर निर्वाण को चले जाते हैं। इसलिए उत्तम सत्यधर्म को ही धारण करो।

असत्य भाषण के प्रमुख दो कारण हैं- अज्ञान के कारण मनुष्य असत्य बोलता है और कषायों के वशीभूत होकर कुछ न कुछ बोलता है। यदि अज्ञान जनित असत्य के साथ कषाय

की पुट नहीं है तो उससे आत्मा का अहित नहीं होता। क्योंकि वहाँ वक्ता अज्ञान से विवश है। संसार में राजा वसु का नाम असत्यवादियों में प्रसिद्ध हो गया। उसका कारण यही था कि उसका वचन कषाय जन्य था। पर्वत की माता के चक्कर में पड़कर उसने अजैर्यष्टव्यम् वाक्य का मिथ्या अर्थ किया था। इसलिए इसका तत्काल पतन हो गया और वह दुर्गति का पात्र हुआ कषायवान् मनुष्य अपने स्वार्थ के कारण पदार्थ का स्वरूप उस रीति से कहने का प्रयत्न करते हैं जिससे उनके स्वार्थ में बाधा न पड़ जाय।

कहीं पर एक मुनिराज ध्यान में लीन थे एक शिकारी वहां पर आता है और पूछता है कि हे मुनिवर! इधर एक मृग आया था वह किधर गया? मुनिराज नहीं बोले जब ध्यान से बाहर आये तब वह पूछता है तो मुनिराज उत्तर देते हैं कि–

जिन आँखों ने देखा है वे बोलती नहीं।
जो मुख बोलता है, उसने देखा नहीं।।

मुनीश्वर का यह उत्तर सुनकर शिकरी चला जाता है। मुनिराज ने उत्तर भी दे दिया और शिकारी को वापस भी भेज दिया।

एक शिवमूर्ति नामक ब्राह्मण कहा करता था कि मैं इतना ईमानदार और सच्चा व्यक्ति हूँ कि मैंने अपनी जनेऊ में कैंची बांध रखी हैं। अगर मैं झूठ बोलूँ तो अपनी जीभ काट लूँगा ऐसा कहने पर उसका नाम सत्यघोष पड़ गया। वह पूरे संसार में प्रसिद्ध हो गया। एक दिन सेठ व्यापार करने जाने लगा। उसके पास कुछ हीरे थे उसने सोचा कि हीरे सत्यघोष के पास रख जाऊँ सो हीरे का बक्सा सत्यघोष को दे दिया और यह विचारा कि आकर ले लूँगा। जब सेठ जी वापस आये और उन्होंने सत्यघोष से अपने हीरे माँगे तो सत्यघोष कहने लगा तू मेरा दिल दुःखी मत कर फिर भी सत्यघोष ने वह बक्सा सेठी जी को नहीं दिया। सेठ ने राजा से सारा किस्सा सुनाया तब राजा बोला ऐसा नहीं हो सकता सत्यघोष तो सच्चा और ईमानदार है वह ऐसा नहीं कर सकता सेठ जी तुम झूठ बोल रहे हो तब सेठ जी हताश होकर वहाँ से चला गया और विक्षिप्त अवस्था में महल के पीछे एक वृक्ष के नीचे बैठकर कहने लगा कि राजा भी अन्यायी है राजा के पास तो न्याय होता है परन्तु राजा भी न्याय नहीं करता। इस प्रकार रोजाना कहता रहता। एक दिन रानी ने नौकरानी को भेज कर सेठ को बुलवाया और पूछा कि तुम कौन हो? और इस प्रकार क्यों रोते हो? सेठ बोला कि रानी जी मेरी कौन सुनता है? तब रानी बोली तुम चिन्ता मत करो? हमें बताओ। तब सेठ ने सारा किस्सा रानी को बताया तब रानी ने सत्यघोष को बुलाकर उससे खेल-खेल में अगूंठी, जनेऊ व कैंची जीत ली और नौकरानी को अगूंठी जनेऊ और कैंची देकर सत्यघोष के घर भेजा और कहा कि सत्यघोष ने हीरे मंगवाये हैं। उसकी पत्नि ने यही समझा कि उसने ही मंगवाये होंगे तभी तो ये निशानी दी है। उसने नौकरानी को हीरे दे दिये। हीरे महल

में आ गये तब सत्यघोष से कहा कि वे हीरे दे दो। तब सत्यघोष बोला कि मेरे पास कहाँ है तो रानी ने कहा कि जिसके पास वे हीरे पाये जायेंगे उसे क्या दण्ड मिलेगा सत्यघोष ने यह तो सोचा ही नहीं था कि मेरे ऊपर भी नम्बर आ सकता है। इसलिए उसने कहा कि पहले तो थाली भरकर गोबर खिलाया जाय। अगर वह न खा सके तो काला मुंह करके देश से निकाल दिया जाय। तब रानी बोली कौन सा दण्ड मंजूर है तब सत्यघोष बोला मेरे पास हीरे कहाँ हैं। तब रानी ने उसको हीरे दिखाये और कहा कि तेरी अंगुठी व कैंची से मंगवाये हैं। और सत्यघोष थर-थर काँपने लगा तब बोला पहलवानों से मुक्के लगवाये जाये परन्तु चार-पाँच मुक्के में ही बोला हाय मैं मर गया ये तो मुझे मार देगें मुझे मुक्के नहीं लगवाने। तब गोबर लाया गया तो उससे गोबर भी नहीं खाया गया। उसने गोबर खाने से मनाकर दिया तब अन्त में उसका मुंह काला करके देश से निकाल दिया गया। एक झूठ के लिए मुक्के भी लगवाये, गोबर खाना पड़ा और देश से भी निकलना पड़ा। इसलिए झूठ कभी नहीं बोलना चाहिए। सच बोलने वाले की देव भी सहायता करते हैं। झूठ बोलने से तो इस लोक और परलोक दोनों जगह बुराई होती है।

जिस प्रकार एक गरीब लकड़हारा सदा सत्य बोलता था वह लकड़ी काटता और अपना गुजारा करता। एक दिन वह लकड़ी को काट रहा था। पेड़ नदी के किनारे था। डाल काटते हुए अचानक उसकी कुल्हाड़ी नदी में गिर गयी तब वह पेड़ के नीचे बैठ कर रोने लगा। तब वन-देवता ने प्रकट होकर उससे पूछा- क्यों रो रहे हो? तब वह बोला मेरी आजीविका एक कुल्हाड़ी से चलती थी वह भी नदी में गिर गयी। तब वन देवता ने कहा- रोओ मत, तेरी कुल्हाड़ी मैं लाकर दूँगा और नदी से सोने की कुल्हाड़ी निकाल लाये। तब लकड़हारा बोला यह मेरी नहीं हैं। तब वन देवता चाँदी की कुल्हाड़ी लाये उसको भी लकड़हारे ने मना कर दिया और कहा मेरी तो लोहे की कुल्हाड़ी है मैं सोने-चाँदी को कुल्हाडी कहाँ से लाऊँगा। तब उसकी सत्य बोलने से खुश होकर वन देवता ने उसे सोने की कुल्हाड़ी भी दे दी लकड़हारा प्रसन्न चित्त अपने घर आ गया यह मौहल्ले-पड़ोस को पता चला तो एक आदमी भी लालच वश उसी पेड़ पर जाकर लकड़ी काटने का उपक्रम करने लगा और कुल्हाड़ी नदी में गिरा दी और बैठकर रोने लगा तब वन-देवता प्रकट हुए और उन्होंने पूछा कि क्यों रो रहे हो? तब वह बोला मेरी कुल्हाड़ी नदी में गिर गई हैं। तब वन देवता ने लोहे की कुल्हाड़ी निकाली। उस आदमी ने मना कर दिया फिर सोने की कुल्हाड़ी निकाली तो वह आदमी झट से बोला हाँ यही है। तब वन देवता ने उसे वहाँ से भगा दिया कि झूठ बोलते हुए तुझे शर्म नहीं आती। इस प्रकार सत्य बोलने पर सोने की कुल्हाड़ी मिली और झूठ बोलने पर लोहे की कुल्हाड़ी भी गई और मार भी खानी पड़ी। इसलिए झूठ कभी नहीं बोलना चाहिए।

सांच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप।
जाकै हृदय साँच है, ताके हृदय आप।।
जहाँ सुमति वहाँ सम्पत्ति नाना।
जहाँ कुमति वहाँ विपत्ति प्रधाना।।

'सत्यमेव जयते नानृतम्' अर्थात् सदा सत्य की जय होती है झूठ की नहीं।

कठिन वचन मत बोल, पर निन्दा अरु झूठ तज।
साँच जवाहर खोल, सतवादी जग में सुखी।।
उत्तम सत्य वरत पा लीजै, पर विश्वास घात नहीं कीजै।
सांचे झूठे मानुष देखो आपन पूत स्वपास न पेखो।।
पेखो तिहायत पुरुष सांचे को दरब सब दीजिये।
मुनिराज-श्रावक की प्रतिष्ठा साँच गुण लख लीजिये।।
ऊँचे सिंहासन बैठि वसु नृप धरम का भूपति भया।
वच झूठ सेती नरक पहुँचा, सुरग में नारद गया।।

मनुष्य झूठ बोलकर अपमान, अपयश पाता है और सत्य बोलकर सम्मान प्राप्त करता है। कहने का तात्पर्य है कि झूठ की हर जगह निन्दा होती है और सत्य की जीत होती है इसलिए अपने जीवन में सत्य अपनाकर प्रशंसा और ख्याति की सुरभि से जीवन को आनन्दित करना चाहिए।

उत्तमसंयम धर्म

संयम लिया है हमने, हद हद तक निभायेंगे।
कर्मों को अब तो हँस, हँस कर भगायेंगे।।
जियेंगे संयम की खातिर, समाधि लेगें आत्महित में,
सबक संयम का, सारी दुनिया को हम सिखायेंगे।।

आज बड़े ही उत्तम विषय का दिन है। आज का विषय है उत्तमसंयम धर्म। संयम जो इस जीव के कल्याण में कारण बनता है।

संयम जिसके कारण मानव महानं बनता है अपवित्र शरीर पवित्रता को प्राप्त होता है। जिसके

धारण करने पर ही आत्मदर्शन होते हैं। वह संयम जिसको अपनाने के बाद ही कर्मों से छूटा जा सकता है। वह संयम जो परम्परा से मोक्ष को दिलाता है।

सम्यक् दर्शन तर्क से नहीं, श्रद्धान से होता है।
ज्ञान अहंकार से नहीं, नमन से होता है,
जरा अंतरंग में एक बार झांक कर देखो,
मानव भोगों से नहीं, त्याग से महान् होता है।।
जिनके हाथों में संयम की पतवार है,
उनके हाथों में सूली का नहीं फूलों का हार है।
अरे! भोगी क्या जाने आत्मा को।
जिसे आत्मा से नहीं, भोगों से प्यार है।।
पुरुषार्थ से चमकता है किसमत का सितारा।
विश्वास करोगे तो जरुर मिलेगा सहारा।।
वैसे भोगों का चारों ओर दिखता है बोल-बाला।
त्याग करोगे तो जरुर मिलेगा भव का किनारा।।

बन्धुओं आज हमें यह जानना है संयम क्या होता है?

वदसमिदि पालणाए दंडच्चाएण इंदिय जएण।
परिणममाणस्स पुणो संजमधम्मो हवे णियमा।।

जिस मुनि के व्रत समिति का पालन होता है, मन वचन काय इन तीनों का निरोध होता है और पाँच इन्द्रिय विजय होता है उसके ही नियम से संयम धर्म होता है।

संयम का लक्षण– अहिंसा अर्थात् हिंसा को त्यागकर दयारूप रहना हित-मित-प्रिय-सत्य वचन बोलना, पर के धन में वांछा का अभाव करना, कुशील छोड़ना, परिग्रह का त्याग करना पांच समितियों को पालना। क्रोध, मान, माया, लोभ इन चार कषायों का निग्रह करना मन वचन-काय की अशुभ प्रवृत्ति तीन रुप दण्डों का त्याग करना तथा विषयों में दौड़ने वाली पाँच इन्द्रियों को वश में करना जीतना, संयम है।

पूर्व के बंधे अशुभ कर्मो का अत्यंत मंद उदय होने से मनुष्य जन्म, उत्तम देश, उत्तम कुल, उत्तम जाति, इन्द्रियों की परिपूर्णता, निरोगता, कषायों की मदंता, उत्तम संगति, सच्चे गुरुओं का संयोग, सम्यक्दर्शन आदि का संयोग है पर संसार, देह, भोगों से अति विरक्तता के धारक मनुष्यों को अप्रत्याख्यानावरण कषाय के क्षयोपशम से देश संयम होता है तथा अप्रत्याख्यान व

प्रत्याख्यान दोनों कषायो के क्षयोपशम से सकल संयम होता हैं इसलिए संयम प्राप्त करना महान दुर्लभ है।

किसी तिर्यंच के अपनी पर्याय की योग्यता के अनुसार कभी देशव्रत होता है। मनुष्य पर्याय में भी नीच कुलादि में, अधम देशो में, इन्द्रियों से पीड़ित, अज्ञानी, रोगी, दरिद्री, अन्यायमार्गी, विषयानुरागी, तीव्र कषायी, निंद्यकर्मी, मिथ्यादृष्टियों को संयम कभी नहीं होता है इसलिए संयम प्राप्त करना अति दुर्लभ हैं ऐसे दुर्लभ संयम को भी पाकर कोई मूढ़ बुद्धि यदि विषयों का लोलुपी होकर छोड़ देता है किसी प्रकार से नष्ट कर देता है तो भी अनन्तकाल तक जन्म-मरण करता हुआ संसार में परिभ्रमण करता है।

विषयों का सुख सुख नहीं वह तो सुखाभास है। क्षणभंगुर है नरकों दु:खों की प्राप्ति का कारण है इसलिए संयम की रक्षा करो।

पाँच इन्द्रियों के विषयों के भोग छोड़ने से संयम होता है। कषायों के नाश करने से संयम होता हैं, दुर्द्धर तप को धारण करने से संयम होता है, रसों का त्याग करने से संयम होता हैं मन के विकल्प जाल का प्रसार रोकने से संयम होता हैं, मन में परिग्रह की लालसा का त्याग करने से संयम होता हैं, महान काय क्लेशों को सहने से संयम होता है। उपवासादि अनशन तप करने से संयम होता हैं। त्रस स्थावर जीवों की रक्षा करना भी संयम हैं।

मन के विकल्पों को रोकने से तथा प्रमाद से होने वाली वचनों की प्रवृत्ति रोकने से संयम होता है। शरीर के अंग-उंपागों के प्रमादी प्रवर्तन को रोकना संयम है। बहुत गमन को रोकने से संयम होता है दयारूप परिणामो द्वारा संयम होता हैं। परमार्थ का विचार करने से तथा परमात्मा का ध्यान करने से संयम होता है।

संयम से ही सम्यक्‌दर्शन पुष्ट होता है। संयम ही मोक्ष का मार्ग है। संयम बिना मनुष्य भव शून्य है गुण रहित हैं। संयम बिना ही यह जीव दुर्गतियों में गया है संयम बिना देह का धारण करना, बुद्धि का पा लेना, ज्ञान की आराधना करना सभी व्यर्थ हैं संयम बिना दीक्षा धारण, व्रत धारण, मूंड मुड़ावना, नग्न रहना आदि सभी व्यर्थ हैं।

संयम दो प्रकार का हैं:- इन्द्रिय संयम तथा प्राणी संयम। जिसकी इन्द्रियां विषयों से नहीं रुकी, छः काय के जीवों की विराधना नहीं टली उसका बाह्य परिषह सहना, तपश्चरण करना, दीक्षा लेना वृथा है। संसार में दु:खी जीवों का संयम बिना कोई अन्य शरण नहीं हैं। ज्ञानीजन तो ऐसी भावना भाते हैं- संयम बिना हमारे मनुष्य भव की एक घड़ी भी नहीं व्यतीत हो, संयम बिना आयु निष्फल है। संयम ही इस भव में तथा पर भव में शरण है दुर्गतिरूप सरोवर को सोखने के लिए सूर्य के समान है। संयम से ही संसार रूपी विषम बैरी का नाश होता हैं। संसार परिभ्रमण का नाश संयम के बिना नहीं होता, ऐसा नियम हैं। जो अंतरंग में कषायों से आत्मा

को मलिन नहीं होने देता तथा बाह्य में यत्नाचारी होकर प्रमाद रहित प्रवर्तन करता है उसको संयम होता है।

आज के समय में मानव का जन्म भौतिकता की दासता के बीच हुआ है इसको हम ऐसे कह सकते है कि दासता में जन्म लेता है। दास्य स्थिति में जीवन यापन करता है और दासता की स्थिति में ही उसकी मृत्यु हो जाती है। दासता मानो उसे जन्म से ही विरासता में प्राप्त होती आई है। उसे प्राप्त करने के लिए कहीं जाना नहीं पड़ता वह तो घर बैठे ही प्राप्त हो जाती है परन्तु उससे मुक्ति चाहता है तो उसे श्रम पूर्वक लगन पूर्वक, निष्ठापूर्वक सृजन करना होता है। मूल्य चुकाना होता है अत: जो श्रेष्ठ और उपादेय है वह बिना मूल्य के प्राप्त नहीं हो सकता अर्थात् देव शास्त्र गुरु के प्रति समर्पित होकर संयम को सहजता से स्वीकार कर लेना यही मूल्य चुकाने का एकमेव अर्थ है।

अन्तस की स्वतंत्रता की प्राप्ति के बिना मानव जीवन नितान्त व्यर्थ है। अन्तस की स्वतंत्रता केवल उन्हें ही प्राप्त होती है जो इन्द्रियों की गुलामी के बन्धनों से सर्वदा के लिए मुक्त हो जाते हैं, जो उन पर शासन करना सीख लेते हैं। इन्द्रियाँ केवल बाह्य जगत से ही संबंध जोड़ती हैं जब वे बहिगीमी होती है तब अन्दर के संबंध स्वयं ही टूट जाते हैं। इन्द्रियों का अन्तर्मुखी प्रवेश पाना संयम की साधना का प्रतिफल है। इन्द्रियों का बहिर्गामी होना ही असंयम की पहचान है।

कबीरदास जी कहते हैं कि–

पानी केरा बुलबुला अस मानस की जात।
देखत ही छिप जायेगा, ज्यों तारा प्रभात।।

जीवन पानी का बुलबुला मात्र है, अत्यन्त क्षणिक है। जो ऐसा नहीं समझते वे उसमें डूबते हैं। नष्ट हो जाते हैं परन्तु जो इस सत्य के प्रति सचेत हो जाते हैं वे वास्तविक जीवन को प्राप्त कर लेते हैं। ऐसा जीवन अनन्त हो।

संयम का अर्थ मात्र इतना ही है कि ऐसी दुनिया में जन्म की तैयारी, जहाँ केवल दिन ही रहता है सर्वत्र प्रकाश विद्यमान हो। जहाँ पर वार्द्धक्य नहीं चिर यौवन की स्फूर्ति हो किसी प्रकार की कोई व्याधि न हो। यह सब कुछ मात्र संयम से प्राप्त होता है।

जैसे रहट की चक्की आठ पहियों की होती है उसको खींचने वाले दो बैल तथा इन सबको चलाने वाला मनुष्य है। इस प्रकार राग-द्वेष दोनों बैल हैं। उससे यह अष्ट कर्मों रूपी पहियों वाले चतुर्गति रूप संसार में यह प्राणी भटकता है।

एक मनुष्य सिर पर तेल का घड़ा रखकर जा रहा था। मार्ग में वह सोचता है कि एक घड़े को ले जाने के श्रम से प्राप्त द्रव्य से एक मुर्गी खरीदूंगा मुर्गी के बच्चे होंगे फिर उनको बेचकर

बकरी लूँगा फिर बकरी के बच्चे होंगे उनको बेच कर मैं अपनी शादी करूँगा तदनन्तर एक मकान खरीदूँगा उसमें आराम से जीवन बिताऊँगा। कालान्तर में मेरे भी बच्चे होंगे और वे परस्पर में खूब खेलेगें कदाचित झगड़ेंगे लड़ते-लड़ते वे मेरे पास आयेंगे तो मैं उनको दो तमाचा लगाऊँगा। उसने जो हाथ उठाया उससे झट मटकी नीचे गिरकर फूट गयी और सारा तेल बिखर गया। तेली बोला तुमने मटकी फोड़कर सारा तेल बिखेर दिया तब वह आदमी गुस्से में बोला तेरी तो मटकी फूटी मेरी तो सारी गृहस्थी ही नष्ट हो गई।

इसी प्रकार मनुष्य नाना प्रका की शेखचिल्लियों जैसी कल्पनाएं किया करता है और यह सब मोह के उदय के कारण होता है। मोह के कारण एक भी मनोरथ नहीं रह पाता। पर पदार्थ में कर्तव्य बुद्धि रखना अज्ञान है।

इन्सान सरोवर की तली को तो देख नहीं सकता क्योंकि उसपर छोटी-छोटी लहरें व्याप्त रहती हैं। लहरों के शान्त होने पर ही तली को देखा जा सकता है। पानी के गन्दला होने पर पानी में हलचल होती रहे तो उसकी तली दिखाई नहीं देगी। पानी के निर्मल हो जाने पर उसमें कोई लहर न हो तो उसकी तली नजर आ जायेगी मनुष्य का मन एक सरोवर है उसमें वृत्तियों का होना लहरें हैं। मन तीन अवस्थाओं में रहता है। एक है अन्धकार अवस्था जैसा कि पशुओं और मूर्खों में पाई जाती है जो कि केवल दूसरों को कष्ट पहुँचाने में पायी जाती है। दूसरी है मन की क्रियाशील अवस्था मन की इस अवस्था में दूसरा विचार नहीं सूझता केवल प्रभुत्व और भोगों की इच्छा रहती है। इस समय यही भाव रहता है कि मैं शक्तिमान होऊँगा और दूसरो पर प्रभुत्व करुँगा। तीसरा है सत्य अर्थात् मन की शान्ति और गम्भीर अवस्था जिसमें समस्त तरंगें शान्त हो जाती है और मानव सरोवर का जल निर्मल हो जाता है। यह कोई अवस्था नहीं है परन्तु यह तो तीव्र क्रियाशील अवस्था है। शान्त होना शक्ति की सर्वोत्तम अभिव्यक्ति है।

क्रियाशील होना तो सहज है बस लगाम ढीली छोड़ दो घोड़े तुम्हें स्वयं भगा ले जायेंगें परन्तु शक्तिशाली पुरुष तो वह है जो इन तेज घोड़ों को थामे। अधिक शक्ति किसमें लगती है लगाम ढीली करने में अथवा उसे थामने में। शान्त मनुष्य और बुद्धि शाली मनुष्य एक नहीं होते। सत्व को मन्द बुद्धि या आलस्य न समझ बैठना। शान्त मनुष्य वह है जो मन की लहरों को वश में लाने में समर्थ हुआ है। क्रियाशीलता निरन्तर शक्ति की अभिव्यक्ति है और शान्तभाव उच्चतर शक्ति की।

स्पर्शनादि पाँच इन्द्रिय और षट्कायिक जीवों की हिंसा से विरक्त होना संयम कहलाता है। इन्द्रिय विषयों के अधीन हुआ प्राणी उत्तरकाल में प्राप्त होने वाले दुखों की दृष्टि से या अपनी दृष्टि से ओझल कर देता है। यही कारण है कि वह क्षणिक सुख में निमग्न हो आत्महित से बाँधित हो जाता है। इन्द्रिय विषयों के अधीन हुआ वन का हाथी अपनी सारी स्वतंत्रता नष्ट कर

देता है। रसेन्द्रिय के वश में पड़ी मछली धीवर की वंशी में अपना कंठ छिपा देती है। नासिका के अधीन रहने वाला भ्रमर संध्या के समय यह सोचकर कमल में बन्द हो जाता है कि रात्रि व्यतीत होगी प्रात: काल कमल खिलेगा तब मैं निकल जाऊँगा। अभी रात भर तो मकरन्द का रसास्वादन कर लूँ। प्रात: होने से पहले ही हाथी आकर उस कमलिनी को उखाड़ देता है। भ्रमर के विचार उसके जीवन के साथ ही समाप्त हो जाते हैं। नेत्रेन्द्रिय के वशीभूत पतंगा दीपक पर अपने प्राण न्यौछावर कर देता है और कर्णेन्द्रिय के अधीन हरिण शिकारी द्वारा मारे जाते हैं।

ये तो एक-एक इन्द्रिय की बात है और जो पंचेन्द्रिय के वशीभूत है उनकी क्या कथा है।

पाँचों इन्द्रियों में सबसे प्रबल स्पर्शन और रसना इन्द्रिय है। बट्टकेर स्वामी ने मूलाचार में लिखा है कि चतुरंगुल प्रमाण स्पर्शन और रसना इन्द्रिय ने संसार को नष्ट कर दिया।

इन इन्द्रियों की विषय दाह को सहन करने के लिए जब प्राणी असमर्थ हो जाता है तब वह इनमें प्रवृत्ति करता है। कुन्दकुन्द स्वामी ने प्रवचनसार में कहा है कि संसार के साधारण मनुष्यों की तो कथा ही क्या है? हरिहर चक्रधर तथा देवेन्द्र आदि भी इन्द्रियों की विषह दाह को न सहकर उनमें झन्झावात करते हैं।

इसका यह अर्थ नहीं है कि बड़े-बड़े पुरुष इनमें झंझावात करते हैं तो यह त्याज्य नहीं है। विष ही है वह चाहे उसे छोटे पुरुष पान करें चाहे बड़े पुरुष। हरिहरादिक की विषयों में प्रवृत्ति हुई सही परन्तु जब उनके चारित्र मोह का उदय हुआ तब उन्होंने उस विषय मार्ग को हेय समझकर त्याग दिया।

यह निश्चित समझों कि बहाने एक भी काम नहीं आयेगें। मनुष्य जीवन का भरोसा क्या है अभी आराम से बैठे हैं जरा सी देर में हार्ट फेल हो जाये तो पर्याय समाप्त होते देर न लगेगी। इसलिए समय रहते सावधान हो जाना विवेक है। 'सुरग नरक पशुगति में नाहिं' यह संयम देव, नरक तथा पशुगति में प्राप्त नहीं होता यद्यपि पशुगति में संयमासंयम रुप थोड़ा-सा संयम प्रकट हो जाता है। पर वह उत्कृष्ट संयम के समक्ष नगण्य है। यह संयम कर्म भूमि के मनुष्यों के ही हो सकता है। अत: मनुष्य पर्याय पाकर इसे अपनी शक्ति अनुसार अवश्य धारण करना चाहिए। परन्तु लोग कहते हैं कि हमसे अमुक काम नहीं होता, हमसे अमुक विषय छोड़ा नहीं जाता। यदि राजाज्ञा होने पर बलात् यह कार्य करना पड़े तो शक्ति कहाँ से आयेगी। आत्मा में अनन्य शक्ति है यह प्राणी इसे भूलकर पर-पदार्थ का अवलम्बन ग्रहण करता फिरता है। जब तक पर-पदार्थ का अवलम्बन छोड़ कर स्वयं की स्वतंत्र शक्ति की ओर दृष्टिपात नहीं करेगा तब तक तीन काल में भी कल्याण होने वाला नहीं हैं।

आज के इन्सान ने इच्छाओं का दास बनकर अपना विवेक खो दिया है। रहन-सहन, खान-पान में भक्ष्याभक्ष्य का कोई विवेक नहीं रह गया है। सबकी भेष भूसा एक जैसी हो गई है कुलीन, अकुलीन का कोई अन्तर नहीं रह गया है। आज का मानव पाँचो इन्द्रियों के विषय

भोगों के वशीभूत इतना विवेकहीन हो गया है कि उसे कल्याण-अकल्याण का विवेक ही समाप्त हो गया है और वह उल्टी-सीधी हरकते करता रहता है। रसना इन्द्रिय के वशीभूत प्रत्यक्ष त्रस व स्थावर घात करता रहता है। उन्हें खाते हुए सुख का अनुभव करता है। रात-दिन का विकल्प नहीं जब मिला तभी खाने लगा। पं० आशाधर जी लिखते हैं कि उत्तम मनुष्य दिन में एक बार, मध्यम मनुष्य दो बार और अधम मनुष्य पशु के समान जब चाहे भोजन ग्रहण करते हैं। जैसे पशु के सामने जब भी घास का पूला डाला जाता है वह उसे तभी खाने लगता है वैसे ही आज का मनुष्य जब भी भोजन सामने आता है तभी खाने लगता है।

एक कम्पनी का एजेन्ट एक साहुकार के पास गया और बोला कि हमारी कम्पनी कार बनाती है। आप खरीद लीजिये। साहुकार ने पूछा कि तुम्हारी कारों में क्या विशेषता है? तब एजेन्ट बोला सेठ जी हमारी कार देखने में बहुत सुन्दर है, पहाड़ी इलाकों में चलती है, पेट्रोल कम खाती है, सीटे बड़ी ही आराम दायक हैं। तब साहुकार बोला- भईया गाड़ी के ब्रेक कैसे हैं? तब एजेन्ट बोला सेठ जी ब्रेक पर पूरी तरह नियंत्रण नहीं हो पाया है। तो बन्धुओं, बिना ब्रेक की गाड़ी में सफर करने से जीवन कभी भी सुरक्षित नहीं रह सकता। इसी प्रकार मनुष्य देखने में सुन्दर हो, बढ़िया खाता हो, दिन रात खाता रहे परन्तु यदि उसके जीवन में संयम रूपी ब्रेक नहीं तो उसके जीवन का कुछ भी मूल्य नहीं। इसलिए बन्धुओं संयम को धारण करना चाहिए। संयमी पुरुष परम्परा से मोक्ष जाता है।

संयम की बहुत महिमा है एक भील ने मुनिराज से पाँच नियम लिये थे जिनका पालन करके वह स्वर्ग चला गया। यह संयम केवल मनुष्य पर्याय में ही हो सकता है। इसे पाने के लिए देव भी तरसते हैं।

एक सर्वजीत नामक राजा था। उसे सारी दुनिया सर्वजीत कहकर बुलाती परन्तु उसकी माँ उसे सर्वजीत नहीं कहती उसने अपने राज्य की सीमा बहुत बढ़ा ली थी तब एक दिन अपनी माँ से बोला कि दुनिया मुझे सर्वजीत कहती है परन्तु तू मुझे सर्वजीत नहीं कहती तब माँ ने कहा कि अभी सर्वजीत हुआ ही कहाँ हैं जो तुझे मैं सर्वजीत कहूँ। तब राजा ने प्रश्न किया क्यों नहीं हुआ? तेरे शत्रु तो तेरे समाने ही विचरण कर रहे हैं उन्हें तूने कहा जीता है। इन्द्रियों की विजय। जिस दिन तू इन्द्रिय विजय कर लेगा मैं तुझे सर्वजीत ही नहीं अपितु तेरे चरणों में गिर जाऊँगी। इसलिए असली शत्रु तो पंच इन्द्रिय विषय भोग हैं। जिनके कारण यह प्राणी संसार में भटक रहा है। इन्हें वश में करके कल्याण किया जा सकता है।

एक बन्दर था और किसान के पास तीन बैल थे। किसान खेत पर जाता तो एक बैल घर पर छोड़ जाता जब वापस आता तो अलमारी में रखी रोटियाँ गायब मिलती जिस कारण वह बैल को खूब पीटता परन्तु बैल कुछ कह तो सकता नहीं था। एक दिन पड़ोसी बोला कि भईया तुम रोजाना खेत से आकर इस बैल को क्यों पीटते हो तो किसान बोला मैं इस अलमारी में रोटियाँ रखकर जाता हूँ और मेरे पीछे यह बैल रोजाना रोटियाँ खा जाता है। तब पड़ोसी ने पूछा कि

तुमने कैसे जाना कि रोटियाँ यही खाता है? क्या इसका मुंह अलमारी में जा सकता है। तब किसान बोला कि इसके मुंह पर धन-धान्य कैसे लग जाता है। तब उसने कहा कि छिपकर देखना होगा कि असलियत क्या है? तब उसने छिपकर देखा कि एक बन्दर आता है और अलमारी से रोटियाँ निकालकर खा जाता है तथा बैल के मुंह पर धान्य लगा देता है। तब किसान के समझ में सारी बात आ जाती है। तब उसने बैल की बजाय बन्दर की पिटाई की।

एक राज्य के राजा का बिस्तर रोजाना एक नौकर लगाया करता था एक दिन नौकर ने सोचा इस पर रोजाना राजा सोया करता है और आज मैं भी सोकर देखता हूँ कैसा लगता है? सो वह लेट गया लेटते ही नींद आ गई और इतने में राजा आ गया और बिस्तर पर नौकर को देखकर बहुत क्रोधित हुआ और उसकी बेंत से पिटाई करने लगा नौकर पिटता जाता और हँसता रहा तब राजा ने पूछा कि तू हंस क्यों रहा है? तब वह बोला- महाराज! इस बिस्तर पर थोड़ी देर सोया तो बेतों से पिट रहा हूँ और आप तो रोजाना सोते हो आपका क्या हाल होगा? बस यही सोचकर हंस रहा हूँ।

काय छहों प्रतिपाल पंचेन्द्री मन वश करो।
संयम-रतन संभाल, विषय चोर बहु फिरत हैं।।
उत्तम संयम गहु मन मेरे, भव-भव के भाजै अघ तेरे।
सुरग-नरक पशु गति में नाहिं, आलस-हरन-करन सुख ठाहीं।।
ठाहीं पृथी जल आग मारुत, रुख त्रस करना धरो।
सपरसन रसना घ्रान नैना, कान मन सब वश करो।।
जिस बिना नहिं जिन राज सीझे, तू रुल्यों जग कीच में।
इक घरी मत विसरो करो नित, आव जम-मुख बीच मै।।

बन्धुओं, संयम रूपी जहाज ही भव-सागर को पार करा सकता है और संयम भी ऐसा जो निरतिचार पालन किया जाता है कहते हैं कि-

जब संयम चुनौती देता है तो कर्म घूमने लगते हैं,
संयमी मानव के फिर सब बार-बार चरण चूमने लगते हैं।।
विपदायें होती हैं रुखसत, दुःख के बादल उड़ने लगते हैं।
धर्मात्माओं के संग देव, किन्नर क्या, चाँद तारे भी घूमने लगते हैं।।

जिस प्रकार जहाज में छिद्र होने पर पानी भरता रहेगा और जहाज डूब जायेगा उसी प्रकार शिथिलता पूर्वक किया गया संयम बीच मझधार में डुबो देगा इसलिए बन्धुओं, निरतिचार मन, वचन, काय की संभाल करके संयम को धारण करो जो कि परम्परा से मोक्ष ले जाने वाला है।

उत्तमतप धर्म

शरीर को कृष करते हुए चित्त को एकाग्र करने की क्रिया का नाम तप है। यही तप जब सम्यक् प्रकार से किया जाता है तो कर्मों का क्षय होता है और मिथ्या किया तप संसार में भ्रमण कराता है। आज हम उत्तम तप धर्म पर चर्चा करेंगें।

पर्वत को खण्ड करने में बज्र, कीचड़ को सुखाने में सूर्य, वनाग्नि के बुझाने में मेघ, रोग को नाश करने में औषधि, अग्नि को नष्ट करने में जल आदि कारण हैं उसी प्रकार विकल्पों के नाश करने में निर्जन स्थान कारण है। निर्जन स्थान का बिना आश्रय लिये विकल्प कभी भी नहीं कट सकते। उसी प्रकार उत्तम तप के बिना कर्म जंजीर कट नहीं सकती।

भोगों का रोकना ही उत्तम तप है। हमारा देह मानो एक रथ है, मन लगाम है, बुद्धि सारथी है और आत्मा रथी है। यह गृहस्वामी, यह राजा अथवा मनुष्य की आत्मा रथ में सवार है। यदि घोड़े बड़े तेज हो और लगाम खिंची न रहे यदि बुद्धि रूपी सारथी उन घोड़ों को संयत करना न जाने तो रथ की दुर्दशा हो जायेगी। यदि इन्द्रिय रूपी घोड़े अच्छी तरह संयत रहे और मन रूपी लगाम, बुद्धि रूपी सारथी के हाथों अच्छी तरह थमी रहे तो वह रथ ठीक अपने स्थान पर पहुँच जाता है। अब यह समझ में आ जायेगा कि इस तपस्या शब्द का अर्थ क्या है? तपस्या का अर्थ है इस शरीर व इन्द्रियों को चलाते समय लगाम अच्छी तरह थामे रहना, उन्हें अपनी इच्छानुसार काम न करने देकर अपने वश किये रहना। उसके बाद में पठन-पाठन का स्वाध्याय अर्थात् उन ग्रन्थों का पाठ करना जो आत्मा की मुक्ति कैसे होगी की शिक्षा देते हैं। न कि लौकिक शिक्षा की पुस्तकों अथवा विकारी भाव को उत्पन्न करने वाली पुस्तकों को पठन-पाठन करना स्वाध्याय नहीं कहलाता।

विसय कसाय विणिग्गह भावं काउण झाण सिज्झीए।
जो भावइ अप्पाणं तस्स तवं होदि णियमेण॥

पाँचों इन्द्रिय विषयों को तथा चारों कषायों को रोककर शुभ ध्यान की प्राप्ति के लिए जो अपनी आत्मा का विचार करता है उसके नियम से तप होता है।

अब उत्तम तप धर्म के स्वरूप का वर्णन करते हैं। इच्छा का निरोध करना तप है। तप चार आराधनाओं में प्रधान है जैसे स्वर्ण को तपाने से सोलह बार पूर्ण उष्णता (ताप) देने पर वह समस्त मैल छोड़कर शुद्ध हो जाता हैं, उसी प्रकार आत्मा भी बारह प्रकार के तापों के प्रभाव से कर्म मल रहित होकर शुद्ध हो जाता है।

अज्ञानी मिथ्यादृष्टि तो शरीर को पंचाग्नि द्वारा तपाने में, तथा अनेक प्रकार के कायक्लेश सहने को तप कहता है किन्तु वह तप नहीं है। शरीर को जला देने से, सुखाकर कृष कर देने से कुछ नहीं होता है। मिथ्यादृष्टि ज्ञान पूर्वक आत्मा को कर्मों के बन्धन से छुड़ाना नहीं जानता है। आत्मा कर्म कलंक रहित तो भेद-विज्ञान पूर्वक अपने आत्मा के स्वभाव को तथा राग-द्वेष मोहादि भावकर्म रूप मैल को मित्र-मित्र देखकर जिस प्रकार से राग-द्वेष मोह रूप मैल निज हो जाय तथा शुद्ध ज्ञान दर्शन मय आत्मा मित्र हो जाय, वह तप है।

इसलिए कहा है:- मनुष्य भव पाकर यदि स्व-पर तत्त्व का ज्ञान किया है तो मन सहित पांचों इंद्रियो को रोककर, विषयों से विरक्त होकर, सभी परिग्रहों को छोड़कर बंध करने वाली राग-द्वेष मयी प्रवृत्ति को छोड़कर पाप के आलम्बन से छूटने के लिए ममता नष्ट करने के लिए वन में जाकर तप करना चाहिए। ऐसा तप धन्य पुरुषों के द्वारा ही होता है। संसारी जीव ममता रूप जाल में फंसा हुआ, घोर कर्म करता हुआ, महापाप का बंध करके रोगादि की तीव्र वेदना से तथा स्त्री पुत्रादि समस्त कुटुम्ब व परिग्रह के वियोगदि से उत्पन्न तीव्र आर्तध्यान से मरण करके दुर्गतियों के घोर दुखों को प्राप्त करता है।

तपोवन को प्राप्त होना दुर्लभ है। तप तो कोई महा भाग्यवान पुरुष पापों से विरक्त होकर समस्त स्त्री- कुटुम्ब पुत्र धनादि परिग्रह से ममत्व छोड़कर, परम धर्म के धारक वीतराग निर्ग्रन्थ गुरुओं के चरणों की शरण में पाता है। गुरूओं को प्राप्त करके जिसके अशुभकर्म का उदय अति मंद हो गया हो, सम्यक्त्वरूप सूर्य का उदय प्रकट हुआ हो, संसार विषय-भोगों से विरक्तता उत्पन्न हुई हो वही तप संयम ग्रहण करता है। ऐसा दुर्द्धर तप धारण करके भी यदि कोई पापी विषयों की ईच्छा से बिगाढ़ता है। उसको अनन्तानंत काल तक फिर तप प्राप्त नहीं होता है। अतः मनुष्य भव पाकर, तत्वों का स्वरूप जानकर, मन सहित पांच इंद्रियों को रोककर वैराग्य रूप होकर, समस्त परिग्रह छोड़कर, वन में एकाकी ध्यान में लीन होकर बैठना तप है।

परिग्रह में ममता नष्ट होकर वांछा रहित हो जाना तथा प्रचण्ड काम का खण्डन करना बड़ा तप है। नग्न दिगम्बर रूप धारण करके शीत की, आतप की पवन की, वर्षा की, डांस, मच्छर, मक्षिका, मधुमक्षिका, सर्प, बिच्छू इत्यादि से उत्पन्न हुई घोर वेदना को कोरे नग्न शरीर पर सहना वह तप है निर्जन पर्वतों की निर्जन गुफाओ में, भयंकर पर्वतों की दरारो में, तथा सिंह, व्याघ्र, रीछ, सियाली, चीता, हाथी से भरे घोर वन में निवास करना वह तप है। दुष्ट, बैरी, मलेच्छ, चोर, शिकारी मनुष्य तथा दुष्ट व्यंतर आदि द्वारा किये गये घोर उपसर्गो से कंपायमान नहीं होना, धीर- वीरपने से कायरता छोड़कर बैर विरोध छोड़कर समताभाव से परमात्मा के ध्यान मे लीन होकर सहना वह तप है। समस्त जीवों को उलझने वाले राग-द्वेष आदि को जीतना नष्ट करना वह तप है।

याचना रहित, भोजन के अवसर में श्रावक के घर में, नवधा भक्ति पूर्वक, हाथ में रखा अलोना, कड़ुआ, खट्टा, लूखा, चिकना, रस-नीरस, निर्दोष, प्रासुक आहार लोलुपता रहित, संक्लेश रहित, एक बार खाना वह तप है पाँच समितियों का पालना, मन, वचन काय को चलायमान नहीं करना राग-द्वेष रहित अपनी आत्मा का अनुभव करना वह तप हैं। स्व-पर तत्व की कथनी का निर्णय करना चारों अनुयोगों का अभ्यास करते हुए धर्म सहित काल व्यतीत करना वह तप है। अभिमान छोड़कर विनय रूप प्रवर्तना, कपट छोड़कर सरल परिणाम रखना, क्रोध छोड़कर क्षमा ग्रहण करना लोभ त्यागकर निर्वाहक होना वह तप है। जिससे कर्म के समूह का नाश करके आत्मा स्वाधीन हो जाय वह तप है।

श्रुत के अर्थ का प्रकाश करना, व्याख्यान करना, स्वयं निरन्तर अभ्यास करना दूसरों को अभ्यास कराना वह तप है। तपस्वियों का स्तवन भक्ति इन्द्र भी करता है। तप से केवल ज्ञान उत्पन्न होता हैं तप का अचिन्त्य प्रभाव है। तप करने के परिणाम होना अति दुर्लभ हैं। नारकी, तिर्यंच, देवों में तप करने की योग्यता ही नहीं हैं। एक मनुष्य गति में ही तप होता है मनुष्यों में भी उत्तम कुल, जाति, बल, बुद्धि, इंद्रियों की पूर्णता, रागादि की मदंता जिसके होती है तथा विषयों की लालसा जिसके नष्ट हो जाती है उसी के तप होता हैं।

तप बारह प्रकार के हैं- जिसकी जैसी शक्ति हो उसके अनुसार तप धारण करना चाहिए। बालक करे, वृद्ध करे, तरुण करे, धनवान करे, निर्धन करे, बलवान करे, निर्बल करे, सहारा सहित हो, वह करे, सहाय रहित हैं वह करे, भगवान कहा हुआ तप किसी के भी करने को अशक्य नहीं है जिस प्रकार से वात-पित्त कफादि का प्रकोप नहीं हो, रोग की वृद्धि नहीं हो शरीर रत्नत्रय का सहकारी बना रहे उस प्रकार अपना संहनन, बल, वीर्य देखकर तप करना चाहिए। देश काल आहार की योग्यता देखकर तप करना चाहिए जैसे तप में उत्साह बढ़ता रहे परिणामो में उज्ज्वलता बढ़ती जाये वैसे तप करना चाहिए इच्छा का निरोध करके विषयो में राग घटाना वह तप है। तप ही जीव का कल्याण है तप ही काम को, निद्रा को, प्रमाद को नष्ट करने वाला है। अतः मद छोड़कर बारह प्रकार के तप में जैसा तप करने की अपने में सामर्थ्य हो वैसा ही तप करना चाहिए।

आज मानव संसार के पंक में पैदा अवश्य होता है परन्तु कमल की भाँति विकसित होने के लिए। तभी तो वह 'पंकज' कमल कहलाता है। कीचड़ में लौटने के लिए, लथपथ होने के लिए सुनने के लिए कदापि उसका जन्म नहीं होता उसे तो इसमें अप्रभावित रहकर ऊपर उठना होता है। कमल की तरह खिलकर अपनी सुरभि विकीर्ण करनी होती है। उत्तम तप से ही उसका सुन्दर रंग, चमक और आत्मिक तेज प्रकाशित होता है। कीचड़ में रहकर भी उसका मुख सूर्य की ओर उन्मुख रहता है। सूर्य के प्रखर तप से तपकर ही वह उज्ज्वल कीर्ति प्रकट करता है। कीचड़ में रहकर भी वह उसमें लिप्त नहीं रहता।

कर्म रूपी मल से मुक्ति प्राप्त करने के लिए आत्मा को तपाना ही पड़ता है ऐसे तप करने वालों को ही तपस्वी कहा है। ऐसे तपस्वी शील और शान्ति को धारण करके स्वेच्छा से तपते हैं और कष्टों को सहन करते हुए सभी परिषहों को जीतते हैं।

विज्ञान पहले यह मानता था कि सूर्य मात्र जलती हुई अग्नि का एक पिण्ड है और वहाँ पर मात्र ताप है किन्तु वही विज्ञान अब यह मानने लगा है कि सूर्य अपने केन्द्र में शीतल है इसका कारण यह है कि ताप को बनाये रखने के लिए केन्द्र का शीतल होना आवश्यक है। अन्यथा सन्तुलन बिगड़ जायेगा।

मानव जीवन एक शुद्ध स्वच्छ दर्पण के समान होता है। समय-समय पर इस पर शुद्ध-अशुद्ध कर्मों की धूलि की परतें जमती रहती हैं। अत: तप द्वारा इस दर्पण की फाई नितान्त आवश्यक है। जो व्यक्ति दर्पण पर धूलि के कणों को जमने देते हैं फिर उनका दर्पण नहीं रह जाता, परमात्मा का प्रतिबिम्ब उसमें बिम्बित नहीं होगा। दर्पण की सफाई तप द्वारा ही हो सकती है।

मानव ही ऐसा प्राणी है जिसके पास अनन्त की ऊँचाईयों को छूने की और अतुल गहराई को स्पर्श करने की अपार शक्ति होती है। परन्तु वे शक्तियाँ सुषुप्त हैं और जब तक दिन बना रहेगा उसको इसकी उपलब्धि नहीं हो सकती। बहुत कुछ हमारे देखने पर भी निर्भर करता है। मनुष्य चाहे तो अंधेरी रात में भी प्रकाश की ज्योति दिखाई देख सकता है और सूर्य के धवल प्रकाश में भी रात्रि का घना अंधकार दृष्टिगोचर हो सकता है।

शरीर सतह है। गहराई तो आत्मा में होती है। जो सतह पर जीता हो गहराई को वह क्या जाने? निधि तो गहराई में होती है भूगर्भ या सागर के तल में ही रत्न छिपे होते हैं। लाखों मील चलने का विचार बनाने की अपेक्षा दो कदम चलना श्रेयष्कर है क्योंकि दो कदम चलने से कुछ तो दूरी कम हुई। जिस प्रकार हम जूते बाहर छोड़कर मन्दिर जी में प्रवेश करते हैं उसी प्रकार पवित्र तप हमें अन्दर ले जाता है। तप एक ऐसा कुशल सर्जन है जो आत्मा के साथ जुड़े कर्मों के गहरे संस्कारों को काटता है। उनके बन्धन से मुक्त करता है। इससे बढ़कर चिकित्सा संसार में दूसरी नहीं है। तप के अभाव में जीवन अधूरा है, जीवन को परिपूर्ण बनाने वाला मात्र तप ही है सम्यक् तप। इसलिए श्रद्धापूर्वक तपोपूत बनाना ही हमारा कर्तव्य है।

'तपसा निर्जरा च' आचार्य उमास्वामी ने लिखा है कि तप के द्वारा संवर और निर्जरा दोनों ही होते हैं। मोक्ष उपादेय तत्त्व है, संवर और निर्जरा उसके साधक तत्त्व हैं। इनके बिना मोक्ष होना संभव नहीं। तप चारित्र का ही विशेष रूप है। चारित्र मोह का अभाव होने पर मनुष्य की विरक्ति रूप अवस्था होती है और उस विरक्ति अवस्था में इच्छाओं का निरोध भली प्रकार हो जाता है इसलिए कहा गया है इच्छा निरोधस्तप: इच्छाओं को रोकना तप है। राग के उदय में यह जीव बाह्य वैभव को पकड़े रहता है। पर जब अन्तरंग से राग छूट जाता है तब उस वैभव को छोड़ते

देर नहीं लगती। बड़े-2 पुरुष संसार से विरक्त न हो सके परन्तु छोटे पुरुष विरक्त होकर आत्म कल्याण कर जाते हैं। प्रद्युमन को वैराग्य आया, दीक्षा लेने का भाव आया अत: राजसभा में वलदेव और श्रीकृष्ण से आज्ञा लेने आया तब बलदेव, श्री कृष्ण कहते हैं कि बेटा अभी तेरी अवस्था ही क्या है तूने संसार का सार जाना ही क्या है? जो दीक्षा लेना चाहता है अभी तुझ से बड़े हम विद्यमान हैं। हम लोगों के रहते तू क्या विचार कर रहा है। तब प्रद्युमन ने कहा कि आप लोग संसार के स्तम्भ हो अत: राज्य करो मेरी तो इच्छा दीक्षा धारण करने की है। इस संसार में सार है ही क्या जिसे जाना जाये। इस प्रकार राजसभा से विदा लेकर अन्त: पुर में पहुँचा और पत्नि से बोला प्रिये मेरा दीक्षा लेने का भाव है तब पत्नि ने कहा कि प्रिय संबोधन की आवश्यकता कैसी? क्या स्त्री से पूछ कर दीक्षा ली जाती है। आप दीक्षा ले या न ले मैं तो अभी जाकर लेती हूँ और प्रद्युमन से पहले ही निकल गयी इस प्रकार दोनों ने दीक्षा ग्रहण की और श्री कृष्ण और बलदेव संसार के चक्र में फंसे रहे।

पहले लोग थोड़ा सा निमित्त पाकर संसार से विरक्त हो जाते थे। सिर में एक सफेद बाल देखा कि वैराग्य आ गया परन्तु आज एक दो नहीं समस्त बाल सफेद हो जाते हैं परन्तु वैराग्य नहीं आता। उसका कारण है कि मोह का संसार बड़ा प्रबल है जिस प्रकार चिकने घड़े पर पानी की बूँद नहीं ठहरती उसी प्रकार मोही जीवों पर वैराग्य वर्द्धक उपदेशों का प्रभाव नहीं ठहरता। थोड़ा सा वैराग्य जब कभी आता भी है तो श्मशान के समान थोड़ी हीदेर में साफ हो जाता है। बाह्य और अभ्यान्तर के भेद से तप दो प्रकार के हैं। अनशन, उनोदर, वृत्ति-परिसंख्यान, रस परित्याग, विविक्त शय्यासन और कायक्लेश ये छह बाह्य तप कहलाते हैं। प्रायश्चित, विनय, वैय्यावृत्य, स्वाध्याय, व्युत्सर्ग और ध्यान ये छह अभ्यान्तर तप हैं। इनका सीधा संबंध अन्तरात्मा से है इसलिए इनको अभ्यान्तर तप कहते हैं। इन सभी तपों में इच्छा का न्यूनाधिक रूप से नियंत्रण किया जाता है इसलिए इनसे नवीन कर्मों का बंध रुकता है और पूर्व के बधे कर्म निर्जीव हो जाते हैं। **'कर्म शैल को वज्र समाना'** जिस प्रकार वज्रपात से पर्वत चूर-चूर हो जाते हैं, जिन कर्मों के फल देने का समय नहीं आया, ऐसे कर्म भी तप के प्रभाव से असमय में ही झड़ जाते हैं।

अविपाक निर्जरा का मूल कारण तप है। तप के द्वारा किसी सांसारिक फल की आकांक्षा नहीं करनी चाहिए। कितने ही लोग संतान प्राप्ति के लिए, धन के लिए तथा मरणोत्तर काल में समाप्त होने वाले स्वर्णादि की तृष्णा से तपश्चरण करते हैं। परन्तु आप जन्म और उसकी बाधाओं का परित्याग करने की इच्छाओं से इष्ट-अनिष्ट पदार्थो में मध्यस्थ मन, वचन, काय की प्रवृत्ति को रोकते हैं। अन्यत्र तप का प्रयोजन संसार है तो यहाँ तप का प्रयोजन मोक्ष है। परमार्थ से तप मोक्ष

का ही साधन है उसमें यदि कोई न्यूनता रह जाती है तो सांसारिक सुख का भी कारण हो जाता है जैसे खेती का उद्देश्य अनाज प्राप्त करना है यदि पाला पड़ने से अनाज प्राप्त करने में कुछ कमी हो जाती है तो पलाल तो प्राप्त होगा ही, इसी प्रकार, तपश्चरण से मोक्ष मिलता है। यदि कदाचित उसकी प्राप्ति न हो सकी तो स्वर्ग का वैभव तो मिलेगा ही।

पद्मपुराण में विशल्या की महिमा बताते हुए लिखा है कि उसके आते ही लक्ष्मण के पक्ष-स्थल से देवो-पुनीत शक्ति निकल कर दूर हो गयी इसमें विशल्या का पूर्व जन्म में किया हुआ तप ही कारण था। निर्जन वन में उसने तीन हजार वर्ष तक कठिन तप किया था तप के प्रभाव से ही मुनियों के शरीर में नाना प्रकार की ऋद्धियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। पर वे उनकी तरफ ध्यान नहीं देते। विष्णुकुमार मुनि को विक्रियाऋद्धि उत्पन्न हुई पर उन्हें इसका पता नहीं था। क्षुल्लक के कहने पर उनका उस तरफ ध्यान गया। सनत्कुमार चक्रवर्ती तप करते थे दुष्कर्म के उदय से उनके शरीर में नाना प्रकार के रोग उत्पन्न हो गये फिर भी उस ओर उनका ध्यान नहीं गया। एक बार इन्द्र की सभा में इसकी चर्चा हुई तो एक देव उनकी परीक्षा करने आया। जहाँ पर वे तप करते थे, वहाँ पर वह देव एक वैद्य का रूप रखकर चक्कर लगाने लगा और उनके शरीर पर जो रोग थे उनकी औषधियां बतादी तब मुनिराज ने कहा कि ये रोग तो शरीर में हैं परन्तु इनसे मेरा क्या मतलब? मुझे तो जन्म-मरण का रोग है उसकी कोई दवा हो तो बताओ? तब देव अपने असली रूप में प्रकट होकर चरणों में नतमस्तक हो गया और बोला कि इसकी औषधि तो आपके ही पास है मेरे पास नहीं। हम देव तो इससे वंचित रहते हैं। कहने का तात्पर्य है कि किसी प्रकार अगर गृहस्थी के जाल से छुटकारा मिल गया तो दूसरे जाल में नहीं फंसना चाहिए, निर्द्वन्द हो कर आत्मा का कल्याण करना चाहिए।

अंतरंग तपों में स्वाध्याय को भी तप बताया है। स्वाध्याय से आत्मा और अनात्मा का बोध होता है इसलिए प्रमाद छोड़कर स्वाध्याय में प्रवृत्ति करना चाहिए। आचार्यों की बुद्धि तो देखो कि उन्होंने शास्त्रों को पढ़ने के लिए स्वाध्याय सुन्दर शब्द को चुना है। इसका अर्थ यह है कि शास्त्र पढ़कर सबको सुनाओ और अपने आपको पहचानो। यदि ग्यारह अंग नौ पूर्वों को पढ़ने के बाद भी स्व को नहीं पढ़ सके तो उस सारभूत ज्ञान से कौन सा लाभ होने वाला है। इतना ज्ञान तो इस जीव ने अनन्तबार प्राप्त किया परन्तु संसार सागर से पार नहीं हो सका।

जिनसिद्धान्त में शास्त्र जानने की प्रतिष्ठा नहीं है किन्तु सम्यक् ज्ञान की प्रतिष्ठा है। यहाँ तो मात्र तप को जानने वाले मुनि को केवलज्ञान की प्राप्ति बताकर मोक्ष पहुँचाने की बात है। अब ज्ञान थोड़ा भी हो हानि नहीं परन्तु मिथ्या न हो इस बात का ध्यान रखें।

प्राचीन काल में मालवा देश की उज्जयिनी नगरी का राजा सिंह बहुत धर्मात्मा था। वह अपनी प्रजा को पुत्रवत् प्रेम करता था एक दिन राजा को चिन्ता हुई कि हाय, मेरे कोई पुत्र नहीं है,

पुत्र बिना मेरे वंश की रक्षा कैसे होगी। वास्तव में पुत्र के बिना यह संसार निराशा मय है। इस प्रकार राजा को दुखी देखकर मंत्री ने पूछा कि महाराज! आपकी उदासी का क्या कारण है, मंत्री के अधिक आग्रह से राजा ने इच्छा न होते हुए भी बतलाया तो मंत्री ने कहा- महाराज इसका एक ही उपाय है कि आप धर्म कार्यों में लग कर पुण्य की प्राप्ति करते हुए राज्य को सावधानी पूर्वक चलाएं इसका अन्य कोई उपाय नहीं हैं। इस प्रकार राजा मंत्री की बात मान कर धर्म कार्यों को करता हुआ राज्य करने लगा।

एक दिन राजा व रानी अपने मंत्री के साथ वन में टहल रहे थे कि एक अगूंठा चूसते बालक पर उनकी दृष्टि पड़ी राजा उसे देखते ही उठाकर रानी के पास ले आया और बोला- देखो प्रिय यह बालक सभी गुण सम्पन्न है इसे हृदय से लगाकर आनन्द का अनुभव करो। रानी लड़के को देखकर बोली, हे राजन् इस मन मोहन बालक को कहाँ से लाये हो? तब राजा बोला कि मैं मुंज के वन में टहल रहा था कि अचानक मेरी दृष्टि इस बालक पर पड़ी और मैं इसे ले आया। मंत्री ने कहा कि महाराज़ यह बालक बड़ा ही होनहार है। इसे आप नगर ले चले और पुत्रोत्सव मनायें। मंत्री की राय राजा को पसन्द आ गयी राजा ने उसे नगर में लाकर सम्पूर्ण रीति से पुत्र जन्म का उत्सव मनाया। प्रजा को सन्तोष हुआ कि हमारे राजा को पुत्र रत्न की प्राप्ति हो गयी।

चूँकि बालक मूंज वन में मिला था इसलिए उसका नाम मूंज रखा गया राजकुमार जब पढ़ लिखकर योग्य जवान हो गया तो विधिवत् उसका विवाह राजकुमारी रत्नावली के साथ कर दिया गया। कुछ समय बाद राजा सिंह की रानी ने भी एक पुत्र को जन्म दिया उसका नाम सिंहल रखा गया बड़ा होने पर राजकुमार सिंहल का विवाह राजकुमारी मृगावती से कर दिया गया। मृगावती ने दो पुत्रों को जन्म दिया। बड़े का नाम शुभचन्द तथा छोटे का नाम भर्तृहरि रखा गया। बचपन से इन दोनों बालकों का मन तत्वज्ञान में लगता था इसलिए इन बालकों ने तत्वज्ञान में अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली। ये ही आगे चलकर आचार्य शुभचन्द और राजर्षि भर्तृहरि हुए।

एक दिन राजा सिंह को बादलों को विलीन होते देखकर वैराग्य हो गया। विषय सुखों को बादलों के समान जान कर दोनों बेटों को राज्य सौंप कर जिनदीक्षा ग्रहण कर ली। एक दिन मूंज कुमार वन क्रीड़ा करके वापस आ रहे थे मार्ग में एक तेली को कंधे पर कुदाली रखे देखा तो पूछने पर मालूम हुआ कि उसने अपूर्व विद्या साधी है जिससे उसके अन्दर इतना बल आ गया है कि अगर यह लोह दण्ड जमीन में गाड़ दे तो कोई निकाल नहीं सकता। परन्तु तेली का गाढ़ा लोह दण्ड राजा ने उखाड़ दिया फिर राजा ने वह दण्ड जमीन में गाड़ दिया। उस दण्ड को उखाड़ने के लिए सभी ने अजमाइश की, परन्तु किसी को भी सफलता नहीं मिली।

अन्त में राजकुमार शुभचन्द और भर्तृहरि ने अपने पिता से आज्ञा माँगी परन्तु राजा को न चाहते हुए भी आज्ञा देने पड़ी और राजकुमारों ने चोटी का फन्दा लगाकर उस दण्ड को उखाड़

दिया चारों तरफ से धन्य-धन्य की ध्वनि गूंज उठी। तेली शर्मिन्दा होकर अपनी राह चला गया। तृष्णा बहुत बुरी होती है। बड़े-बड़े विद्वान इस फन्दे में पड़कर अनर्थ कर देते हैं। इस कार्य को देखकर राजा मूंज को इन दोनों बालकों से ईर्ष्या हो गई और उन्हें मारने का उपक्रम करने लगा। उसने मंत्री को बुला कर दोनों राजकुमारों को मारने का विचार प्रकट कर दिया मंत्री सुनकर सन्न रह गया और उसने एकान्त में दोनों राजकुमारों को बुलाकर रहस्य प्रकट कर दिया और उन्हें राज्य छोड़कर भाग जाने की सलाह दी। परन्तु दोनों राजकुमार वहीं रहे और अपने पिता सिंघल को राजा मूंज की मंशा प्रकट की यह सुनकर राजा सिंघल क्रोध में बोले तुम लोग उसे यमलोक पहुँचा दो क्योंकि राजनीति कहती है– **हानिये ताहि हनै जो आयु।**

तब दोनों राजकुमार बोले यह कार्य हमें शोभा नहीं देता। वे भी हमारे लिए आप ही जैसे पिता तुल्य हैं। संसार असार है और आत्मा का शरीर से कुछ कार्य करना चाहिए ऐसा विचार कर दोनों भाई चले जाते हैं।

शुभचन्द्र ने वन में जाकर जिनदीक्षा ले ली और भर्तृहरि ने एक तंत्र वादी तपस्वी के पास जाकर दीक्षा ग्रहण की उस तपस्वी के पास अनेक विद्यायें थीं वहाँ उस जंगल में रस तुम्बी विद्या से उन्हें सभी सुख सुलभ हो जाते हैं। एक दिन भर्तृहरि को अपने भाई की चिन्ता हुई तो उन्होंने एक शिष्य को उसकी खबर लेने भेजा वह खोजता हुआ जब आचार्य शुभचन्द्र के करीब पहुँचा तब उनके शरीर पर एक अंगुल मात्र भी वस्त्र नहीं देखा और कोई चर्या भी नहीं देखी। दो दिन तक भूखा रहकर वह वापस आ गया और बताया कि हे गुरुदेव! आप के भाई तो बहुत गरीब हैं उनके पास तो अंगुल मात्र भी वस्त्र नहीं है और खाने पीने की भी कोई व्यवस्था नहीं है।

इतना सुनकर भर्तृहरि बहुत दु:खी हुआ और अपने भाई शुभचन्द्र के पास पहुँचकर रस तुम्बी विद्या का वर्णन करके अर्पण कर देते हैं मुनि शुभचन्द्र ने वह रस पत्थरों पर फैंक दिया और कहा कि इसे अपने गुरु को ले जा कर दे दो। तब शिष्य ने सोचा क्या किया जाय इनके भाग्य में सुख नहीं है। भर्तृहरि को यह जानकर बहुत दुख हुआ तब भर्तृहरि ने उस तुम्बी को लेकर स्वयं शुभचन्द के पास पहुँचकर नमस्कार किया और विनय पूर्वक बोले महाराज इस तुम्बी में वही रस भरा है। तब वह सारा रस उन्होंने पत्थर पर फेंक दिया और कहा कि कहाँ चला गया वह सोना बनाने का गुण। तब भर्तृहरि नाराज होकर बोले कि आपने मेरी बारह साल की सिद्धि नष्ट कर दी। अब आप अपनी सिद्धि को दिखलायें तब शुभचन्द्र मुनि कहते हैं कि यदि सोना चाँदी से इतना ही प्रेम था तो घर क्यों छोड़ा था और अपने पैर के अंगूठे के नीचे से थोड़ी सी धूल उठाकर शिला पर फेंक दी वह सारी शिला सोने की हो गयी। जिसे देखकर भर्तृहरि हैरान हो गये। वह क्षमा मांगने लगे और उन्होंने पुन: दीक्षा देकर अपने जैसा बना लिया। आचार्य शुभ चन्द्र वही हैं जिन्होंने ज्ञानार्णव की रचना की।

रावण ने जितना समय बहुरुपिणी विद्या सिद्ध करने में लगाया अगर इतना समय आत्मा में लगा लेता तो मोक्ष चला जाता। संसार के लिए तप करने से क्या हुआ? नरक जाना पड़ा। संसार के दुखों को छोड़कर आत्मा में लगो।

तप चाहे सुरराय, करम-सिखर कों वज्र है।
द्वादश विधि सुखदाय, क्यों न करै निज सकति सम॥
उत्तम तप सब माँहि वखाना, करम-शैल को वज्र समाना।
वस्यो अनादि-निगोद-मँझारा, भू-विकल त्रय-पशु-तन धारा॥
धारा मनुष्य तन महादुर्लभ सुकुल आयु निरोगता।
श्री जैन वाणी तत्वज्ञानी, भई विषय-पयोगता॥
अति महा दुर्लभ त्याग विषय कषाय जो तप आदरै।
नर भव अनूपम कनक धर पर, मणिमयी कलसा धरै॥

बन्धुओ उत्तम तप धर्म की विवेचना करते हुए बताया गया कि तप सम्यक् और मिथ्या दो प्रकार का होता है सम्यक् तप मोक्ष को दिलाने वाला होता है और मिथ्या तप संसार का कारण होता है उसको कुतप, एवं बाल तप भी करते हैं। इसका वर्णन करते हुए कवि ने बड़ी ही सुन्दर चार पंक्तियाँ लिखी हैं–

तीनों कहाँ जोग जोरो, भोग से ना मुख मोडो,
लोक को रिझायवे की धुमपान गटकै।
कोई शीश धारे जटा, कोई तो उतारे लटा।
कोई कन फटा, कोई क्रिया में अटका॥
कोई मठवासी, कोई होय के संयासी पर तीर्थ में भटका,
ब्रह्म कोई चीनो नाहिं, मन बस कीनो नाहिं।
ऐते पर होते कहाँ थोथे ज्ञान फटका॥

इस प्रकार के तप करने से तो अच्छा है तप न करना। बिना तपे अन्तरंग की शुद्धि नहीं होती जैसे सोना अग्नि में तपकर खरा होता है उसी प्रकार यह आत्मा अन्तरंग तप द्वारा तपकर शुद्धात्मा बन जाती है।

सुरज तपे, तपे रे माटी, दीपक जले जले रे बाती।
तुझको तपना होगा, मोह तजना होगा॥

अत: बन्धुओ, अन्तरंग तप से अपनी आत्मा को तपाकर स्वयं को स्वयं में लीन कर दो यही कल्याण है।

उत्तमत्याग धर्म

क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष और स्नेह आत्मा को मलिन करते हैं अगर इनका त्याग कर दिया जायेगा तो आत्मा मलिन होने से बच जायेगी और अगर आत्मा मलिन नहीं होगी तो शुद्ध होकर सिद्धत्व को प्राप्त कर जायेगी इसलिए आत्म कल्याण के लिए त्याग ही मुख्य है। आज हम उत्तम त्याग का विवेचन करेगें। त्याग किस प्रकार किया जाय जो कि आत्म कल्याण का कराने वाला हो।

धर्म की सुन्दर भव्य इमारत अनुपम त्याग की सुदृढ़ नींव पर खड़ी हुई है। त्याग के अभाव में कोई भी धर्म जीवित नहीं रह सकता। धर्म को जीवित रखने के लिए एवं आत्मा को चैतन्य रखने के लिए भी त्याग करना परम आवश्यक है। यद्यपि आत्मा अविनश्वर है, फिर भी जड़ की संगति में उसके आस-पास जड़ता की परतें निर्मित हो गयी हैं। उसकी छवि धूमिल हो गयी है।

उसे अपने मूल स्वभाव चैतन्य रूप का ज्ञान कराने हेतु त्याग धर्म को महत्वपूर्ण समझा गया है। यही कारण है कि आत्मबोध की प्राप्ति के लिए त्याग को अत्यन्त उपयोगी माना गया है।

त्याग का अर्थ विकारी भावों का पूर्ण त्याग है। जिन बाह्य कारणों से परिणाम कलुषित हो रहे हैं, रहे थे या होंगे उन समस्त कारणों का परित्याग कर देना त्याग है। जो प्राणी अपने जीवन में समर्पित भाव से परम-तत्व (आत्मा) की प्राप्ति हेतु देव शास्त्र गुरु के चरणों में समस्त अन्तरंग एवं बहिरंग का त्याग कर देते हैं उनके अन्तरंग में एक अद्‌भुत प्रक्रिया घटने लगती है। परमात्मा का सुन्दर स्वभाव झलकने लगता है। अन्त में सम्भावनाएं मानस में साकार होने लगती हैं। उसका स्वरूप क्रमशः निखरने लगता है यह सब त्याग की महिमा के फलस्वरूप ही संभव है।

हम सबका जीवन, अभी एक अनघड पाषाण के समान है। त्याग, तप संयम पूर्वक निरन्तर सतत् प्रयत्न करने से इस पाषाण रूप को हम एक सुन्दर, शोभनीय, अति मनोहर ऐसी सुघड़ प्रतिमा का स्वरूप प्रदान कर सकते हैं जिसमें हम अनन्त ज्योति के प्रकाश का अनुभव का सकते हैं।

णिव्वे गतियं भावइ मोहं चइअण सव्व दव्वेसु।
जो तस्स हवे च्चागो इदि भणिदं जिणवरि देहिं।।

जो सर्व पर द्रव्यों से ममत्व भाव हटा कर संसार देह और भोगों से मन-वचन काय की शुद्धि पूर्वक उदासीन परिणामी रहता है उसके त्याग धर्म होता है। जिन्होंने धन सम्पदा आदि परिग्रह को कर्म के उदय जनित पराधीन, विनाशीक अभिमान को उत्पन्न करने वाला तृष्णा को बढ़ाने वाला, राग-द्वेष की तीव्रता करने वाला, आरंभ की तीव्रता करने वाला, हिंसादि पाँचों पापों का मूल जानकर जिसे अंगीकार ही नहीं किया है। वे उत्तम पुरुष धन्य हैं। जिन्होंने इसे अंगीकार

करके फिर उसे विषसमान जानकर जीर्ण तृण की तरह त्याग दिया है उनकी भी अचिन्त्य महिमा है।

कितने ही जीवों का तीव्र राग मंद नहीं हुआ है इसलिए वे समस्त परिग्रह त्यागने को समर्थ नही हैं। वे सराग धर्म में रुचि रखते हैं पापों से भयभीत हैं। वे इस धन को उत्तम पात्रों के उपकार के लिए दान में लगाते हैं जो धर्म के सेवन करने वाले धनवान हैं वे निर्धन जनों का उपकार करने में धन लगाते हैं। धर्म के आयतन जिनमन्दिर आदि बनवाने में जिन सिद्धान्त (शास्त्र) लिखवा देने में, उपकरण में, पूजनादि प्रभावना में धन लगाते हैं। दु:खी दरिद्र-रोगियों के उपकार में तन-मन से करूणावान होकर धन लगाते हैं। वे अपना धन व जीवन सफल करते हैं।

दान धर्म का अंग है। अपनी शक्ति प्रमाण, भक्ति पूर्वक, गुणों के धारी उज्ज्वल पात्रों को जो दान देता है वह जीव की महान सुख सामग्री को परलोक ले जाने वाला है तथा निर्विघ्न स्वर्ग को व भोगभूमि को प्राप्त करने वाला है यह दान की महिमा है। अत: जो सुख सम्पदा का इच्छुक हो उसे दान देने में ही अनुराग करना चाहिए। जो दान देने में उद्यमी नही हैं, केवल मरण पर्यन्त के लिए धन का संचय करने में ही उद्यमी हैं वे यहाँ पर ही तीव्र आर्त परिणाम से मरकर सर्प आदि दुष्ट तिर्यंच की गति पाकर नरक-निगोद को प्राप्त करते हैं, धन क्या साथ जायेगा?

धन पाना तो दान से ही सफल है। दान रहित का धन घोर दु:खों की परिपाटी का कारण है। यहाँ पर ही कृपण की घोर निंदा होती है, लोग कृपण का नाम भी नहीं लेना चाहते हैं। कृपण सूम का नाम लेने को भी लोग अंमगल मानते हैं। दानी में कोई औगुण या दोष हो तो वह दोष भी दान से ढ़क जाता है जगत में दान बड़ा है। सच्ची भक्ति से थोड़ा-सा भी दान देने वाला भोगभूमि के भोगों को तीन पल्य पर्यन्त भोगकर देवलोक में चला जाता है। देना ही जगत में ऊँचा है। विनय सहित व स्नेह के वचन सहित होकर दान देना चाहिए। दानी को ऐसा अभिमान नहीं करना चाहिए कि हम इसका उपकार कर रहे हैं। दानी तो पात्र को अपना महान उपकार करने वाला मानता है। लोभरुप अंधकूप में पड़े हुए को वहाँ से निकालने का उपकार पात्र बिना कौन करे? पात्र बिना लोभियों का लोभ नहीं छूटता, पात्र बिना संसार से उद्धार करने वाला दान कैसे बनता? धर्मात्माओं को तो पात्र के मिलने के समान तथा दान देने के समान अन्य कोई आनन्द नहीं हैं। बड़ापना, धनाढ्यपना, ज्ञानीपना पाया है तो दान में ही उत्तम करो। छहकाय के जीवों को अभयदान दो, अभक्ष्य का त्याग करो, बहुत आरंभ को घटाओ, देख-सोधकर उठाना-धरना करो। यत्नाचार रहित निर्दयी होकर प्रवर्तन करो। किसी प्राणीमात्र को मन वचन काय से दु:खी नहीं करो। दुखियों पर करुणा ही करो। ये ही गृहस्थ का अभयदान है, इससे संसार में जन्म, मरण रोग शोक, दरिद्र वियोगादि संताप के पात्र नहीं बनोगे।

संसार को बढ़ाने वाले, हिंसा को पुष्ट करने वाले, मिथ्याधर्म की प्ररुपणा करने वाले, युद्ध शास्त्र, श्रृंगार शास्त्र, मायाचार के शास्त्र, वैद्यक शास्त्र, रस-रसायन, मंत्र तंत्र, मारण वशीकरण शास्त्र महापाप के प्ररूपक हैं इनको अतिदूर से ही त्याग कर देना चाहिए।

भगवान वीतराग सर्वज्ञ के कहे, दयाधर्म की प्ररूपणा करने वाले स्याद्वाद रूप अनेकान्त का प्रकाश करने वाले, नय प्रमाण द्वारा तत्वार्थों की प्ररूपणा करने वाले शास्त्रों को अपने आत्मा के पढ़ने-पढ़ाने के द्वारा आत्मा के उद्धार के लिए अन्य को व अपने लिये दान करो। अपनी संतान को ज्ञान-दान करो तथा अन्य धर्म बुद्धि वाले धर्म के रोचक इच्छुक हों उनको शास्त्र दान करो। जो ज्ञान के इच्छुक हैं वे ज्ञानदान के लिए पाठशाला की स्थापना करते हैं क्योंकि धर्म का स्तम्भ ज्ञान ही है जहाँ ज्ञानदान होगा वहाँ धर्म रहेगा। अत: ज्ञानदान में प्रवर्तन करो। ज्ञानदान के प्रभाव से निर्मल केवलज्ञान प्राप्त होता है। रोग का नाश करने वाली प्रासुक औषधि का दान करना चाहिए। औषधिदान बड़ा उपकारक है रोगी को तुरंत तैयार औषधि मिल जाय उसका बड़ा आनन्द है। किसी निर्धन को जिसकी सेवा टहल करने वाला कोई नहीं हो यदि उसे तैयार बनी हुई औषधि मिल जाय तो वह उसे निधियों के लाभ के समान मानता है। औषधि लेकर जो स्वस्थ हो जाता हैं वह समस्त व्रत संयम पालता है ज्ञान का अभ्यास करता है औषधिदान के द्वारा वात्सल्य, स्थितिकरण, निर्विचिकित्सा, इत्यादि अनेक गुण पुष्ट होकर प्रकट होते हैं। औषधि दान के प्रभाव से रोग रहित देवों जैसी वैक्रियिक देह प्राप्त होती है।

आहार दान समस्त दानों में प्रधान है। प्राणी का जीवन, शक्तिबल बुद्धि ये सभी गुण आहार बिना नष्ट हो जाते हैं जिसने आहार दान दिया उसने प्राणियों को जीवन, शक्ति बल बुद्धि सभी कुछ दिया। आहार दान से ही मुनि व श्रावक का समस्त धर्म चलता है। आहार बिना ये मार्ग भ्रष्ट हो जायेगें। आहार ही सभी रोगों का नाश करने वाला है जो आहार दान देता है वह मिथ्यादृष्टि भी भोगभूमि में कल्पवृक्षों के द्वारा प्रदत्त दश प्रकार के भोगों को असंख्यात काल तक भोगता है तथा क्षुधा तृषादि की बाधा रहित होकर आँवले के बराबर तीन दिन के अंतर से भोजन करता है। सभी प्रकार के दुख क्लेश आदि से रहित होकर असंख्यात वर्ष तक सुख भोगकर देवलोक में जाकर उत्पन्न होता है। अत: धन को पाकर चार प्रकार के दान में प्रवर्तन करो। जो निर्धन हैं वे भी अपने भोजन में से जितना बने उतना दान करें। आपको आधा भोजन मिले तो उसमें से भी ग्रास दो ग्रास दु:खी भूखे, दीन दु:खिओं को मिष्ट वचन बोलकर देना चाहिए। आदर, सत्कार, विनय करना, स्थान देना, कुशल पूछँना ये महादान हैं। दुष्ट विकल्पों का त्याग करो, पापों में प्रवृत्ति का त्याग करो, चार कषायों का त्याग करो, विकथा करने का त्याग करो, दूसरों के सत्य व असत्य दोष कभी नहीं कहो।

हे ज्ञानी जनो! यदि अपना हित चाहते हो तो दुखी जीवों को तो दान करो तथा सम्यक्दर्शन सम्यकज्ञान आदि गुणों के धारकों का महाविनय पूर्वक सम्मान करो समस्त जीवों के प्रति करुणा करो। मिथ्यादर्शन का त्याग करो राग-द्वेष मोह के धारक कुदेव, आरंभ-परिग्रह के धारक भेषधारी कुगुरु, हिंसा के पोषक राग-द्वेष को पुष्ट करने वाले मिथ्यादृष्टियों के शास्त्र-इनकी वंदना, स्तवन, प्रशंसा करने का त्याग करो। क्रोध, मान, माया, लोभ-इनके निग्रह करने में बड़ा प्रयत्न करो। क्लेश देने के कारण अप्रिय वचन, गाली के वचन, अपमान के वचन, मद सहित वचन कभी नहीं कहो। इस प्रकार दूसरों को दुख के कारण अपने यश को नष्ट करने वाले, धर्म को नष्ट करने वाले मन वचन काय के प्रवर्तन का त्याग करो।

ऐसा तो तीन काल में भी संभव नहीं है कि भीतर भाव में त्याग बना रहे और बाहर से बाह्य वस्तुओं का त्याग न हो। ऐसा तो हो जाता है कि बाह्य में त्याग करते रहे परन्तु अन्तरंग में उन वस्तुओं के प्रति ममत्व बना रहे। जैसे यदि बादल जल से परिपूर्ण होगें तो नियम से वर्षा होगी। यदि फूलों में सुगंध होगी तो वह अवश्य ही सर्वत्र विकीर्ण होगी। अत: कंठ में, हृदय में त्याग की भावना होगी तो बाह्य में भी त्याग होगा। इसमें शंका करने की रंच मात्र भी गुंजाइश नहीं है। यह तो प्रकृति का नियम है।

आज अहंकार के वशीभूत त्याग का स्वरूप ही बदल गया है जैसे– एक बार सड़क के किनारे एक अन्धा छोटी सी तख्ती लगाकर बैठा था तख्ती पर सुवाच्य अक्षरों में लिखा हुआ था कृपया अन्धे की सहायता करें। उसकी दयनीय दशा पर तरस खाकर वहाँ से निकलने वाले उसे पैसे देने लगे। एक दयालु व्यक्ति ने एक रुपये का नोट निकाल कर दे दिया उस अन्धे ने कहा– कृपया यह नोट बदल दे। बहुत पुराना हो गया है पता नहीं चले अथवा न चले। नोट देने वाले व्यक्ति के आश्चर्य की सीमा न रही उसने पूछा तुम्हें कैसे पता चला कि नोट पुराना है यह नहीं चलेगा। उस अन्धे ने निवेदन किया कि कृपया मुझे क्षमा करेंगे। आज वह सिनेमा देखने चला गया है। तो उसकी जगह में काम कर रहा हूँ साथ ही मैं बहरा और गूंगा भी हूँ। मैं भी उसी आश्रम में रहता हूँ जहाँ यह मेरा मित्र रहता है। आप समझ गये होगे कि अन्धा फिल्म देखने गया था और भिखारी कह रहा था कि मैं गूंगा और बहरा हूँ तथा बोल और सुन भी रहा था। बस यही हमारी दशा है हम मात्र मुंह से कहते अवश्य हैं और हमारे त्याग के साथ हमारा अहंकार और नाम भी जुड़ा रहता है कुछ भी पता नहीं चलता कि भीतर मन में क्या छिपा है।

त्याग का अर्थ छोड़ना होता है पर जब ग्रहण हो तब ही छोड़ना होगा संसार के समस्त पदार्थ अपना-अपना चतुष्टय लिए स्वतंत्र हैं या विद्यमान हैं किसी को ग्रहण करने की सामर्थ्य नहीं, हमारा कमण्डल वहाँ रखा है और हम यहाँ बैठे हैं क्या मैंने कमण्डल को ग्रहण कर लिया

है। आपकी सम्पत्ति आपके घर है और यहाँ बैठे है क्या आपने सम्पत्ति को ग्रहण किया है। जब ग्रहण नहीं किया तो त्यागना कैसा? बाह्य में तो ऐसा ही है परन्तु मोह के कारण उन पदार्थों में यह मेरे हैं मैं इनका स्वामी हूँ इस प्रकार का मूर्च्छा भाव बैठा हुआ है यही मूर्च्छा भाव छोड़ने का नाम त्याग है। जिसका यह मूर्च्छा भाव छूट गया उसकी आत्मा नि:शल्य हो गयी। यह मनुष्य पर पदार्थ को अपना मानकर उसके इष्ट-अनिष्ट परिणमन से व्यर्थ ही हर्ष विषाद का अनुभव करता है यदि पर में परत्व और निज में निजत्व बुद्धि हो जावे तो त्याग का आनन्द उपलब्ध हो जावे।

इस तरह निश्चय से ममता भाव को छोड़ना त्याग कहलाता है। जब यहाँ भोग-भूमि थी। तब सब की एक सी दशा थी। कल्पवृक्षों से सबकी इच्छायें पूर्ण हो जाती थी। इसलिए किसी से किसी को कुछ भी प्राप्त करने की आवश्यकता नहीं थी। मुनि मार्ग का भी अभाव था इसलिए आहार आदि देना भी आवश्यक न था परन्तु जब यह कर्मभूमि हुई तो विषमता लिए हुए मनुष्य यहाँ उत्पन्न होने लगे तबसे पारस्परिक सहयोग की आवश्यकता हुई। मुनि मार्ग भी प्रचलित हुआ इसलिए आहार आदि देने की आवश्यकता हुई। फलस्वरूप उसी समय से त्याग धर्म का अविर्भाव हुआ दाता को हृदय से जब तक लोभ कषाय की निवृत्ति नहीं हुई तब तक किसी के लिए वह कौड़ी भी देने के लिए तैयार नहीं होता। पर जब अन्तरंग से लोभ निकल जाता है तब छ: खण्ड का वैभव भी दूसरे के लिए सौंपने के लिए देर नहीं लगती। मुनिने श्रावक से आहार लिया श्रावक ने भक्तिपूर्वक आहार दिया इससे दोनों का कल्याण हुआ दाता को तो इसलिए हुआ कि उसकी लोभ कषाय की निवृत्ति हुई और मुनि को इसलिए हुआ कि आहार पाकर उसके शरीर में स्थिरता आई जिससे वह रत्नत्रय की बुद्धि में समर्थ हुआ। मुनि अपने उपदेश से अनेक जीवों को सुमार्ग पर लगाता है। इस दृष्टि से अनेकं जीवों का कल्याण हुआ इस तरह विचार करने पर त्याग धर्म अत्यधिक स्व पर कल्याण कारी जान पड़ता है। मुनि अपने पद के अनुसार निश्चित त्याग धर्म का पालन करते हैं। इतना निश्चय है कि संसार का समस्त व्यवहार त्याग से ही चलता है अन्यथा जिसके पास जो है वह किसी के लिए कुछ न दे तो क्या संसार का व्यवहार चल जावेगा। एक बार एक साधु नदी के किनारे पहुँचा दूसरी पार जाने के लिए नाव लगती है। नाव का किराया दो पैसे था साधुके पास पैसे का अभाव था इसलिए वहीं नदी के किनारे इस पार ही ठहरने का उद्यम करने लगा इतने में एक सेठ आया बोला- बाबाजी रात्रि को यहाँ कहाँ ठहरोगे। साधु ने कहा- नाव में बैठने के लिए दो पैसे चाहिए। मेरे पास नहीं हैं अत: यही रात्रि विश्राम कर लेते हैं। सेठ ने कहा- पैसों की कोई चिन्ता नहीं आप नाव पर बैठिये सेठ और साधु दोनों नाव पर बैठ गये। सेठ ने चार पैसे नाव वाले को दे दिये। जब नाव से दोनों दूसरी तरफ पहुँचे तब सेठ ने साधु से कहा कि बाबाजी आप त्याग का बहुत उपदेश देते हैं यदि आप

की तरह मैंने भी पैसे त्याग दिये होते तो क्या दशा होती। अत: त्याग की बात छोड़ो। साधु ने हंसकर कहा- बेटा यदि नदी पार हुई है तो चार पैसे के त्याग से हुई हैं यदि तुम ये पैसे अपनी अन्टी में रखे रहते तो तो वह नाव वाला तुझे कभी भी पार नहीं उतारता। सेठ चुप रह गया। कहने का तात्पर्य यह है कि त्याग से ही संसार के सब काम चलते हैं।

पानी बाढ़े नाव में, घर में बाढे दाम।
दोनों हाथ उलीचिये, यही सयानो काम।।

यदि नाव में पानी बढ रहा है तो पानी हाथों से उछालकर बाहर करना ही बुद्धिमत्ता है इसी प्रकार यदि घर में सम्पत्ति बढ़ रही है तो उसे दान के द्वारा उत्तम कार्य करना ही उसकी रक्षा का उपाय है।

अगर चाहते हो धन की रक्षा, तो धनवानो बनो दानी।
कुए से जल नहीं निकलेगा, तो सड़ जायेगा पानी।।

दान सम्मान के साथ देना चाहिए और उसके बदले किसी प्रकार का अभिमान हृदय में उत्पन्न नहीं होना चाहिए अन्यथा पैसा का पैसा जाता है और उससे आत्मा का कुछ भी लाभ नहीं होता। दान में लोभ कषाय से निवृत्ति होने के कारण दाता को आत्मा का लाभ होता है। उत्तम पात्र के लिए दिया हुआ दान कभी व्यर्थ नहीं जाता। धन्यकुमार की कथा आप सभी को मालूम है घर से निकलने पर उसे जो स्थान-स्थान पर अनायास ही लाभ हुआ वह उसके पूर्व भव में किये हुए दान का ही फल था जिस प्रकार योग्य भूमि में पड़ा बड़का छोटा बीज कालान्तर में बड़ा वृक्ष बनकर छाया प्रदान करता है उसी प्रकार योग्य पात्र के लिए दिया छोटा सा दान भी समय पाकर अपरिमित वैभव को प्रदान करता है।

जब बसन्त याचन भये, दीन तरु मिल पात।
इससे नव पल्लव भये, दिया अनर्थ नहीं जात।।

एक कवि के सामने पूर्ति के लिए समस्या रखी गयी जिसकी उसने उपर्युक्त पूर्ति की। बसन्त ऋतु में प्रथम पतझड़ आती है जिससे नये लहराते पल्लव उत्पन्न होते हैं। कवि ने यही भाव अंकित किया है कि जब बसन्त ऋतु याचक हुआ अर्थात् उसने वृक्षों से पत्तों की याचना की तब सभी वृक्षों ने उसे अपने पत्ते दे दिये उसके फल स्वरूप उन्हें नये-नये पत्तों की प्राप्ति हो गयी। क्योंकि त्याग कभी निरर्थक नहीं जाता। मान बढाई के लिए किया गया त्याग कोई अर्थ नहीं रखता।

महाभारत में ऐसा कथन आया है कि जब युद्ध समाप्त हो गया और हस्तिनापुर के राजा पद पर युधिष्ठिर का राजतिलक हो गया तब युधिष्ठिर ने एक बहुत बड़ा यज्ञ किया उसमें हजारों

ब्राह्मणों को भोजन कराया गया महाराज युधिष्ठिर कुछ लोगों से वार्ता कर रहे थे कि वहाँ एक नेवला आया जिसका आधा शरीर स्वर्णमयी था और जूठन में बार-बार लौटने लगा तब महाराज युधिष्ठिर बोले हे नेवले तू यह क्या कर रहा है? तब नेवला बोला- महाराज! एक ग्राम में एक ब्राह्मण, उसकी पत्नि, लड़का तथा लड़के की बहु चार जीवों का परिवार रहता था। वे बहुत ही गरीब थे खेत से शिला बीन कर लाते थे और उससे गुजर-बसर करते थे कभी-कभी तो कई दिन तक उन्हें भूखे रहना पड़ता था। एक दिन कई दिन भूखे रहने के बाद जो शिला बीन कर लाये थे उससे उन्होंने आठ रोटियाँ बनाकर सभी खाने बैठे ही थे कि आवाज आई मैं सात दिन का भूखा हूँ भूख की वेदना सहन नहीं हो रही है। उसकी इस प्रकार की वाणी सुनकर ब्राह्मण को करुणा आई और अपने हिस्से की रोटी उसको दे दी। इन विचारों के साथ कि तुझे तो केवल तीन दिन ही हुए हैं तुझसे ज्यादा जरूरी उसको है। तब ब्राह्मण की पत्नि लड़के तथा बहु सभी ने अपने हिस्से की रोटियाँ उस भूखे को खिला दीं उन रोटियों को खाकर वह तृप्त हो गया और उसके हाथ धोने से जो पानी जमीन पर फैल गया था उसमें लौटने से यह शरीर आधा स्वर्ण मयी हो गया था अब आधा शरीर स्वर्णमयी मुझे अच्छा नहीं लगता सोचा था कि महाराज ध र्मराज यज्ञ करा कर ब्राह्मणों को भोजन करा रहे हैं वहाँ पर मेरा बाकी बचा आधा शरीर भी स्वर्ण मयी हो जायेगा इस प्रकार विचार करके यहाँ पर आया था परन्तु मेरा शेष शरीर स्वर्णमयी नहीं हो रहा है। महाराज जान पड़ता है कि यह ब्राह्मण भोजन करुणा बुद्धि से नहीं केवल मान बढ़ाई, प्रतिष्ठा के लिए कराया जा रहा है। इसीलिए मेरा शरीर स्वर्णमयी नहीं हो रहा है क्योंकि मान बढ़ाई, प्रतिष्ठा आदि से किया गया कार्य निरर्थक होता है। दान देते समय पात्र की योग्यता और आवश्यकता को ध्यान में रखना चाहिए तभी दान देना कार्यकारी होता है।

दान देना तभी सफल होता है जब जिस के लिए दान में जो वस्तु दी जा रही है वह उसकी आवश्यकतानुसार दी जा रही हो। अन्यथा कुपात्र को दिया दान और आवश्यकता से विपरीत दी गयी वस्तु दोनों ही निरर्थक होते हैं। जैसे- रुग्ण व्यक्ति को औषधि हितकारी होती है ज्ञानी के लिए ज्ञान के उपकरण लाभकारी होते है साधक की साधना के लिए उपयुक्त उपकरण उपलब्ध कराना आदि।

समाज के अन्दर हुई उन्नति और रचनात्मक कार्य दान का ही फल होते हैं। आचार्यो ने दान चार प्रकार का बताया है। 1. पात्रदत्ति 2. दयादत्ति 3. समदति 4. अन्वयदत्ति 5. सकलदत्ति।

1. पात्रदत्ति- पात्र तीन प्रकार के होते हैं। उत्तम, मध्यम और जघन्य।
2. दयादत्ति- गरीबों को करुणा से दिया दान दयादत्ति कहलाता है।

3. समदत्ति– धर्मशाला, पाठशाला, औषधालय आदि बनवाना तथा समाज के अन्य रचनात्मक कार्य करना समदत्ति कहलाता है।

4. अन्वयदन्ति– कुटुम्बियों को देना।

5. सकलदत्ति– समस्त परिग्रह का त्याग कर साधु बन जाना।

एक सेठ जी के पास 5 लाख रूपये थे और उनके चार पुत्र थे उन्होंने एक-एक लाख रूपये चारों पुत्रों को दे दिये और एक लाख अपने पास रख लिये जब सेठ जी का अन्तिम समय आ गया और उनका बोलना बन्द हो गया तब आस-पास के आदमी कहने लगे कुछ दान कर दो। सेठजी ने इशारा दीवार की ओर कर दिया क्योंकि रुपया दीवार में था। लड़कों से पूछा गया कि तुम्हारे पिता जी क्या इशारा कर रहे हैं तो लड़के कहते हैं कि पिताजी ने सारा पैसा दीवार बनाने में लगा दिया या खर्च कर दिया। कोई भी सेठ जी की बात समझ नहीं सका और सेठ जी मर गये। लक्ष्मी दीवार में गड़ी रही। सभी का यही हाल होता है अगर दान नहीं करोगे तो सम्पदा यही पर रह जायेगी।

एक धुनिया हवाई जहाज से आ रहा था उस जहाज में 20 टन रूई लदी हुई थी उसके मन में विचार आया कि यह सारी रूई हमको ही धुननी पड़ेगी बड़ा काम है। यह विचार आते ही वह बीमार हो गया, डाक्टर बुलाये गये परन्तु वह ठीक कैसे हो कई डाक्टर व वैद्य देख गये परन्तु वह ठीक नहीं हो रहा था एक चतुर बुद्धिवाला डाक्टर आया और बोला हम ठीक कर देगें परन्तु फीस के 500 रूपये लेगें। फीस स्वीकार कर ली गयी। डाक्टर ने एकान्त में कहा आप कहाँ से और कैसे आये थे वह बोला मैं अमुक जगह से हवाई जहाज में आ रहा था तब डाक्टर ने पूछा उसमें आपने क्या देखा? उसने कहा कि उस जहाज में 20 टन रूई लदी हुई थी। डाक्टर सारी बात समझ गया और बोला– अरे उस सारी रूई में आग लग गई और सारी रूई जलकर भस्म हो गयी। ज्यों ही उस धुनिया के मन में यह भाव आये कि रूई नहीं रही वह ठीक हो गया।

बन्धुओं, बाहर में कुछ नहीं है अन्दर में ही है और जब अन्दर और बाहर में अन्तर आयेगा तो विषमता उत्पन्न ही कर दु:खी करेगा। हमारे समक्ष एक नकली चेहरा काम करता रहता है। आज जो भी त्याग करते हैं उसके पीछे पद नाम प्रसिद्धि और प्रतिष्ठा की चाह काम करती है जिसके कारण परिग्रह कम करने पर भी पहले से अधिक भार ऊपर लद जाता है। बजाय हल्कापन महसूस करने के भारीपन का एहसास होता है चाहे उसे हम महसूस न करें।

भगवान महावीर स्वामी ने अहंकार पूर्ण त्याग का मोक्षमार्ग में निषेध किया है। वास्तविक त्याग तो है जो अपनी समस्त इच्छाओं का त्याग करके किया जाता है। त्याग में याचक और

मांग का पूर्णत: अभाव होता है क्योंकि त्याग ही तो अन्तरंग में उतरने में सहायता प्रदान करने वाली प्रथम सीढ़ी है फिर शर्तें कैसी?

अत: हम सभी को इसके महत्त्व के यथार्थ स्वरूप को पहचानना चाहिए। इस प्रकार समझ कर, पहचान कर बुद्धि पूर्वक विचार करके दिया गया दान अथवा परिग्रह का त्याग ही आत्म कल्याण में श्रेयष्कर होता है। मोक्ष को दिलाने वाला होता है अर्थात् मोक्ष का कारण होता है।

दान चार परकार चार संघ को दीजिये।
धन बिजुली उनहार, नर-भव लाहो लीजिये।।
उत्तम त्याग कह्यो जग सारा, औषध शास्त्र अभय आहारा।
निहचै राग-द्वेष निरवारै, ज्ञाता दोनों दान संभारै।।
दोनों संभारे कूप-जल सम, दरब घर में परिनया।
निज हाथ दीजे साथ लीजे खाय खोया बह गया।।
धनि साध शास्त्र अभय-दिवैया, त्याग राग विरोध को।
बिन दान श्रावक साधु दोनों, लहै नाहीं बोध को।।

उत्तमाकिंचन्य धर्म

त्याग करते करते जब आदमी आगे बढ़ जाता है तब आकिंचन धर्म होता है क्योंकि प्राणि जब सब कुछ त्याग कर देगा तब उसके पास कुछ भी नहीं बचेगा और वही अकिंचन होता है। इसका विपरीत परिग्रह है। परि+ग्रह परि का अर्थ चारों तरफ से और ग्रह का अर्थ संचय करना है अर्थात् चारों तरफ से संचय करना परिग्रह कहलाता है। इस परिग्रह का त्याग करना अकिंचन होता है। आज इसी विषय पर विवेचन किया जाएगा परिग्रह क्या होता है? परिग्रह त्याग क्या कहलाता है और यह किसके लिए, कब और क्यों कल्याणकारी होता है। आचार्यो ने कहा है:-

हो ऊण य णिस्संगो जियभावं णिग्गहितु सुह वुघ्दं।
णि हंदेण दु वट्टदि अणयारो तस्य किंचण्ण ह।।

जो मुनि सर्व प्रकार के परिग्रह से निसंग हो सुख-दुख दायक कर्म जनित निज परिणामों का निग्रह कर निर्द्वन्दता पूर्वक समता भाव में लीन होता है। उसके आकिंचन धर्म होता है।

सुख आत्मा का गुण है और यह निश्चित है कि जब भी यह प्रगट होगा तब आत्मा में ही होगा यह ध्रुव सत्य है। परन्तु मोह के कारण यह जीव परिग्रह को सुख का कारण मानकर उसके संचय में दिन रात जुटा हुआ है। जो आत्मा को चारों ओर से जकड़े वह परिग्रह है। परमार्थ से विचार किया जाये तो यह परिग्रह ही इस जीव को सब ओर से जकड़े हुए है। आचार्य

उमास्वामी ने तत्त्वार्थसूत्र में कहा है कि मूर्च्छा परिग्रह है। मैं इसका स्वामी हूँ ये मेरे स्व हैं इस प्रकार का भाव ही मूर्च्छा है।

शारीरिक नींद से जगाया जा सकता है।
आत्मिक नींद से जगाना मुश्किल है।।

आचार्य कहते हैं जो गहरी नींद में सो रहा है उसे जगाया जा सकता है परन्तु जो सोने का अभिनय कर रहा हो उसे जगाना बहुत मुश्किल है इसी प्रकार जो अज्ञानी हैं उसे समझाया जा सकता है। परन्तु जो न समझ का नाटक कर रहे हैं उन्हें कैसे समझाया जा सकता है। उसी प्रकार यह मूर्च्छा होती है जो इस प्रकार का प्रदर्शन करते हैं वे अपनी आत्मा को गर्त में डालते हैं वे कभी भी अपना कल्याण नहीं कर सकते हैं। इसी मूर्च्छा के कारण पास में न रहते हुए भी परिग्रह कहलाता है और इस मूर्च्छा के अभाव से समवशरण जैसी विभूति के रहते हुए भी। परिग्रह अपरिग्रह कहलाता है अर्थात् केवली को परिग्रह रहित कहते हैं। यह परिग्रह जीव को दसवें गुणस्थान तक पीछा नहीं छोड़ता और आज इसी परिग्रह के कारण एक दूसरे में प्रतिस्पर्धा लगी हुई है और सारे जगत में त्राहि-त्राहि मची हुई है। इसी परिग्रह की प्रतिस्पर्धा के कारण एक जीव दूसरे जीव के खून का प्यासा बना हुआ है बल्कि यो कहा जाय कि चौबीस घण्टों में वह अपनी आत्मा का कितनी बार हनन करता है इसकी कोई गिनती नहीं है और इसी मूर्छा के कारण ही जीव को सम्यग्दर्शन की प्राप्ति होना उसी प्रकार असम्भव है जैसे अंधे का दिखाई देना पंगुका दौड़ना। यदि आज जीव के समझ में इतनी बात आ जाये अथवा यो कहे कि जीव परिग्रह को मात्र निर्वाह का साधन मान ले और अपनी महत्वाकांक्षा को तिल्लांजलि दे दे तो मूर्च्छा का अभाव होते ही वही परिग्रह मोक्षमार्ग का साधन बन जायेगा जैसे साध्य की प्राप्ति साधन बिना नहीं हो सकती उसी प्रकार आत्म कल्याण इसी नर पर्याय में हो सकता है और साधना शरीर के द्वारा हो सकती है और शरीर को चलाने के लिए इसे भोजन भी देना पड़ेगा तो इस प्रकार जब हमारे अन्दर यह भावना आयी कि साधना के लिए शरीर को भोजन देना पड़ेगा तो मूर्च्छा समाप्त हो गयी तब इस शरीर के लिए किया गया अल्पसंग्रह परिग्रह नहीं अपरिग्रह कहलायेगा।

आगे उत्तम आकिंचन धर्म का वर्णन करते हुए कहते हैं अपने ज्ञानदर्शनमय स्वरूप के बिना अन्य किंचिन्मात्र भी मेरा नहीं है, मैं किसी अन्य द्रव्य का नहीं हूँ- ऐसे अनुभव को आकिंचन्य धर्म कहते हैं। हे आत्मन्। अपने आत्मा को देह से भिन्न, ज्ञानमय, अनुपम, स्पर्श-रस-गंध-वर्ण रहित, अपने स्वाधीन ज्ञानानंद सुख से परिपूर्ण, परम अतीन्द्रिय, भयरहित अनुभव करो।

यह देह है, वह मैं नही हूँ। देह तो रस, रक्त, हड्डी, मांस, चाममय, जड़ अचेतन है। मैं इस देह से अत्यन्त भिन्न हूँ। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र आदि जाति कुल देह के हैं ये मेरे नहीं हैं। स्त्री, पुरुष नंपुसक लिंग देह के हैं मेरे नहीं है। यह गोरापना, सांवलापना, राजापना, रंकपना,

स्वामीपना, सेवकपना पण्डितपना, मूर्खपना इत्यादि समस्त रचना कर्म के उदय जनित देह की हैं, मैं तो ज्ञायक हूँ। ये देह का संबंध मेरा स्वरूप नहीं है। मेरा स्वरूप तो अन्य द्रव्य की उपमा रहित अनुपम है।

ताता (गर्म), ठंडा, नरम, कठोर, रुखा, चिकना, हल्का, भारी- यह आठ प्रकार का स्पर्श है। वह हमारा रूप नहीं हैं पुद्‌गल का रूप है। ये खट्टा, मीठा, कडुआ कषायला, चिरपरा- पाँच प्रकार का रस, सुगन्ध-दुर्गन्ध ये दो प्रकार की गंध तथा काला, पीला, हरा, सफेद, लाल ये पाँच प्रकार का वर्ण मेरा स्वरूप नहीं हैं पुद्‌गल का स्वरूप है।

मेरा स्वभाव तो सुख से परिपूर्ण है, परन्तु यहाँ कर्म के अधीन दुःखों से व्याप्त हो रहा हूँ। मेरा स्वरूप इन्द्रिय रहित अतीन्द्रिय है। इन्द्रियाँ पुदगलमय कर्म द्वारा ही हुई हैं। मैं समस्त भार रहित, अविनाशी, अखण्ड, आदि अंत रहित शुद्ध ज्ञान स्वभाव हूँ परन्तु अनादि काल से जैसे स्वर्ण तथा पाषाण मिला हुआ है उसी तरह नीर क्षीर के समान कर्मों से अनादि काल से मिला हुआ चला आ रहा हूँ। मिथ्यात्व नाम के कर्म के उदय से अपने स्वरूप के ज्ञान से रहित होकर देहादि पर द्रव्यों को अपना स्वरूप जानकर अनन्तकाल से मैंने परिभ्रमण किया है। अब आवरणादि के किंचित दूर होने से श्री गुरुओं के द्वारा उपदेशित परमागम के प्रसाद से अपना तथा पर में स्वरूप का ज्ञान हुआ है।

जैसे रत्नों का व्यापारी जड़े हुए पाँच वर्ण के रत्नों के आभरणों में गुरु की कृपा से तथा निरन्तर अभ्यास से मिले हुए रंग को तथा मणि के रंग को तोल को तथा मूल्य को अलग-अलग जान लेता है उसी प्रकार परमागम के निरन्तर अभ्यास से मैंने ज्ञान स्वभाव में मिले हुए राग-द्वेष मोह कामादि मैल को भिन्न जाना है तथा अपने ज्ञायक स्वभाव को भिन्न जाना है। इसलिए अब जिस प्रकार से भी राग-द्वेष मोहादि भावकर्मो में तथा कर्मो के उदय से उत्पन्न हुए विनाशशील शरीर परिवार धन सम्पदा आदि परिग्रह में मुझे ममता बुद्धि फिर अन्य जन्म में भी उत्पन्न न होवे, उसी प्रकार से आकिंचन्य भावना भाता हूँ।

यह आकिंचन्य भावना मुझे अनादिकाल से नहीं उत्पन्न हुई। सभी पर्यायों को अपना रूप मानता रहा तथा राग-द्वेष-मोह, क्रोध कामादि भाव जो कर्म कृत विकार थे उनको अपने रूप अनुभव करके विपरीत भाव करते हुए उनसे घोर कर्म बंध ही किया। अब मैं आकिंचन्य भावना में विघ्नों का नाश करने वाले पाँचों परम गुरुओं की शरण से निर्विघ्न आँकिचनपना ही चाहता हूँ। परिग्रह को महादुःखरूप तथा बंध का कारण जानकर छोड़ना वह आकिंचन्य धर्म है।

जिसे आकिंचनपना होता है उसे परिग्रह में वांछा नहीं रह जाती है आत्मध्यान में लीनता होती है देहादि में तथा बाह्य वेष में अपनापन नहीं रह जाता है तथा अपना स्वरूप जो रत्नत्रय है उसी में प्रवृत्ति होती है। आकिंचन्य तो परम वीतराग पना है जिनका संसार का किनारा आ गया है उनको ही यह आकिंचन्य धर्म होता है।

समस्त धर्मो में प्रधान धर्म आकिंचन्य ही मोक्ष का निकट समागम कराने वाला है अनादिकाल से जितने सिद्ध हुये हैं वे आकिंचन्य धर्म से ही हुए हैं तथा आगे भी जो तीर्थंकरादि सिद्ध होगें वे आकिंचन्य धर्म ही से होगें। यद्यपि आकिंचन्य धर्म प्रधानरूप से साधुओं के ही होता है, तथापि एकदेश धर्म का धारक गृहस्थ भी उस आकिंचन्य धर्म को ग्रहण करने की इच्छा रखता है जो गृहाचार में मंदरागी होकर अतिविरक्त होता है प्रमाणिक परिग्रह रखता है, आगामी वांछा रहित है, अन्याय का धन परिग्रह कभी नहीं ग्रहण करता है अल्प परिग्रह में अति संतोषी होकर रहता है परिग्रह को दु:ख का देने वाला तथा अत्यन्त अस्थिर मानता है, उसके ही आकिंचन्य भावना होती है परन्तु कुछ लोग सोचते हैं कि अभी तो परिग्रह संचय कर लो बाद में दान कर देगें और पुण्य का संचय कर लेगे परन्तु आचार्य कहते हैं कि--

कीचड़ धोने की अपेक्षा दूर से ही उसका स्पर्श न करना अच्छा है। लक्ष्मी को अंगीकार कर उसका त्याग करना कहाँ की बुद्धिमानी है। कार्तिकेय स्वामी ने लिखा है कि वैसे तो सभी तीर्थंकर समान हैं परन्तु वासुपूज्य, मल्लिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ और महावीर स्वामी इन पाँच तीर्थंकरों में हमारी भक्ति विशेष है क्योंकि इन्होंने सम्पत्ति को अंगीकार ही नहीं किया जबकि अन्य तीर्थंकरों ने सामान्य मनुष्यों की तरह सम्पत्ति ग्रहण करके बाद में त्याग किया है। जिन्होंने परिग्रह का खूब संचय कर रखा है उनको न तो रात को नींद आती है और न उसका उपभोग ही करपाते हैं शरीर में तरह-तरह की बीमारियों और आ जाती हैं। जिनके पास परिग्रह का संचय नहीं है उनके पास न तो कोई बीमारी ही आती है और रात को भी भरपूर नींद में विश्राम करते हैं।

एक गरीब आदमी महादेव जी का भक्त था। एक दिन उसकी भक्ति से प्रसन्न होकर महादेव जी ने कहा- मांग क्या चाहता है? बोला महाराज! कल सवेरे मांग लूँगा। महादेव जी ने कहा अच्छा। अब वह व्यक्ति रात भर सोचता रहा कि महादेव जी मुंह मांगा देने को तैयार हैं तब घर ही क्यों मांगा जाय? उसने सोचा जमीन मांग लूँ और जमींदार बन जाऊँ फिर सोचता है जब लगान का नम्बर आता है तो वह तहसीलदार की मिन्नतें करनी पड़ती हैं। इनसे बड़ा तहसीलदार बनजाऊँ। कुछ समय बाद उसे जिलाधीश का स्मरण आया इस प्रकार उसकी इच्छायें बढ़ती गई और सारी रात विचारने में व्यतीत हो गई और निर्णय न कर पाया कि क्या मांगना चाहिए और सुबह होते ही महादेव जी आ गये और पूछा क्या मांगते हो? तब उत्तर देता है कि कुछ नहीं चाहिए। क्यों? क्यों क्या अभी सम्पत्ति आई नहीं तो आने की आशा में सारी रात नींद नहीं आई। यदि कदाचित आ गई तो नींद तो हमेशा के लिए विदा हो जायेगी इसलिए महाराज जैसा हूँ वैसा ही रहने दीजिए। इसका सार यह निकला कि परिग्रह जंजाल है अत: इससे निवृत्त होने का प्रयत्न करना चाहिए।

एक समय की बात है कि चार चोर कहीं से चार लाख का धन चुराकर ले आये। जंगल में एक जगह रात्रि में निर्णय हुआ कि दो चोर बाजार मिठाई लेने जायें और दो चोर वही रह जायें। दोनों चोरों ने सलाह बनाई कि अगर आपस में बँटवारा करेंगे तो एक-एक लाख हिस्से में आयेगें यदि मिठाई में जहर मिलाकर उन दोनों को खिला दिया जाये तो दो-दो लाख हिस्से में आ जायेंगे। इधर इन दोनों ने सलाह बना ली कि जब वे दोनों बाजार से आते दिखाई देगें तो उन्हें गोली मार देगें और हमारे हिस्से में दो-दो लाख आ जायेंगें। उधर दोनों चोर मिठाई में जहर मिला कर लाते हैं और ये दोनों उन्हें गोली मार कर समाप्त कर देते हैं और सलाह करते हैं कि पहले मिठाई खाले बाद में बटवारा करेंगे। इस तरह मिठाई खाकर ये दोनों मर जाते है। धन ज्यों का त्यों पड़ा रहता है। परिग्रह संचय के लालच में चारों का प्राणान्त हो गया।

एक बार दो भाई धन कमाने दूसरे देश में जाते हैं। संयोग की बात है थोड़े समय में ही दोनों भाईयों ने बहुत सारा धन कमा लिया। अब वापस लौटने की बात सोचकर धन साथ लाने की युक्ति लगाई। सारे धन के बदले रत्न खरीदा लिया तथा उस रत्न को लेकर समुद्र के रास्ते जहाज से वापस चल दिये। रत्न बड़े भाई के पास था सो उसके मन में विचार आया कि घर पहुँच कर रत्नका बँटवारा हो जायेगा और यह मैंने युक्ति पूर्वक कमाया है सो छोटे भाई को समुद्र में धक्का दे दे तो यह मर जायेगा और रत्न मेरा हो जायेगा परन्तु तुरन्त ही विचार आया कि एक रत्न के पीछे लक्ष्मण सरीखे भाई की हत्या? धिक्कार है और उसने वह रत्न छोटे भाई को दे दिया। अब उस रत्न के आते ही उसके मन में भी यही विचार आने लगे तब वह भी संभला और अपने की धिक्कारने लगा जैसे तैसे दोनों भाई घर पहुँचे और उस रत्न को बहन को दे दिया वह रत्न बहन के हाथ में पहुँच गया उसके मन में विचार आया कि भोजन में जहर मिला दे दोनों भाई मर जायेगे और रत्न मुझे मिल जायेगा तब वह रत्न माँ के पास रख दिया गया वहाँ भी ऐसा ही विचार आया वह भी संभली और सभी एक दूसरे सामने आये मन के भावों को बताने लगे तब माँ ने कहा कि इस रत्न को समुद्र में फेंक आओ ऐसे धन से तो गरीबी अच्छी। इसमें संतोष और प्रेम से तो रहते हैं। इस तरह वह रत्न समुद्र में फेंककर शान्ति प्राप्त हुई।

एक समय की बात है कि एक दिन किसान अपने खेत की मचान पर बैठा था उसके कान में खन-खन की आवाज आई तब वह उस आवाज की दिशा में गया तो एक साधु को सौ रुपये गिनकर अपने सिर के साफे में बाँधते देखा तो उस किसान का मन लालच से भर गया।

किसान मचान पर बैठा उसी साधु की सोच रहा था कि उसके कानों में 'जय भगवान की' आवाज आयी तो चौक पड़ा और साधु की और देखने लगा उसने देखा कि साधु तो वही है परन्तु याचना के भाव लिए सामने खड़ा है। उसने सोचा फसल तो टिड्डी चाट गयी महाराज ने

कर्ज में बैल खुलवा लिये। भरे हुए अनाज को लगान वाले ले गये फिर बहन को भात और लड़की को कुछ देना है पास में फूटी कौड़ी नहीं है फिर सन्तोष लिये बैठा हूँ और एक यह शण्ड मुसण्ड है कि किसी बातकी चिन्ता नहीं सौ रुपये गाँठ में लिए फिरता है और फिर भी मांग रहा है। इसे कुछ शिक्षा देनी चाहिए यह सोचते हुए किसान ने मचान से उतर कर पहले दीनता पूर्वक नमस्कार किया और बोला महाराज धन्य भाग्य जो आप पधारे मेरे ऐसे भाग्य कहाँ घरवाली दो दिन से भूखी बैठी है। उसका आग्रह है कि जब तक कोई साधु या महात्मा को भोजन न करा दूँगी भोजन नहीं करूँगी। गाँव के चारों तरफ दूर-दूर तक ढूंढ लिया पर कोई नहीं मिला पुण्य के प्रताप से भगवान ने आपको भेज दिया है। साधु महाराज ने अपनी अपूर्व आवभगत देखी तो फूले न समाये। कार्य सिद्ध होता देख कर किसान बोला महाराज आज का निमंत्रण स्वीकार करो। तब साधु महाराज बोले बेटा भोजन तो सप्ताह में एक या दो बार ही करते हैं अगर कुछ नगद का प्रबन्ध हो जाये तो ठीक रहेगा। किसान साधु के मनोभाव को समझ गया तब बात को बीच में काट कर बोला भोजन के साथ एक रुपया भी दक्षिणा रूप हाथ जोड़ कर दूँगा आप मुझे निराश न करें।

साधु महाराज दक्षिणा के नाम पर बहुत खुश हुआ और बोला हम स्वीकार तो नहीं करते परन्तु भगवान भक्त के वश होते हैं। साधु महाराज ने भोजन करके किसान और उसकी पत्नि को खूब आशीर्वाद दिया। किसान बोला जा रुपया नारियल लाकर साधु महाराज के चरणों में चढ़ाकर अपने जीवन को सार्थक बना ले।

किसान की पत्नि खुशी-खुशी अन्दर गई और बाहर आकर बोली अन्दर हाँडी में रुपये नहीं है। किसान आँखे तरेरकर बोला रुपये नहीं है अभी तो मैंने सौ रुपये गिन कर रखे थे। तब स्त्री बोली मुझे क्या पता कहाँ रखे जाकर देख लो मुझे तो मिले नहीं।

किसान अन्दर गया और माथा पकड़कर बाहर आया, हाय मैं लुट गया बरबाद हो गया रोने की आवाज सुनकर पड़ौसी इकट्ठे हो गये और रोने का कारण पूछने लगे बड़ी मुश्किल से किसान ने सारी बात बनाकर सुना दी अभी थोड़ी देर पहले मैंने महाजन से बैल छुड़ाने के लिए सौ रुपये गिनकर रखे थे अब महाराज को एक रुपया दक्षिणा देने के लिए देखा तो वहाँ पर रुपये गायब थे।

सभी गरीबी के कारण सहानुभूति रखते थे सभी बोले कोई बाहर का आदमी आया था तब किसान बोला बाहर का आदमी कौन आता बाबाजी मैं और मेरी पत्नि के सिवाय आज तो सुबह से चिड़िया भी नहीं फटकी। तब पड़ोसी बोले घबराओ मत तनिक इस साधु की तलाशी लो इस वेष में सैकड़ों चोर और उचक्के फिरते हैं। तब किसान बोला भइया ऐसा मत कहो पाप लगता है ये साधु तो धर्मात्मा हैं मेरे बहुत कहने पर आये हैं। तब पड़ोसी बोले रात को चोरी करते हैं

और दिन में भीख मांगते हैं। अच्छा तू तलाशी मत ले हम लिए लेते हैं। साधु की पूरी तलाशी ले ली गयी तब किसान सिर पर हाथ मारकर बोला अरे भई जो होना था हो गया अब महाराज का साफा तो मत उतारो।

किसान के पूरा कहने से पहले एक नवयुवक ने साफे को झटका दिया तो रुपये खन-खन बिखर गये। पड़ोसियों ने झटपट रूपये उठाकर हॉडी में भर दिये। साधु अपना सा मुह लेकर जाने लगा तब किसान ने चरणों की रज मस्तक पर लगाते हुए कहा अब कब आइयेगा। लालची साधु नीची नजर किये चुपचाप चला गया परावलम्बी जीवन में कुछ भी आनन्द है क्या? वास्तविक जीवन तो आकिंचन्य के सद्भाव में ही अवस्थित है।

अत: बन्धुओं उत्तम आकिंचन्य धर्म की महिमा को समझे। इसी बात को एक कवि ने कुछ इस प्रकार कहा है कि–

कंचन भंडार भरे जीवन मोतिन के पुंज परे,
घने लोग द्वार खरे मारग निहारते।
जान चढि डोलत है झीने सुर बोलत है,
काहु की हू ओर नेक नीकेना चितारते।
कौलों धन खांग कोउ कहै यौन कागै।
तेई फिरै पाय नांगे कांगे पर पग झारते।।
ऐते पै अयाने गरबाने रहै विभौ षाय।
धिक है समझ ऐसी धर्म ना सॅभारते।।

जिन के यहाॅ सोने के भंडार भरे रहते हैं मोतियो के ढेर पड़े हैं बहुत से लोग उनके आने की राह देखते हुए दरवाजे पर खड़े रहते हैं। जो वाहनों पर चढ़कर घूमते हैं झीनी आवाज में बोलते हैं किसी की भी ओर जरा ठीक से देखते भी नहीं है जिनके बारे में लोग कहते हैं कि इनके पास इतना धन है कि उसे ये न जाने कब तक खायेंगे इनका धन तो ऐसे वैसे कभी खत्म ही नहीं होने वाला है। वे ही एक दिन (पाप कर्म उदय आने पर) कंगाल होकर नंगे पैरों फिरते हैं और दूसरे के पैरों की मिट्टी झाड़ते रहते हैं– सेवा करते हैं। अहो! ऐसी स्थिति होने पर भी अभिमानी जीव वैभव पाकर अभिमान करते हैं। धिक्कार है उनकी उल्टी समझ को जो कि वे धर्म नहीं संभालते हैं।

ये तो बाह्य निमित्त की बाते रही अब थोड़ा सी चर्चा अन्तरंग परिग्रह की करते हैं। परिग्रह के दो भेद है 1 बाह्य और 2 अन्तरंग परिग्रह।

आचार्य कहते हैं कि अपना सम्पूर्ण जीवन तूने दूसरों की आँखों में झांकने में गुजार दिया दूसरे दर्पण में अपना चेहरा देखते रहे और उसका नकली चेहरा अपना असली चेहरा समझते रहे कितनी बड़ी अक्षम्य भूल की है तूने अपने जीवन में सदा ही तुम अनन्त भूल करते आये हो।

किसी ने थोड़ी निन्दा कर दी बस हम कंठ तक दुख से भर गये। किसी ने थोड़ी प्रशंसा कर दी तो फूल कर कुप्पा हो गये। किसी ने कह दिया आप अत्यन्त सुन्दर हैं बस आप सुन्दर बन गये अपने को वैसा ही समझने लगे और किसी ने असुन्दर कह दिया तो रातों की नींद हराम हो गई। जबकि तुम भली प्रकार जानते हो कि इस प्रकार देखना, सुनना समझना कि यह तुम्हारा स्वभाव नहीं है तुम्हारा स्वभाव तो सम्पूर्ण समग्र द्रष्टा का श्रेष्ठ स्वभाव है। परन्तु इन सबको भूलकर मिथ्या को ही अपना सब कुछ मान बैठा है। आकिंचन धर्म कहता है कि अपने आप को अकिंचन बना लो एकदम अकिंचन। भौतिक बोझ से हल्का होने पर ही मूर्च्छा से मुक्ति प्राप्त होती है। मेरे आत्मतत्त्व के अतिरिक्त इस जगत के मेले में अपना कुछ भी नहीं है यह भावना दृढ़ होती है।

एक पुरुष बड़ा पापी था उसकी पत्नि ने कहा कि देखो केवल एक काम करो। मैं तुम्हें कुछ नहीं कहूँगी उसने एक बट्टी दी और कहा कि ये देवता हैं इनकी रोज पूजा करना और पूजा के बाद पाप कर्म 24 घण्टे के लिए छोड़ देना। पति ने सोचा कि ये तो बहुत सरल है और वादा कर लिया लेकिन उसको यह बुद्धि नहीं आई कि इस प्रकार तो यह पाप जिन्दगी भर के लिए छूट गया। वे रोजाना पूजा करने लगे और 24 घण्टे के लिए पाप छोड़ देते। एक दिन पूजा कर रहे थे कि चूहा आया और चावल खा गया तब वह विचारने लगा कि यह देवता बड़े नहीं चूहे ने चावल खा लिये। अतः नित्य प्रति वह चूहे की पूजा करने लगा। एक दिन बिल्ली चूहे पर झपटी तब उसने सोचा कि पूजा के योग्य बिल्ली है और नित्य प्रति बिल्ली की पूजा करने लगा। एक दिन कुत्ता आया और बिल्ली पर झपटा तब उसने समझा कि अब तो कुत्ता बड़ा है और कोई बड़ा नहीं यह सोच कर कुत्ते की पूजा होने लगी। कुत्ते की पूजा करते और 24 घन्टे के लिए पाप छोड़ देते। एक दिन वह खाना खा रहा था तो वह कुत्ता रसोई घर में घुस गया उसकी स्त्री ने बेलन मार दिया कुत्ता भाग गया अब उसके मन में विचार आया कि अब तो स्त्री ही कुत्ते से बड़ी है। वह स्त्री की पूजा चावल आदि उपकरणों से करने लगा और 24 घन्टे का पाप कर्म छोड़ दिया करता। कुछ दिनों के बाद स्त्री को घमण्ड आ गया कि हमारी तो देवता की तरह पूजा होती है। एक दिन जब पति खाना खा रहा था तो साग में नमक तेज हो गया उसने पत्नि से कहा कि आज साग में नमक कैसे तेज हो गया। पत्नि ने कहा कि हो गया होगा

हाथ ही तो है। पति को गुस्सा आया और उसने तीन चार तमाचे स्त्री को मार दिये। स्त्री रोने लगी तब वह सोचने लगा कि अरे मैं ही तो संसार में बड़ा हूँ।

इस प्रकार उसे स्वयं का मान हो गया अर्थात् वह अपने स्वरूप को पहचान गया अभी तक जो वह अज्ञानता की नीद में सोया था वह जाग गया। इसी प्रकार जब तक इंसान को पता नहीं होता कि आकिंचन्य धर्म क्या है इसकी महिमा क्या है तभी तक वह गलती करके अपना अहित करता रहता है। जब उसको समझ में आ जाता है तभी यह जीवन सफल हो सकता है।

आकिंचन्य धर्म का सरल अर्थ है आत्मा का स्मरण करना, संसार के समस्त भोगों को विस्मृत करना, स्वयं की आत्मा में अनन्त गहराई तक डूब जाना, पूर्ण रूप से खो जाना। पूर्ण रूपेण अपरिग्रही बनना, वीतरागी बनना, आकिंचन्य धर्म का प्रत्यक्ष करना अर्थात् अनुभव करना, साक्षात्कार करना। आत्म साधना का सरल भाव यही है कि चिन्तन करना और इष्ट अनिष्ट पदार्थों का त्याग कर देना तथा चैतन्य स्वरूप आत्मा के प्रति सदा संयम भाव रखना यही सत्यमेव आकिंचन्य धर्म है। यही कल्याण कारी है इससे ही अपना कल्याण हो सकता है।

खाली आया था खाली ही अब जायेगा।
क्या साथ लाया था जो अब लेकर जायेगा।।
सिकन्दर शहनशाह जाता, सभी हाली बहाली थे।
सभी थी संग दौलत, मगर दोनों हाथ खाली थे।।
सर्व पापों का मूल यह, ग्रहण परिग्रह जान।
त्यागों को मुनि ध्यान में, थिरता पावै भान।।
परिग्रह चौबीस भेद, त्याग करे मुनिराज।
तिसना भाव उच्छेद, घटती जान घटाइये।।
उत्तम आकिंचन गुण जानो, परिग्रह चिन्ता दुःख ही मानौ।
फॉस तनक सी तन में साले, चाह लंगोटी की दुख भालै।।
भालै न समता सुख कभी नर, बिना मुनि-मुद्रा धरै।
धनि नगन पर तन-नमगन ठाढे, सुर-असुर पायनि परै।
घरमाहिं तिसना जो घटावै रुचि नहीं संसार सौं।
बहु धन बुरा हू भला कहिये, लीन पर उपगार सौं।।

उत्तमब्रह्मचर्य धर्म

ब्रह्मचर्य की व्युत्पति करते हुए बताया गया है कि 'ब्रह्मणि आत्मनि चरितीति ब्रह्मचर्य:' ब्रह्म का आचरण करना–आत्मा में तल्लीन होना ब्रह्मचर्य है। वस्तुत: चेतन आत्मा में विहार करना भव के समस्त रोगों से निवृत होना उपयोग की धारा को सीमित कर अनन्त से हटाकर एक में केन्द्रित कर देना ब्रह्मचर्य है।

आज तक इस भव सागर में जितनी आत्माएं पतित से परम पावन अवस्था को प्राप्त हुई हैं उन सबने इसी धर्म की उपासना की है इसे अपनी अन्तरात्मा में सर्वदा के लिए स्थान दिया है। साधना का प्रथम चरण, प्रारम्भ इसी धर्म से होता है।

काम वासना ही केवल काम नहीं है, समस्त इन्द्रियों कामेन्द्रियाँ हैं। मात्र किसी शरीर को हाथ से छूना ही छू लेना नहीं होता। शरीर को आँखों से भी छुआ जा सकता है। आँखें भी नित नये सुन्दर शरीर छूती रहती हैं। किसी की मधुर आवाज पर उसे छू लेते हैं। उस दिशा से खिचे चले जाते हैं। जब समीप से कोई मधुर भीनी-भीनी सुवास गंध लगा कर गुजरती है तब हमारी घ्राणेन्द्रियों उस ओर आकर्षित हो जाती हैं। कहने का तात्पर्य इतना ही है कि हाथों का स्पर्श अत्यन्त स्थूल स्वरूप का स्पर्श है। अन्य इन्द्रियों सूक्ष्म रूप से स्पर्श करती हैं।

अब इस परिस्थिति में स्वाभाविक ही एक प्रश्न हो सकता है कि महाराज आप भी तो नित्य देखते हैं, सुनते हैं। आपको नित्य ही ये दोष लगते होंगे इस प्रकार हमें तो अपनी आँखे फोड़ लेना चाहिए, कान काट लेना चाहिए तभी ब्रह्मचर्य का हमसे वास्तव में पालन हो सकेगा।

बन्धुओं, आँख फोड लेना, कान काट लेना, सहज काम है परन्तु इसके बावजूद भी यह चंचल मन काम की दिशा से नहीं भागेगा। आँख कान सलामत रखिये परन्तु प्रयास ऐसा कीजिये कि इन इन्द्रियों की स्वाभाविक क्रियाओं के पीछे आपका चंचल मन न भागे आपका उस तरफ ध्यान न जावे तो आपके ब्रह्मचर्य व्रत का वास्तविक स्वरूप है अन्यथा वह दोषपूर्ण है।

जिसमें आतम शक्ति है क्या करे निमित्त।
रानी नहीं डिगा सकी, सेठ सुदर्शन चारित्र॥
सव्वंगं पेच्छं तो इत्थी णं तासु मुयदि दुब्भावम्।
सो बम्ह चेर भावं सुक्कदि खलु दुद्धरं धरदि॥

जो पवित्रात्मा स्त्रियों के सर्वागों को देखकर अपने परिणामों को विकृत नहीं होने देता निश्चय से उसके दुद्धर ब्रह्मचर्य धर्म है।

यह ब्रह्मचर्य नाम का व्रत बड़ा दुर्द्धर है। जो विषयों के वश होने से आत्म ज्ञान से रहित हैं वे इसे धारण करने में समर्थ नही हैं। जो मनुष्यों में देव के समान हैं वे इसे धारण करन में समर्थ नही हैं। यह ब्रह्मचर्य व्रत महादुर्द्धर है। जिसके ब्रह्मचर्य होता है उसे समस्त इन्द्रियों तथा कषायों को जीतना सुलभ है।

स्त्रियों के सुख में रागी जो मनरूप मदोन्मत्त हाथी है उसको वैराग्य भावना से रोक करके तथा विषयों की इच्छा की इच्छा का अभाव करके दुर्द्धर ब्रह्मचर्य धारण करो। यह काम भाव चित्तरूप भूमि में उत्पन्न होता है। काम से सताये जाने पर यह जीव नहीं करने योग्य पाप भी कर डालता है। यह काम मन को मथन करतां है मन के ज्ञान को नष्ट कर देता है इसी कारण इसे मन्मथ कहते हैं ज्ञान के नष्ट हो जाने पर ही स्त्रियों के महादुर्गन्धयुक्त निंद्य शरीर को रागी होकर सेवन करता है। काम भाव से अंधा हो जाने पर महा अनीति को प्राप्त होकर अपनी तथा पर की नारी का विचार ही नहीं करता है। इस अन्याय से मैं यहाँ पर ही मारा जाऊँगा, राजा का तीव्र दण्ड भोगना पड़ेगा, यश मलिन हो जायेगा, धर्म से भ्रष्ट हो जाऊँगा, सत्यार्थ बुद्धि नष्ट हो जायेगी मरण करके नरकों में घोर दुख असंख्यातकाल पर्यन्त भोगना होगें, फिर असंख्यातकाल तक तिर्यंचों के दुख रूप अनेक भव धारण करना होगें; फिर कुमनुष्यों में अंधा, लूला, कुबड़ा, दरिद्री, इन्द्रिय विकल बहरा, गूंगा बनूंगा ऐसे सत्य विचार कामी के उत्पन्न नहीं होते हैं।

खोटा दर्प अर्थात् गर्व उत्पन्न करता है अत: इसे कन्दर्प कहते हैं, अति कामना अर्थात् इच्छा को उत्पन्न करके दु:खी करता है अत: इसे काम कहते हैं। इसके कारण अनेक जीव तिर्यंच तथा मनुष्यों के भवों में लड़ लड़कर मर जाते हैं अत: इसे मार कहते हैं। यह संवर का बैरी है अत: इसे संवरारिं कहते हैं। ऐसा जानकर मन-वचन-काय से अनुराग पूर्वक ब्रह्मचर्य व्रत पालो। ब्रह्मचर्य सहित होने पर ही संसार के पार जाओगे।

यदि शील की रक्षा चाहते हो, उज्ज्वल यश चाहते हो, धर्म चाहते हो, अपनी प्रतिष्ठा चाहते हो तो चित्त में परमागम की शिक्षा इस प्रकार धारण करो - स्त्रियों की कथा नहीं सुनो, नहीं कहो, स्त्रियों के रागरंग-कौतूहल नाटक-दृश्य नहीं देखो। ये मेला, सिनेमा देखना परिणाम बिगाड़ते हैं।

व्याभिचारी पुरुषों की संगति का त्याग करना, भांग, तम्बाखू, जरदा, मादक वस्तु भक्षण नहीं करना; ताम्बूल, पुष्पमाला, इत्र फुलेलादि शीलभंग-व्रतभंग के कारणों को दूर से ही टालो।

गीत-नृत्यादि कामोद्दीपन के कारणों का परिहार करो, रात्रि भोजन छोड़ो, विकार वर्द्धक लोक विरुद्ध वस्त्र आभरण नही पहनो, एकान्त में किसी स्त्री का साथ नहीं करो। रसना इंद्रिय की लम्पटता छोड़ो, जिह्वा इंद्रिय की लम्पटता के साथ हजारों दोष आ जाते हैं इसी से समस्त

उच्चता, यश धर्म नष्ट हो जाता है समता भाव को तो वह स्वप्न में भी नहीं याद करता है। लोक व्यवहार नष्ट हो जाता है। ब्रह्मचर्य भंग हो जाता है। अतः जो आत्मा के हित का इच्छुक हो उसे एक ब्रह्मचर्य की ही रक्षा करना चाहिए।

आत्मा का उपयोग आत्मा में स्थिर नहीं रहता इसका कारण है परिग्रह। परिग्रह के कारण ही उपयोग में चंचलता आती है। आकिंचन्य धर्म में परिग्रह का त्याग होने से आत्मा का उपयोग अन्यत्र न जाकर ब्रह्म अर्थात् आत्मा में ही लीन होने लगता है। यथार्थ में यही ब्रह्मचर्य है। बाह्य ज्ञेय से उपयोग हटाकर आत्म स्वरूप में ही लीन हो जाये तो इससे बढ़कर धर्म क्या होगा इसी ब्रह्मचर्य को सब से बड़ा धर्म माना है। ब्रह्मचर्य की पूर्णता चौदहवे गुणस्थान में होती है। आगम में कहा है कि शील के अठारह हजार भेदों से पूर्णता होती है। यद्यपि निश्चय नय से ब्रह्मचर्य का स्वरूप है तथापि व्यवहार से स्त्री त्याग को ब्रह्मचर्य कहते हैं। स्वकीय और परकीय स्त्री का त्याग हो जाना पूर्ण ब्रह्मचर्य है। परकीय स्त्री का त्याग कर स्वकीय स्त्री में सन्तोष रखना अथवा स्त्री की अपेक्षा स्व पुरुष में संतोष रखना एक देश ब्रह्मचर्य है। ब्रह्मचर्य से ही मनुष्य की शोभा तथा प्रतिष्ठा है। चिरकाल से मनुष्यों में जो कौटुम्बिक व्यवस्था चली आ रही है उसका कारण मनुष्य का ब्रह्मचर्य ही है। ब्रह्मचर्य का सबसे बड़ा बाधक कुसंगति है। कुसंगति के चक्र में पड़कर ही मनुष्य बुरी आदतों में पड़ता है इसलिए ब्रह्मचर्य की रक्षा चाहने वाले मनुष्य को सर्व प्रथम कुसंगति से बचना चाहिए। शुभचन्द्र आचार्य ने बृद्ध सेवा को ब्रह्मचर्य का साधन मान कर ज्ञानार्णव में इसका विशेष वर्णन किया है। शुभचन्द्राचार्य ने अवस्था से विवेचन न करके गुणों से विवेचन करते हुए कहा है कि जो उत्तम गुणों सहित है वे बृद्ध हैं। मनुष्य के हृदय में जब दुर्विचार उत्पन्न होते हैं तब उन्हें रोकने के लिए लज्जा गुण असहाय रहता है और उत्तम मनुष्यों की संगति से लज्जा गुण को बल मिलता है और वह मनुष्यों के दुर्विचारों को परास्त कर देता है परन्तु जब नीच मनुष्यों की संगति रहती है तब लज्जा गुण असहाय होकर स्वयं परास्त हो जाता है हृदय में लज्जा गई तो फिर दुर्विचारों को रोकने वाला कौन है?

एक सिपाही एक वेश्या से प्रेम करने लगा उसके चक्कर में उसने अपना सारा धन लुटा दिया। बहुत दिनों के बाद जब सिपाही बूढ़ा हो गया तो वेश्या ने उसे अपने घर में आने से मनाकर दिया। तब वह सिपाही वेश्या के घर के सामने वृक्ष के नीचे बैठा रहने लगा। एक दिन एक व्यक्ति ने पूछा कि तुम यहाँ क्यों बैठे रहते हो तब वह उत्तर देता है कि मेरा इस वेश्या से प्रेम है। यह मुझे अपने यहाँ तो आने नहीं देती कदाचित वह किसी कार्यवश छत पर चढ़ती है तो उसके दर्शन हो जाते हैं। यह इस तरह वहाँ बैठा हुआ तपस्या करता है। ऐसे कुकर्मी इसी तरह की पीड़ा सहते हुए बुरी मौत मरते हैं।

आदर्श गृहस्थ वही हो सकता है जो अपनी स्त्री में संतोष रखता है। इस एकदेश ब्रह्मचर्य का माहात्म्य कम नहीं है सेठ सुदर्शन की रक्षा के लिए देव दौड़े आये। सीता के अग्नि कुण्ड

को जल कुण्ड बनाने के लिए देवों का ध्यान आकर्षित होता है यह क्या है? एक शील व्रत का ही अद्‌भुत माहात्म्य है। इसके दूसरे तरफ जो कुशील पाप में प्रवृत्ति करते हैं वे देर-सवेर नष्ट हो जाते हैं इसमें संदेह नहीं। जिन घरों में यह पाप आया वे घर बरबाद हो गये और पाप करने वालों को अपने ही जीवन में ऐसी दशा देखनी पड़ी कि जिसकी उन्हें स्वप्न में भी संभावना नहीं थी। जिस पाप के कारण रावण के भवन में एक बच्चा भी नहीं बचा उसी पाप को लोगों ने खिलौना बना लिया है।

गुजरात देश के एक राजा पर मुगलों ने चढ़ाई कर दी। मुगलों की सेना से लड़ने राज कुमार अपनी फौज लेकर गया संयोग की बात है कि युद्ध में राजकुमार का सिर कट गया और फिर भी उसने 20-22 मुगलों को मार गिराया तब मुगलों के मंत्री ने सोचा कि यह कितना बहादुर है और वह कितना बहादुर होगा जिसकी यह सन्तान है। यह बात मंत्री ने बादशाह से कही तब बादशाह ने कहा कि उस राजा को हमारे सामने प्रस्तुत किया जाय ताकि हम उसका विवाह अच्छी लड़की से कर देगें ताकि ऐसी बहादुर सन्तान हमारे राज्य में हो उस मंत्री ने उस राजा से कहा कि आपको हमारे बादशाह ने बुलाया है राजा ने पूछा क्यों बुलाया है? तो उसने कारण नहीं बताया राजा उसके साथ चल दिया। रास्ते में राजा के बहुत पूछने पर मंत्री ने कहा कि आप के पुत्र की बहादुरी देखकर हमारे राजा ने आपको इसलिए बुलवाया है कि आपकी किसी अच्छी लड़की से शादी कर देगें तो वैसी ही बहादुर सन्तान पैदा करो तब राजा बोला हमारे लायक कोई लड़की मिल भी जायेगी तब मंत्री बोला एक से एक सुन्दर लड़कियाँ मिलेगी राजा ने कहा कि सुन्दर नहीं बल्कि मुझे ऐसी लड़की चाहिए जैसी मेरी रानी थी। आपकी रानी कैसी थी? मंत्री ने पूछा। राजा ने बताया कि जो बालक लड़ाई में मारा गया है वह जब केवल छह माह का था और पालने में सो रहा था तो मैं रानी के कमरे में गया और कुछ राग भरी बातें करने लगा तब रानी ने रोका। इस बच्चे के सामने राग वाली बातें मत कीजिये मैंने कहा कि इतने छोटे बच्चे के रहने से क्या होता है हम ऐसी बातें कर ही रहे थे कि बच्चे ने शर्म से अपना मुंह ढक लिया। यह बात रानीने देख ली और बोली देखो आप नहीं माने तो इसने शर्म से अपना मुंह ढक लिया। यह बात कहकर रानी दाँतों के बीच जीभ दबाकर मर गई। यह उसके शील की छोटी सी कहानी है। अगर तुम्हारे राज्य में ऐसी शीलवन्ती लड़की हो तो मैं शादी कर सकता हूँ तब ऐसी ही बलवान सन्तान पैदा हो सकती है।

पाप पाप ही है। इसे जो भी करेगा वह दु:ख उठायेगा ब्रह्मचारी मनुष्य को अपने रहन-सहन, वेशभूषा आदि सब पर ही दृष्टि रखना चाहिए। बाह्य परिकर भी उज्ज्वल बनाना पड़ता है क्योंकि इन सब का असर उसके ब्रह्मचर्य पर अच्छा नहीं पड़ता आप भगवान महावीर स्वामी के संबोधे हुए शिष्य हैं भगवान महावीर कौन थे? बाल ब्रह्मचारी थे। उनके पहले भगवान

पार्श्वनाथ कैसे थे? वे भी बाल ब्रह्मचारी थे और उनसे पहले कौन थे? नेमिनाथ वे भी बाल ब्रह्मचारी थे। उनका ब्रह्मचर्य और भी आश्चर्यकारी था बीच विवाह के विरक्त हो दीक्षा उन्होंने धारण की थी इस तरह एक नहीं दो नहीं तीन तीर्थंकरों ने अपने ब्रह्मचर्य का महत्व प्रकट किया। हम अपने आपको उनका शिष्य बतलाते हैं। पर ब्रह्मचर्य की ओर दृष्टि नहीं देते। जीवन विलासमय रहा है उसके कारण सूरत पर बारह बज रहे हैं। फिर भी इस कमी को दूर करने की ओर लक्ष्य नहीं जाता। कीड़ों-मकोड़ों की तरह मनुष्य संख्या में वृद्धि होती जा रही है। बलवीर्य का अभाव शरीर में होता जा रहा है। फिर भी ध्यान इस ओर नहीं आता, एक बच्चा माँ के पेट में और एक आँचल की नीचे है फिर भी मनुष्य विषय से तृप्त नहीं होता, पशु में तो कम से कम इतना विवेक होता है कि वह गर्भवती स्त्री से दूर रहते हैं। पर हाय रे मनुष्य तू तो पशु से भी अध म दशा को भोग रहा है तूने गर्भवती स्त्री से भी समागम करने में भी संकोच नहीं रहा, इस स्थिति में तेरे जो संतान उत्पन्न होगी उसकी अवस्था पर विचार कर, किसी के लीवर बढ़ रहा है तो किसी के पक्षाघात हो रहा है। किसी की आँख कमजोर है तो किसी के दाँत दुर्लभ हैं यह सब क्यों? एक ब्रह्मचर्य के महत्व को नहीं समझने से है। जब तक एक बच्चा माँ का दुग्ध पान करता है तब तक दूसरा बच्चा उत्पन्न न किया जाय तो बच्चे भी हृष्ट-पुष्ट हो तथा माता पिता भी स्वस्थ रहें। आज तो स्त्री के दो तीन बच्चे हुए नहीं कि उसके शरीर में बुढ़ापे के चिह्न उत्पन्न हो गये, पुरुष के नेत्रों पर चश्मा आ जाता है और मुंह में पत्थर के दाँत लगवाने पड़ते हैं। जिस भारतवर्ष मे पहले टी.वी. का नाम नहीं था वहां आज लाखों की संख्या में लोग इस रोग से ग्रसित है। विवाहित स्त्री-पुरुषों की तो बात छोड़िये अब तो अविवाहित बलाक-बालिकायें भी इस रोग की शिकार हो रही हैं। इस स्थिति में भगवान ही इस देश की रक्षा करें।

एक राजा ज्योतिष विद्या का बड़ा प्रेमी था वह मुहूर्त दिखाकर ही स्त्री समागम करता था। राजा का ज्योतिषि तीन साल में एक बार मुहूर्त निकाल कर देता था। इससे राजा की स्त्री बहुत कुढ़ती थी। एक दिन उसने राजा से कहा कि ज्योतिषि जी आपको तो तीन साल से मुहूर्त निकाल कर देते हैं और स्वयं जब चाहे मुहूर्त निकाल लेते हैं उनकी पौथी पत्रा क्या अलग है? उनके प्रतिवर्ष बच्चे उत्पन्न हो जाते हैं। तब राजा ने ज्योतिषि को बुलाकर पूछा कि महाराज क्या आपका पौथी पत्रा अलग है। ज्योतिषि महाराज ने कहा कि कल राज्य सभा में इसका उत्तर दूँगा। दूसरे राज सभा में सिंहासन पर राजा आसीन थे। उनके दोनों तरफ 2-3 वर्ष के अन्तर से पैदा हुए दोनों बच्चे सुन्दर वेशभूषा में बैठे थे। राज सभा में ज्योतिषि जी पहुँचे प्रतिवर्ष होने वाले बच्चों में से एक को कंधे पर, एक को बगल में दबाये हुए एक को हाथ से पकड़े हुए थे। पहुँचने पर राजाने उत्तर पूछा ज्योतिषि ने कहा महाराज! मुहूर्त का बहाना तो मेरा छल था यथार्थ बात यह है कि आप राजा हैं आपकी सन्तान राज्य की उत्तराधिकारी है यदि आपके प्रतिवर्ष

सन्तान पैदा होती है तो वह हमारे इन बच्चों के समान पैदा होगी। एक की नाक बह रही है तो एक आँख में कीचड़ लग रही है कोई चीख रहा है तो कोई पी कर रहा है ऐसी सन्तान से क्या राज्य की रक्षा हो सकती है? हम तो ब्राह्मण ठहरे हमारे इन बच्चों को राज्य तो करना नहीं। सिर्फ अपना पेट भरना है सो येन-केन प्रकारेण भर ही लेगें आपके ये दोनों बच्चे दो साल के अन्दर से हुए तो दोनों की सूरत का मिलान कर लीजिये। राजा ज्योतिषि के उत्तर से निरुत्तर हो गया तथा उसकी दूरदर्शिता पर बहुत प्रसन्न हुआ। अब मैं आपको प्रत्यक्ष घटना सुनाता हूँ।

एक पण्डित ठाकुर जी के पास पढ़ता था। वे बहुत बड़े विद्वान थे उसकी स्त्री दूसरे विवाह की थी परन्तु उनकी परिणति की बात सुनिये। पण्डित जी उसके लिए सौ रूपये की साड़ी लाये, साड़ी हाथ में लेकर वह पंडित जी से कहती है पंडित जी यह साड़ी किसके लिए लाये हैं तुम्हारे लिए लाया हूँ पंडित जी ने जवाब दिया। अभी जो साड़ी में रोज पहनती हूँ वह बुरी है क्या? बुरी तो नही हैं परन्तु वह अच्छी नहीं लगती। पंडित जी की बात सुनकर उसने उत्तर दिया कि मैं अच्छी लगने के लिए वस्त्र नहीं पहनना चाहती वस्त्र का उद्देश्य तो शरीर की रक्षा करना है सौन्दर्य वृद्धि नहीं। सौन्दर्य वृद्धि करके मैं किसे आकर्षित करूँ आपका प्रेम मुझ पर है यही मेरे लिए बहुत है। उसने वह साड़ी अपनी नौकरानी को दे दी और कहा कि इसे पहनकर खराब नहीं करना कुछ बट्‌टे से वापस हो जायेगी इसे वापस कर आ। रुपये अपने पास रख लेना समय पर काम आयेंगे। एक दिन उस स्त्री ने पंडित जी से कहा कि देखो आपके दो सन्तान एक पुत्र और एक पुत्री हो चुकी है अब पाप कार्य बन्द कर देना चाहिए। पंडित जी उसकी बात सुनकर कुछ हीला हवाला करने लगे तो वह स्वयं उनकी गोद में बैठ गयी और बोली कि अब तो आप मेरे पिता तुल्य हैं और मैं आपकी बेटी हूँ पंडित जी गद्‌गद्‌ स्वर में बोले बेटी तूने तो वह कार्य कर दिया जिसे मैं अपने शास्त्र पढ़कर भी नहीं कर पाया। उस समय से दोनों ब्रह्मचर्य से रहने लगे। यदि किसी की लड़की या बहु विधवा हो जाती है तो लोग उसे यह कह कर रुलाते हैं कि हाय तेरी जिन्दगी कैसे कटेगी परन्तु यह नहीं कहते कि बेटी तू अनन्त पाप से बच गई तेरा जीवन बन्धन मुक्त हो गया। अब तू आत्महित स्वतंत्रता से कर सकती है।

एक समय की बात है। एक व्यक्ति से जीवाणी के लिए रखा जल जमीन पर लुढ़क गया तो उसने मुनिराज से उसका प्रायश्चित मांगा तो उन्होंने कहा कि असिधारा व्रत धारण करने वाले स्त्री-पुरुष को भोजन कराओ। उसने पूछा- मुनि महराज जी इसकी पहचान कैसे होगी? तब मुनिराज ने बताया कि जब तेरे घर ऐसे स्त्री पुरुष भोजनको आवे तो उन्हें मलिन चन्दोवे के नीचे बैठा कर भोजन कराना वह चन्दोवा सफेद हो जायेगा। तब उसने मुनिराज के कहे अनुसार स्त्री पुरुषों को भोजन कराने लगा एक दिन उसने एक स्त्री व पुरुष को भोजन कराया उनके भोजन करते ही चन्दोवा मलिन से सफेद हो गया, वह समझ गया कि इनको असिधारा व्रत है। भोजन

के बाद उनसे पूछा तो उन्होंने परिचय दिया कि जब हम दोनों का विवाह नहीं हुआ था उसके पहले हमने शुक्ल पक्ष तथा इसने कृष्ण पक्ष का ब्रह्मचर्य नियम ले लिया था हम दोनों का विवाह हो गया शुक्ल पक्ष के बाद कृष्ण पक्ष में हमने इसके प्रति कामेच्छा प्रकट की तो उसने कहा कि मैंने तो कृष्ण पक्ष में ब्रह्मचर्य का व्रत ले रखा है।

काम वासना हमे अपने से दूर ले जाती है, ब्रह्म से दूर ले जाती है अत: इसे अधम माना है ब्रह्मचर्य को श्रेष्ठ माना है। ब्रह्मचर्य का अर्थ है अपनी परोन्मुखी उपयोग की धारा स्व की ओर मोड़ना। बाह्म पथ को अन्तर पथ बनाना। बस यही उद्देश्य है ब्रह्मचर्य पालन का।

अन्त में इतना ही कहूँगा कि क्षुद्र वासनाओं की परिपूर्ति के लिए अपने अमूल्य, बहु-मूल्य जीवन को खो मत देना। वासनायें क्षणिक प्रभावी होती हैं वे अग्नि के समान हैं जो जलाकर भस्म कर देती हैं। इन वासनाओं के वशीभूत आत्मा मलिन होकर संसार में भटकती रहती है क्योंकि आत्मा के ऊपर कर्मों का लेप हो जाता है और वह उसके ऊर्ध्व गमन के स्वभाव में बाधक है इसलिए यह जीव लोक के अग्र भाग में जाकर स्थिति नहीं हो पाता और अनन्त शाश्वत सुख से वंचित रहता है। इसलिए बन्धुओ! अपनी आत्मा को मलिन होने से बचाओ और एक दिन अनन्त शाश्वत सुख को प्राप्त करो।

शील बाढ़ नौ राख, ब्रह्म-भाव अन्तर लखो।
करि दोनों अभिलाख, करहु सफल नर-भवसदा।।
उत्तम ब्रह्मचर्य मन आनौ, माता बहिन सुता पहिचानौ।
सहै वान-वरषा बहु सूरे, टिकै न नैन-बान लखि कूरे।।
कूरे तिया के अशुचि तन में, काम-रोगी रति करैं।
बहु मृतक सड़हिं मसान माहीं, काग ज्यों चोचें भरै।।
संसार में विष-बेल नारी, तजि गये जोगीश्वरा।
'द्यानत' धरम दस पैड़ि चढ़ि कै, शिव महल में पग धरा।।

क्षमावाणी पर्व का स्वरूप

उत्तम क्षमा आदि दस धर्म अनादि कालीन हैं। कल तक उनकी चर्चा व विवेचन किया गया आज अश्विनी प्रतिपदा का दिन है। आज का दिन जैन पर्वों में क्षमावणी पर्व के नाम से प्रसिद्ध है। इस दिन के उपलक्ष्य में प्रत्येक जैन धर्मावलम्बी जीव मात्र के प्रति मैत्री भाव धारण करता है। वह सब जीवों से क्षमा याचना करता है और स्वयं सबके प्रति क्षमा भाव रखता है। वह समझता है कि क्षमा ही हमारा जीवन है। अत: उसकी भावना होती है–

खम्मामि सव्व जीवाणं, सव्वे जीवा खमंतु मे।
मेत्ती मे सव्व भूदेसु, वेरं मज्झं ण केण वि॥

मैं सभी जीवों को क्षमा करता हूँ, सभी जीव मुझे क्षमा करें। सभी जीवों के प्रति मेरा मैत्री भाव है, किसी के भी प्रति मेरा वैर-भाव नहीं है। जीव को यह समझना कि मैं त्रिकाल अशरीर निर्विकार तत्त्व हूँ। ऐसी प्रतीति महान क्षमा है। अगर कोई आकर गालियाँ देने लगे अथवा मारपीट करे उस समय क्रोध न करना शुभ राग है। आत्मा को विकार रहित एवं ज्ञान स्वभाव से परिपूर्ण मानना उत्तम क्षमा है।

धर्म स्वयं मंगल है। धर्म आत्मा में निर्दोष पर्याय है उसका संबंध आत्मा के स्वभाव के साथ है आत्मा का सच्चा स्वरूप जाने बिना धर्म हो नहीं सकता।

क्षमा भाव मन में सदा, करत रहे किल्लोल।
ज्ञानी की ऐसी दशा, मीठे बोले बोल॥
त्रुटि अन्य की शुद्धकर, मन में करे विचार।
भूल सभी के साथ है करता स्वयं सुधार॥

धार्मिक स्त्री पुरुषों ने इस दस लक्षण पर्व के दिनों में अन्य वर्षों की भाँति जितना उत्तम क्षमा, मार्दव, आर्जव आदि धर्मों का यथाशक्ति आचरण पूजन, पाठ, स्वाध्याय, तप, दान संयम आदि किया है। उतना धर्म आचरण वर्ष के अन्य महिनों में नहीं किया। यदि ऐसे ही धर्माचरण बारह महिनें होता रहे तो आत्मा शुद्ध हो जावे किन्तु ऐसा सौभाग्य गृहस्थाश्रम रूपी कीचड़ में फंसे गृहस्थों को प्राप्त नहीं होता है।

मुनिजन प्रतिदिन सुबह शाम प्रतिक्रमण किया करते हैं। 'मिच्छामि दुक्कडं' अर्थात् मेरे पाप मिथ्या होवें ऐसा प्रतिक्रमण करते हुए वे षट्कायिक जीवों को क्षमा करते हैं। तथा उनसे क्षमा याचना करते हैं। मुनिगण दैवसिक, रात्रिक, पाक्षिक आदि प्रतिक्रमण भी करते हैं किन्तु श्रावकों के लिए सामायिक के साथ-साथ प्रतिदिन स्वदोष आलोचना पूर्वक प्रतिक्रमण करने की प्रक्रिया बतलाई गयी है। अत: गृहस्थों को भी नित्यप्रति स्वयं अन्य जीवों को क्षमा करना तथा अन्य अन्य जीवों से क्षमा याचना करना चाहिए।

अपने अपराध अथवा त्रुटियों को स्वीकार करना मनुष्य के उच्च आचार-विचार का सूचक है और अपनी गलती न मानना पतन का कारण है। दृष्टान्त- एक दिन राजा ने अपने राज्य की जेल का निरीक्षण किया उसे वहाँ कठोर परिश्रम के लिए ले जाते तीन कैदी मिले। राजाने उनसे पूछा कि तुम लोग किस अपराध की सजा भुगत रहे हो? एक अपराधी बोला- मैं पुलिस द्वारा दूसरे अपराधी के बदले पकड़ा गया था और मजिस्ट्रेट ने मुझे असली अपराधी के बदले जेल

भेज दिया। दूसरा अपराधी बोला कि सरकार पुलिस और जज के साथ मेरी शत्रुता थी अतः मुझे दोष लगाकर फंसा दिया और जेल भेज दिया। तीसरे अपराधी ने कहा– महाराज मैंने सचमुच में पाप किया था अतः जज ने मुझे दण्ड दिया है, वह ठीक ही है। मुझे उनके विरुद्ध कोई शिकायत नहीं है। राजा ने फिर तीनों से पूछा- अब तुम क्या चाहते हो?

पहला व दूसरा अपराधी बोला- हे राजन्! हम निरपराध हैं। हमें छोड़ दिया जाय। तीसरे ने कहा- हे राजन्! मैं अपराधी हूँ मैं किस मुख से कहूँ। राजा तीसरे व्यक्ति की सत्य बात सुनकर बड़ा प्रसन्न हुआ और उसे कैद से मुक्त कर दिया और पहले व दूसरे को जेल में ही रहने दिया।

हे भव्य जीवो! अज्ञान तथा कषाय वश कोई गलती या अपराध हो जाये तो उसका पश्चाताप करना चाहिए और अपना दोष स्वीकार करके क्षमा मांग लेनी चाहिए। जिससे अपना मन शुद्ध हो जावे। कषाय वश गलती करना तो अल्पज्ञ मनुष्य का स्वभाव है और ऐसा सोचकर अन्य जीवों के अपराध क्षमा करते रहना चाहिए। कहा भी है जो वैर की परम्परा को लम्बा करते हैं वे नरक को प्राप्त करते हैं। इसलिए किसी के साथ भी बैर विरोध न करें।

आज क्षमावणी का दिन है जिस तरीके से व्यापारी अपना हिसाब एक साल में मिलान करता है उसी प्रकार आज उस तीन लोक की धनी आत्मा का मिलान करना है उसमें कितना बंध हुआ अथवा कितनी संवर-निर्जरा हुई। व्यापारी अगर किसी पार्टी पर रुपया डूबता देखता है तो उसे बट्टे खाते में डाल देता है। उस पैसे का ध्यान भी नहीं रखता और नये खाते में भी नहीं चढ़ाता है। वह तो एक मामूली सा हिसाब है लेकिन आत्मा का हिसाब तो एक कल्याण की बात है। आज उस खाते का मिलान करके जिससे कषाय का वेग बढ़ गया हो उसे क्षमा कर देना और उससे क्षमा मांग लेना। लेकिन हम उनसे क्षमा मांगते हैं जिससे हमारा कोई दोष नहीं है। क्षमा तो उनसे मांगनी चाहिए जिनसे किसी समय द्वेष बन गया हो अथवा बोलचाल बन्द हो गयी हो। आज सारे खाते बन्द कर दिये और पर्यूषण पर्व भी सम्पन्न हो गया परन्तु यह तभी सार्थक होगा जब हम द्वेष भाव छोड़कर समता धारण करेगें। समाज देश और आत्मा में सुख-शान्ति तभी आ सकती है जब हम क्षमा करें क्षमा कई प्रकार की हो सकती है।

एक क्षमा वह है जो प्रतिद्वन्दी के द्वारा किसी भी प्रकार अपनी क्षति हो जाने पर उससे बदला लेने की शक्ति का अभाव होने के कारण चुप्पी साध ली जाती है। परन्तु अन्तरंग में यह भाव रहता है कि यदि शक्ति होती तो मजा चखा देते। अच्छा अब नहीं तो फिर देख लूँगा इस प्रकार अन्तरंग में कटु द्वेष की ज्वाला में भुनते हुए भी बाहर से कह देना जा तुझे क्षमा कर दिया इसी के अन्तर्गत वह क्रोध भी आ जाता है जो अन्तरंग में न जाने कब से चले आ रहे द्वेष के रूप में पड़ा रहता है और बाहर में उसे मित्रता सरीखी दिखती है, सहानुभूति दिखाता है इत्यादि।

इस प्रकार के दिखावटी भाव को तो लोक में भी क्षमा नहीं करते। वह तो प्रकट क्रोध से भी घातक है क्योंकि बहुत लम्बे समय तक बराबर अन्तर में द्वेष बना रहता है।

दूसरी प्रकार की क्षमा वह जो प्रतिद्वन्दी को खूब मारकर अपने अरमान निकाल लेने के पश्चात् उसे छोड़ कर ऐसा कहना कि जा माफ किया फिर ऐसा मत करना। यह भी सच्ची क्षमा नहीं है कहने मात्र की है क्योंकि शक्ति अनुसार जो कुछ करना था वह कर लिया क्रोध निकाल लिया फिर क्षमा क्या किया यह भी द्वेष की कोटि में आ जाती है परन्तु पहले के द्वेष और इस द्वेष में अन्तर है पहले द्वेष की अपेक्षा इस द्वेष की शक्ति कम है क्योंकि यह इतने ही समय तक रहकर समाप्त हो जाती है बाद में उस व्यक्ति से कोई घृणा नहीं होती। जैसा पहले भाव था वही पुन: भाव हो जाते हैं। यह गृहस्थ की सच्ची क्षमा है।

रामचन्द्र जी ने रावण पर चढ़ाई की परन्तु भाव अन्त तक यही रहा कि किसी प्रकार युद्ध न करना पड़े। अन्तरंग में रावण के प्रति कोई द्वेष नहीं था। उन्हें अपने सम्मान के लिए सीता की आवश्यकता थी। रावण की स्वर्णमयी लंका की बिल्कुल भी इच्छा नहीं थी। इसलिए अन्त समय तक संदेश भेजते रहे कि सीता को लौटा दो युद्ध नहीं करेंगें हमारी कोई शत्रुता नहीं है। परन्तु रावण नहीं माना तब रामचन्द्र जी को अपने सम्मान की रक्षा के लिए युद्ध करना पड़ा अन्यथा कायर कहलाते। मुनि का यह कर्तव्य नहीं है क्योंकि इस अवस्था में सीता और रावण में कोई अन्तर नहीं है। शान्ति में बाधक उनके अपने परिणाम हैं। वे ही उनके शत्रु हैं। इसलिए यदि युद्ध करना है तो अपने अन्तर के परिणामों से युद्ध करो बाहर के किसी अन्य से नहीं। बाहर में किसी से युद्ध करना कायरता है। दशा भेद होने मात्र से ही दिशा बदल जाती है। इसलिए रामचन्द्र जी ने रावण से युद्ध किया और विजयी होने पर भी रावण के साथ कोई अनुचित व्यवहार नहीं किया। लक्ष्मण को उसे गुरु स्वीकार करने की आज्ञा दी। मात्र सीता वापस ली। लंका की किसी वस्तु को हाथ नहीं लगाया। यह थी एक गृहस्थ की क्षमा।

सिकन्दर ने पोरष को जीतकर उससे द्वेष नहीं रखा उसे उसका देश लौटाकर मित्रता कर ली यह थी एक गृहस्थ की क्षमा।

पृथ्वीराज चौहान ने 17 बार मुहम्मद गौरी को बन्दी बनाया परन्तु हर बार उसे समझा कर छोड़ दिया उसका कुछ भी न छीना। आत्म रक्षा अभीष्ट थी। मोहम्मद गौरी से द्वेष न था। पृथ्वी राज वीर था क्षमा उसका आभूषण था उसे अपने ऊपर विश्वास था इसलिए वह अपने कर्तव्य को भूलकर कायर नहीं बनना चाहता था। यह था भारत के वीरों का आदर्श। क्षमा कायरों को शोभा नहीं देती यह तो वीरों का आभूषण है। हालाँकि आज का युग उसकी इसी भूल को देश की पराधीनता का कारण मानता है जबकि वास्तव में यह उसकी भूल नहीं थी और देश की

पराधीनता में कारण था जयचन्द की स्वार्थ परता। कर्तव्य शून्यता के कारण दोषों की दृष्टि में दोष नहीं दिखते। आज के स्वार्थी जगत की दृष्टि दोष खोजने के लिए पृथ्वीराज की ओर जाती है जयचन्द को अनदेखा कर देती है। जो कि वास्तव में दोषी था।

परम धैर्य के धारी अत्यन्त पराक्रमी योगियों को तो यह विचार बहुत ही कठिन अवसर पर आता है क्योंकि उनके उत्कृष्ठ क्षमा होती है। परन्तु यह उत्कृष्ठ क्षमा धारण करना उनका ही धर्म है ऐसा नहीं है। बल्कि गृहस्थ को भी उत्कृष्ट क्षमावर्धक परिणामों का आश्रय लेकर अपने शत्रु को आज के दिन क्षमा कर देना चाहिए यह विचार न करते हुए कि वह आपको हानि पहुँचायेगा। प्रतिवर्ष क्षमावाणी पर्व मनाते हैं और दूसरों को सुनाने के लिए "क्षमा-क्षमा गहो रे भाई" का राग अलापते हैं कभी स्वयं भी सुनने का प्रयत्न किया? यदि ऐसा कर लेते तो शान्ति-मार्ग मिल जाता जिसको हर प्राणी हर समय खोजता रहता है।

एक नगर में एक ब्राह्मण और उसकी लड़की रहते थे। ब्राह्मण लड़की को बहुत प्रेम करता था। वह बहुत ही सुन्दर और विदुषी थी लेकिन क्रोध बहुत करती थी। वह तू शब्द से बहुत चिड़ती थी इस कारण उसका नाम भी तूकारी पड़ गया। वह लोगों के तू कहने पर गालियाँ बकती तथा मारने को दौड़ती। जब वह जवान हो गई तो क्रोध के कारण उससे विवाह करने को कोई तैयार नहीं होता था। इस कारण उसका विवाह एक जुआरी से हो जाता है। एक दिन क्रोध के कारण तूकारी घर से निकल गई और चोरों के हत्थे पड़ गयी वहाँ उन चोरों से एक देवी ने उसके शील की रक्षा की तब चोरों से छूटकर बन्जारों के हाथ पड़ गयी। वहाँ भी एक देवी ने उसकी रक्षा की तब वह छीपी के हाथ बिक गई। छीपी आठवें दिन उसका मस्तक चीरकर खून निकालता और कपड़े रंगता और जड़ी बूटियों से उसका घाव अच्छा कर देता। इस प्रकार कई महीने उसको दु:ख उठाना पड़ा। एक दिन संयोग वश उसका चाचा उधर से जा रहा था उसने तूकारी को देख लिया और द्रव्य देकर तूकारी को छुड़ा लिया। तब तूकारी ने क्रोध करना छोड़ दिया।

एक दयाचन्द नाम का युवक था गर्मियों के दिन में तालाब में स्नान करने गया पेड़ के नीचे बैठा था। धूप की गर्मी से धरती तप रही थी। उस धूप में धरती पर पड़ी हुई रेत में उसने बिच्छु को देखा तो करुणा वश विचार आया कि बिच्छु को उठा कर पेड़ की छाँव में रख दूँ तो इसको धूप से आराम मिल जायेगा। वह बिच्छू को उठाकर पेड़ की छाँव में रखने चला तो बिच्छू ने डंकमार दिया नतीजा बिच्छू फिर रेत में गिर पड़ा और तड़पने लगा दयानन्द ने फिर बिच्छू को उठा लिया उसने फिर डंक मार दिया इस प्रकार दयानन्द उठाता रहा और बिच्छू डंक मारता रहा परन्तु दयानन्द ने जब तक बिच्छू को पेड़ की छाँव में नहीं पहुँचा दिया। तबतक बिच्छू को छोड़ा नहीं। एक व्यक्ति यह सारी क्रिया देख रहा था। वह दयानन्द से बोला-बड़े मूर्ख हो बिच्छू के

बार-बार डंक मारने पर भी उठा रहे थे। तब दयानन्द ने कहा कि वह अपना स्वभाव नहीं छोड़ रहा था तब मैं अपना स्वभाव कैसे छोड़ देता? बिच्छू का स्वभाव डंक मारने का है और मेरा स्वभाव क्षमाभाव धारण करना और दूसरों की रक्षा करना है।

एक दार्शनिक ने कहा है कि-

मानव को क्रोध से नहीं प्रेम से जीतो,
क्रोध को क्रोध से नहीं, क्षमा से जीतो।
तुम यदि किसी का दिल, जीतना चाहते हो,
अधिकार से नहीं, मेरे मित्र समर्पण से जीतो।।

जिस प्रकार हम क्षमावणी पर्व मनाते हैं उसी तरह यह दिवस पूरे विश्व में मनाया जाता है। यह दूसरी बात है कि वे अन्य तिथि पर अन्य किसी नाम से मनाते हैं। जैसे इजराइल में 'प्रायश्चित दिवस' के नाम से क्षमावाणी जैसा पर्व राष्ट्रीय स्तर पर मनाया जाता है।

भारतवर्ष में क्षमावाणी पर्व को राष्ट्रीय स्तर पर मनाने में धर्म निरपेक्षता का सिद्धान्त बाधक नहीं है जैसा कि देश के भूतपूर्व प्रधान मंत्री राजीव गाँधी ने अपने स्वतंत्रता दिवस पर भाषण में कहा था कि धर्म निरपेक्षता का अर्थ धर्म विहीनता नहीं है बल्कि इसका अर्थ सर्व धर्म समभाव है और क्षमा का क्षमावाणी सभी धर्मों द्वारा मान्य शब्द तथा सिद्धान्त है।

इजराइल देश का उदाहरण हमारे सामने है। पश्चिम एशिया के कोने में बसे एक छोटे से मगर शक्तिशाली इस देश में हर वर्ष 16 सितम्बर को प्रायश्चित दिवस राष्ट्रीय दिवस के रूप में मनाया जाता है। इस दिन वहाँ दुकान, बाजार, सिनेमा, बसें, रेडियो, टेलीविजन आदि सभी संस्थान बन्द रहते हैं। इस दिन सभी इजराइली आत्म चिन्तन करते हैं तथा अपनी भूलों व गलतियों पर विचार करके उसका प्रायश्चित करते हैं।

इस प्रकार इजराइल देश प्रायश्चित दिवस को राष्ट्रीय स्तर पर राष्ट्रीय दिवस के रूप में मानकर अपनी सामाजिक समस्याओं को हल करता है और देशवासियों का नैतिक व राष्ट्रीय चरित्र ऊँचा करता है। शायद यही कारण है कि इजराइल देश में व्यक्तिगत व सामाजिक विवाद बहुत कम होता है और उनका सामाजिक व राष्ट्रीय संगठन बहुत मजबूत है।

बन्धुओ, जो अपने स्वभाव में रहते हैं वे ही अपना कल्याण कर सकते हैं। जो दया भाव के कारण दूसरों का दु:ख दूर करने का प्रयास करते हैं वे अपने दु:खों का निवारण कर लेते हैं। जो प्राणी मात्र के लिए क्षमा भाव रखते हैं वे अपने ऊपर क्षमा करते है और अपना कल्याण करके एक दिन संसार-भ्रमण अर्थात् संसार में आवागमन से छुटकारा पा जाते हैं।

पंचम अध्याय : लेश्या

लेश्या का स्वरूप

'कषायानुरंजितयोगप्रवृत्तिः लेश्याः' अर्थात् कषाय से अनुरंजित आत्मा के परिणाम लेश्या हैं। 'आत्मा यथा लिप्यते पुण्यपापरूपैः इति लेश्याः' अर्थात् जो आत्मा को पुण्य पाप में लपेटे वही लेश्या है अर्थात् मन वचन काय की कषाय पूर्ण वृत्तियों का नाम लेश्या है। जिस प्रकार डाक्टर थर्मामीटर से शरीर के ताप को नाप लेता है उसी प्रकार भावों के द्वारा आत्मा के ताप अर्थात् लेश्या का पता चलता है।

जिनागम में कहा है जो कर्म स्कन्ध से आत्मा को लिप्त करती है उसे लेश्या कहते हैं। इसके दो भेद हैं- द्रव्य लेश्या और भाव लेश्या।

शरीर नामकर्म के उदय से उत्पन्न द्रव्य लेश्या होती है। वर्ण नामकर्म के उदय से उत्पन्न शरीर के रंग को द्रव्य लेश्या कहते हैं। यह लेश्या आयु पर्यन्त एक ही रहती है।

मोहनीय कर्म के उदय क्षयोपशम, उपशम अथवा क्षय से उत्पन्न जीव का स्पन्दन भाव लेश्या है। यह लेश्या जीवों के परिणामानुसार बराबर बदलती रहती है। जिस प्रकार एक कार चालक कार चलाते समय गेयर बदलता है उसी प्रकार मन भी भाव रूप गेयर बदलता रहता है जिससे प्रतिक्षण लेश्या बदलती रहती है।

लेश्या के भेद

लेश्या के दो भेद होते हैं- अशुभ लेश्या, शुभ लेश्या। इन के तीन-तीन भेद होते हैं। अशुभ लेश्या- कृष्ण, नील, कापोत। शुभ लेश्या- पीत, पद्म, शुक्ल।

जो जीव कृष्णादि लेश्याओं से रहित है, पंच परावर्तन रूप संसार से पार हो गये हैं, जो अतीन्द्रिय और अनन्त सुख को प्राप्त हैं और जो आत्मोपलब्धि रूप सिद्धपुरी को प्राप्त हो गये हैं, उनमें कषाय और योग के अभाव के कारण अयोग केवली और सिद्ध जीवों को अलेश्य जीव कहते हैं।

लेश्याओं के स्वरूप और परिणामों की एक झलक का दृष्टान्त जिनागम में इस प्रकार आया है-

देशाटन के लिए निकले छह पथिकों को रास्ते में भूख लगी। उन्हें एक फल से लदा वृक्ष दिखाई दिया। क्षुधा वेदना शान्त करने के लिए सबने अपने विचार प्रकट किये।

पहले ने कहा- पेड को जड़ से काटकर गिरा लें फिर फल खायें। यह कृष्ण लेश्या से युक्त जीव है जो क्षणिक भूख के लिए समग्र वृक्ष को काटने को तैयार है। **दूसरे ने कहा-**

पूरा वृक्ष काटने से क्या लाभ, मात्र स्कन्ध (तना) काट लिया जाय और फल खाकर भूख शान्त कर लें। यह विचार नील लेश्या वाले का है। **तीसरे ने कहा**– स्कन्ध काटने से क्या फायदा, एक छोटी सी डाली के फल ही प्राप्त होगें। इसलिए एक छोटी सी डाली काट ली जाय। यह विचार का पीत लेश्या से युक्त जीव का है।

चौथे ने कहा– डाली तो हमे खानी नहीं, फिर डाली क्यों काटी जाय, मात्र फल के गुच्छे तोड़ लिये जायें। वृक्ष में भी हमारे जैसा जीव है डाली काटने से उसे कष्ट होगा। ये विचार पीत लेश्या वाले जीव के हैं।

पाँचवे ने कहा– गुच्छों में तो कच्चे-पके फल हो सकते हैं, हम कच्चे फल तो खायेंगे नहीं इसलिए सिर्फ पके फल ही तोड़ कर अपनी क्षुधा मिटा लेते हैं। यह पद्म लेश्या वाले जीव का परिणाम है।

छठे ने कहा– हमें तो मतलब सिर्फ पके फलों से है और पके फल पेड़ स्वयं नीचे गिरा देता है जिनको खाकर भूख मिटाई जा सकती है। कुछ देर इन्तजार कर लो अभी हवा का झोंका आवेगा और वृक्ष दया करके कुछ फल गिरा देगा तब उन्हें उठाकर भूख शान्त कर लेना। यह शुक्ल लेश्या वाले जीव का भाव है।

इस प्रकार फल तो सभी खाना चाहते हैं परन्तु भाव सबके अलग-अलग हैं। प्रथम तीन लेश्या वाले पथिकों के भाव हिंसा से ग्रसित हैं जबकि दूसरे तीन लेश्या वाले पथिकों के भाव हिंसा से रहित मात्र उदर पूर्ति का है।

भगवान महावीर की देशनानुसार यह आत्मा छह ताले बन्द द्वारों के भीतर कैद है, इन छह द्वारों का पार होना ही परमात्मा बनना है। अब प्रश्न उठता है आत्मा को किसने बन्द किया है, कब बन्द किया है, यह प्रश्न अनादि काल से चला आ रहा है इसका उपाय अभी तक नहीं हो पाया है, अगर हो जाता तो यह आत्मा परमात्मा बन जाती।

भगवान महावीर स्वामी कहते हैं कि ऐसा नहीं है कि किसी ने जबरजस्ती इस आत्मा को धकेलकर बन्द कर दिया हो। यथार्थ में यह जीव अपने ही द्वारा बन्द है इसे कोई नहीं बाँध सकता यह तो स्वयं ही बंधन स्वीकार करता है और ताले भी स्वयं ही लगाये हैं, चाबियाँ भी स्वयं के पास हैं।

लेश्याओं से जीव की स्थिति का पता चलता है, यह निम्न दृष्टान्त से स्पष्ट है–

एक व्यापारी ऊँटों पर सामान लादकर देसावर व्यापार करने जा रहा था। रास्ते में रात्रि विश्राम के लिए एक सराय में ठहरा। सभी ऊँट खूँटे से बाँध दिये गये परन्तु एक ऊँट रह गया उसके रस्सी व खूँटा नही था। एक व्यक्ति बोला कि जैसे और ऊँट बांधे हैं वैसे ही बाँध दो

परन्तु यह व्यक्ति समझ नहीं पाया तब वही व्यक्ति आया और उस ऊँट को हाथ के इशारे से बाँध दिया जबकि न रस्सी थी और न खूँटा था सुबह होने पर सभी ऊँट खोल दिये। जो बिना रस्सी के बँधा था वह बैठा रहा बाकी सारे ऊँट उठ गये। सारी कोशिश कर ली परन्तु वह ऊँट नहीं उठा तब जिसने बाँधा था वह व्यक्ति बोला भाई, तबतक खोलोगे नहीं यह उठेगा कैसे, यह तो बंधा नहीं है, तब वह व्यक्ति आया और जिस प्रकार बाँधा था उसी प्रकार खोल दिया खोलते ही वह ऊँट भी खड़ा हो गया। बिना रस्सी और खूँटे के बंधे हुए ऊँट की तरह यह जीव बंधा हुआ है। अब प्रश्न है कि खुलने का उपाय क्या है।

जैनदर्शन अत्यन्त विशुद्ध दर्शन है इसमें मानव जीवन एवं साधना की गहराई तक पहुँचने के लिए मार्ग में आने वाली अति सूक्ष्म बाधाओं का विभाजन बड़े ही सुन्दर एवं सटीक तरीके से किया जाता है। जो अन्यत्र दृष्टिगोचर नहीं होता। एक साधक जब साधना के मार्ग पर आगे बढ़ता है तब उसे कितनी प्राप्ति हो रही है वह लेश्याओं के माध्यम से जान लेता है कि वह किस मुकाम पर खड़ा है, उसने कितना प्राप्त किया है, जिस प्रकार एक छात्र वर्ष भर अध्ययन करता है और वर्ष के अन्त में परीक्षा देता है, वह उत्तर-पुस्तिका में जो कुछ लिखता है वह उसकी वर्ष भर की प्राप्ति होती है और परीक्षक उसका मूल्यांकन करके उसकी कामयाबी का ऐलान कर देता है। उसी प्रकार जैनदर्शन में लेश्या रूपी पैमाना है, परीक्षार्थी एवं परीक्षक दोनों ही आप हैं। आप लेश्या रूपी पैमाने से अपना मूल्यांकन करके स्वयं अपनी कामयाबी का ऐलान कर लीजिये।

लेश्याओं को मील का पत्थर भी कहा है। हमारी मोक्ष मंजिल की प्राप्ति तक की यात्रा को छह भागों में बाँट दिया गया है जिस प्रकार किसी स्थान पर जाते हुए रास्ते में मील के पत्थर बताते हैं कि अभी हमने कितनी दूरी तय की और कितनी दूरी तय करनी है उसी प्रकार ये लेश्याएं भी मंजिल को पाने की योग के अर्थात् मंजिल तक पहुँचने के मार्ग के छह पत्थर हैं जिनसे यह ज्ञात होता है कि हमने कितना सफर तय कर लिया है।

लेश्या जीव की स्थिति को दर्शाती है इसका उत्तरदायित्व भगवान महावीर स्वामी ने मनुष्य पर ही छोड़ दिया है। यदि वह दुःखी है तो अपने कारण, सुखी है तो अपने कारण, बँधा भी है तो अपने कारण और यदि मुक्त होना चाहेगा तो भी स्वयं ही मुक्त हो सकता है। न तो कोई बाँध पाया है और न कोई बाँध सकता है। जब कोई बाँध नहीं सका और बाँध भी नहीं सकता तो मुक्त भी हो सकता है। यदि मानव अपनी आत्मिक शक्ति को पहचान ले तो किसी भी क्षण पराधीनता को समाप्त कर सकता है, ताले टूट सकते हैं दरवाजे खुल सकते हैं। दरवाजे तुमने स्वयं बन्द किये हैं दरवाजों ने तुम्हें बन्द नहीं किया है। तुमने काँटो को फूल और विष को अमृत मान लिया है और इसी को नियति मानकर संतोष कर लिया है। भगवान महावीर ने कहा है कि

वर्तमान में तुम जो भी हो जितना भी तुम्हारा ऐश्वर्य है वह सब अतीत में किये गये कृत्यों का परिणाम है भविष्य में जो तुम होगे वह वर्तमान में किये गये कृत्यों का फल होगा। अपने झूठे अहम् के लिए, मान के लिए कितनी बार कितनों की हिंसा की है, दूसरे को सताया है, दूसरे को नीचा दिखाने का प्रयास किया है। जिस व्यक्ति को इस बात का ज्ञान नहीं उसे अपनी आत्मा की विशेषताओं का ज्ञान नहीं। वह अज्ञानपने में हमेशा क्रोध में भरा रहेगा और हमेशा अपने अहम् के पोषण के लिए हर क्षण झगड़ा करने को भी तैयार रहेगा। क्रोध उसका स्वभाव बन जायेगा व सामान्य भी होगा तो भी उसके चेहरे से क्रोध झलकता रहेगा। ऐसा व्यक्ति अपना भला नहीं कर सकता।

एक माँ ने अपने बेटे को डॉटकर कहा कि नगर में साधु महाराज आये हैं तुम सारे दिन इधर-उधर घूमते रहते हो कम से कम कुछ देर के लिए तुम्हें उनके पास जाना चाहिए। बेटा साधु के पास जाना नहीं चाहता था परन्तु माँ की आज्ञा थी इसलिए गुस्से में घर से दर्शन करने के लिए निकला। मन्दिर के दरवाजे का उसने जोर से धक्का दिया, आवाज के साथ दरवाजा खुल गया, गुस्से से अपने जूते उतारकर फेंके। मां का गुस्सा किवाड़ और जूतों पर उतार दिया, साधु महाराज देख रहे थे। पास पहुँचकर साधु महाराज को नमस्कार किया और बोला कि आपका आशीर्वाद चाहता हूँ कोई अच्छा सा मार्ग बतायें ताकि मानव जीवन सफल हो सके और मन में शान्ति का अनुभव कर सकूँ। साधु महाराज ने कहा कि यह सब बेकार की बातें बन्द करो और जाओ पहले दरवाजे से क्षमा मॉगो और जूतों को सीस झुकाकर प्रणाम करो। लड़का सकपका गया कुछ समझा नहीं और बोला– दरवाजे से क्षमा और जूतों को प्रणाम। ये सब तो अचेतन हैं। उन्हें तो मेरी क्षमा और प्रणाम का पता नहीं चलेगा फिर इनसे कैसी क्षमा और कैसा प्रणाम। साधु महाराज ने कहा कि क्रोध करते समय तुमने नहीं सोचा था कि यह जड़ है उस समय तुमने दरवाजे को धक्का देकर खोला था उस समय नहीं सोचा था कि यह जड़ है उस समय तुम्हारा विवेक कहाँ चला गया था। मैं तुमसे तभी बात करूँगा जब तुम उनसे क्षमा मांगोगे। विचार कीजिए ऐसा क्यों हुआ, मात्र अशुभ लेश्या के कारण। स्वयं का निरीक्षण करके ही जीवन में रूपान्तरण होता है और स्वयं का संशोधन करना ही अशुभ लेश्या को क्षीण करना है।

अन्तिम समय में जीव जिस गति में जाने वाला है वैसी ही लेश्या उसके पास आ जाती है, मनुष्य की गति उसके परिणामों पर निर्भर करती है। स्थूल रूप से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि यह जीव किसमें गया है। यदि पैरों से या अधोभाग से प्राण निकलते हैं तो समझना चाहिए कि उसने नरकायु का बन्ध किया है ऐसा व्यक्ति अन्तिम समय में लात मारता है, गाली देता है, एवं आँखे लाल करता है। जिस समय प्राण निकलते हैं उस समय वह स्थान गर्म हो जाता है। जो मायाचारी से आन्दोलित है तथा सदैव दूसरों के प्रति ईर्ष्या भाव रखता है वह तिर्यंच गति

का बन्ध करता है। ऐसे व्यक्ति के प्राण कमर तथा गर्दन के बीच से निकलते हैं। जो दया से परिपूर्ण हैं, श्रावक एवं साधु के व्रतों का निरतिचार पालन करते हैं, सरल स्वभावी हैं, त्याग को अपना कर भौतिक सुखों को ठुकराते हैं ऐसे जीव इस भव की समस्त थकावट दूर करने एवं वैयावृत्ति करवाने स्वर्गों में उत्पन्न होते हैं। ऐसे व्यक्तियों के प्राण सिर से निकलते हैं और जिनके प्राण सर्वांग से निकलते हैं ऐसे जीव अष्टकर्मों से रहित, अनन्त सुख के भोक्ता सर्वज्ञ सिद्धालय को गमन करते हैं। जिस प्रकार ये संकेत गमन के विषय में स्थूल सूचना देते हैं उसी प्रकार आगमन की भी स्थूल सूचना मिल सकती है।

जो जीव सदैव भयभीत रहता है बात-बात से डरता है, रोता है अथवा लड़ने को तैयार रहता है, भोजन अधिक करता है, क्रूर परिणामी है तो समझना चाहिए कि ये नरक गति से आया है। जो शोकाकुल रहता है जरा-जरा सी बात में झुंझलाता है, खाने के उपरान्त भी भूखा रहता है। पशुओं के समान जिसकी क्रिया है तो समझना चाहिए कि ये तिर्यंच गति से आया है इसमें भी यदि वह अत्यन्त भोगी है, सदैव भोगों में लिप्त रहता है तो निश्चित है कि वह कुत्ता या कबूतर की पर्याय से आया है। जो अल्प आरम्भ करने वाला है, सन्तोषी है, सरल स्वभावी है, हित, मित, प्रियवचन बोलता है दयाशील है और पाप से डरता है, वह मनुष्य योनि से आया है। जो अत्यधिक धन का संचय करता है, लोभी है और बहुत कम खाता है वह देवगति से आया है।

प्रत्येक जीव को प्रत्येक समय अपने परिणामों को संभालते रहना चाहिए। जैसे एक सैनिक को लड़ाई से पूर्व रक्षा संबंधी प्रशिक्षण दिया जाता है उसी प्रकार जीव के लिए यह जरूरी है कि वह मरण के पहले अपने परिणामों को शुद्ध करे, निर्मल करे। जैसे उसके भाव होगें वैसी ही उसकी गति होगी। माली जिस प्रकार उपवन की सुन्दरता के लिए वृक्षों की कांट-छांट करता है उसी प्रकार आप भी अपनी वासनाओं एवं कषायों रूपी शाखाओं को शुभ लेश्याओं के माध्यम से तराश सकते हैं एवं जीवन के लक्ष्य को सुगम बना सकते हैं।

गुणस्थान की अपेक्षा लेश्या की अवस्थिति

एकेन्द्रिय से लेकर असंयत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान तक कृष्ण नील, कापोत लेश्या वाले जीव पाये जाते हैं क्योंकि परिणामों में तीव्रतम तीव्रतर और तीव्र कषाय का उदय चौथे गुणस्थान तक ही पाया जाता है। संज्ञी मिथ्यादृष्टि से लेकर अप्रमत्तसंयत गुणस्थान तक पीत व पद्म लेश्या वाले जीव पाये जाते हैं। संज्ञी मिथ्यादृष्टि से लेकर सयोग केवली तक शुक्ललेश्या के जीव पाये जाते हैं चूँकि योग से कर्म लिप्त होते हैं इस कारण सयोग केवली गुणस्थानवर्ती जीवों के योग का

सद्भाव पाया जाता है। इसलिए इन जीवों में शुक्ल लेश्या का सद्भाव माना जाता है जबकि इन जीवों की कषाय क्षीण अथवा शान्त हो जाती है। तेरहवें गुणस्थान से आगे बन्ध के कारण भूत कषाय और योग के अभाव के कारण जीव लेश्या रहित होते हैं।

शरीरों, गतियों की अपेक्षा लेश्या

अपर्याप्तक काल में शुक्ल और कापोत लेश्या होती है क्योंकि सम्पूर्ण कर्मों का विस्रसोपचय शुक्ल होता है इसलिए विग्रहगति में शुक्ल लेश्या तथा शरीर ग्रहण करके जीव शरीर की पर्याप्तियों को पूर्ण करता है तब तक छह वर्ण वाले परमाणुओं के पुंज से शरीर की उत्पत्ति होती है इसलिए उस शरीर की कापोत लेश्या होती है।

नरक गति में कृष्ण लेश्या होती है इसीलिए नारकी आपस में हमेशा लड़ते रहते हैं।

जल का वास्तविक वर्ण धवल होने से जल की लेश्या शुक्ल होती है।

भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिष्कि देवों में छहों लेश्याएं पाई जाती हैं।

विग्रहगति के समान आहारक शरीर का वर्ण विस्रसोपचय के वर्ण की अपेक्षा धवल होता है इसलिए आहारक शरीर की लेश्या भी शुक्ल होती है।

पहले चार स्वर्गों में पीत लेश्या, पॉचवें से दसवें तक पद्मलेश्या और ग्यारहवें कल्प से सर्वार्थसिद्धि तक शुक्ल लेश्या पाई जाती है। तीसरे व चौथे में पद्म लेश्या, नौवे व दशवें में शुक्ल लेश्या तथा ग्यारहवें तथा बारहवें कल्प में पद्म लेश्या भी पाई जाती है। मनुष्य गति एवं तिर्यंच गति में छहों लेश्याएं पाई जाती हैं।

लेश्या का महत्त्व

मध्यकालीन भारत में बैजूबावरा नामक संगीताचार्य की कुटिया में रह कर गोपाल नामक शिष्य ने संगीत की शिक्षा प्राप्त की। जब वह शिष्य शिक्षा प्राप्त करके वापस अपने घर जाने लगा तब संगीताचार्य ने शिष्य को आशीर्वाद देते हुए कहा कि यह जो अमूल्य निधि मैंने तुझे दी है इसकी रक्षा करना और इसे जन-कल्याण में उपयोग करना सभी प्राणियों के कल्याण में ही अपना कल्याण मानना।

इस प्रकार गोपाल संगीत की शिक्षा प्राप्त कर गुरु के आशीर्वाद से, अपनी लग्न और प्रतिभा से शीघ्र ही ख्याति के शिखर पर पहुँच गया और दिल्ली के दरबार में नायक बन गया। दिल्ली के दरबार में सम्मान पाने से अहंकारी हो गया और उसकी प्रवृत्ति दूसरों को नीचा दिखाने की हो गई। वह मुकाबले के लिए दूसरों को मजबूर करता और शर्त होती कि हारने वाले का सिर कटवा दिया जायेगा।

जब सैकड़ों मनुष्यों की विधवाओं तथा अनाथ बच्चों की चीत्कार संगीताचार्य बैजूबावरा तक पहुँची तो वे विचलित हो उठे और उनका अन्तःस्थल हाहाकार कर उठा तब अपने शिष्य को समझाने दिल्ली पहुँच गये किन्तु मद में चूर गोपाल ने पहचानने से इंकार कर दिया और गुरु को मुकाबले के लिए ललकार दिया। सोच-समझ कर महान संगीताचार्य गुरु बैजू बावरा ने चुनौती स्वीकार कर ली और अगले दिन गुरु और शिष्य की अनोखी संगीत प्रतियोगिता शुरु हुई। संगीत का ऐसा शमा बंधा कि सुनने वालों को ऐसा संगीत जीवन में पहले कभी सुनने को नहीं मिला था। परन्तु गुरु-गुरु ही होता है उसकी महिमा अपरम्पार होती है। अहंकारी शिष्य को हार माननी पड़ी और शर्त के अनुसार उसको मृत्यु दण्ड भुगतना था। परन्तु जब विजयी बैजू बावरा से अपनी इच्छानुसार मांगने को कहा गया तो गुरु के उदार हृदय ने अपने पराजित शिष्य का जीवन दान में मांग लिया। गुरु शिष्य में कितना महान अन्तर पाया। गुरु की लेश्या उत्तम थी और शिष्य की लेश्या अधम थी, निकृष्ट थी।

बन्धुओ, गुरु जैसी उत्तम लेश्या अपने अन्दर उत्पन्न करो तो कल्याण हो सकता है उत्तम लेश्या से ही दूसरों का कल्याण है और दूसरे जीवों के कल्याण में ही अपना कल्याण है। अध म लेश्या से ईर्ष्या जागृत होती है और ईर्ष्या से हीनपना उत्पन्न होता है जो अधोगति को ले जाने वाला होता है। उत्तम लेश्या प्रत्येक प्राणी के अन्तरंग को दया भाव, करुणा से भर देती है, वात्सल्य से भर देती है और यही भाव, इंसान को महान बनाकर तीनों लोक में पूज्य बनाते हैं।

अशुभ लेश्या

केवल योग और केवल कषाय को लेश्या न कहकर कषायानुविद्ध योग प्रवृत्ति को लेश्या कहते हैं अर्थात् कषाय से संलग्न योग के व्यापार को लेश्या कहते हैं। कर्म बन्ध में निमित्त होने के कारण शरीर नामकर्म के उदय से उत्पन्न योग को भी लेश्या कहते हैं।

क्रोधादि भावों का उत्पन्न होना कषाय है और मन वचन काय की एकता योग है। इस प्रकार कर्मोदय से उत्पन्न भाव ही संसार का कारण हैं और कर्मोदय के कारण तीव्र कषाय रूप भावों से आत्मा विकृत होती है जिसके कारण अपने शुद्ध स्वभाव को जीव भूल जाता है। इन्हीं भावों के हलन-चलन को लेश्या कहते हैं।

लेश्या दो प्रकार की होती है– अशुभ और शुभ लेश्या। इनको अप्रशस्त एवं प्रशस्त लेश्या भी कहते हैं। अप्रशस्त लेश्या के कारण जीव अशुभ गतियों में उत्पन्न होता है।

अशुभ लेश्या जीव के क्रोध, मान, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा रूप द्वेष भावों के कारण उत्पन्न होती है। इसके तीन भेद हैं– कृष्णा, नील और कापोत।

कृष्ण लेश्या

आर्तरौद्रः सदा क्रोधी मत्सरो धर्मवर्जितः।
निर्दयो वैरसंयुक्तो कृष्णलेश्यायुतो नरः।।

कृष्ण लेश्या से युक्त जीव आर्त और रौद्रध्यान में ही मग्न रहता है ऐसा जीव निकृष्ट विचारों वाला एवं हिंसा के भावों से परिपूर्ण रहता है। स्वभाव की प्रचण्डता, रौद्र परिणामों की बहुलता, निर्दयी, बैर की मजबूत गॉठ बॉधने वाला, झगड़ालूवृत्ति से युक्त धर्म एवं धैर्य से शून्य, दया से रहित एवं बदले की तीव्रतम भावना से पूर्ण होता है।

कृष्ण लेश्या का रंग भौरे की तरह, एकदम काला, घने अंधकार जैसे अमावस की काली रात के अंधकार की तरह काला होता है। इस लेश्या से ग्रसित मानव को अपनी आत्मा के वास्तविक स्वरूप का भान नहीं होता। उस तक दृष्टि नहीं पहुँच पाती जिसके कारण आत्मा पर काला परदा पड़ा है। जैसे लालटेन में प्रकाश है परन्तु काली चिमनी के कारण नजर नहीं आता।

भगवान महावीर ने कहा है कि जो व्यक्ति आर्त और रौद्र परिणामों से दूसरे की निन्दा, चुगली करता है अपनी प्रशंसा करके अपने दुर्गुणों को ढक कर दूसरे के सद्‌गुणों को ढके अर्थात् दुर्गुणों को उजागर करता है वह नीच गोत्र का बंध कर दुःख भोगता है। आर्त रौद्र ध्यान का मुख्य कारण अशुभ लेश्या है। कोई चोर, डाकू अथवा कातिल बदमाश पूछे कि मेरा भविष्य कैसा है तो उत्तर स्पष्ट है कि अंधकार मय है, दुर्गति की तरफ ले जाने वाला है अर्थात् जेल पहुंचाने वाला है। कृष्ण लेश्या से ग्रसित मानव अनर्गल क्रियायें करता है ऐसे व्यक्ति के मन वचन में कुछ और क्रिया कुछ और होती है। वह हमेशा छल कपट पूर्ण क्रियायें करता रहता है। दूसरे को गलत मार्ग का निर्देशन करके आनन्दित होता है। इस प्रकार का इन्सान विश्वसनीय नहीं होता। वह अपने चारों तरफ अहंकार रूपी कांच का खोल बना लेता है जो जरा सी ठसक से टूट जाता है। अहंकार की पुष्टि के लिए हिटलर ने भयानक नर-संहार किया। द्वितीय विश्व युद्ध का सेहरा हिटलर के सिर पर ही बँधा जिसमें करोड़ों निरपराध व्यक्तियों के प्राण हनन हुए।

ऐसा व्यक्ति धर्म से शून्य होने के कारण धर्म परायण व्यक्तियों की मखौल उड़ाता है और झूठा दोषारोपण करता है। स्वयं तो दान देता नहीं दूसरों को भी नहीं देने देता और मौका लगते ही दान की राशि भी हड़प ज्ञाता है।

अप्रशस्त या अधर्म या अशुभ लेश्या का वर्ण, रस, गंध तथा स्पर्श भी अशुभ ही होता है। जिस व्यक्ति की भावना कलुषित रहती है जो हमेशा पापमय विचारों की दुनिया में निमग्न रहता है वह अन्तिम समय में जिस गति में जाने वाला है वैसी ही लेश्या उसके पास आ जाती है। पुद्‌गल परमाणुओं का भी अपना स्पर्श, रस गन्ध एवं वर्ण होता है इसलिए सामान्य रूप से

काला, नीला, कापोती, पीला, लाल और सफेद रंगों के समूह को लेश्या कहा है इन रंगों का मानव जीवन में बहुत महत्व है। रंगों का मनुष्य के भावों पर बड़ा प्रभाव पड़ता है।

तड़क भड़क वाली पोशाक देखकर दृष्टि सात्विक नहीं रहती और मन में मलिनता आ जाती है जैसे कोई स्त्री भड़कीले वस्त्र पहनकर निकले तो उसकी ओर ध्यान आकृष्ट हो जाता है और वही स्त्री साधारण वस्त्र पहन कर निकले तो उसकी ओर ध्यान नहीं जायेगा और विचारों में सात्विकता रहेगी। इसी प्रकार सभी लेश्याओं के रस, वर्ण, गन्ध और स्थिति अलग-अलग होती है। अप्रशस्त लेश्याओं में कृष्ण लेश्या का रंग भौरे जैसा काला, नील लेश्या का रंग मोर के कण्ठ जैसा नीला, कापोत लेश्या का रंग कबूतर जैसा होता है।

अशुभ लेश्याओं में कृष्ण लेश्या की गन्ध मृतगाय की दुर्गन्ध से अनन्त गुणा, नील लेश्या की गंध मृत कुत्ते की दुर्गन्ध से अनन्त गुणा और कापोत लेश्या की गन्ध मृत सर्प की दुर्गन्ध से अनन्त गुणा ज्यादा होती है।

कृष्ण लेश्या का रस कटुक नीम से अनन्त गुणा कडुवा, नील लेश्या का रस पीपल आदि के रस से अनन्त गुणा चरपरा, कापोत लेश्या का रस कैथ के फल से अनन्त गुणा ज्यादा कषैला होता है। स्थिति में भी कृष्ण लेश्या सर्वोपरि है। कृष्ण लेश्या की स्थिति तेंतीस सागर से कुछ अधिक है। नील लेश्या की स्थिति कुछ अधिक सत्रह सागर है, कापोत लेश्या की स्थिति कुछ अधिक सात सागर है।

नील लेश्या

आलस्यो मन्दबुद्धिश्च स्त्रीलुब्धश्च प्रवंचकः।
कातरश्च सदामानी नीललेश्यायुतो नरः।।

नील लेश्या वाला प्राणी आलसी, मन्द बुद्धि ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध माया से पूर्ण एवं निर्लज्जता, लोलुपता, धूर्तता से युक्त होता है। इस लेश्या वाला जीव अत्यन्त कुशल मायाचारी एवं मानी होता है।

कापोत लेश्या

शोकाकुलो सदा रुष्टाः परनिन्दात्मप्रशंसकः।
संग्रामे प्रार्थते मृत्यु कापोतोऽयमुदाहृतः।।

सदैव शोकाकुल, रुष्ट रहने वाला, पर-निन्दक एवं स्वयं की प्रशंसा करने वाला छोटी-छोटी बातों पर रोने वाला, व्यवहार में वक्र और दूसरों के गुणों को अवगुण सिद्ध करने वाला होता है।

प्रथम पृथ्वी से लेकर छठी पृथ्वी पर्यन्त रहने वाले असंयत सम्यग्दृष्टि नारकी मरण करके मनुष्यों में कृष्ण, नील, कापोत लेश्याओं के साथ उत्पन्न होते हैं। पीत, पद्म, शुक्ल लेश्याओं में वर्तमान मिथ्यादृष्टि और सासादन सम्यग्दृष्टि देव, तिर्यंच और मनुष्यों में उत्पन्न होते समय अपनी पूर्व लेश्याओं को छोड़कर कृष्ण, नील, कापोत लेश्याओं में परिणत हो जाते हैं।

दया धर्म से रहित बैर को न छोड़ने वाला, प्रचण्ड कलह करने वाला और क्रोधी जीव कृष्ण लेश्या के साथ धूम प्रभा पृथ्वी से अन्तिम पृथ्वी तक जन्म लेता है। विषयों में आसक्त, मतिहीन, मानी विवेक बुद्धि से रहित मन्द, आलसी, कायर, प्रचुर माया प्रपंच में संलग्न, निद्रा शील, दूसरों के ठगने में तत्पर, लोभ से अन्ध, धन-धान्य जनित सुख को इच्छुक और आहारादि संज्ञाओं में आसक्त जीव नील लेश्या के साथ धूम प्रभा तक जाता है।

मात्सर्य, पैशुन्य, पर निन्दा, आत्म प्रशंसा, पर परिवाद, जीवन नैरास्य, प्रशंसक को धन देना, युद्ध मरणोद्यम आदि लक्षण वाला जीव कापोत लेश्या के साथ बालुका प्रभा तक जाता है। अशुभ लेश्या के साथ जीव भवनत्रिक, पृथ्वी, जल और वनस्पति काय में उत्पन्न होता है। मध्यम नील कृष्ण कापोत लेश्या से अग्नि और वायु कायिक में उत्पन्न होता है। देव और नारकी अपनी लेश्याओं से तिर्यंच और मनुष्य गति में जाते हैं। प्रथम, द्वितीय नरकों में कापोत लेश्या, तृतीय नरक के ऊपर कापोत लेश्या तथा नीचे नील लेश्या, चौथे तथा पाँचवें में ऊपर नील लेश्या पाँचवे में नीचे कृष्ण लेश्या तथा छठे में कृष्ण लेश्या और सातवें में परम कृष्ण लेश्या पाई जाती है। भवनत्रिक देवों में कृष्ण नील कापोत और पीत लेश्या, एकेन्द्रिय तथा विकलेन्द्रिय जीवों में कृष्ण, नील, कापोत व पीत लेश्या, चारों गुणस्थानवर्ती संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंच और मनुष्यों के छहों लेश्याएं हाती हैं।

जिस प्रकार एक कुत्ता दूसरे कुत्ते को देखकर अकारण भोंकता है और काटता है उसी तरह नारकी जीव तीव्र अशुभ लेश्या के कारण विभंगावधिज्ञान से पूर्व बैर के कारणों को जानकर तीव्र दुःख उत्पन्न करते हैं। आपस में दूसरे को दुःख पहुँचाते हैं। निम्न दृष्टान्तों से यह स्पष्ट है-

लंका का राजा विद्याधर रावण सीता का हरण करके ले गया। उसे उसके भाईयों, मंत्रियों आदि ने समझाया कि सीता वापस कर दो शत्रुता करने से कोई लाभ नहीं परन्तु रावण को घमण्ड था। इसलिए उसने कहा कि इस संसार में मुझे कोई नहीं हरा सकता। मुझ से बलवान् इस पृथ्वी पर कोई नहीं है। अगर लड़ाई भी लड़नी पड़ी तो राम-लक्ष्मण मेरे-सामने मच्छर के समान हैं। दो मिनट में मसल कर रख दूँगा। इसी घमण्ड के कारण रावण मारा गया और मरकर कुगति में गया। ये ही अशुभ भाव होते हैं।

वशिष्ठ मुनि ने तपश्चरण करके अनेक ऋद्धियाँ-सिद्धियाँ प्राप्त कीं और विहार करते हुए मथुरा पुरी में पहुँच कर मासोपवास सहित आतापनयोग स्थापित किया। वहाँ के राजा उग्रसेन ने भक्तिवश आहार देने का विचार किया और घोषणा कर दी कि मुनि महाराज को कोई आहार

नहीं देगा। मुनि आहार को नगर में आये प्रथम दिवस अग्नि के उपद्रव से अन्तराय जान वापस चले गये दूसरे दिवस हाथी के क्षोभ से अन्तराय जान कर वापस चले गये। मासोपवास बाद फिर राजा के व्यग्रचित्त से पड़गाहन न होने के कारण वापस चले गये। राजा मुनि को आहार दे नहीं और अन्य को देने नहीं दे वापस जाते हुए लोगों के ऐसे वचन सुनकर मुनि क्रोधित भावों से उत्पन्न कृष्ण लेश्या के कारण निदान बंध से इस राजा का पुत्र होकर राजा का निग्रह कर राज करुँ राजा उग्रसेन की रानी पद्मावती के गर्भ से कृष्ण लेश्या के साथ उत्पन्न हुआ। परन्तु वह क्रूर दृष्टि के कारण संदूक में रखकर यमुना नदी में बहा दिया गया। कौशाम्बीपुर की मंदोदरी नामक कलाली के घर पला और कंस नाम पाया बड़ा होकर शौर्यपुर के राजा वसुदेव का सेवक बना। तब जरासिंध प्रतिनारायण के पत्र को पाकर पोदनपुर के राजा सिहंस्थ को बाँधकर जरासिंध को सौप दिया। जरासिंध से राजकुमारी जीवंयशा और आधा राज्य को प्राप्त कर मथुरा का राजा बना और अपने पिता उग्रसेन और माता पद्मावती को कारागृह में डाल दिया। कुछ समय पश्चात् कृष्ण द्वारा मृत्यु को प्राप्त हुआ।

इस प्रकार कृष्ण लेश्या के द्वारा न तो उसे स्वयं को शान्ति मिली और दूसरे की शान्ति भी भंग किये रहा। रावण ने भी अशुभ लेश्या के कारण ही सीता का हरण किया इस प्रकार जितने भी कार्य दुर्गति को ले जाने वाले हैं सभी खोटे भावों अर्थात् अशुभ लेश्या के कारण होते हैं। बन्धुओ, अपने भावों की सम्भाल करके अशुभ लेश्या से दूर रहो और दुर्गति से बचो तथा अपना कल्याण कर इस आवागमन से छुटकारा पा जाओ।

शुभ लेश्या

माया, लोभ, रति, हास्य, पुरुष वेद, स्त्री वेद, नपुंसकवेद राग रूप परिणामों से शुभ लेश्या उत्पन्न होती है। शुभ लेश्या के तीन भेद होते हैं– पीत, पद्म और शुक्ल।

इन शुभ लेश्याओं के कारण जीव शुभ गतियों में उत्पन्न होता है। जिस व्यक्ति के जीवन में धर्म नहीं, जो अपनी आत्मा की शक्ति को नहीं जानता वह हमेशा लड़ने को तैयार रहता है। शक्ति तो अन्तरात्मा में सदैव विद्यमान है इस शक्ति का उपयोग मनुष्य को स्वयं के निर्माण के लिए करना चाहिए जबकि होता यह है कि शक्ति का व्यय विध्वंसक कार्यों में किया जाता है। आज विध्वंस की बात करने वाले बहुत मिलेगें परन्तु सृजन की बात करने वाला कोई विरला ही मिलेगा। इस शक्ति का उपयोग अपने मानस में व्याप्त कलुषता को समाप्त करने में होना चाहिए। जिससे सारे विवाद मिट जायें।

शुभ लेश्या वाला जीव दूसरे जीव पर उपकार करके आह्लादित होता है। जो व्यक्ति अपनी भावना को निर्मल रखता है, जो अच्छे विचारों की दुनिया में मगन रहकर हमेशा दूसरों की भलाई

की सोचता रहता है वह अपने अन्तिम समय में सुन्दर विचारों के कारण जिस शुभ गति में जाने वाला होता है वैसी लेश्या उसके पास स्वयं चली जाती है। इसलिए हे भव्य जीव! प्रतिकूल परिस्थितियों मे भी अपने परिणामों (भावों) को सम्भाल कर रखो जिससे अशुभ लेश्या उत्पन्न न होकर शुभ लेश्या उत्पन्न रहे और सुगति प्राप्त होवे।

भावों की संभाल के लिए रंगों का बड़ा महत्व है। लौकिक अथवा धार्मिक, आत्मिक कार्यों के लिए उपयुक्त पोशाकें निर्धारित की गई हैं। जैसे एक डाक्टर की सफेद ड्रैस, वकील का काला कोट सफेद पेंन्ट, इंजिनियर की खाकी पेन्ट, सफेद कमीज निर्धारित है और योद्धा की पोशाक गहरे रंग की बनाई जाती है। इसी प्रकार आध्यात्मिक कार्यों के लिए धर्म शास्त्रों में सफेद अथवा पीले वस्त्रों का प्रावधान रखा है। गहरे रंग मन में उग्रता लाते हैं और सफेद अथवा पीला या केसरिया रंग मन में सौम्यता लाते हैं। इसलिए अणुव्रती साधक व्रतश्रावक के लिए सफेद धोती दुपट्टा का विधान है। इसी प्रकार पुजारी के लिए भी सफेद अथवा पीला (केसरिया) धोती दुपट्टा पहनने के लिए बताया है। जिससे मन में उज्ज्वल भाव उत्पन्न होवें। सफेद अथवा पीले वस्त्रों से मन में त्याग की भावना और संसार से विरक्ति के भाव उत्पन्न होते हैं। विषय भोगों से दूर हटाते हैं। जिस प्रकार वृक्ष पर लगा हरा पत्ता जब पीला हो जाता है तो वह स्वयं ही वृक्ष से अलग हो जाता है। इसी प्रकार भगवान महावीर स्वामी कहते हैं कि सांसारिक वृक्ष से अपना नाता तोड़कर मुक्त हो जाओ और अपने अन्तर में एक नवीन आत्मा का सृजन करो।

सभी लेश्याओं के रस, गन्ध, वर्ण, स्थिति, लक्षण, गति एवं स्वामित्व को समझना अति आवश्यक है क्योंकि जबतक किसी के बारे में पूर्ण जानकारी नहीं होगी तबतक उससे प्रीति-अप्रीति ग्रहण करने के भाव-छोड़ने के भाव आदि उत्पन्न नहीं होगे। जीव अपना कल्याण करना भी चाहे, अपने भावों की संभाल करना चाहे तो कैसे करे जब तक उसकी जानकारी नहीं होगी?

पीत लेश्या

प्रबुद्धः करुणा युक्तः कार्याकार्यविचारकः।
लाभालाभे सदा प्रीतः पीतलेश्यायुतो नरः।।

पीत लेश्या वाला मनुष्य सात्विक प्रवृत्ति तथा करुणा से युक्त, नम्र चपलता रहित, हेयोपादेय का ज्ञान रखने वाला, इन्द्रियों का दमन करने वाला, धर्म प्रिय एवं लाभ-अलाभ में समभाव रखने वाला होता है।

पद्म लेश्या

दयाशीलः सदात्यागी देवतार्चनतत्परः।
शुचिभूतः सदानन्दः पद्मलेश्यायुतोनरः।।

पद्म लेश्या वाला मनुष्य अत्यन्त कोमल, निर्मल परिणामी, अत्यन्त दया युक्त, त्याग में तत्पर, जितेन्द्रिय तथा शान्त प्रवृत्ति वाला होता है। जिनेन्द्र का परम भक्त तथा आत्मशुद्धि हेतु पूजन-पाठ आदि करता रहता है।

शुक्ल लेश्या

राग-द्वेषविनिर्मुक्तो: शोकनिद्राविवर्जित:।
परात्मभावसम्पन्न: शुक्ललेश्यायुतोनर:।।

शुक्ल लेश्या वाला आर्तरौद्र ध्यान से रहित, अन्तरंग में स्वच्छता, निर्मलता एवं पवित्रता सहित, सदा आनन्द युक्त, सर्वत्र आनन्द की अभिवृद्धि करने वाला, धर्मध्यान मे रत रहने वाला शोक रहित एवं इन्द्रिय विजेता होता है।

तीनों शुभ लेश्याओं के रंग रूप रस आदि अलग-अलग हैं। पीत लेश्या का रस पक्के आम से अनन्त गुणा मधुर है। पद्म लेश्या का रस वारुणी (कदंब फल से बना मद्य) एवं मधु से भी अनन्त गुणा मधुर है। शुक्ल लेश्या का रस खजूर, किशमिश, दूध, मिश्री आदि से अनन्त गुणा मधुर है।

प्रशस्त लेश्याओं की गन्ध सुरभित पुष्पों की सुगन्ध से अनन्त गुणी ज्यादा है।

प्रशस्त लेश्या में पीत लेश्या की साधिक दो सागरोपम की स्थिति है। पद्म लेश्या की अठारह सागरोपम स्थिति है एवं शुक्ल लेश्या की कुछ अधिक तैतीस सागरोपम स्थिति है।

प्रशस्त लेश्या (शुभ लेश्या) में पीत लेश्या तप्त सुवर्ण के समान, पद्म लेश्या कमल के समान और शुक्ल लेश्या कासके फूल के समान श्वेत वर्ण वाली है।

निर्वैर वीतरागता, शत्रु के दोषों पर भी दृष्टि न देना, निन्दा न करना पाप कार्यों से उदासीन, श्रेयोमार्ग में रुचि आदि लक्षण वाला शुक्ल लेश्या का जीव उत्कृष्ट सर्वार्थसिद्धि, जघन्य, शुक्र, महाशुक्र, शतार और सहस्रार स्वर्ग तक तथा मध्यम आनत और सर्वार्थसिद्धि के मध्य के स्थानों में उत्पन्न होता है।

सत्य वाक्य, क्षमा, सात्विक दान, पाण्डित्य, गुरु-देवता पूजन रुचि आदि लक्षण वाला पद्म लेश्या का जीव उत्कृष्ट सहस्रार, जघन्य सानत्कुमार माहेन्द्र तथा मध्यम ब्रह्मलोक से शतार तक उत्पन्न होता है।

दृढ़ मित्रता, दयालुता, सत्यवादिता, दानशीलत्व, स्वकार्यपटुता, सर्वधर्मसमदर्शित्व आदि लक्षण वाला पीत लेश्या का जीव उत्कृष्ट सानत्कुमार माहेन्द्र के अन्तिम विमान तक जघन्य सौधर्म ऐशान

के प्रथम विमान तक तथा मध्यम सौधर्म ऐशान के प्रथम विमान से सनत्कुमार माहेन्द्र के अन्तिम के बीच में उत्पन्न होता है।

पाँचवे, छठे तथा सातवें गुणस्थान में तीनों शुभ लेश्यायें, अपूर्वकरण से 13वें गुणस्थान तक केवल शुक्ललेश्या होती है, अयोगकेवली लेश्या रहित होते हैं। सौधर्म ऐशान में पीत लेश्या, सानत्कुमार और माहेन्द्र स्वर्ग में पीत और पद्म लेश्या, ब्रह्म ब्रह्मोत्तर, लान्तव और कापिष्ठ में पद्म लेश्या, शुक्र-महाशुक्र शतार और सहस्रार में पद्म और शुक्ल लेश्या, आनत से लेकर सर्वार्थसिद्धि से पहले तक केवल शुक्ल लेश्या तथा सर्वार्थसिद्धि में परम शुक्ल लेश्या होती है।

दृष्टान्त– जौनपुर के वैश्य मूलदास जी के पुत्र खरगसेन को विक्रमी संवत 1643 को माघ शुक्ल एकादशी दिन रविवार को पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई। उसका नाम विक्रमाजीत रखा गया परन्तु बनारस यात्रा पर एक पुजारी के कहने पर नाम बनारसी दास रखा गया। विचित्र संयोग था इनकी जबान पर सरस्वती का वास था परन्तु लक्ष्मी दूर ही रहती। इन्हें कभी भी व्यापार में सफलता नहीं मिली। इनका परिवार मूलत: श्वेताम्बर आम्नाय को मानने वाला था परन्तु समयसार पर पं० राजमल जी की टीका पढ़कर तथा आगरे में प० रूपचन्द जी पाण्डे के सम्पर्क में स्याद्वाद का सच्चा ज्ञान प्राप्त करके दृढ़ता पूर्वक स्वीकार किया कि सत्यपंथ निर्ग्रन्थ दिगम्बर ही है। आगरे में इनके जीवन में दो घटनाएं हुई जो इनकी शुभ परिणति को दर्शाती हैं–

एक बार पंडित जी के घर में चोर घुस गये और सारा सामान बाँध लिया। चोरों ने एक दूसरे को सामान की गठरी उठा दी। अन्तिम चोर बोला मेरी गठरी कौन उठायेगा। बनारसी दास जी सारी क्रिया देख रहे थे बोले मैं उठवाऊँगा और उठकर उसे गठरी उठवा दी चोर सारा माल ले गये। तब वह चोर घर जाकर अपनी माता से बोला– माँ आज जिसके घर चोरी की उसी ने गठरी उठवाई माँ बोली बेटा ऐसा आदमी एक ही है वह बनारसी दास है, दूसरा हो नहीं सकता जाओ उसका सामान वापस कर आओ अन्यथा घर में नहीं आना। तब वह चोर गठरी लेकर पं० बनारसी दास के पास पहुँचा और बोला यह सामान वापस ले लो। पंडित जी बोले भईया! तुमने मेरे ऊपर बड़ा उपकार किया है, मेरा परिग्रह से छुटकारा दिलाया है। मैं इस परिग्रह से बड़ा ही दुखी था अब मैं बहुत सुखी हूँ इसे तुम्ही ले जाओ। चोर बोला आप लेगें नहीं, उधर माता घर में नहीं घुसने देगी अब मैं क्या करुँ? तब बनारसी दास जी बोले एक शर्त पर ले सकता हूँ कि तुम चोरी न करने की प्रतिज्ञा करो। तब चोर ने चोरी न करने का नियम लिया। इस प्रकार बनारसी दास जी के शुभ लेश्या के कारण चोर ने चोरी न करने का नियम लिया।

दूसरी घटना इस प्रकार है कि पं० बनारसी दास जी आगरा के राजा के दरबार में श्रेष्ठी थे। एक दिन घर से दरबार जा रहे थे रास्ते में लघुंशका का प्रतीत हुई। रास्ते में जगह का विचार न करके लघुशंका करने लगे। वहाँ एक राज्य कर्मचारी ने देख लिया। उसने गलत जगह लघुशंका करने के कारण दण्ड स्वरूप एक थप्पड़ मार दिया। बनारसी दास जी ने दरबार में पहुँच कर उस कर्मचारी को तलब किया। कर्मचारी पंडित जी को दरबार में ऊँचे स्थान पर बैठे देखकर डर के कारण कॉपने लगा। तब पंडित जी ने राजा से कहा हे राजन्! इस कर्मचारी की आज से तनख्वाह दुगुनी कर दी जाय यह अपनी ड्यूटी बड़ी ईमानदारी से करता है।

दृष्टान्त– पं. टोडरमल जी

जयपुर के पं० टोडरमल जी इतने सरल स्वभावी थे कि एक बार एक ग्रन्थ लिख रहे थे तब पं० जी की माँ सब्जी में नमक नहीं डालती थी और पंडित जी भोजन कर लेते थे। एक दिन पं० जी बोले कि माँ आज सब्जी में नमक नही डाला है क्या बात है, माँ बोली- लगता है बेटा ग्रन्थ पूरा हो गया है। नमक तो मैं पिछले छह माह से नहीं डाल रही हूँ। ऐसी थी उनके विचारों की विशुद्धता।

पं० टोडरमल जी मोक्षमार्ग प्रकाशक शास्त्र की रचना कर रहे थे नौवॉ अध्याय भी पूर्ण नहीं हो पाया था कि तभी धर्म में रूढिवादिता के पक्षपातियों ने द्वेष भावना से इनके खिलाफ राजा को भड़का दिया। कान के कच्चे राजा ने चुगली को न समझते हुए पं० टोडरमल को हाथी से कुचलवाकर मार देने का दण्ड निर्धारित कर दिया। पंडित टोडरमल जी की ऐसी शुभ लेश्या थी कि हाथी से आग्रह किया हे गजराज! जब आधार ही बे आधार हो गया हो, पालक ही भक्षक बन गया हो तो तुम क्यों परेशान होते हो तुम तो आज्ञा का पालन करो तब पं० टोडरमल के आग्रह करने पर रोते हुए हाथी ने पंडित जी को कुचल दिया और टोडरमल जी ने साम्य भाव से मृत्यु को स्वीकार कर लिया।

पंडित टोडरमल के जीवन की दूसरी घटना इस प्रकार है। एक दिन घर से आते हुए सिद्ध चक्र का पाठ हो रहा था। पाठ पं० टोडरमल जी करा रहे थे। एक दिन घर से आते हुए रास्ते में एक बुढ़िया को चोट लग गई और उसकी टांग टूट गई। तब पंडित जी ने पाठ में न जाकर पहले उस बुढ़िया को अस्पताल ले जाकर इलाज करवाया और फिर मन्दिर पहुँचे। उन्हें बहुत देर हो चुकी थी। सभी पाठ में बैठने वाले नाराज थे। पंडित जी के पहुँचते ही सभी अपना-अपना रोष प्रकट करने लगे तब पंडित जी बोले- भईया! रास्ते में भी एक पाठ हो रहा था मैं उसे ही

देखने लगा और रास्ते में अटक गया, पंडित जी इतने विशुद्ध परिणामी थे कि सभी के रुष्ट होने पर भी इनको जरा भी क्रोध नहीं आया।

इस प्रकार उपर्युक्त दृष्टान्तों द्वारा आपने देखा कि शुभ लेश्या का क्या परिणाम है, पं० बनारसी दास की शुभ लेश्या से चोर ने चोरी करना छोड़ दी, राज्य कर्मचारी का वेतन दुगुना हो गया, पं० टोडरमल जी की शुभ लेश्या के कारण तिर्यंच भी आगे बढ़ने में हिचकिचा रहा था। इस प्रकार शुभ लेश्या से अपने परिणाम तो सुधरते ही हैं दूसरे के परिणामों में भी साम्यता आती है। शुभ लेश्या से ही आत्मोत्थान हो सकता है। इसलिए शुभ लेश्या अपनाओ, कल्याण होगा।

जो मुनि अपने पद का ध्यान न कर स्त्रियों से संपर्क बढ़ाता है, उन्हें पास में बैठाकर पढ़ाता है तथा दर्शन या चारित्र आदि का उपदेश देता है वह पार्श्वस्थ नामक भ्रष्ट मुनि से भी अधिक निकृष्ट है। जब मुनि एकान्त में आर्यिकाओं से भी बात नहीं करते, सात हाथ ही दूरी पर दो या दो से अधिक संख्या में बैठी हुई आर्यिकाओं से ही धर्मचर्चा करते हैं, उनके प्रश्नों का समाधान करते हैं तब गृहस्थ स्त्रियों को एकदम पास में बैठाकर उनसे सम्पर्क बढ़ाना मुनिपद के अनुकूल नहीं है। ऐसा मुनि भावलिंग से शून्य है अर्थात् द्रव्यलिंगी है,परमार्थमुनि नहीं है।

– **कुन्दकुन्द**

षष्ठ अध्याय : कषाय

कषायें चार हैं- क्रोध, मान, माया और लोभ। प्रत्येक कषाय के अनन्तानुबंधी, अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान और संज्वलन ये चार चार भेद होते हैं। यहां क्रम से कषायों का वर्णन प्रस्तुत है-

क्रोध कषाय

क्षमा धर्म है। धर्म आत्मा का स्वभाव है। इस प्रकार क्षमा आत्मा का स्वभाव हुआ। इसका उल्टा अर्थात् क्रोध आत्मा का विभाव है। आत्मा का विभाव में जाना ही अहितकर है अर्थात् क्रोध आत्मा का अहित करने वाला है। षट्खण्डागम की टीका में क्रोध की परिभाषा करते हुए लिखा हैं कि रोष, अमर्ष और संरम्भ इन सबको क्रोध कहते हैं।

क्रोध - क्रो + उध, कूरता से आत्मा में जो उधम मचाये अर्थात् उत्पात, उपद्रव मचावे उसे क्रोध कहते हैं। क्षमा से जीव कल्याण करता है क्रोध से अपना अहित करता है। क्रोध पत्थर की नाव है जो सदा दूसरों को डुबो देती है। क्षमा वह जहाज है जो भव सागर को पार करा देता है। क्षमा मुनियों का अलंकार है। क्षमा गृहस्थों का परम हितकारी है क्षमा वीरों का अभूषण है। क्रोध मन को कलुषित करने वाली कालिख है। क्रोध लोहे की बेडियाँ हैं जो जीव को बाँध कर संसार रूपी जेल में कैद कर देती है। प्रत्येक प्राणी में क्रोध और क्षमा रूपी दो नालियाँ बहती रहती हैं। क्षमा वाली नाली जीव को शीतलता, वीतरागता, आनन्द प्रदान करती है और क्रोध वाली नाली जीव को क्रूरता, रागता, दुःख प्रदान करती है। एक कवि ने कहा है-

बहती रहती कषाय नाली, शान्ति सुधा भी झरती है,
भव की पीड़ा वही प्यार कर, मुक्ति रमा मन हरती है।
सकल लोक भी आलोकित है, शुचि मय चिन्मय लीला है,
अद्भुत से अद्भुत महिमा, आतम की जय शीला है।।

आचार्य कहते हैं कि क्रोध कषाय चार प्रकार की होती है-

1. अनन्तानुबंधी 2. अप्रत्याख्यान 3. प्रत्याख्यान और 4. संज्वलन।

अगर छह माह से अधिक समय तक क्रोध कषाय टिक गई तो अनन्तानुबंधी हो जायेगी। पन्द्रह दिन से अधिक रह गई तो अप्रत्याख्यान प्रकृति वाली हो जायेगी। पन्द्रह दिन तक रहने पर प्रत्याख्यान और अन्तर्मुहूर्त रहने पर संज्वलन क्रोध कषाय बन जायेगी।

अनन्तानुबंधी क्रोध कषाय की प्रकृति जीव में सम्यक्त्व उत्पन्न नहीं होने देती है। अनन्तानुबंधी क्रोध कषाय के अभाव होने पर ही जीव में सम्यक्त्व उत्पन्न होगा एवं तभी चतुर्थ

गुणस्थान आयेगा अन्यथा जीव मिथ्यात्व में फँस कर संसार के चक्कर लगाता रहेगा। जब अनन्तानुबंधी का अभाव करके सम्यक्त्व उत्पन्न होगा तब जीव कम से कम अन्तर्मुहूर्त और अधिक से अधिक अर्द्धपुद्गलपरावर्तन काल में अपना कल्याण कर सकता है। सारांश यह है कि अनन्तानुबंधी के अभाव होने पर निश्चित होता है कि यह जीव अपना कल्याण कर सकता है अन्यथा नहीं। आदिनाथ के पुत्र भरत चक्रवर्ती ने राज्य भोगते हुए भी उदासीन रहकर अनन्तानुबंधी कषाय का अभाव किया, जिससे उन्हें सम्यग्दर्शन हो गया वैराग्य हो गया और वे अन्तर्मुहुर्त में केवलज्ञान प्राप्त करके मोक्ष चले गये।

अप्रत्याख्यान क्रोध कषाय जीव को अणुव्रत धारण नहीं करने देती अर्थात् अप्रत्याख्यान क्रोध कषाय के अभाव होने पर ही जीव संयम धारण कर सकता है वह भी स्थूल रूप में।

प्रत्याख्यान क्रोध कषाय जीव को महाव्रत धारण नहीं करने देता। जीव प्रत्याख्यान क्रोध कषाय के अभाव होने पर सकल संयम धारण कर व्रतों का नौ कोटि (कृतकारितअनुमोदना, समरम्भ, समारम्भ, आरम्भ, मन, वचन, काय) से सूक्ष्म रूप में पालन करके मोक्ष मार्ग में आगे बढ़ सकता है।

भावों की विशुद्धि को उत्तरोत्तर बढ़ाते हुए संज्वलन क्रोध कषाय का अभाव कर देता है। संज्वलन क्रोध कषाय का अभाव कर बाहरवें गुणस्थान में यथाख्यात चारित्र को प्राप्त करता है। यथाख्यात चारित्र के होते ही केवलज्ञान की प्राप्ति हो जाती है। केवलज्ञान की प्राप्ति होते ही जीव जीवन्मुक्त कहलाने लगता है। इसके बाद आयुकर्म को पूर्ण करके सिद्धत्व को प्राप्त कर लेता है और सिद्धत्व को प्राप्त कर अपने निजस्वरूप में अनन्तानन्त काल के लिए अनन्त सुख का रसास्वादन करता रहता है और इसे देह मुक्त अथवा मोक्ष की प्राप्ति कहते हैं।

क्रोध कषाय की चारों प्रकृतियों के स्वभाव और उनकी बहुलता वाले जीवों का वर्णन दृष्टान्त पूर्वक यहां प्रस्तुत है-

आचार्य कहते हैं कि **अनन्तानुबंधी क्रोध कषाय** पत्थर की रेखा के समान होती है और इसकी बहुलता से जीव नरक गति में जन्म लेता है।

दृष्टान्त- नौवे बलभद्र ने श्री नेमिनाथ तीर्थंकर से पूछा- हे स्वामिन्! यह द्वारिका पुरी समुद्र में है इसकी स्थिति कितने समय तक है, तब भगवान की दिव्यध्वनि में आया कि रोहिणी का भाई द्वीपायन तेरा मामा बारह वर्ष बाद मद्य के निमित्त से क्रोध करके इस द्वारिका पुरी को दग्ध करेगा। इस प्रकार द्वारिका पुरी का भविष्य जानकर द्वीपायन दीक्षा लेकर पूर्व देश में चला गया और घोर तप करने लगा और बलभद्र नारायण ने द्वारिका में मद्य निषेध की घोषणा करा दी। शराब से संबंधित सारी सामग्री जंगलों में फिकवा दी। परन्तु बरतनों की मदिरा एवं सामग्री जलाशयों में फैल गई।

बारह वर्ष व्यतीत होने पर द्वीपायन विहार करते हुए वापस द्वारिका के जंगलों में आ गये। और द्वारिका से बाहर आतापन योग धारण कर स्थित हुए। परन्तु मलमास (लोन्द का महिमा हर तीसरे वर्ष अधिक होने वाला महिना) की भूल से बारह वर्ष से पूर्व ही द्वीपायन द्वारिका के जंगलों में आ गये। शंभवकुमार आदि क्रीडा करते हुए प्यासे होकर कुंडों में जल समझ कर पी गये और उन्मत्त हो गये। वहाँ द्वीपायन को देखकर कहने लगे- यह द्वारिका को भस्म करने वाला द्वीपायन है और पत्थर मारने लगे। तब द्वीपायन भूमि पर गिर पड़ा और गिरने के कारण क्रोध आ गया जिसके कारण द्वारिका भस्म हो गयी ओर द्वीपायन नरक गया।

अप्रत्याख्यान क्रोध कषाय पृथ्वी की रेखा के समान होती है इसकी बहुलता जीव को तिर्यंच गति में पहुँचा देती है।

दृष्टान्त– अयोध्या के राजा पुरन्दर ने अपने पुत्र कीर्तिधर को राज्य सौंपकर जैनेश्वरी दीक्षा ग्रहण की। राजा कीर्तिधर ने अपने पन्द्रह दिन के पुत्र सुकौशल को राज्य सोंपकर दीक्षा ग्रहण कर ली। उनके इस कृत्य से उनकी पत्नि रानी सहदेवी बहुत क्षुब्ध हुई। तब रानी सहदेवी के मन में आया कि कहीं इस प्रकार यह मेरा पुत्र भी दीक्षा लेकर न चला जाय।तभी किसी भविष्य वेत्ता ने घोषणा की कि– जिस दिन यह राजकुमार अपने पिता को मुनि अवस्था में देखेगा, उसी दिन यह दीक्षा ले लेगा। इस कारण रानी सहदेवी ने आदेश निकाल दिया कि किसी भी निर्ग्रन्थ मुनि को राजमहल के पास नहीं आने दिया जाय और उसे मुनियों से द्वेष हो गया। एक दिन अचानक राजमहल की छत पर बैठे हुए राजकुमार सुकौशल ने नगर के बाहर आते हुए मुनिराज को देखा। पहरेदार ने उन्हें नगर के द्वार पर ही रोक दिया तब रानी ने भी देखा कि वे कोई दूसरे नहीं महाराज कीर्तिधर ही थे। तब रानी को डर लगा कि कहीं वैराग्य उपदेश से मेरा पुत्र भी सारा वैभव छोड़कर न चला जावे। तब रानी ने सेवकों को आज्ञा दी कि कोई भी नग्न साधु नगरी में न आने पावें। परन्तु राजकुमार ने अपनी धाय माता से अपने पिता के बारे में पूछा उसने सब कुछ बयान कर दिया। इस प्रकार राजकुमार सुकौशल अपने पिता को मुनि बना हुआ जानकर उनके पास पहुँचा और चरणों में नमन किया राजकुमार के ऑखों से अश्रुधारा बहने लगी। तब उसने कीर्तिधर मुनिराज से धर्मोपदेश सुना और उसका मन संसार-शरीर भोगों से विरक्त हो गया और उसी समय दीक्षा लेने को तैयार हो गया।

इसी समय राजमाता सहदेवी, राजकुमार की गर्भवती रानी विचित्र माला और मंत्री आदि सभी वहाँ पर पहुँच गये। उन्होंने राजकुमार से कहा– हे राजकुमार! भले ही तुम दीक्षा ले लो, हम नहीं रोकेंगे। लेकिन तुम्हारे वंश में ऐसा रिवाज (परम्परा) है कि पुत्र बड़ा होने पर उसे राज्य सौंप कर राजा दीक्षा लेता है। इसलिए आप भी रानी विचित्रमाला के बालक को बड़ा हो जाने दे तब उसे राज्य सौंप कर दीक्षा ले लेना। परन्तु राजकुमार सुकौशल नहीं माने और गर्भस्थ बालक को राज्य सौंपकर अपने पिता कीर्तिधर मुनिराज से दीक्षा ग्रहण कर ली।

इस घटना से राजमाता सहदेवी को बहुत आघात लगा। पिता और पुत्र दोनों मुनि हो गये इससे तीव्र मोह के कारण मुनिधर्म की निंदा की धर्मात्माओं का अनादर किया और क्रूर परिणामों के कारण क्रोधित होकर आर्तध्यान करते-करते मर कर जंगल में बाघिन हुई। वह बाघिन बनकर जंगल में जीवों का बध करती और अत्यन्त दु:खी रहती।

एक दिन उसी जंगल में विहार करते हुए मुनिराज कीर्तिधर और सुकौशल आकर ध्यान में बैठ गये और अपनी आत्मा का आनन्द लेने लगे। बाघिन ने दोनों को देखा और क्रूर भाव से सुकौशल मुनिराज पर छलांग लगा दी और उनका भक्षण करने लगी। तब सुकौशल मुनिराज ने मोक्ष प्राप्त किया और वाघिन को जातिस्मरण हो गया वह पश्चाताप करती हुई अन्त में मरकर स्वर्ग गई। मुनि कीर्तिधर भी मोक्ष गये।

प्रत्याख्यान क्रोध कषाय धूलि रेखा के समान होती है। इसकी बहुलता जीव को मनुष्यगति में पहुँचा देती है।

दृष्टान्त– गंगा और गंधवती नदियों के संगम पर जठर कौशिक नामक तपसी की कुटी पर वशिष्ठ नामक तपस्वी पंचाग्नि तप कर रहा था। उसने गुणभद्र, चारण मुनि से उपदेश सुनकर दीक्षा ली। इसके बाद मासोपवास सहित आतापनयोग तप से उसे सात व्यन्तर सिद्धि प्राप्त हो गई। राजा भक्तिवश उग्रसेन ने आहार देने का विचार करके नगर में घोषणा करा दी कि इन मुनि को और कोई आहार न दे। पारणा के दिन नगर में आये वहाँ अग्नि का उपद्रव देखकर अन्तराय जान वापस चले गये। फिर मासोपवास के बाद पारणा के दिन नगर में हाथी का क्षोभ देखकर अन्तराय समझ कर वापस चले जाये। पुन: मासोपवास किया, पारणा के दिन नगर में आये। तब राजा जरा सिंध को पत्र से राजा का चित्तव्यग्र था इसलिए मुनि का पड़गाहन न हो सका। अन्तराय मान कर वापस जाते हुए उन्होंने लोगों के वचन सुने- 'राजा मुनि को आहार दे नहीं और अन्य देने वालों को मना कर दे। ऐसे लोगों के वचन सुनकर राजा पर क्रोध कर उन्होंने यह निदान बंध कर लिया कि इस राजा का पुत्र होकर राजा का निग्रह कर मैं राज करूँ।

इस प्रकार राजा उग्रसेन की रानी पद्मावती से वह पुत्र के रूप में उत्पन्न हुआ जिसकी क्रूर दृष्टि देखकर उन्होंने संदूक में रखकर यमुना नदी में बहा दिया, जो कौशाम्बी पुर में मन्दोदरी नामक कलाली के घर प्राप्त हो गया और कंस नाम पाया। बड़ा होने पर इसके उत्पात से दुखित होकर मन्दोदरी ने घर से निकाल दिया। तब वह शौर्यपुर राजा वसुदेव का सेवक बन कर राजा जरासिंध प्रतिनारायण के पत्र आने पर पोदनपुर के राजा सिंहरथ को बाँध कर जरासिंध को सौंप दिया। फलस्वरूप जरासिंध की पुत्री जीवंयशा से विवाह और आधा राज्य प्राप्त किया। इस प्रकार मथुरा का राज्य प्राप्त कर उसने राजा उग्रसेन और माता पद्मावती को बंदीखाने में डाल दिया।

बाद में श्रीकृष्ण से मृत्यु को प्राप्त हुआ। इस प्रकार क्रोध के कारण मुनि वशिष्ठ ने निदान कर बंधकर लिया।

संज्वलन क्रोध कषाय जल की रेखा के समान होती है। इसके कारण जीव यथाख्यात चारित्र की प्राप्ति न करके देवगति का पात्र बनता है।

दृष्टान्त– इस भरतक्षेत्र के सुरम्य देश पोदनपुर के राजा तृणपिंगल का पुत्र मधुपिंगल था। उसने चारण युगल नगर के राजा सुयोधन की पुत्री राजकुमारी सुलसा के स्वयंवर में साकेत पुरी के राजा सागर के मंत्री द्वारा कपट से नया सामुद्रिक शास्त्र बनाने तथा मधुपिंगल को दोषी बताने कि इसके नेत्र पिंगल है इसलिए जो कन्या इसको वरण करेगी वह मरण को प्राप्त होगी। तब कन्या ने सगर को वरमाला पहना दी। मधुपिंगल का वरण नहीं किया। मधुपिंगल ने विरक्त होकर दीक्षा धारण की और मंत्री के कपट को जान कर क्रोध के कारण निदान बंध किया कि अगले भव में सगर के परिवार को समूल नष्ट करुँ। इस प्रकार निदान बंध से महा कालासुर नाम का देव हुआ। तब क्षीर कदम्ब ब्राह्मण के पुत्र पर्वत से मिल कर पशुओं की हिंसा रूप यज्ञ का सहायक बना। राजा सगर को उपदेश देकर यज्ञ करने के लिए प्रेरित किया तथा कहा कि तेरे यज्ञ में सहायक बनूँगा। तब पर्वत ने राजा सगर से यज्ञ कराकर पशुओं को होम किया और कालासुर ने यज्ञ करने वालों को वे पशु स्वर्ग में जाते दिखाये। राजा सगर सातवें नरक गया। इस प्रकार मधुपिंगल मुनि ने क्रोध के कारण निदान बंध कर महापाप कमाया। (यह राजा सगर दूसरा था, चक्रवर्ती सगर तो मोक्ष गया)।

आचार्य कुन्दकुन्द देव लिंगपाहुड की पांचवीं गाथा में लिखते हैं–

सम्मूहदि रक्खेदि य अट्टं झाए दि बहु पयत्तेण।
सो पाव मोहिदमदी तिरिक्ख जोणी ण सो समणो।।

जो निर्ग्रन्थ लिंग धारण करके परिग्रह को संग्रह रूप करता है अथवा उसकी बांछा चिंतन ममत्व करता है और परिग्रह की रक्षा करता है और उसका यत्न करता है उसके लिए निरन्तर आर्तध्यान ध्याता है वह पाप मोहित बुद्धि वाला तिर्यंच योनि के पशु के समान है अज्ञानी है श्रमण नहीं है।

जगत जीव जीवन्त चराचर सबके हित सबको सुखदानी।
तिन्हें देख दुर्वचन कहें खल पाखण्डी ठगयह अभिमानी।।
मारि याहि पकड़ पापी को तपसी भेष चोर है छानी।
ऐसे वचन बाण की बेला, क्षमाढाल ओढे मुनि ज्ञानी।।
वस्त्रादि सब परित्याग कर कोड़ाकोड़ि वर्षों तप करे।
परभाव बिना ना सिद्धि हो सत्त्यार्थ यह जिनवर कहें।।

आचार्य कहते हैं कि कषाय गई नहीं, राग-द्वेष मिटा नहीं तो नग्न होने से कोई भी प्रयोजन सिद्ध होने वाला नहीं। कहते है कि स्फटिक मणि में अगर दाग लग गया तो बेकार है परन्तु स्फटिक मणि तो निर्मल ही रहती है।

कुत्ते अगर लाठी से मारो तो वह लाठी को पकड़ता है। शेर को बन्दूक से वार करो तो वह बन्दूक चलाने वाले को पकड़ता है।

सारांश यह है कि पर्यायदृष्टि रखने पर कुछ भी प्राप्त होने वाला नहीं और द्रव्यदृष्टि रखने पर मूलतत्त्व को पकड़ा जा सकता है अर्थात् मोक्ष को प्राप्त किया जा सकता है।

दृष्टान्त– एक बार एक चित्रकार का एक व्यक्ति के साथ वाद-विवाद हो गया फैसला पंचायत में गया पंचों ने निर्णय लिया कि दोनों से चित्र बनवाकर निर्णय लिया जायेगा। एक बड़े हाल में बीच में पर्दा बनाकर दोनों से चित्र बनाने को कहा और समय निश्चित कर दिया गया। चित्रकार चित्र बनाने लगा। दूसरे को चित्र बनाना आता नहीं था इसलिए उसने दीवाल माँजनी शुरु कर दी। निर्धारित समय में चित्रकार ने चित्र पूरा कर दिया और दूसरे ने दीवार को खूब रगड़ कर माँज दिया। पंचों ने समय पर आकर बीच से पर्दा हटा दिया। पर्दे के हटते ही चित्रकार का चित्र सामने की दीवार में चमकने लगा सबने उस को अच्छा बताया।

इसलिए बन्धुओ, आत्मा में से क्रोध कषाय को निकालना होगा तभी आत्मा निर्मल बन पावेगी।

आचार्य कुन्दकुन्द देव भावपाहुड की गाथा 60 में कहते हैं कि–

भावेह भावसुद्धं अप्पा सुविशुद्धणिम्मलं चेव।
लहु चउगइ चइऊणं जइ इच्छह सासयं सुक्खं॥
चतुर्गति से मुक्त हो यदि चाहते हो सुख सदा।
तो करो निर्मल भाव से निज आत्मा की भावना॥

आचार्य कहते हैं कि यदि चारों गतियों से छूटना चाहते हो तो भावों को विशुद्ध कर निज आत्मा की भावना भावो अन्यथा निज आत्मा क्रोधादि विभावों का संसर्ग पाकर संसार में भटकती रहेगी।

दृष्टान्त– कुम्भकार कटक नगर का राजा दण्डक और उसकी रानी सुव्रता दोनों ही दिगम्बर मुनियों से विरोध करते थे। एक दिन राजा दण्डक वन में गया वहाँ दिगम्बर मुनिराज को देखकर उनके साथ अभद्र व्यवहार किया और एक दूसरे व्यक्ति ने आकर नमोऽस्तु किया परन्तु मुनिराज ने दोनों को समान आशीर्वाद दिया। छहढाला में पं० दौलतराम जी कहते हैं। कि–

अरि मित्र महल मसान कंचन कांच निंदन थुति करन।
अर्घावतारन असि प्रहारन, में सदा समता धरन।।

इस प्रकार मुनिराज की समता से राजा दण्डक की श्रद्धा पलट गई। उसने वापस जाकर रानी से कहा कि दिगम्बर मुनिराज को आहार दिया करो (कहते हैं त्रिया चारित्र और पुरुष का भाग्य देव भी नहीं जानते। रानी एक भांड को दिगम्बर मुनि बनाकर ले गई और अपने साथ कुचेष्टा करते हुए राजा को दिखाया। तब राजा ने सोचा कि एक मुनि जब इसको भ्रष्ट करना चाहता है तो उसे बहुत क्रोध आया। संयोग से उसी समय नगर में अभिनन्दन आदि पाँच सौ मुनियों का संघ आया। तब राजा ने विचार किया कि ये सभी पूरे नगर को भ्रष्ट कर देगें और द्वेष भावना से क्रोधित होकर सभी मुनियों को घानी में पिरवा दिया। सभी मुनि क्षमा धारण कर अपना कल्याण कर गये।

उसी नगर में बाहुनामक मुनि आये तब लोगों ने कहा आप इस नगर में प्रवेश न करे यहाँ का राजा दुष्ट है इसने 500 मुनियों को घानी में पेरवा दिया है। आपको भी घानी में पेरवा देगा। तब मुनिराज को क्रोध आ गया और राजा मंत्री सहित पूरा नगर भस्म हो गया।

इस प्रकार राजा, मंत्री सहित क्रोध के कारण मुनिराज भी सातवें नरक गये।

बन्धुओ, अनुकूल परिस्थितियों में तो हर कोई समता धारण कर लेता है। प्रतिकूल परिस्थितियों में क्रोध को नहीं आने देना, समता है। यही समता मोक्ष में कार्यकारी है। जो प्रतिकूल परिस्थितियों में समता धारण करते हैं वही समतावान कहलाते हैं।

दृष्टान्त– एक बार गणेश प्रसाद वर्णी जी ने चिरोंजाबाई से कहा कि माँ आज तो खीर बनाना और खीर के लिए समान लाकर दे दिया। चिरोंजाबाई ने बेटे की परीक्षा लेने के लिए खीर भी बनाई और खाली चावल (मलेहरी) भी बनाये। जब वर्णी जी भोजन करने बैठे तो उनके सामने थाली में चावल (मलेहरी) परोस दिये। वर्णी जी ने पहला ग्रास खाया तो उसमें न दूध था, न मीठा आदि कुछ भी नहीं था, क्रोध आ गया थाली उठाकर फेंक दी। द्वारा माँ ने खीर परोस दी।

तब माता चिरौंजाबाई ने कहा कि बेटे तू तो कहता था कि मैंने क्रोध पर विजय प्राप्त कर ली है। अभी तो क्षमा बहुत दूर है। अनुकूल वातावरण में तो सभी क्षमावान होते है। प्रतिकूल वातावरण में क्षमा धारण करो तो क्षमावान कहलाओगे।

बन्धुओ, जब तक अन्तरंग में क्रोध कषाय भरी रहेगी, तब तक आत्मा संकल्पों-विकल्पों में भटकती रहेगी। जब तक वह स्वभाव से नहीं जायेगी तब तक जीव का कल्याण नहीं हो सकता। इसलिए कषायों का शमन कर निज आत्मा को विभाव से स्वभाव में ले आओ और अपना कल्याण कर अनन्त शाश्वत सुख का रसास्वादन करो।

मान कषाय

आज अधिकांश मनुष्य अहंकार से ग्रसित हैं जो खण्डहर महल की तरह कभी भी मान रूपी आँधी के झोंके में गिर सकते हैं। इसी अहंकार के कारण यह जीव संसार में भ्रमण कर रहा है क्योंकि वह जीव मान कषाय के वशीभूत होकर राग-द्वेष करके कर्मों का बंध करता है और चारों गतियों में घूमता है कहा है–

मानापमान करना भव बढ़ाना,
पाना कभी ना सुख को दुःख को उठाना।
सब मान त्याग अपना प्रभुगीत गाले,
फिर मान के हनन से बस मुक्ति पा ले।।

आचार्य कहते हैं कि एक भव से दूसरे भव में जाना गति कहलाता है। गति के चार भेद हैं- नरक गति, मनुष्य गति, तिर्यंच गति आदि देवगति।

नरक गति में क्रोध की बहलुता, मनुष्य गति में मान की, तिर्यंच गति में माया की और देवगति में लोभ की बहुलता पाई जाती है।

षट्खण्डागम के टीकाकार लिखते हैं कि विद्या, तप और जाति आदि के मद से अन्य के प्रति नम्र न होना मान कहलाता है। अहंकार, अकड़, घमण्ड, मद आदि मान के पर्यायवाची शब्द हैं। कहा है– झुकेगा वही, जिसमें ज्ञान है। अकड़ तो खास मुर्दे की पहचान है।

आचार्य कहते हैं कि जन्म दिन मनाना, दीक्षा दिवस मनाना आदि मनोबल को गिराना है क्योंकि–

आब गई आदर गया नैनन गया स्नेह।
ये तीनों जब गये, जब कहे कुछ मुझको देय।।
बिन मांगे दूध बराबर, मांगे दे सो पानी।
वह देना है खून बराबर, जिसमें खैचातानी।।
घोर वीर तप करत तपो धन भये क्षीण सूखी गल बाँही।
अस्थि चाम अवशेष रहो तन न-सॉजाल झलकैं तिस मॉही।।
औषधि असनपान इत्यादिक प्रान जाउ पर याचत नॉही।
दुर्द्धर अयाचिक व्रत धारै करै न मलिन धरम पर छॉही।।

आज मानव पाँच बातों में अटका हुआ है– मंच, माईक, माला, माया और मायाचारी क्योंकि ये पाँचों बातें उसके अहं अर्थात् मान का पोषण करती हैं। आज मान के वश प्रदर्शन, प्रतिष्ठा,

प्रतिस्पर्धा, पाप और पैशुन्य (निन्दा, ईर्ष्या) आदि को पाने के लिए पंच, माला, माईक, माया और मायाचारी कुछ भी करने को तैयार है। चाहे उसे अपनी शक्ति से बाहर क्यों न जाना पड़े वह हिचकिचाता नहीं और धर्म कार्य में शक्ति अनुसार भी लगने को तैयार नहीं क्यों? क्योंकि मान कषाय के वशीभूत उसे अच्छे बुरे की पहचान नहीं और जो अच्छा बुरा नहीं सोच सकता वह अपना कल्याण कहाँ से कर पावेगा और जो अपना आत्म कल्याण नहीं कर सकता वह दूसरे को क्या फायदा पहुँचा सकता है। कहा है-

बड़ा हुआ सो क्या हुआ जैसे पेड़ खजूर।
पंक्षी को छाया नहीं, फल लागे अति दूर।

जिसमें अकड़ होगी वह झुक नहीं सकता और जिसमें नम्रता गुण नहीं होगा वह स्थाई नहीं हो सकता।

एक बार बड़के पेड और बेत के पेड में बहस छिड़ गयी बड़ का पेड़ बोला तेरा भी जीवन क्या जीवन है जो दूसरों को छाया नहीं दे सकता ठूठ सा खड़ा रहता है। जरा सी हवा आई और झुक जाता है। तब बेत का पेड़ कहता है इतनी अकड़ भी किस काम की जो जरा सी विषमता आते ही हिला देती है। एक दिन कसकर आँधी आई और बेत का पेड़ तो अपने को झुका कर बचा लिया और बड़ का पेड उखड़ गया टाँग ऊपर सिर नीचे हो गया। आँधी बेत के पेड का कुछ भी नहीं बिगाड़ पाई।

आचार्य कहते हैं कि मान कषाय चार प्रकार की होती है।

1. अनन्तानुबंधी 2. अप्रत्याख्यान 3. प्रत्याख्यान और 4. संज्वलन।

ये चारों कषाय क्रम से पत्थर के समान, हड्डी के समान, काष्ठ के समान बेत के समान कठोरता लिए होती हैं और क्रम से नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देवगति में ले जाने वाली हैं।

बड़ के पेड में पत्थर के समान अकड़ थी सो आँधी में उखड़ गया आचार्य कहते हैं कि यदि बेत के समान भी कठोरता होगी तो कल्याण होने वाला नहीं हैं। क्योंकि अनन्तानुबंधी सम्यक्त्व में, अप्रत्याख्यान अणुव्रत में, प्रत्याख्यान महाव्रत में तथा संज्वलन अर्थात् बेत के समान कोमलता भी यथाख्यात चारित्र में बाधक है। बिना यथाख्यात चारित्र के केवलज्ञान नहीं हो सकता और बिना केवलज्ञान प्रकट हुए मोक्ष मिलने वाला नहीं अर्थात् जीव का कल्याण नहीं हो सकता। मद करना मान कहलाता है।

जीव को कल्याण मार्ग के लिए आठ प्रकार का मद करना मान करना है, मार्ग को अवरुद्ध करना है।

ज्ञानं, पूजां, कुलं जातिं बलमृद्धिं तपो बपुः।
अष्टावाश्रित्य मानित्वं स्मयमाहुर्गतस्मयाः।।

ज्ञान, पूजा, कुल, जाति, बल, ऋद्धि, तप और शरीर का मद करना कल्याण मार्ग को अवरुद्ध करना है।

1. ज्ञान का मद इन्द्रभूति ने किया समवशरण में मान स्तम्भ को देखकर मान गलित हुआ तो दिगम्बरी दीक्षा धारण करके भगवान महावीर के पादमूल में क्षायिक सम्यग्दर्शन प्राप्त करके गौतम गणधर के रूप में आत्म कल्याण कर गये और भगवान की वाणी सुनकर सबको कल्याण का मार्ग दिया।
2. मस्करी ने पूजा का मद किया भगवान महावीर स्वामी को ढोंगी कहा और भ्रष्ट हो कर अनेक मत चलाये आखिर आत्म कल्याण नहीं कर पाया।
3. अर्ककीर्ति ने कुल का मद किया सेनापति जयकुमार से युद्ध में हारा मान खण्डित हुआ।
4. जाति का मद कंस ने किया पिता को बन्दी बनाकर कारागार में डाला आखिर कृष्ण द्वारा अपमानित होना पड़ा और अपने प्राण गँवाये।
5. बल का मद रावण ने किया अपमानित हुआ।

   एक बार रावण अपनी पटरानी मन्दोदरी के साथ चैत्यालयों की वन्दना करके आ रहा था तो रास्ते में उसका विमान रुक गया तब उसे बड़ा क्रोध आया कि मेरा विमान किसने रोक दिया? उसने नीचे देखा तो दिगम्बर मुनि बैठे दिखाई दिये नीचे उतर कर देखा तो बालि मुनिराज को ध्यान में पाया तब उसे मान आ गया कि इसने मुझे नमस्कार नहीं किया था और यह यहाँ बैठा है आज इनसे बदला लिया जा सकता है। इस भावना से पहाड़ उठाकर फैंकने चला तब बालि मुनिराज के मन में विचार आया कि यहाँ सारे चैत्यालय खण्डित हो जायेंगे तथा बहुत सारे जीव जन्तु मर जायेगें तो उनकी रक्षा के लिए बालि मुनिराज ने पैर का अंगूठा दबा दिया जिसके कारण शिला के नीचे दबकर रावण रोने लगा तब मन्दोदरी ने विनती की हे गुरुवर! क्षमा करें अन्यथा में विधवा हो जाऊँगी तब रावण का बल मद चूर हुआ और मुनिराज के चरणों में पड़ गया।
6. रूप का मद सनतकुमार चक्रवर्ती ने किया सभा में मान खण्डित हुआ।

   एक बार स्वर्ग के देवों में चर्चा हुई कि मध्य लोक में सनतकुमार चक्रवर्ती से रूपवान अन्य कोई नहीं है तब दो देव परीक्षा लेने आये उस समय सनतकुमार चक्रवर्ती अखाड़े में कुश्ती लड़ रहा था तब सनतकुमार को देखकर देव बोले जैसा सुना था वैसा ही पाया। सनतकुमार चक्रवर्ती ने कहा कल आना जब मैं पूरा श्रृंगार करके राज दरबार में सिंहासन पर बैठूँगा

उस समय देखना इस समय तो कुछ भी रूप नहीं हैं। अगले दिन दोनों देव सभा में पहुँचे वहाँ चक्रवर्ती को देख कर बोले आज तो रूप कुछ भी नहीं है जो रूप कल था। सुनकर चक्रवर्ती को रूप का मद खण्डित हुआ कि यह सब क्षणभंगुर है अनित्य है उसे और वैराग्य हो गया।

7. तप का मद सन्यासी ने किया शीलवन्ती नारी से अपमानित हुआ।

एक दिन एक सन्यासी तपस्या कर रहा था ध्यान से उठा और उसकी नजर आकाश में उड़ते हुए एक पक्षी पर पड़ गई। वह तुरन्त नीचे गिर पड़ा सो उस साधु को घमण्ड हो गया कि मैं जिसको चाहूँ नीचे गिरा सकता हूँ। एक बस्ती में आहार चर्या के लिए आया तब एक महिला से बोला जल्दी दे दो जो देना है। तब महिला ने कहा कि पक्षी थोड़े ही है जो देख लोगे तो गिर जायेगा। तब वह साधु ने कहा तुम्हे कैसे मालूम? वह महिला बोली मैं शीलवन्ती महिला हूँ मुझे सब मालूम है। तब उस साधु की गर्दन शर्म से झुक गई।

8. धन का मद एक महिला ने किया आग लगाकर अपना नुकसान किया।

एक स्त्री ने हीरे-जवाहरात जड़े दास्ताने बनवाये परन्तु किसी ने भी उन दास्तानों की तरफ ध्यान नहीं दिया। उस महिला ने अनेक उपक्रम किये कि लोगों का ध्यान उन दास्तानों पर पड़ जाये। अन्त में उस महिला ने एक दिन घर के एक कोने में आग लगा ली और हल्ला मचाने लगी। बहुत आदमी और औरतें आग बुझाने लगे। वह महिला काम कम और उन दास्तानों का प्रदर्शन करके हल्ला ज्यादा मचाने लगी। एक औरत की निगाह उन दास्तानों पर पड़ गयी। उसने पूंछ लिया बहन! दास्ताने तो बड़े ही अच्छे लग रहे हैं। कब बनवाये आदि -आदि तब वह महिला बोली अरी बहन! अगर तू पहले पूछ लेती तो यह आग ही क्यों लगाती?

पं॰ दौलतराम जी छहढाला की दूसरी ढाल में कहते हैं कि–

जो ख्याति लाभ पूजादि चाह, धरि करत विविध विधि देह दाह।
आतम अनात्म के ज्ञान हीन जे जे करनी तन करत छीन॥

जो जीव आत्मा और अनात्मा के ज्ञान से रहित होकर अपनी ख्याति, यश:कीर्ति, अर्थ लाभ और पूजा-प्रतिष्ठा आदि की इच्छा रख कर शरीर को कष्ट देने वाली नाना प्रकार की क्रियाओं को करते हैं उनसे केवल शरीर ही क्षीण होता है आत्मा का कोई उपकार नहीं होता।

आचार्य कहते हैं कि दूसरे जीव के प्रति अन्तरंग में विनय भाव का आना अथवा अविनय भाव का आना मान के घटने व बढ़ने का द्योतक है। मन्दिर जो कि समवशरण का प्रतीक है, के अन्दर अरहन्त प्रभु की प्रतिमासे ऊँचे अथवा बराबर में अन्य देवी-देवताओं की प्रतिमा बनाकर

फोटो अथवा मुनिराजों के फोटो लगाना अरहन्त प्रभु की अविनय है। आजकल दिगम्बर मन्दिरों में वस्त्रधारी देवी देवताओं, जैसे पद्मावती-धरणेन्द्र, चक्रेश्वरी, क्षेत्रपाल आदि की फोटो अथवा मूर्ति अरहन्त प्रभु से ऊँची अथवा बराबर लगाई जा रही है। गर्भालय में वेदी के समक्ष मुनिराज को नमोऽस्तु करना अन्य व्रती की विनय करना साधर्मी भाई को जै जिनेन्द्र बोलना अरहन्त प्रभु की अविनय है। विनय का कितना सुन्दर दृश्य बनता है कि समवशरण में केवलज्ञानी अरहन्त प्रभु विराजमान होते हैं। और उनके समक्ष दूसरा जीव केवलज्ञान प्राप्त करता है तो वह जाकर उनके बगल में विराजमान हो जाता है। परन्तु दिव्यध्वनि केवल पहले से विद्यमान अरहन्त प्रभु की ही खिरती है। अन्य की नहीं। सामान्य अवस्था में जब गुरु विद्यमान होते हैं तो किसी की शंका का समाधान शिष्य कभी भी कितना ही ज्ञानी क्यों न हो जाये, नहीं करता गुरु ही करते हैं।

आचार्य कहते हैं कि जब तक अन्तरंग से अविनय की भावना नहीं जायेगी अर्थात् विनय उत्पन्न नहीं होगा, विवेक जागृत नहीं होगा, तो मान का खण्डन भी नहीं होगा और सम्यग्दर्शन भी नहीं होगा बिना सम्यग्दर्शन के जीव तीन काल में कभी भी कल्याण नहीं कर सकता।

एक किसान महिला पहाड़ी पर अपने खेत में फसल काट रही थी कि उधर से एक दुष्ट प्रकृति वाले व्यक्ति ने अकेली महिला जान कर उसका शील भंग करना चाहा जब उस महिला ने अपने को अशक्य महसूस किया तो उसने शील की रक्षा के लिए ऊपर से छलांग लगा दी। महिला को खरोंच तक नहीं आई तो उसे अपने को पतिव्रता होने का घमण्ड हो गया। वह घमण्ड पूर्वक सबसे इस घटना को कहा करती की मैं इतनी शीलवन्ती हूँ कि पहाड़ से गिरने पर भी मुझे चोट नहीं आई। सब से कहती फिरती तब लोगों ने कहा कि हम जब तक अपनी आँख से नहीं देख लेगें तब तक कैसे मानेंगे। तब उस महिला ने मान वश पहाड़ से छलांग लगा दी। नतीजा टाँग टूट गई और सबके सामने अपमानित होना पड़ा। आचार्य कहते हैं कि पहली बार वह महिला शील धर्म की रक्षा के लिए अपने प्राणों की परवाह किये बिना कूद गई थी तो धर्म के कारण उसकी रक्षा हो गई थी। दूसरी बार वह अपने घमण्ड के पोषण के लिए कूदी जिसके कारण टांग टूट गई क्योंकि मान कभी स्थिर नहीं रहने देता खण्डित जरूर होता है। उसे यश कीर्ति अभिमान की भूख जागृत हो गई थी, तो भूख की ज्वाला बुझती जरूर है।

जिसके अहंकार, घमण्ड, मद, मान अकड़ आदि नहीं होता है उसके मार्दव धर्म होता है, उसके ऊपर गुरुओं का विशेष अनुग्रह होता है और गुरुओं के अनुग्रह से सम्यग्ज्ञान आदि की प्राप्ति होती है उससे स्वर्गादिक सुख एवं मोक्ष की प्राप्ति होती है अर्थात् अहंकार, अकड़, घमण्ड आदि ही समस्त विपदाओं की जड़ है।

जो प्राणी अपना कल्याण करना चाहता है अथवा विपदाओं से बचना चाहता है उसे अहंकार, घमण्ड, मान, मद, अकड़ आदि को त्याग कर जीवन को सरल बनाना होगा और गुरुओं का अनुग्रह प्राप्त करना होगा तभी कल्याण हो सकता है।

मायाचारी का स्वरूप

मायाचारी, मान कषाय और लोभ कषाय दोनों के बीच में, दोनों को एक साथ लेकर चलने वाली होती है। आचार्य कहते हैं कि राग के उदय से परस्त्री आदि में वांछा तथा द्वेष के उदय से अन्य जीवों के मारने, बाँधने अथवा छेदने रूप मेरे भाव को कोई नहीं जानता ऐसा मान कर अमृत रस रूपी निर्मल जल से अपने मन को शुद्ध न करता हुआ बाहर से बगुले जैसा भेष धारण करके जो लोगों को प्रसन्न करता है वह मायाचारी कहलाता है।

तन गोरा मन साँवरा बगुले जैसा भेष।
तोसो तो कागा भला, भीतर बाहर ऐक।।

मायाचारी की बहुलता तिर्यंचों में पायी जाती है परन्तु आजकल मानवों में कूट-कूट कर भरी है। मन वचन काय की विषमता को मायाचारी कहते हैं। मन में कुछ, वचन में कुछ और क्रिया कुछ की कुछ करता है। कहा है कि–

उत्तम आर्जव रीति बखानी, रंचक दया बहुत दुख दानी।
मन में हो सो वचन उचरिये, वचन होय सो तन सौं करिये।।
यह पुष्प सुकोमल कितना है, तन में माया कुछ शेष नहीं।
निज अन्तर का प्रभु भेद कहूँ, उसमें ऋजुता का लेश नहीं।।
चिन्तन कुछ, फिर सम्भाषण कुछ, क्रिया कुछ की कुछ होती है।
स्थिरता निज में प्रभु पाऊँ जो, अन्तर का कालुष धोती है।।

आचार्यों ने माया के पाँच भेद बताये हैं।

1. निकृति 2. उपधि 3. सातिप्रयोग 4. प्रणिधि और 5. प्रतिकुंचन।

धन आदि की प्राप्ति अथवा किसी कार्य सिद्धि के लिए किसी मनुष्य को फसाने के चातुर्य को निकृति कहते हैं। धर्म के निमित्त से चोरी आदि करना उपधि कहलाता है। धन के विषय में झूठ बोलना, उसके धन का हरण करना आदि साति प्रयोग होता है। हीनाधिक मूल्य की वस्तुएं आपस में मिलाना, माप के साधन बॉट वगैरह कम-ज्यादा रखना प्रणिधि माया है।

आलोचना करते समय अपने दोष छिपाना प्रतिकुंचन माया है। तृष्णा वश मनुष्य मायाचारी करता है। कहा है-

माया मरी न मन मरे, मर-मर गये शरीर।
आशा तृष्णा न गयी, कह गये दास कबीर॥

एक कम्पनी ने सर्प के जहर को खत्म करने की दवा का अनुसंधान किया। बड़ी मेहनत व ईमानदारी से उस कम्पनी ने व्यापारिक क्षेत्र में प्रगति की। इस कम्पनी के आर्थिक लाभ व उन्नति को देखकर दूसरे सेठ ने भी यही कार्य शुरु कर दिया परन्तु इसके धन्धे में ईमानदारी नहीं थी। चन्द चाँदी के सिक्कों के पीछे उसने अपनी मानवता-नैतिकता को तिलांजलि दे दी थी। कम मूल्य के कारण उसकी दुकानदारी तेजी से चलने लगी। हुआ यह कि नकली इंजेक्शन बिकने लगे और असली कम्पनी बन्द हो गई। नकली माल ही बिकता रहा। समय ने पलटा खाया। संयोग से सेठ के पुत्र को सर्प ने काट खाया। सेठ भागा-भागा पहले सेठ के पास गया और कहने लगा सेठ जी जो जहर उन्मूलन का इंजेक्शन है वह मुझे दे दो। सेठ ने कहा कि भाई हमने तो बनाने बन्द कर दिये अब हमारे पास एक भी नहीं है।

सेठ गिड़गिड़ाता रहा-- जितना चाहो पैसा ले लो परन्तु कहीं से भी एक इन्जेक्शन उपलब्ध करो। परन्तु इन्जेक्शन उपलब्ध न हो सका आखिर उसको अपने किये का दुष्परिणाम भुगतना पड़ा। असली इन्जेक्शन न मिलने पर सेठ के पुत्र की मृत्यु हो गई। पुत्र के मरने से सेठ की आँखें खुल गई। वह विचार ने लगा कि यदि में मिलावट का धंधा न करता तो मेरा पुत्र न मरता पता नहीं इस प्रकार मैंने धन की लोलुपता में कितने मानवों की हत्या कर डाली। परन्तु **अब पछताये होत क्या जब चिड़िया चुग गई खेत।**

दृष्टान्त नं॰--2 पता नहीं पेट भी इन्सान को कहाँ से कहाँ पहुँचा देता है। इसी पेट की खातिर एक राजपूत अपने परिवार को छोड़कर दिल्ली बादशाह के पास नौकरी करने लगा। वह बादशाह के खास अंगरक्षक की नौकरी कर्तव्य बुद्धि पूर्वक करने लगा। अपनी कर्तव्य परायणता से, सच्ची सेवा से राजा को आकृष्ट कर लिया इस प्रकार उसको 12 वर्ष व्यतीत हो गये। एक दिन एक व्यक्ति अपने गाँव जा रहा था उसने सोचा कि मैं भी बच्चों के लिए कुछ भेज दूँ। इस आशा से अपने बादशाह से धन माँगा बादशाह ने अपनी जेब से थैली निकालकर उसमें से एक रुपया निकाल कर दिया।

ठाकुर साहब बारह वर्षों की नौकरी का एक रुपया पाकर बहुत ही हताश हुए और सोचने लगे बारह वर्ष दिल्ली में रहकर कुछ नहीं प्राप्त कर सका। भाड़ झोंकता तो भी इससे ज्यादा पा लेता। परन्तु बादशाह से क्या कहे मन मसोस कर वह रुपये से चार अनार खरीद कर बच्चों

के लिए दे दिया। वह चलते-चलते एक ऐसे शहर में पहुँच गया जहाँ का राजा बीमार था और वैद्य ने अनार का जूस दवा के रूप में बताया परन्तु उस मौसम में अनार मिले भी तो कहाँ। किसी भी मूल्य पर कही भी अनार प्राप्त करने के लिए सेवक भागे फिर रहे थे। अन्त में इसके चार अनार चार लाख में राजा के सेवकों ने ले लिये। उन चार लाख रूपयों से उसके घरवालों की काया पलट हो गयी।

इधर ठाकुर साहब काफी निराश रहने लगे पाँच वर्ष व्यतीत होने पर बादशाह से छुट्टी माँगी घर जाने के लिए। बादशाह ने उसकी सेवा की बड़ी सराहना की और उसे खजाने से 5 हजार रुपये दिलवा दिये। सभी उसके भाग्य की सराहना करने लगे परन्तु मन में प्रश्न यह उठ रहा था कि बारह वर्षों का तो बादशाह ने एक रुपया दिया और पाँच वर्षों के पाँच हजार। परन्तु यह बात कहे तो किससे?

वह गाँव जा रहा था रास्ते में चोर मिल गये और सारा धन छीन लिया। मन मसोसकर चिन्ता में सोचता हुआ कि जो कुछ मिला वह भी नदारद हो गया अब बच्चों को क्या दूँगा। घर पहुँच गया। घर के राजसी ठाट देखकर आश्चर्यचकित रह गया। अनार और चार लाख की बात सुनकर ओर भी विस्मित हुआ। वापस बादशाह के पास आकर इसका रहस्य जानना चाहा तब बादशाह ने बताया–

जो पहले एक रुपया दिया था वह मेरी पसीने की असली कमाई का था में रात को लुहार के पास जाकर घन कूटता हूँ और वह महिने में मुझे एक रुपया देता है इस प्रकार अब तक मैंने बीस रूपये कमाये हैं। मैंने खरी कमाई का समझकर एक रुपया दिया था बरकत भी वैसी ही हुई। दूसरी बार खजाने से पाँच हजार रूपये दिये थे खजाने में धन सभी तरह का होता है। जो होना था सो हुआ। तो बन्धुओ, खरी कमाई की बरकत भी खरी ही होती है।

व्रतों का पालन करना धर्म है। व्रतों का पालन करते हुए कपट करना वास्तविकता को छिपाना **उपधि मायाचारी** कहलाती है। इस प्रकार की मायाचारी जीव को कहां से कहाँ तक पहुँचा देती है यह निम्न दृष्टान्त से स्पष्ट है–

दृष्टान्त– एक नगर के सेठ के राजा से बड़े अच्छे संबंध थे। वह सेठ सत्यवादी था। हर कोई उस पर विश्वास करता था। एक व्यक्ति अपने परिवार के साथ देशाटन को गया सो अपने जेवरात एक कपड़े में पोटली बना कर सेठ को दे गया कि वापस आकर ले लूँगा। संयोग की बात उसके साथ दुर्घटना हो गयी और उसका सब कुछ समाप्त हो गया वह जैसे तैसे फटेहाल वापस आया। उसको फटेहाल देखकर सेठ की नियत खराब हो गयी। उसके मन में धन को हड़पने की बात आ गयी इस कारण उसने इंकार कर दिया। उसको उसका धन नहीं

मिलने से वह विक्षिप्त हो गया। रानी को पता चला तो रानी ने राजा से मशवरा करके सेठ को महल में बुलाकर राजाके साथ चौपड़ खेलने को कहा और उस खेल में धीरे-2 सेठ की अंगूठी व माला जीत ली रानी ने अंगूठी व माला अपने आदमी को देकर उसके घर भेजा और तिजोरी में से लाल कपड़े में बंधा सामान मंगवाया। सेठानी ने अंगूठी व माला देख कर विश्वास करके सामान दे दिया रानी ने उस पोटली के सामान को उस विक्षिप्त व्यक्ति के अनुसार पाया सो वह सामान उसको दे दिया और सेठ को मायाचारी के कारण अपमानित होना पड़ा।

जिस प्रकार आलोचना करके दोषों की निवृत्ति की जाती है और शुद्धि प्राप्त करते हैं उसी प्रकार सामायिक द्वारा भावों में निर्मलता लाकर भावों की शुद्धि की जाती है और उसमें वक्रता आना अर्थात् बाहर से सामायिक करने का उपक्रम परन्तु अन्तरंग में भावों का समभाव न रहकर भटकना मायाचारी है।

बन्धुओ, कितनी भी मायाचारी कर लेना एक न एक दिन तो पोल खुलेगी ही, छिप नहीं सकती। छल कपट से कमाया धन या तो चोर ले जाते हैं अथवा डाक्टर आदि और इन सबसे यदि बच गया तो अग्नि में स्वाहा हो जाता है।

एक हलवाई दूध में पानी मिलाता था। हलवाई के सामने सर्राफ की दुकान थी। सर्राफ अपने मुनीम से कहता है कि छल कपट करना अच्छा नहीं होता तब मुनीम कहता है कि छल कपट से ही धन जुड़ता है। सामने हलवाई दूध में पानी मिलाता है। इसके पास कोठी बगले आदि बहुत धन है। रोजाना सेठ और मुनीम का वाद-विवाद चलता रहता। तब एक दिन सेठ जी बोले तुम एक गड्ढा खोद लो और उसमें रोजाना पानी डाला करो। एक दिन मुनीम बोला मुझ से मेहनत करा ली फिर भी हलवाई का कुछ भी नहीं बिगड़ा। तब सेठ ने पूंछा कि गड्ढा कितना खाली है। जिस दिन गड्ढा भर जाये तब बात करना। एक दिन गड्ढा भर गया तब मुनीम जी बोले गड्ढा भर गया। सेठ जी ने कहा सुबह बात करेगें। रात्रि में एक चूहा आया और दीपक की जलती बाती निकालकर ऐसी जगह रख दी जहाँ से पूरी कोठी बंगला जलकर राख हो गया। सुबह मुनीम आकर देखते हैं कि रात में सारा वैभव जलकर राख हो गया। तब सेठ जी पूंछते हैं कि मुनीम जी छल कपट अच्छा है या बुरा। तब मुनीम कहता है कि बहुत बुरा।

बन्धुओ, पाप कार्यों द्वारा कमाया धन कभी भी धर्म कार्यों में नहीं फलता अर्थात् पाप करके कमाये धन से कभी भी धर्म नहीं हो सकता वह तो जैसा आया है वैसा ही चला जायेगा।

एक वेश्या ने बहुत धन कमाया। तब एक दिन उसके मन में विचार आया कि पाप तो मैंने बहुत किये। इस पाप से कमाये धन से कुछ दान भी कर दें। इसलिए दान करने के लिए उसंने गंगा के किनारे जाने की सोची। एक ठग को पता चल गया इसलिए वह साधु बन कर साधुओं से अलग जाकर गंगा के किनारे बैठ गया। वेश्या गंगा के किनारे जाकर विचारने लगी

कौन से साधु को धन दूँ जो मुझे पुण्य लाभ होवे। कहते है कि असली से नकली में आकर्षण अधिक होता है। असली से नकली में चमक भी अधिक होती है इसी प्रकार उस नकली साधु जो सभी साधुओं से अलग बैठा था के आकर्षण से वेश्या आकर्षित होकर पहुँच गई और चरणों में नतमस्तक हो कर निवेदन किया कि बाबा मैं कुछ दान करना चाहती हूँ। तब साधु ने पूंछा कि तुम कौन हो उसने कहा वेश्या साधु बोला कि तू वेश्या होकर एक महात्मा से बात कर रही है इसका तो प्रायश्चित लेना पड़ेगा। क्या दान करना चाहती है? मैं अपना धन दान करना चाहती हूँ। तब साधु बोला हम वेश्या के धन को हाथ नहीं लगायेगें तेरी भावना देख ली सो यह धन वहाँ पर रख दे और वेश्या धन रखकर चली गई। साधु बने ठग ने फौरन धन उठाकर खूब खीर हलुआ पूरी बनवाई खुद भी खाई दूसरों को भी खिलाई और उस वेश्या को आशीर्वाद दिया।

गंगा के घाट पर खाई खीर और खांड।
योका धन यो ही गया तू वेश्या मैं भांड।।

मायाचारी करने वाला व्यक्ति अपने द्वारा ही अपने को नीचा दिखाता है। वह मायाचारी करके जब तक उसका भेद नहीं खुल जाता भयभीत रहता है। डरा हुआ बैचेन रहता है और अन्त में अपमानित होता है। इसलिए अपमान से बचने के लिए प्रत्येक व्यक्ति को मायाचारी से दूर रहना चाहिए। तभी वह अपना कल्याण कर सकता है।

लोभ कषाय

जो गलती छोड़ बैठे हैं, उन्हें भगवान कहते हैं।
जो गलती कर सुधरता है उसे इंसान कहते हैं।
जो समझता है न गलती को, उसे हैवान कहते हैं।
गलती पर करे गलती उसे शैतान कहते हैं।।

बन्धुओ, जैसे एक भैस तालाब में घुसकर सारे तालाब को गन्दा कर देती है उसी प्रकार आज के मानव ने कषाय रूपी कींचड से अपने को इतना गन्दा कर रखा है कि उसे अपने वजूद का भी ज्ञान नहीं रहा। कषाय में लोभ कषाय और लोभ भी धन का मनुष्य को किस स्तर तक गिरा देता है, निम्न दृष्टान्त में देखें-

एक नगर में पति, पत्नि और पुत्र रहते थे। पुत्र थोड़ा बड़ा हुआ तो कमाने के लिए दूसरे देश में चला गया। इधर दोनों पति-पत्नि अपना गुजर बसर कर रहे थे। नगर से बाहर एक सेठ ने सराय बनवाई उस सराय में ये दोनों पति-पत्नि रहने लगे और मुसाफिरों की सेवा करके गुजर

बसर करने लगे। एक दिन दोनों के मन में धन का लोभ आ गया और अवसर पाकर रात में एक मुसाफिर की धन के लिए हत्या कर दी किसी को पता नहीं चला। इस प्रकार इनकी हिम्मत बढ़ गई और जिस मुसाफिर के पास धन होता उसकी हत्या कर धन प्राप्त कर लेते इस प्रकार इनके पास धन इकट्ठा होता रहा इधर इनका लड़का भी धनवान हो जाता है और वापस अपने घर आता है आकर नगर के बाहर उसी धर्मशाला में ठहरता है। ये अपने पुत्र को नहीं पहचानते और धन के लालच में दूसरे मुसाफिरों की तरह उसकी भी हत्या कर देते हैं दूसरे दिन उन्हें पता चलता है कि रात को जो सेठ आया था वह तुम्हारा पुत्र था वे सिर धुन कर रह जाते हैं कहा है- **अब पछताये होत क्या चिड़िया चुग गई खेत।**

आचार्य कहते हैं कि धन आदि की तीव्र आकांक्षा करना ही लोभ है। चारों कषायों का अस्तित्व लोभ के कारण है। मानव के अन्तरंग में अगर लोभ की उत्पति न हो तो उसके विचारों में स्पन्दन न होगा क्योंकि स्पन्दन होने पर ही कषायों की उत्पत्ति होती है। अन्य कषायें तो पहले चली जाती है। परन्तु लोभ कषाय दसवें गुणस्थान तक रहती है।

उसके चार भेद हैं–

जीवन लोभ, आरोग्य लोभ, इन्द्रिय लोभ और उपभोग लोभ।

चारों के स्व और पर के भेद से दो-दो भेद होते हैं।

अपने विषय में जीवन आदि का लोभ होना, दूसरे के लिए जीवन आदि का लोभ होना इस प्रकार लोभ 8 प्रकार का कहा है। जैसे अपने जीने का लोभ, दूसरे जिन जीवों में ममत्व है पुत्र मित्रादि के जीवन का लोभ, अपने आरोग्य का, स्वास्थ का मेरे रोग न रहे, मेरा शरीर रोग रहित चले इस प्रकार का स्वयं के लिए अथवा पुत्र स्त्री आदि दूसरों के आरोग्य का लोभ। इसी प्रकार अपने तथा अन्य के लिए इन्द्रिय सुख का लोभ, उपयोग के साधनों का लोभ इत्यादि।

आज मनुष्य मूढ़ता के वशीभूत स्वभाव से विपरीत क्रिया लोभ के कारण करता है। यह लोभ कषाय जीव के सोचने समझने की शक्ति को विनष्ट किये हुए है। आज मनुष्य के अन्तरंग में लोभ इतनी गहराई तक बैठ गया है कि नीति-अनीति, उचित-अनुचित, हित-अहित की बात नहीं सोच पाता केवल लोभ ही दिखाई देता है। उसकी पूर्ति की तरफ ध्यान लगा रहता है।

समाज दो धाराओं में बटा हुआ है। (1) राग की धारा (2) वीतरागता की धारा। राग की धारा में संसार के वे प्राणी आते हैं जो अपनी क्रियाओं से संसार को बढाते हैं। संसार को बढ़ाने में पाप क्रियायें सहायक होती हैं। धनार्जन करने में भी पाप पूर्ण क्रियायें होती हैं फिर भी सांसारिक जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए धन भी आवश्यक है कहते हैं कि अगर श्रावक के पास धन नहीं तो उसका कोई मूल्य नहीं।

वीतरागता की धारा में वे प्राणी आते हैं जो संसार से भयभीत हो गये हैं। जो सांसारिक क्रियायें करते हुए भी नहीं करते। अन्तरंग में यह भावना रहती है कि ये सभी क्रियायें मेरी नहीं हैं। परन्तु मुझे करनी पड़ रही हैं और ईर्या पथ धारण कर गर्हापूर्वक क्रिया करते हैं। अधिक समय अपनी आत्मा के ध्यान में व्यतीत करते हैं। ऐसे वीतरागी व्यक्तियों के पास धन होने से उनका कोई मूल्य नहीं।

तीन लोक की सम्पदा, चक्रवर्ती के भोग।
काक बीट सम गिनत हैं, सम्यग्दृष्टि लोग।।

गृही बना पर उद्यम बिन हो, धन से वंचित यदि रहता।
श्रमण बना श्रामण्य रहित हो, धन में रंजित यदि रहता।।

रागी व्यक्तियों की दशा का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि–

दाम बिना निर्धन दुखी, तृष्णा वश धनवान।
कबहूँ ना सुख संसार में सब जग देखो छान।।

धन के होने से निर्धन दुःखी रहता है और धनवान अधिक धन की चाह में दुःखी रहता है सारा संसार ढूंढ लिया कहीं भी सुख दिखाई नहीं दिया। धन की चाह के विषय में कवि कहता है कि–

जो दस बीस पचास भये सत, होत हजार तो लाख चहेगी।
कोटि अरब खरब असंख्य, पृथ्वी पति होन की चाह जगेगी।।
स्वर्ग पाताल का राज करौ, तृष्णा अघ की और आग लगेगी।
सुन्दर एक सन्तोष बिना शठः तेरी तो भूख कभी ना मिटेगी।।

इस तृष्णा के पीछे मनुष्य कितना दुःखी है यह निम्न दृष्टान्त में देखा जा सकता है–

दृष्टान्त– एक व्यक्ति बाजार में नारियल खरीदने गया। उसने भाव पूछा- कितने के दोगे? आठ आने के दो। चार आने में दोगे? चार आने में लेने हैं तो नागपुर चले जाओ। वह नागपुर चला गया पूछा कितने में दोगे? चार आने में दो। दो आने में दोगे? दो आने में चाहिए तो मुम्बई चले जाओ। वह मुम्बई चला गया वहाँ पूछा कितने में दोगे? दो आने में दो। एक आने में दोगे? एक आने में चाहिए तो देहात चले जाओ वह देहात चला गया और पूछा कितने में दोगे? एक आने में दो। दो पैसे में दोगे? अरे दो पैसे क्यों खर्च करते हो पास में पेड़ लगा है तोड़ लो। वह पेड़ पर चढ़ गया और एक डाली पकडी और छूट गया अब तो लटक गया। इतने में एक हाथी वाला निकला हाथी वाले से कहाँ मुझे उतार दो तो मैं 5 रुपया दूँगा। हाथी वाला हाथी खड़ा

करके उछला हाथी नीचे से निकल गया वह भी लटका रह गया। इतने में ऊँट वाला आया उससे बोले हम दोनों 5-5 रू॰ देगें हमें उतार दो। ऊँट वाला भी ऊँट खड़ा करके दोनों को पकड़ने को उचका परन्तु नीचे से ऊँट भी निकल गया और वह भी लटक गया। तब घोड़े वाले से कहा हमे उतार दो तो घोड़े वाला भी लटक गया अब सभी अपने से ऊपर वाले से कहते भइया छोड़ना नहीं। यही तृष्णा है तृष्णा वश सभी लटक गये।

चार प्रकार के मनुष्य–

मनुष्य चार प्रकार के होते हैं– मक्खी चूस, कंजूस, उदार, दातार।

1. **मक्खी चूस–** वे व्यक्ति हैं जो न खुद खायें और न दूसरों को खाने दें।

दृष्टान्त-एक देश के लोभी राजा के एक लड़का व एक लड़की थे। लड़का बहुत ही गुणी था लड़की सुन्दर और सुशील थी विवाह योग्य होने पर भी राजा लोभवश उसका विवाह नहीं कर रहा था इस कारण लड़का और लड़की दोनों क्षुब्ध थे। लोकभय से कुछ भी नहीं कह पा रहे थे। एक दिन राज दरबार में मनोरंजन के लिए नृत्यकला की निपुण नृत्यांगना का नृत्य होना था सो सभा में राजा अपने पुत्र-पुत्री, सभासदों व एक साधु के साथ बैठा था नर्तकी का नृत्य प्रारम्भ हुआ नर्तकी ने नृत्य करते हुए एक गीत गाया जिसमें दो लाइने ये थी कि–

बहुत गई थोड़ी रही थोड़ी भी अब जात।
अब मत चूकिये, फल मिलने की बात।।

इतना सुन कर साधु ने अपना कम्बल, लड़के ने मोतियों की माला और लड़की ने नौलखा हार दे दिया। तब लोभी राजा माला और हार देने से बहुत दुखित हुआ और पूछा कि महाराज आपने अपना कम्बल क्यों दे दिया? तब साधु बोला सारा समय तो बीत गया थोड़ा बचा वह भी बीत जायेगा इस परिग्रह के कारण में अपना कल्याण नहीं कर पा रहा हूँ। इसलिए दे दिया इसके न रहने पर ही मैं अपना कल्याण कर सकूँगा। लड़के से पूछा तो लड़का बोला कि आज मैं आपकी हत्या करने वाला था। सोचा था कि आपकी हत्या करके बहन की शादी कर दूँगा। कही ऐसा न हो यह कोई गलत कदम उठा ले। नर्तकी की बात सुनकर लगा सारा समय तो निकल गया अब इसकी शादी भी हो जावेगी। लड़की से पूछा तो लड़की बोली कि मैं आज मंत्री के लड़के के साथ भागने वाली थी परन्तु नर्तकी की बात सुन कर लगा कि तू ऐसा मत कर अब तेरी शादी हो जावेगी। इन बातों को सुनकर राजा को वैराग्य हो गया और लड़की की शादी हो गई।

2. **कंजूस–** वे व्यक्ति जो खुद तो खाते हैं परन्तु दूसरों को नहीं खाने देते।

दृष्टान्त– एक कंजूस सास के घर उसका दामाद आया तो उसने सोचा कि अगर रोजाना हलुवा पुड़ी बनाई तो बड़े खर्चे में पड जायेगें इसलिए निश्चय किया कि रोजाना खिचड़ी बना

दिया करुँगी। तब सास ने दामाद से कहा कि हम तुम्हें ऐसा भोजन करायेगें जिससे तुम्हारा स्वास्थ अच्छा रहे और सास ने खिचड़ी बना दी और घी डाला नहीं। दामाद खिचड़ी का एक एक दाना उठाकर खाने लगा तब सास जी बोली कि एक एक दाना उठाकर क्यों खाते हो? बोला कि घी बिना खिचड़ी अच्छी नहीं लगती। घी डाल दीजिये। पास में घी का डिब्बा रखा था जाड़े के दिन होने से घी जम गया था सास ने सोचा घी की हवा तो थाली में दिखा ही दें। अच्छा तो यह घी सूंघ ही लो दामाद ने सोचा कि कितनी होशियार सास है इसके साथ कोई कला नहीं चलती सो उसे एक उपाय सूझा उसने पानी का गिलास लुढ़का दिया। सास पानी लेने चली गई तब दामाद ने घी डिब्बा आग में रख दिया घी पिघल गया और डिब्बा यथास्थान रखकर एक-एक दाना खाने लगा। सास ने वापस आकर कहा बेटा खिचड़ी अच्छी तरह क्यों नहीं खाते? तो वह बोला क्या करुँ माँजी खिचड़ी में घी तो पड़ा ही नहीं थोडा घी ओर डाल दो तब सास ने पहले की तरह डिब्बा उल्टा किया तो अबकी की बार सारा घी थाली में आ गया तो सास बहुत घबराई। तब बोली बेटा तुमसे हमारा बहुत स्नेह है हमारा मन चाहता है कि हम भी तुम्हारे साथ बैठ कर इसी थाली में खायें और सास खिचड़ी खाने लगी तब दामाद को बातों में लगाये कि बेटा तुम्हारी माँ हमारी लड़की को यों कहती है। तुम्हारे भाई कहते हैं। तुम्हारे पिता यों कहते हैं और एक हाथ से थाली का घी अपनी ओर करती जाय। अब वह दामाद सोचने लगा सास कितनी चालाकी से हमारे साथ खेल रही है उसे एक उपाय सूझा उसने थाली उठाई और बोला कि तुम्हारी लड़की को कोई कुछ भी बोले पर उन बातों को उसे यों (मुह में सारा घी डालकर) पी जाना चाहिए।

3. **उदार**– वे व्यक्ति जो खुद तो खाते ही हैं दूसरों को भी खिलाते हैं।

एक सेठ पाँच हजार का जेवर साथ लेकर जा रहा था मार्ग में लुट जाने के डर से एक व्यक्ति को साथ ले लिया। वह भी बन्दूक व लाठी लेकर साथ हो लिया। चलते समय उसने पूछा कि आपके साथ कोई जोखिम तो नहीं है मुझे पहले बता दो ताकि मैं पूरा-2 बन्दोबस्त करके यहाँ से चलूँ। सेठ ने साफ-2 कहा कि मेरे पास कुछ नहीं है। और दोनों चल पड़े। थोडी दूर गये कि एक डाकू अपने अठारह साथियों के साथ रास्ता रोके खड़ा था उनको देख कर सेठ घबराया और सच्ची बात कहते हुए बोला–

मेरे पास पाँच हजार के आभूषण हैं। रक्षक साथी ने धिक्कार कर कहा कि मैंने वहीं पूछा था। अब आप बुरी तरह फँस गये हैं अब क्या होगा गोली मेरे पास एक ही है खैर डिब्बा मुझे दो।

सेठ ने डिब्बा निकालकर उसे दे दिया। डाकू ने कहा- तू क्यों मर रहा है? इस बनिये को ही मरने दे। पर उसने सेठ को घोड़े से पार होने का संकेत देकर उसे बचा लिया और स्वयं

डाकुओं से घिर गया उन्होंने उससे गहनों का डिब्बा माँगा वह उसे एक हाथ में थामें दूसरे हाथ में बन्दूक लिये चल रहा था उधर से डाकू तीर छोड़ रहे थे वह बचता हुआ गाँव के निकट पहुँच गया तब सारे डाकू एक साथ उस पर टूट पड़े तब उसने एक को गोली से मार कर उसकी कटार से कईयों का काम साफ कर गाँव में पहुँच गया। तब उसने अपने घाव साफ करके गाँव में पहुँच कर और सेठ को गहनों का डिब्बा देते हुए सारी कहानी बताई।

सेठ अपने गहनों को डिब्बा पाकर बहुत खुश हुआ। जेब से पाँच रूपये निकालकर ईनाम देने लगा तब पास ही खड़े एक स्पष्टवादी ने कहा- ओ सेठ! देख ली तेरी दातारी! तेरे पाँच हजार के गहनों के लिए अपने प्राणों की बाजी लगाने वाले को पाँच रुपये देते तुझे शर्म नहीं आती सेठ क्या बोलता उसकी अज्ञानता तो सबके सिर चढ़ कर बोल रही थी।

4. **दातार**– वे व्यक्ति हैं जो खुद तो भले ही नहीं खाये परन्तु दूसरों को अवश्य खिलाते है।

दृष्टान्त– एक गाँव में बुड्‌डा और बुढ़िया रहते थे। एक दिन दिगम्बर मुनिराज को देखकर भाव आये कि मैं भी मुनिराज को आहार दूँगी उसके पास मिट्‌टी के दो बर्तन थे। उसने विचार किया कि एक बर्तन में पानी उबाल लूँगी और एक बर्तन में खिचड़ी बना लूँगी। तसले में पाद प्रच्छालन कर लूँगी। इतना विचार करके खिचड़ी बना, करवा सराई लेकर पड़गाहन के लिए खड़ी हो गई। ऋद्धिधारी मुनिराज थे पड़गाहन हो गया तसले में पादप्रक्षालन किया तो तसला सोने का हो गया और मुनिराज को आहार दिया तो पंचाश्चर्य हुए। रत्न वरसे आकाश में देवों ने जय जय कार की। आहार होता रहा और बुढ़िया का आँगन रत्नों से भर गया। मुनिराज आहार करके वापस जंगल चले गये। पड़ोसन सोचती है इसने खिचड़ी खिलाई तो इतने रत्न बरसे मैं 36 प्रकार के व्यंजन बनाऊँगी मुझे तो ओर भी रत्न मिलेगें। यह विचार करके दूसरे दिन मुनिराज का पड़गाहन करके प्रथम ही उबलता पानी डाल दिया और ऊपर को देखने लगी वहाँ कुछ भी नहीं था उबलते पानी से अंजलि छूट गई और अन्तराय हो गया मुनिराज बिना आहार वापस जंगल चले गये। उधर आकाश से अंगारे बरसने लगे।

अग्निलगी आकश में झर-झर जले आकाश।
संत न होते संसार में, जल जाता संसार।।

लोभकषाय के प्रकार–

लोभ कषाय तीव्रता के आधार पर चार प्रकार की होती है–1. अनन्तानुबंधी 2. अप्रत्याख्यान 3. प्रत्याख्यान और 4. संज्वलन।

अनन्तानुबंधी सम्यक्त्व नहीं होने देती। अप्रत्याख्यान अणुव्रत नहीं होने देती और प्रत्याख्यान महाव्रत धारण नहीं करने देती। अगर अन्तरंग में संज्वलन का अंश भी रह गया तो यथाख्यात चारित्र नहीं होने देगी।

लोभ व्यक्ति के अन्दर लम्पटता उत्पन्न करता है। ज्ञानार्णव में आचार्य कहते हैं कि मनुष्यों में जैसे-जैसे शरीर और धन की आशा फैलती है तैसे-तैसे मोह कर्म की गांठ दृढ़ होती है। अगर इस आशा को रोका नहीं गया तो वह समस्त लोक पर्यन्त फैल जायेगी और इसकी जड़े इतनी मजबूत हो जावेंगी फिर इस का काटना अशक्य हो जायेगा अर्थात् असम्भव हो जायेगा। इसलिए हे आत्मन्! जब तक तेरे अन्दर लोभ कषाय भरी रहेगी तेरे दु:खों का अन्त कहाँ से होगा?

आचार्य कहते हैं कि हे भव्यात्मा! तेरा मोक्ष पाने का लोभ भी तेरे लिए दु:ख का कारण है।

समयसार में आचार्य देव कहते हैं कि जिस प्रकार मनोरम और अमनोरम हथिनी रूपी कुट्टनी के साथ (हाथी का) राग और संसर्ग (बंध) का कारण होता है उसी प्रकार शुभाशुभ कर्मों के साथ राग और संसर्ग बंध के कारण होने से शुभाशुभ कर्मो के साथ राग और संसर्ग का निषेध किया है।

इसलिए हे भव्यात्मा! जिस प्रकार बीज से जड़ और अंकुर उत्पन्न होते हैं उसी प्रकार मोह रूपी बीज से राग और द्वेष उत्पन्न होते हैं और यदि राग-द्वेष को जलाना अर्थात् समाप्त करना है तो ज्ञान रूपी अग्नि से मोह रूपी (लोभ) बीज को जला दें।

संसार में मनुष्य किसी शुभ समाचार के हर्षोल्लास में अपनी शक्ति के अनुसार कुछ न कुछ दूसरे को दान देते रहते हैं परन्तु कृपण मनुष्य लोभ के कारण चाहे जितना धनवान या प्रसन्न क्यों न हो। वह कभी किसी को कुछ नहीं देता। अज्ञानी जीव धर्म का कुछ भी ख्याल न रख कर रात दिन इन्द्रिय वासना में रत रह कर दूसरों को ठगने या फँसाने का यत्न करता है। वह मूर्ख यह नहीं जानता कि जो दूसरों को ठगने या फँसाने का प्रयत्न करते हैं वे स्वयं उस जाल में फँस जाते हैं। सांसारिक जीव ने इन्द्रिय जनित सुख तथा क्षणिक सम्पत्ति के लिए सब कुछ किया और मरने के बाद सम्पूर्ण धन यहीं रह गया लेकिन जो लोग धर्म में रुचि रखते हुए अपने धन को धर्म में लगा देते हैं वे यश बढ़ाते हुए अपना जीवन सफल बना लेते हैं।

धर्म के कारण लुटा देते हैं धन धर्मात्मा।
उनको दुगुना करके फिर देते है धन परमात्मा।।

एक राजा बड़ा धर्मात्मा था वह नित्य प्रति दरबार में अनेक याचकों को बड़े प्रेम से दान देता था। उसके पास जाकर जो कोई जितना धन मांगता उसे तत्काल ही दरबार में मुंह मांगा धन देकर विदा किया जाता। यह राजा का दैनिक कार्य था। मंत्री ने सोचा यदि इसी प्रकार प्रतिदिन दान दिया जावेगा। तो एक दिन राज्य भी समाप्त हो जायेगा। अत: राज्य की रक्षा के लिए कोई प्रयत्न करना चाहिए। अन्त में एक दिन मंत्री ने राजा से प्रार्थना की- हे स्वामिन! भाग्य का कोई पता नहीं है कि कब तक साथ में है इसलिए विपत्ति के लिए धन की रक्षा करना चाहिए। तब राजा ने उत्तर दिया कि यदि विपत्ति आ जायेगी तो इकट्ठा किया धन भी नष्ट हो जायेगा। धन की रक्षा करके कभी कोई उसे सुरक्षित नहीं रख सकता है। इसलिए धन को पाकर दान धर्म में व्यय करके उसका सदुपयोग कर लेना चाहिए।

दौलत पाय न कीजिये सपने में अभिमान,
चंचल जब दिन चार को ठाऊँ न रहत निदान।
ठाऊँन रहत निदान जियत जग में यश लीजै;
मीठे वचन सुभाय विनय सबके ही कीजै।।
कह गिरधर कविराय ओर सब घट दौलत,
पाहुन निशदिन चार रहत सबही के दौलत।।

दौलत पाकर कभी घमण्ड नहीं करना चाहिए यह तो चार दिन रहने वाली है, अनित्य है, यह कभी भी स्थिर रहने वाली नहीं हैं। नित्य तो केवल एक आत्मा है। आचार्य कहते हैं कि यदि तुझे मोक्ष पाने की लालसा अथवा लोभ मन में आ गया तो वह भी संसार का कारण बनेगा तब अनित्य वस्तु का लोभ कैसे संसार पार कराने वाला हो सकता है?

आचार्य कहते हैं कि जब किसी जीव में स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण शब्द का लोभ होगा, आसक्ति होगी तभी वह उनको प्राप्त करने के लिए छल-कपट की प्रवृत्ति करेगा और छल कपट की प्रवृत्ति उसके विकास में बाधक होगी। इस कारण लोभी पुरुष को इस लोक में भी अनेक विपत्तियाँ प्राप्त होती हैं और परलोक में भी दुर्गति प्राप्त होती है। उसका इस लोक में सम्मान नहीं होता, सभी निन्दा करते हैं।

संसार भ्रमण का कारण मिथ्यात्व को लोभ दृढ़ करता है इसलिए बन्धुओं लोभ का त्याग करो अपनी नित्य आत्मा का ध्यान करो तो एक दिन कर्मों की श्रृंखला टूटेगी और इस संसार परिभ्रमण से छुटकारा मिल जावेगा।

ईर्ष्या क्यों

आज के मानव के जीवन में शान्ति नहीं है, क्यों? प्रत्येक व्यक्ति कहता है कि मेरे पास सब कुछ है, भरा पूरा परिवार-माता-पिता, भाई-बहन, पत्नी, पुत्र-पुत्री, धन-वैभव, मोटर-गाड़ी, नौकर-चाकर, कोठी-बंगले, समाज में चारों तरफ खूब नाम-प्रसिद्धि आदि सभी कुछ है परन्तु मन में शान्ति नहीं है, क्यों? क्योंकि मन में प्रतिस्पर्धा की जड़ें बहुत गहरी हैं। हम यह सोचते रहते हैं कि जीवन की इस दौड़ में दूसरा कोई भी इससे आगे न निकल जाये। दूसरे को नीचा दिखाने की प्रतिस्पर्धा के कारण ईर्ष्या है। कोई व्यक्ति किसी से जुड रहा है तो अपना वर्चस्व कायम रखने की लालसा से चुगली करके आपस में वैमनस्य पैदा करके, क्यों? कारण ईर्ष्या है। कोई व्यक्ति दूसरे की भलाई के कार्य कर रहा है तो समाज में उसका सम्मान होने लगा तो उसे नीचा दिखाने की युक्ति लगाना और उसके विपरीत वातावरण अपने मान का पोषण करने के लिए बनाना, क्यों? कारण ईर्ष्या।

अपनी प्रतिष्ठा तक दाँव पर लगाने में जरा सा भी संकोच नहीं आया, क्यों? कारण ईर्ष्या। ईर्ष्या प्राणी की सुख शान्ति भंग कर देती है। उसको विक्षिप्त बना देती है। जिस प्रकार नशीली वस्तु के प्रभाव में व्यक्ति हर समय खोया रहता है उसका विवेक जागृत नहीं रहता, उसी प्रकार ईर्ष्या के कारण मानव खोया रहता है वह हर समय एक बात सोचता रहता है कि किस प्रकार सामने वाले व्यक्ति को नीचा दिखाऊँ?

ईर्ष्या एक धधकती भट्टी है जिसकी ज्वाला में आज का मानव रात-दिन झुलस रहा है। ईर्ष्या रूपी दरिया में समस्त प्राणी डुबकी लगाकर अपने गुणों को बहा देते हैं नष्ट कर देते हैं अपने अस्तित्व को मिटा देते हैं। यहाँ तक की इन्सान तो इन्सान तिर्यंच भी पीछे नहीं हैं। देव व नारकी भी इस ज्वाला से अछूते नहीं है और निदान बंध कर उन्नति के स्थान पर अवनति को प्राप्त होते हैं।

नारकी पूर्वभव का स्मरण करके ईर्ष्या से एक दूसरे को दुःख पहुँचाते हैं। देवगति में जीव एक दूसरे के वैभव को देखकर ईर्ष्या करता है और निदान बंध कर एकेन्द्रिय जाति में उत्पन्न होता है। तिर्यंच गति में भैसा-भैसे को देखकर कुत्ता कुत्ते को देखकर, नेवला साँप को देखकर लड़ जाते हैं और एक दूसरे के प्राणों का हनन करने तक का प्रयास करते हैं।

दृष्टान्त– एक समय की बात है एक कुत्ता शीश महल में घुस गया। परन्तु वापस बाहर निकलने का द्वार न मिलने के कारण अन्दर ही बन्द हो गया। वहाँ उसे सर्वत्र शीशों में अनेक कुत्ते नजर आ रहे थे उनको अपना प्रतिद्वन्दी जानकर ईर्ष्या वश सिर से टक्कर मारता हुआ

भोंकता रहा इधर-उधर भागता रहा परन्तु निकलने का मार्ग न मिलने से लहु लुहान हो गया और अन्त में त्रस्त होकर अपने प्राणों का अन्त कर लेता है।

यद्यपि वहाँ कोई दूसरा कुत्ता नहीं था परन्तु ईर्ष्या वश अपने प्रतिबिम्ब को दूसरा कुत्ता और अपनी ध्वनि को दूसरे कुत्ते की ध्वनि समझता रहा, कारण ईर्ष्या और ईर्ष्या में बुद्धि भ्रष्ट होने से व्यक्ति निकलने का मार्ग भी नहीं खोज पाता और अकेला अपने प्राण खो देता है।

इन्सान ईर्ष्या के कारण अपने स्वरूप को भूल रहा है। अपनी बात को ऊँची रखने के लिए और अपना वर्चस्व कायम रखने की लालसा में दूसरे से ईर्ष्या करके अपना अहित कर रहा है। वाद-विवाद करता है। दूसरों से मिलने वाली अनुकम्पा से वंचित रह जाता है। भरी सभा में सबके बीच अपमानित होना पड़ता है।

दृष्टान्त– एक समय की बात है। एक राज्य का राजा विद्वानों का बहुत सम्मान करता था। उसके पास चार विद्वान पहुँच जाते हैं। चारों विद्वानों को अतिथिशाला में ठहरा दिया जाता है। राजा चारों के पास जाता है और सबके विचार जानने के लिए सबसे पूछता है कि यह विद्वान कितना गुणी है। तब ईर्ष्यावश पहला विद्वान दूसरे को कोरा गधा बताता है। तब दूसरे से पूछा, दूसरा कहता है कि यह तो कोरा घोड़ा है। इसी प्रकार तीसरा चौथे को कोरा बैल बताता है और अन्त में चौथे से पूछा तो वह पहले को निपट ऊँट के समान बताता है।

तब राजा ने अनुमान लगाया कि चारों ही मूर्ख हैं उन्होंने एक दूसरे के लिए जो विशेषण प्रयुक्त किये थे तदनुसार भोजन के लिए सामग्री मंगा दी। चारों विद्वान सोच रहे थे कि आज तो राजा का आतिथ्य मिला है भोजन में अच्छे-2 व्यंजन बने होंगे। यह विचार कर वे भोजनालय में पहुँचे। वहाँ पर जो उन्होंने कहा था उसके अनुसार सबके सामने सामग्री पहुँच गयी। गधे के लिए भूसी, घोडे के लिए दाना, बैल के लिए चारा और ऊँट के लिए नीम के पत्ते दिये गये तब विद्वान बोले हम क्या पशु हैं? जो हमारे सामने यह सामग्री रख दी गई तब राजा ने कहा कि आप लोगों ने जो एक दूसरे के लिए विशेषण प्रयोग किये थे उसके अनुसार व्यवस्था की गई। चारों विद्वानों की गर्दन शर्म से झुक गई। उन्हें उनकी ईर्ष्या का फल मिल गया था।

दृष्टान्त– एक नगर में दो पण्डित रहते थे। एक का नाम नाम्बियार और दूसरे का कुल शेखर था। नाम्बियार कुछ कम बुद्धिमान था अपेक्षा कुलशेखर के। इसलिए कुल शेखर की सभा में अधिक श्रोता पहुँचते थे। इस कारण नाम्बियार ईर्ष्या की आग में जलता रहता था और कहता कि दुनिया पागल है। पागल की बात सुनती है। एक दिन वह असमय घर पहुच गया तो वहाँ पर उसकी स्त्री नहीं थी पड़ोसी से पूछने पर ज्ञात हुआ कि वह तो कुलशेखर की सभा में गयी है। उसको बहुत गुस्सा आया और वहीं सभा में पहुँच गया। वहाँ अपनी स्त्री पर सभा में ही बरस पड़ा और सभा को भंग कर दिया। बाद में नाम्बियार को बड़ा पछतावा हुआ कि मैंने ईर्ष्या

वश सभा भंग की और उसका अपमान किया कुलशेखर मुझसे विद्वान तो है ही। रात्रि में कुल शेखर से माफी माँगने उसके घर गया। उधर कुलशेखर के मन में भी बड़ा दु:ख आ रहा था कि मेरे कारण नाम्बियार को दु:ख पहुँचा तभी नाम्बियार कुल शेखर के घर पहुँच जाता है और अपनी गलती बताकर क्षमा मांगता है और ईर्ष्या समाप्त हो जाती है।

ईर्ष्या ने आज के मानव की प्रवृत्ति अत्यधिक दूषित कर दी है। आज का मानव अच्छे कार्यों में अथवा सामाजिक एवं धार्मिक कार्यो में तो आपस में लड़ता ही है मतभेद रखता है यहाँ तक की मन-भेद भी रखता है परन्तु गंदे कार्यों में अथवा किसी की खिलाफत करनी हो और उसका अपना स्वार्थ सिद्ध होता हो तो सारे मतभेद, सारे मन-भेद और सारी विषमतायें समाप्त हो जाती हैं।

दृष्टान्त– एक नगर में सरकारी प्लाट खाली पड़ा था उसके सदुपयोग की बात को लेकर एक सर्वधर्म सम्मेलन किया गया तब उस सम्मेलन में तय किया गया कि इस स्थान पर एक राम मन्दिर बना दिया जाय। जब मन्दिर बना दिया गया तो वहाँ देखा गया कि सभी धर्म के अनुयायी वहाँ नहीं आते हैं। जिन की आस्था है वेही आते हैं तब फिर सम्मेलन बुलाया गया उसमें तय किया गया कि मन्दिर के स्थान पर मज्जिद बना दी जाय तब वहाँ पर कुछ मुसलमान ही आते देखे गये। इसी प्रकार गुरुद्वारा व चर्च बनाकर भी देखा गया तो यह देखने में आया कि जिस सम्प्रदाय का आराधक स्थान बनाया गया उस सम्प्रदाय के अतिरिक्त दूसरा कोई वहां नहीं आया। तब विचार किया गया कि यहाँ पर 12-20 शौचालयों बना दिये जाय तो देखा गया किसी भी सम्प्रदाय का कोई भी व्यक्ति ऐसा नहीं था जो उन शौचालयों में न आता हो। आराधक स्थानों में भेदभाव रहा और शौचालय बनते ही सारे भेद भाव मिट गये। कहने का तात्पर्य यह है कि पवित्रता के नाम पर तो सभी अपना-अपना वर्चस्व कायम रखना चाहते हैं परन्तु अपवित्रता के नाम पर कोई भी अपना वर्चस्व कायम करना नहीं चाहता। अहिंसा का विगुल तो सभी बजाते हैं परन्तु अन्तरंग से हिंसा कोई नहीं निकालना चाहता। अन्तरंग से अहंकार, वैमनस्य लिए फिरता है और एक दूसरे से ईर्ष्या करता रहता है।

आज का मानव ईर्ष्या के कारण दूसरे के सुख से दुखी और दूसरे के दु:ख से सुख महसूस करता है। अपने दु:ख से दु:ख तथा सुख से सुख अनुभव नहीं करता। उसका यह प्रयत्न नहीं रहता कि मैं अपना दु:ख मिटाऊँ उसका प्रयत्न तो हमेशा यह रहता है कि मैं दुखी हूँ तो कोई *बात नहीं मेरा पड़ोसी सुखी न हो जाये।*

दृष्टान्त– एक उपवन में एक साधु रहता था उसका एक शिष्य था गुरु के प्रति समर्पित। काफी समय के बाद एक दिन गुरु ने प्रसन्न होकर शिष्य को एक मंत्र दिया और कहा कि सवा हाथ जमीन लीपकर इस मंत्र को जपोगे तो जो तुम इच्छा करोगे तुम्हें प्राप्त हो जायेगा परन्तु

तुम्हारे से दुगुना पड़ोसी को मिल जायेगा। तब वह शिष्य बड़ा परेशान हुआ उसने अपनी पत्नि को सारी बात बता दी और कहा कि देख मैं तो बाहर जा रहा हूँ कमाने के लिए और तू इस मंत्र को मत जपना नहीं तो पड़ोसी के पास दुगुना हो जायेगा। जल्दी ही लौटूगाँ। ऐसा कहकर पति को गये काफी दिन बीत गये जब इसके भूखों मरने की नौबत आ गयी तो उसने सोचा पड़ोसी को दुगुना मिलता तो मिलने दो मैं तो भूखी नहीं मरूंगी तथा मेरी आवश्यकता तो पूरी हो जावेगी। इसलिए उसने सवा हाथ जमीन लीपकर मंत्र जपा और अपनी आवश्यकताएं पूरी करलीं। सुख से रहने लगी। कुछ दिन बाद जब उसका पति वापस आया तो उसने अपनी कोठी को नहीं देखा पड़ोसी की दो कोठियाँ दिखाई दे गयी वह बड़ा दुखी हुआ और अपनी पत्नी पर गुस्सा आया। घर के अन्दर जाकर कुछ न पूछ और पत्नी पर बरस पड़ा ईर्ष्या के कारण। सबसे पहले एक काम किया फौरन सवा हाथ जमीन लीपकर मंत्र जपा और कहा कि मेरा सब धन समाप्त हो जाय तो पड़ोसी का भी धन समाप्त हो गया। मेरी कोठी खत्म हो जाय तो पड़ोसी की दोनों कोठियां समाप्त हो गयीं मेरे आंगन में एक कुआँ खुद जाए पड़ोसी के दो कुऐं खुद गये। मेरी एक आँख फूट जाय पड़ोसी की दोनों आँख फूट गई। एक दिन तूफान आया पड़ोसी तो पहले ही अंधा था उसका तो कुछ नहीं बिगड़ा परन्तु इसकी एक आँख जो बची थी उसमें धूल के कण पड़ गये और दोनों आँख से अंधा होकर कुऐं में गिर पड़ा ईर्ष्या करने का फल मिल गया। बन्धुओ ईर्ष्या से कभी भी भला होने वाला नहीं।

ईर्ष्या छोड़ कर तृष्णा पर अंकुश लगाओगे तो इस संसार में कुछ प्राप्त कर पाओगे कुछ खोज पाओगे अन्यथा प्रतिस्पर्धा की दौड़ में ईर्ष्या के वशीभूत एक दूसरे के पीछे भागते रहोगे और अपना सब कुछ खो दोगे और एक दिन खाली हाथ जहाँ से आये थे। वही वापस चले जाओगे।

मेरा मेरा मत करे, तेरा नहिं है कोय।
चिदानन्द परिवारका, मेला है दिन दोय।।
ऐसा भाव निहार नित, कीजे ज्ञान विचार।
मिटे न ज्ञान विचार बिन, अंतर-भाव विकार।।

ज्ञान-रवि वैराग्य जस, हिरदे चंद समान।
तास निकट कहो क्यों रहे, मिथ्यात्म दु:ख जान।।

सप्तम अध्याय : पर्व

रक्षाबन्धन पर्व

रक्षा बन्धन त्यौहार है और त्यौहार को उत्सव, पर्व भी कहते हैं। पर्व दो प्रकार के होते हैं– (1) व्यक्ति विशेष से सम्बन्धित और (2) घटना विशेष से सम्बन्धित।

1. व्यक्ति विशेष– जो किसी विशेष व्यक्तित्व से संबंधित होते हैं जैसे महावीर जयन्ती, कृष्ण जन्माष्टमी, गुरु नानक जयन्ति आदि।
2. घटना विशेष– जो किसी घटना से संबंधित होते हैं जैसे 15 अगस्त, 2 अक्टूबर 26, जनवरी, रक्षाबन्धन, दशहरा, दीपावली आदि। इसके दो भेद हैं–

   धार्मिक और जातीय अथवा राष्ट्रीय।

15 अगस्त, 26 जनवरी, 2 अक्टूबर आदि राष्ट्रीय पर्व हैं और रक्षाबन्धन, दशहरा, दीपावली, होली आदि धार्मिक पर्व हैं। इनमें होली शूद्रों का प्रिय उत्सव है। दशहरा राजपूतों का मुख्य उत्सव है, रक्षाबन्धन और दीपावली सभी अपनी-अपनी मान्यता के अनुसार मनाते हैं।

आज हम लोग रक्षा बन्धन पर विचार करेगें। रक्षाबन्धन उत्सव कब से और क्यों मनाया जाता है? इससे हमारे जीवन में क्या शिक्षा मिलती है? श्रावण शुक्ल पूर्णिमा का क्या महत्व है?

जैसे भड़भूजा मक्का के दाने भूनता है और वह बर्तन का मुंह भी ढक देता है उसके बाद भी कुछ दाने उछल कर बाहर निकल आते हैं ठीक इसी प्रकार नित्य निगोद से यह जीव बाहर निकल व्यवहार राशि में आता है और अधिकतम 2000 सागर से कुछ अधिक में अपना कल्याण करके मोक्ष प्राप्त कर लेता है अन्यथा वह वापस इतर निगोद में चला जाता है। वहाँ कोई पुद्गल परिवर्तन काल तक एक श्वास में अठारह बार जन्म-मरण के दुःखों को भोगता है। इसके बाद पुरुषार्थ करके फिर बाहर निकलेगा और अगर फिर भी कल्याण नहीं कर पाया तो फिर इतर निगोद जाना पड़ेगा इसी प्रकार जीव आता-जाता रहेगा जब तक वह अपना कल्याण नहीं कर लेता। आवागमन से छुटकारा पाने के लिए जरूरी है सम्यग्दर्शन को प्राप्त करना। इस सम्यग्दर्शन के आठ अंग हैं– इसके आठ अंगों में एक वात्सल्य अंग है, जिसका सम्बन्ध रक्षा बन्धन पर्व से है। आचार्य समन्तभद्र ने इस अंग के विषय में रत्नकरण्डश्रावकाचार में लिखा है–

स्वयूथ्यान्प्रति सद्भावसनाथापेत कैतवा।
प्रतिपत्ति-र्यथायोग्यं वात्सल्यमभिलप्यते ।।10

अपने सहधर्मियों के प्रति सरलता सहित मायारहित यथायोग्य आदर सत्कार आदि करना वात्सल्य अंग है।

धर्म और धर्मात्माओं में अन्त:करण से अनुराग करना भक्ति एवं सेवा करना किसी प्रकार के उपसर्ग आने पर अपनी शक्ति अनुसार उसे दूर करने का प्रयत्न करना और गाय-बछड़े जैसी प्रीति रखना आदि भाव वात्सल्य भाव होते हैं। अपने मतावलंबियों के प्रति आदर भाव रखना और अन्य मतावलंबियों का अनादर न करना तटस्थ रहना निश्चय से अपनी आत्मा की वैय्यावृत्ति करने वाला वात्सल्य भावी कहलाता है। पर्याय पर दृष्टि न रखकर द्रव्य पर दृष्टि रखना। इस भाव में मुनि विष्णुकुमार का नाम सर्वोपरि है।

भरतक्षेत्र में अवन्ति देश की उज्जयिनी नगर के राजा श्री वर्मा और रानी श्री मति थे। उनके चार मंत्री बलि, बृहस्पति, प्रहलाद और नमूचि थे। राजा और रानी दोनों महान विद्वान और धर्मात्मा थे तथा धर्मात्मा ज्ञानी जनों के प्रति अनुराग रखते हैं। प्रजा से पुत्रवत् प्रेम करते थे इनके चारो मंत्री अधर्मी अर्थात् धर्म विरोधी थे। धर्मात्मा जनों से द्वेष भाव रखते थे। एक दिन अकम्पनाचार्य 700 मुनियों के साथ विहार करते हुए उज्जयिनी नगरी आये और नगर से बाहर ठहर गये। अकम्पनाचार्य निमित्त ज्ञानी थे उन्हें अपने निमित्त ज्ञान से ज्ञात हुआ कि इस क्षेत्र में कुछ अनर्थ भी हो सकता है इसलिए उन्होंने अपने संघ के मुनियों से कहा कि राजादि कोई भी दर्शनार्थी आवे तो उनसे वाद-विवाद नहीं करना अन्यथा सारे संघ पर संकट आ सकता है। गुरु की आज्ञा मानकर सभी मौन पूर्वक ध्यान में बैठ गये। नगर निवासी आचार्य वन्दना हेतु आये राजा ने अपने महल से प्रजा को नगर से बाहर जाते देखा तो मंत्रियों से पूछा कि सभी लोग नगर के बाहर क्यों जा रहे हैं? तब मंत्री ने कहा कि नगर के बाहर जैन मुनियों का संघ आया है। उनकी वन्दना को सभी लोग जा रहे हैं तब राजा ने कहा कि वे तो महापुरुष होंगे उनके दर्शनार्थ हमें भी जाना चाहिए ऐसा विचार कर राजा अपने मंत्रियों के साथ आचार्य वन्दना को गये और वहाँ सभी मुनियों को ध्यान में बैठे देखकर बहुत प्रसन्न हुए। राजा ने सभी मुनियों को **'नमोऽस्तु'** कहा सभी मुनि आचार्य की आज्ञा से मौन ध्यान में मग्न थे किसी ने कुछ भी नहीं कहा राजा वन्दना करके वापस चल दिया। रास्ते में मंत्रियों ने कहा कि हे राजन्! साधु बेचारे बोलना तक नहीं जानते कितने मूर्ख हैं। इसलिए सब मौन बैठे हैं। इस प्रकार मंत्रि मुनियों की निन्दा करते हुए वापस आ रहे थे। रास्ते में एक मुनिराज जो नगर से आहार लेकर आ रहे थे मिल गये तब उन्हें देखकर बोले देखो एक बैल पेट भरकर आ रहा है। मंत्रियों के ऐसा वचन सुनकर वे मुनिराज शान्त न रह सके और बोले कि तुम व्यर्थ ही किसी की निन्दा क्यों करते हो? यदि तुम्हें विद्या बल है तो मुझसे शास्त्रार्थ करो और इस प्रकार मुनि श्रुतसागर ने उन मंत्रियों को शास्त्रार्थ कर परास्त किया और संघ में जाकर आचार्य से सारी घटना बताई तब आचार्य ने आज्ञा दी कि जहाँ पर तुम्हारा शास्त्रार्थ हुआ है वही वापस लौट जाओ तुमने उनके साथ शास्त्रार्थ कर के बहुत

बुरा किया है। वही जाकर ध्यान में लीन हो जाओ। मुनिराज संघ की रक्षा हेतु उसी स्थान पर वापस जाकर ध्यानस्थ हो गये। अपने अपमान का बदला लेने चारो मंत्री अर्द्धरात्रि के समय निकले और रास्ते में मुनि को देखकर बोले यही है पहले इसे ही परलोक पहुँचा दो फिर आगे देखेंगे और मस्तक छेदन करने के लिए ज्यों ही तलवार उठाई वन देवता ने उन्हें कीलित कर दिया। सुबह उन्हें धिक्कारा। राजा ने उन्हें राज्य से बाहर निकाल दिया। इस घटना को देखकर लोगों में धर्म के प्रति आस्था और बढ़ गई। मुनि संघ का उपसर्ग दूर हुआ। अकम्पनाचार्य अपने संघ के साथ विहार कर गये। हस्तिनापुर नगर के राजा महापद्म एवं रानी लक्ष्मीबती के दो पुत्र पद्म व विष्णुकुमार थे। एक दिन संसार की दशा पर चिन्तन करते उसकी अनित्यता को देखकर वैराग्य हो गया उसी समय राजा महापद्म और विष्णुकुमार दोनों ने जंगल में जाकर मुनि दीक्षा ग्रहण कर ली और घोर तप करने लगे। महापद्म के दीक्षा लेने पर राज्य पद्म को मिला हस्तिनापुर का राजा पद्म हुआ। राजा पद्म को सिंहबल राजा परेशान किया करता था। इसी समय चारों मंत्री विचरण करते हस्तिनापुर पहुँच गये वहाँ उन्हें ज्ञात हुआ कि राजा पद्म सिंहबल से परेशान है तो चारों मंत्री राजासे मिले राजा से मंत्रणा करके सेना लेकर सिंहबल से युद्ध किया और उसे बन्दी बना कर राजा के सामने प्रस्तुत किया। तब राजा प्रसन्न होकर बोले कि तुम्हें जो चाहिए दिल खोल कर मांग सकते हो। मंत्रियों ने कहा जब हमें आवश्यकता होगी हम मांग लेगें। राजा पद्म वचन बद्ध हो गये। होनहार बलवान होती है, अकम्पनाचार्य अपने संघ के साथ विहार करते हुए हस्तिनापुर पहुँच गये और हस्तिनापुर के उपवन में स्थित हो गये संघ को देखकर मंत्रियों के मन में बदले की भावना जागृत हो गई। उन्होंने आपस में परामर्श किया और विचारा कि राजा तो मुनियों का परम भक्त है इसलिए राजा से कहा कि हे राजन्! हमारी धरोहर हमें चाहिए। राजाने कहा क्या चाहिए? सात दिन का राज्य चाहिए। इस प्रकार मंत्री बलि ने सात दिन का राज्य प्राप्त कर लिया और मुनियों पर उपसर्ग शुरु कर दिया। यज्ञ मंडप की रचना करके मुनियों के चारों ओर हवनकुण्ड बनवा दिये और उसमें पशुओं के मांस की आहुति देने लगे। चारों और मांस के जलने से दुर्गन्ध फैल गई तब सभी मुनियों ने उपसर्ग दूर होने तक चारों प्रकार के अन्न जल का त्याग करके ध्यान में बैठे गये और इस उपसर्ग को समता से सहन करने लगे। हस्तिनापुर की जनता राजा के पास पहुँची राजा पद्म ने अपनी असमर्थता जाहिर कर दी तब सारी जनता ने भी अन्न जल का त्याग कर दिया और संकल्प किया कि उपसर्ग दूर होने पर मुनियों को आहार करा कर ही अन्न जल ग्रहण करेंगे। मिथिला नगरी में निमित्त ज्ञानी श्रुत सागर मुनिराज ने रात्रि में तारे की ओर देख कर जाना कि मुनियों पर घोर उपसर्ग हो रहा है इसलिए वेदना से उनके मुख से आह निकली। उनके पास क्षुल्लक पुष्पदन्त जी थे। उन्होंने आह सुनकर

पूंछा हे मुनिवर क्या कारण है आप के मुख से आह क्यों निकली? तब मुनिराज श्रुतसागर ने बताया कि हस्तिनापुर में 700 मुनियों पर घोर उपसर्ग हो रहा है। हे देव! इस का उपाय क्या है? मुनि विष्णुकुमार कैलाश पर्वत पर तप कर रहे हैं उन्हें विक्रिया ऋिद्धि प्राप्त हो चुकी है वे इस उपसर्ग को दूर कर कर सकते हैं। पाठकों को ज्ञात हो कि रात्रि में मुनिराज मौन रहते हैं परन्तु आगम में ऐसा उल्लेख आया है कि दूसरे के हितार्थ साधुजन कदाचित रात्रि को भी बोल सकते हैं। (पद्म पुराण 48/38) इसलिए आप जाइये और उनसे कहिये। उन्हें मालूम नहीं कि उन्हें विक्रिया ऋद्धि प्राप्त हो गई है इसलिए उन्हें बताना। इस प्रकार क्षुल्लक पुष्पदन्त आकाशगामिनी विद्या द्वारा उसी समय कैलाश पर्वत पर गये और विष्णु कुमार मुनि को सारी बात बताई तब विष्णुकुमार मुनि ने ऋद्धि की परीक्षा हेतु हाथ बढ़ाया तो उनका हाथ मानुषोत्तर पर्वत तक पहुँच गया। इस प्रकार मुनि विष्णुकुमार हस्तिनापुर राजा पद्म के पास पहुँचे राजा पद्म ने कहा कि मैं मजबूर हूँ मैंने राज्य सात दिन के लिए बलि को दे दिया है। मैं कुछ नहीं कर सकता आप ही इसका निवारण कीजिये। तब मुनि विष्णुकुमार वामन ब्राह्मण का रूप बनाकर दरबार में पहुँचे और राजा बलि से दान में तीन पग धरती माँगी और बलि के संकल्प करने पर अपना आकार इतना बढ़ा लिया कि दो पग में मानुषोत्तर पर्वत तक पूरी धरती नाप ली तथा तीसरा पग कहाँ रखूँ पूंछा तब बलि ने कहा हे स्वामिन्! मुझे क्षमा करें और चरणों में गिर पड़ा तब मुनि विष्णुकुमार ने उससे सभी मुनियों का उपसर्ग दूर कराया सभी मंत्री व राजा सहित सारी प्रजा ने अकम्पनाचार्य की भक्ति पूर्वक वन्दना की और क्षमा माँगी। मुनि विष्णुकुमार वापस मुनि धर्म अंगीकार कर के तपस्या में लीन हो गये। इधर धुयें से सभी मुनियों के गले खराब हो गये थे इसलिए सभी नगर वासियों ने दूध और सेवई का आहार बनाया और पड़गाहन करके सभी मुनियों को आहार कराया। यह उपसर्ग श्रावण शुक्ला पूर्णिमा को दूर हुआ था इसीलिए आज के दिन सेवई, खीर आदि मिष्ठान बनाये जाते हैं। मुनि तो 700 थे परन्तु घर हजारों थे इसलिए प्रत्येक घर में मुनि का आहार न होने से कुछ श्रावक बाकी बच गये वे श्रावक बिना मुनि को आहार दिये कैसे आहार ग्रहण करें तब यह व्यवस्था निश्चित हुई कि सभी अपने-अपने दरवाजे पर सोन बना कर भोग लगा दें और आहार ग्रहण कर लें। इसके साथ-साथ एक परम्परा और चल पड़ी हाथ में रक्षासूत्र बाँधने की कि जिस प्रकार मुनि विष्णुकुमार ने उन 700 मुनियों का उपसर्ग दूर किया था उसी प्रकार मेरा भी ध्यान रखना कोई विपत्ति के आने पर मुझे भी अभय दान दिलाना। अनन्तर ब्राह्मणों ने इसको आमदनी का साधन बना लिया। इसी परम्परा से रानी पद्मिनी ने हुमाऊँ को रक्षा सूत्र भेजकर सबको अभय दान दिलाया था।

बन्धुओ, मुनि विष्णुकुमार हमेशा आत्मध्यान में लीन रहते थे। इतने वीतरागी थे कि उन्हें यह भी नहीं मालूम था कि उन्हें विक्रिया ऋद्धि प्राप्त हो गई है यह भी बताने पर ज्ञात हुआ। जो

कार्य उनके करने का नहीं था वह उन्होंने वात्सल्य भाव के कारण किया। अपनी दीक्षा का छेदन कर मुनियों की रक्षा की और फिर द्वारा दीक्षा ग्रहण करके आत्म साधना में लीन हो गये।

आप भी मुनि विष्णुकुमार की तरह अपने अन्दर वात्सल्य भाव पैदा करें और प्राणी मात्र को अभय दान देकर अपने लिए कल्याण का मार्ग प्रशस्त करें। कोई भी अज्ञानी हो अल्पज्ञानी हो उसे गले से लगाये जिनका कोई सहारा न हो उनका सहारा बन जाओ अपने अन्दर करुणा पैदा कर लो, जन-जन में करुणा का बीज बो दो तभी यह रक्षाबन्धन पर्व मनाना वास्तव में सार्थक होगा।

जो विद्या के मदसे गर्विष्ठ होकर अपनेको पण्डित मानता है और प्रशंसा, पूजा, धन, भोजन, औषधि वगैरह के लाभ की भावना से जैन शास्त्रों को पढ़ता तथा पढ़ाता है और सम्यग्दृष्टि, श्रावक तथा मुनियों का विरोधी रहता है उसका शास्त्रज्ञान भी विष के तुल्य है; क्योंकि वह संसार के दु:खों का ही कारण है। कहा भी है-'ज्ञान घमण्ड को दूर करता है। किन्तु जो ज्ञान को ही पाकर मद करता है उसका इलाज कौन कर सकता है। यदि अमृत ही विष हो जाये तो उसकी चिकित्सा कैसे की जा सकती है।

— कार्तिकेय

वीरनिर्वाण दिवस (दीपावलि)

दीपावलि का त्यौहार मनाने के सम्बन्ध में कई जिज्ञासाएं उत्पन्न होती हैं। दीपावलि क्यों आज ही मनाई जाती है। इसका क्या महत्त्व है, इसको किस प्रकार मनाना चाहिए इत्यादि।

ईसवीं सन् से लगभग 521 वर्ष पूर्व भगवान महावीर ने जृम्भिक ग्राम के निकट शाल वृक्ष के नीचे केवलज्ञान प्राप्त किया। केवलज्ञान प्राप्त करते ही भगवान महावीर स्वामी 5000 धनुष की ऊँचाई पर अधर विराजमान हो गये। देव आये और केवलज्ञान की पूजा करके समवशरण की रचना की।

समवशरण में आठ भूमियाँ होती हैं, जिनके नाम इस प्रकार हैं– चैत्य प्रसाद भूमि, खातिक भूमि, तता भूमि, उपवन भूमि, ध्वज भूमि, कल्प भूमि, भवन भूमि और श्री मण्डप भूमि। सात भूमियों में अनेक वादियाँ, नाट्य शालायें मानस्तम्भ आदि होते हैं। नाट्य शालाओं में चारों प्रकार की देवियाँ नृत्य करती है। अभव्य जीव इन्हीं वापियों, नाट्य शालाओं में उलझ कर रहा जाता है। अत्यन्त भावुक और श्रद्धालु व्यक्ति ही अष्टम भूमि में प्रवेश कर पाता है। अष्टभूमि के बीच में गन्ध कुटी होती है जिसमें कमल के ऊपर भगवान अधर विराजमान होते हैं समवशरण के माहात्म्य से भगवान का मुख चारों दिशाओं में दिखाई देता है। अष्टम-भूमि तक पहुँचने के लिए 20,000 सीढ़ियाँ चढ़नी पड़ती हैं। अष्टम भूमि में 12 सभायें होती हैं। जिनमें क्रमशः गणधर आदि मुनिजन, कल्पवासी देवियाँ, आर्यिकायें व श्राविकायें, ज्योतिष्कि देवियाँ, व्यन्तर देवियाँ, भवनवासी देवियाँ, भवन वासी देव, व्यन्तर देव, ज्यातिष्कि देव, कल्पवासी देव, मनुष्य व तिर्यंच बैठते हैं। इन बारह सभाओं में मिथ्यादृष्टि अभव्य और असंज्ञी जीव कदापि नहीं होते। समवशरण में जिन भगवान के माहात्म्य से आतंक, रोग, मरण, बैर, काम बाधा, तृष्णा, पिपासा और क्षुधा आदि पीडाएं नहीं होती हैं।

सप्तभंगी में सर्वार्थसिद्धि नाम के अनेक स्तूप होते हैं जिन्हें अभव्य जीव नहीं देख पाते क्योंकि उनके प्रभाव से उनके नेत्र अंधे हो जाते हैं। अष्टम भूमि में सभी प्रकार के जीव भगवान की दिव्यध्वनि सुनकर अपना कल्याण कर लेते हैं। गन्ध कुटी में विराजमान भगवान के आभा मण्डल में प्रत्येक प्राणी अपने एक साथ सात भव (3 भूत, 3 भविष्य और एक वर्तमान) का अवलोकन करता है। इस प्रकार भगवान समवशरण की अभूत पूर्व सम्पदा के साथ स्थान-स्थान पर विहार करते धर्म देशना देते हुए लगभग 30 साल का समय व्यतीत करके पावा नगर के मनोहर उद्यान में आये।

भगवान महावीर स्वामी के समवशरण में 11 गणधर सहित चौदह हजार सभी प्रकार के मुनि, छत्तीस हजार आर्यिकायें प्रधान गणिनी चन्दना सहित, मुख्य श्रोता राजा श्रेणिक के साथ एक लाख श्रावक, तीन लाख श्राविकायें तथा अनेक देव, देवियाँ तथा तिर्यंच आदि उपस्थित थे। मुख्य गणधर इन्द्रभूति गौतम ब्राह्मण थे। ग्यारह गणधर के नाम इस प्रकार थे- 1. इन्द्रभूति 2. अग्निभूति 3. वायुभूति 4. शुचिदत्त 5. सुधर्म स्वामी 6. माण्डव्य 7. मौर्य पुत्र 8. अकम्पित 9. अचल भ्राता 10. मेतार्य 11. प्रभास।

भगवान महावीर स्वामी उद्यान के मध्य सरोवर के बीच में दो दिन को योग निरोध कर शिला कर विराजमान हो गये। तृतीय शुक्ल ध्यान सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाती में निरत हो योगत्रय का निरोध कर चतुर्थ शुक्ल ध्यान समुच्छिन्नक्रियानिवृत्ति (व्युपरतक्रियानिवृत्ति) में स्थित होकर चारों अघातिया कर्मों का क्षय करके कार्तिक कृष्ण अमावश्या को प्राप्त:काल स्वाति नक्षण में अकेले निर्वाण को प्राप्त हुए। उत्तरपुराण में ऐसा कथन आया है कि वे एक हजार मुनियों के साथ निर्वाण को प्राप्त हुए।

देवों व मनुष्यों ने आकर उसी समय भगवान के निर्वाण कल्याणक की पूजा रत्नों की ज्योति के प्रकाश में की थी। घरों और नगरों को सजाया गया आपस में भगवान के निर्वाण की खुशियाँ मनाई गयी तरह-तरह की मिठाइयाँ बाँटी गयी और भगवान के मोक्ष कल्याणक की पूजा अष्ट द्रव्य से करके निर्वाण फल के रूप में नारियल, बादाम आदि सूखे फल चढ़ाये गये।

इस अवसर पर सचित्त फल तथा मिठाईयाँ भगवान के पादमूल में नहीं चढ़ाना चाहिए। निर्वाण दिवस के उपलक्ष्य में लड्डू चढाना उचित नहीं, क्योंकि निर्वाण तो साधना का फल है। इसलिए सूखे अचित्त फल ही चढाना चाहिए। जैसे भगवान महावीर के जीवन में केवलज्ञान का दिव्य प्रकाश फैल गया था उसका फल निर्वाण प्राप्त हुआ इसी प्रकार हमें भी अपने जीवन में ज्ञान का प्रकाश आलोकित कर निर्वाण फल को प्राप्त करने का उद्यम करना चाहिए।

कार्तिक कृष्ण अमावश्या को सायंकाल गौतम गणधर इन्द्रभूति को केवलज्ञान प्राप्त हुआ तब देवों ने रत्नों की ज्योति प्रकाशित करके केवलज्ञान की पूजा की।

भगवान महावीर स्वामी के निर्वाण के बाद 62 वर्षों में क्रमवार गौतम गणधर इन्द्रभूति, सुधर्माचार्य, जम्बूस्वामी तीन केवली हुए और इनके बाद नन्दि, नन्दि मित्र, अपराजित, गोवर्द्धन और भद्रबाहु ये पाँच श्रुतकेवली हुए इनके बाद इस पंचमकाल में कोई भी केवली नहीं हुआ।

भगवान महावीर के निर्वाण जो कि विक्रम संवत् से 470 वर्ष पूर्व हुआ था को वीर निर्वाण संवत प्रारम्भ हुआ। जोकि सबसे प्राचीन संवत्सर है। इस दिवस को अमंगल नाशक मान कर भव्यलोग अपने कार्य इसी दिवस से प्रारम्भ करते हैं।

इस दिवस की अन्य मतों में विभिन्न धारणायें बनी हुई हैं। जब कौशल नरेश रामचन्द्र जी सीता और लक्ष्मण के साथ चौदह वर्ष के वनवास की अवधि समाप्त करके अयोध्या वापस आये थे तो उनके वापस आने की खुशी में अयोध्या नगर को खूब सजाया था और दीपमालाएं प्रज्वलित करके अपनी खुशियाँ प्रकट की थी उसी परम्परा में आज भी अन्य मतावलम्बी दीपक जलाकर इस दिवस को मनाते हैं और उसका नाम दीपावली रख दिया।

एक अन्य जनश्रुति यह है कि राम के राज्याभिषेक के समय आयोध्यावासियों ने राज्याभिषेक की खुशी में नगर को सजाया था तथा दीपमाला जलाई थी सो उस दिन से दीपावली के रूप में मनाते चले आ रहे हैं। परन्तु ऐसा उल्लेख न तो वाल्मीकि ने किया है और न ही उनके बाद तुलसीदास ने अपने ग्रन्थों में किया।' अगर ऐसा होता तो दोनों कवियों की लेखनी इस बात की कहीं तो पुष्टि करती।

कुछ लोग स्वामी दयानन्द सरस्वती का निधन इस दिन बताते हैं और भी अनेक जन श्रुतियाँ हैं परन्तु जैन इतिहास के अनुसार इस त्यौहार का प्रारम्भ निर्वाण दिवस के रूप में भगवान महावीर स्वामी के निर्वाण से हुआ।

दीपावलि के अवसर पर नाना प्रकार के खिलौने तथा हठरी जोकि मकान का प्रतिरूप होती है बाजार में बिकने आते हैं। हठरी समवशरण का प्रतीक है। भगवान ने जिस समय उपदेश दिया उसमें सभी जाति और वर्ग के मनुष्य, पशु पक्षी आदि विद्यमान थे और उनके एक स्थान पर एकत्रित होने के लिए समवशरण की रचना की गई उसी समवशरण की प्रतीक हठरी बाजार में बिक्री के लिए आती है जिसे लोग अपने घरों को पुताकर संजोकर रखते हैं।

दीपावलि का त्यौहार भगवान महावीर स्वामी की सर्वज्ञता का परिचायक है। उन्होंने आत्म-पवित्रता पर विशेष बल दिया। लोगों ने आरम्भ में मोक्ष रूपी लक्ष्मी की पूजा का विधान रखा। कालदोष के कारण लोगों की मनोवृत्ति दूषित हुई। वे द्रव्य पूजा और याचना करने लगे ताकि लक्ष्मी देवी जब रात में उनके घर के द्वार पर पधारें तो उन्हें जागृत या सतर्क पाकर उन्हें कृतार्थ करें।

दीपावलि का मंगलमय पर्व आत्मिक-स्वाधीनता का दिवस है। उसी दिन संध्या के समय प्रमुख शिष्य गौतम गणधर को कैवल्य लक्ष्मी की प्राप्ति हुई थी इस कारण दिव्यात्माओं के साथ

मानवों ने केवलज्ञान-लक्ष्मी की पूजन की थी। इस तत्त्व को न जानने वाले पैसे की पूजा करके अपने को कृतार्थ मानते हैं।

यथार्थ में यह पर्व आत्मा को राग-द्वेष, दीनता, दुर्बलता, क्रोध, मान, माया, लोभ आदि विकारों से बचाकर जीवन को उज्ज्वल प्रकाशमय तथा सद्गुण सुरभि सम्पन्न बनाने में है।

कुछ लोग दीपावली के पवित्र दिवस पर जुआ खेलकर शकुन मनाते हैं। किसी किसी जगह बच्चे पटाखे आदि आतिशबाजी भी छोड़ते हैं। ये सब कुप्रथायें हैं।

इस पर्व पर दीप जलाना, जुआ खेलना, रात्रि में द्रव्य से पूजन करना, पटाखे जलाना, लड्डू चढ़ाना आदि अनेक कुप्रथाओं में न पड़कर भगवान के निर्वाण कल्याणक का पूजन चावल, बादाम, लोंग एवं गोले की चटक बनाकर प्रासुक जल लेकर करना चाहिए निर्वाण कल्याणक का अर्घ चढ़ाने से पूर्व निर्वाणकाण्ड अवश्य पढ़ना चाहिए। निर्वाण फल में बादाम, गोला आदि सूखे फल चढ़ाने चाहिए और भावना भानी चाहिए कि हे भगवान! जिस प्रकार आपको मोक्ष लक्ष्मी की प्राप्ति हुई है उसी प्रकार हमे भी मोक्ष लक्ष्मी की प्राप्ति होवे।

इस प्रकार भावना भाने से एक दिन कर्मों की श्रृंखला टूट जायेगी और मोक्ष लक्ष्मी की प्राप्ति हो जायेगी।

जो परिहरेइ संतं तस्य वयं थुब्बदे सुरिंदो वि।
जो मण-लड्डु व भक्खदि तस्स वयं अप्प-सिद्धियरं।।

जो पुरुष विद्यमान वस्तुओं को छोड़ देता है उसके व्रत की सुरेन्द्र भी प्रशंसा करते हैं। और जो मनके लड्डु खाता है उसका व्रत अल्प सिद्धिकारक होता है।

– कार्तिकेय

भगवान महावीर जयन्ती

महावीर का जन्म दिवस भगवान महावीर जयन्ती है। भगवान महावीर कौन थे, इनकी जयन्ती क्यों मनाई जाती है, और जयन्ती मनाने की सार्थकता क्या है, इत्यादि विषयों पर इस इिन विचार किया जाता है।

बन्धुओ, सर्व प्रथम प्रश्न यह उठता है कि जयन्ती किनकी मनाई जाती है? जय+अन्ती अर्थात् विजय का अन्त अथवा जिसको जीतना कुछ भी शेष न हो। जिसने जन्म पर विजय पा ली हो पुन: जिनका जन्म न हो उसकी जयन्ती मनाई जाती है। भगवान महावीर ने जन्म-मरण का अन्त करके मोक्ष को प्राप्त कर लिया है इसलिए उनकी जयन्ती मनायी जाती है। जिनके निमित्त से जीव संसार में भ्रमण करता है उन्होंनें ऐसे आठों कर्मों का क्षय कर दिया है और इनके क्षय होने से जन्म का अभाव हो गया है और जिसका जन्म नहीं होता उसको जन्म, जरा मृत्यु तीनों रोगों से मुक्ति मिल जाती है ऐसे महान् आत्माओं की जयन्ती और निर्वाण दिवस मनाया जाता है।

आज से 2600 वर्ष पूर्व भारत में चारों और हिंसा असत्य, शोषण, अनाचार का खुला ताण्डव हो रहा था जनता त्राहि-त्राहि कर रही थी। ब्राह्मण संस्कृति श्रमण संस्कृति पर आधिपत्य जमा रही थी। जाति भेद की दुर्गन्ध से देश के प्राण घुट रहे थे। ईर्ष्या, द्वेष, अहंकार, लोभ, अज्ञान, अकर्मण्यता, क्रूरता और धूर्ततादि दुर्गुणों से ब्राह्मण पतित हो रहे थे। धर्म के नाम पर चारों ओर अधर्म और विकृतियों ने मानव को ग्रसित कर रखा था। धर्मान्ध प्राणी खुले आम यज्ञ में घृत, मधु आदि के साथ पशुओं का होम करते थे और घोषणा करते थे कि भगवान ने पशुओं को यज्ञ में होम करने के लिए ही बनाया है। यज्ञ में की जाने वाली हिंसा, हिंसा नहीं अहिंसा है। शस्त्र द्वारा मारने पर जीव को दु:ख होता है। शस्त्र द्वारा बध करना पाप है। हिंसा है और मंत्र द्वारा जो जीव मारा जाता है वह लोक धर्म कहलाता है। इस प्रकार ब्राह्मण धर्मानुष्ठान के उच्च अधिकारी बनकर मानव-अधिकारों का दिन-दहाड़े हनन करते थे। चारों तरफ अराजकता का साम्राज्य बढ़ता जा रहा था। मानवता कराह रही थी। जनता की आस्था धर्म से उठ चुकी थी। मूक पशुओं की हत्या और उनके आक्रंदन आदि से पृथ्वी तिलमिला उठी थी मानव का कोई मूल्य नहीं था।

नारी की स्थिति बड़ी ही भयानक एवं दयनीय थी। स्त्रियों को धर्म साधन करने एवं वेदादि की उच्चशिक्षा ग्रहण करने का कोई अधिकार नहीं था। स्त्री स्वतंत्र नहीं थी। शूद्रों व स्त्रियों को वेदादि धार्मिक पुस्तकों को पढ़ने का अधिकार नहीं था। ये पद दलित एवं नीच समझे जाते थे।

इनकी छाया पड़ने पर उन्हें दण्डित किया जाता था तथा स्पर्श होने पर सचेल स्नान किया जाता था शूद्र को वेद की ऋचाएं सुनने पर कानों में सीसा भरने, बोलने पर जीभ काटने और ऋचाओं के कंठस्थ करने पर शरीर नष्ट करने का कठोर विधान था।

यद्यपि 23वें तीर्थंकर पार्श्वनाथ के निर्वाण को अभी पूरे दो सौ वर्ष भी नहीं व्यतीत हुए थे। फिर भी उनके संघ एवं धर्म की स्थिति बड़ी ही दयनीय हो गई थी। तात्कालिक क्रियाकाण्डों के प्रभाव से जैनधर्म भी अछूता नहीं बचा था उसमें भी वर्ण और जाति भेद के संस्कारों का प्रभाव किसी न किसी रूप में प्रविष्ट हो गया था। पार्श्वनाथ परम्परा के श्रमणों में भी शैथिल्य प्रविष्ट हो गया था इसलिए हिंसक क्रिया-काण्डों को मिटाना उनके लिए संभव नहीं था। कई स्थानों पर प्रजातंत्रात्मक गणराज्य थे जिनका शासन अपेक्षाकृत सुख-शान्ति सम्पन्न था परन्तु याज्ञिक क्रियाकाण्डों में होने वाली हिंसा का तांडव दूर नहीं हुआ था और न उन राज्यों में ऐसी शक्ति थी, जो उन याज्ञिक क्रियाकाण्डों से पशु हिंसा का निवारण कर पशुओं को अभयदान दिला सकें क्योंकि अशक्य आत्मा अपना स्वंय भी उत्थान नहीं कर सकती फिर अन्य के करने का प्रश्न ही नहीं उठता। उस समय देश का वातावरण विषम हो रहा था ऐसे समय में ऐसे योग्य नेता की आवश्यकता थी जो आत्मबल से क्रान्ति ला दे। याज्ञिक क्रियाकाण्डों का विरोध करके उन्हें अहिंसा के मार्ग पर ला दे। धर्म की यथार्थ परिभाषा का निरूपण कर दे। उत्थान का मार्ग सरल एवं सुलभ बना सके। ऐसे नेतृत्व की आवश्यकता थी जो हिंसा के ताण्डव को अहिंसा से बदल सके। जब अन्याय अत्याचार के साथ अधर्म की मात्रा अधिक हो जाती है तभी ऐसे नेता का प्रादुर्भाव होता है जो जन-जन में शान्ति की लहर फैला देता है। ऐसे ही समय जब मनुष्य का कोई मूल्य नहीं था विदेह देश की राजधानी वैशाली में महावीर का प्रादुर्भाव हुआ।

प्राचीन काल में वैशाली की महत्ता और प्रतिष्ठा शक्तिशाली गणतंत्र की राजधानी होने के कारण अधिक हो गई थी। इसे राजा विशाल की राजधानी बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। पालि ग्रन्थों के अनुसार दीवारों को तीन बार हटा कर विशाल करना पड़ा इसीलिए इसका नाम वैशाली पड़ा जान पड़ता है। वैशाली में अनेक उपनगर होने से इन की शोभा अनुपम थी यहाँ चातुर्वर्ण के लोग निवास करते थे और वैभव अपूर्व था।

यहाँ की शासक जाति मुख्य लिच्छवी, उच्च वंशीय क्षत्रिय थे। ये अपनी वीरता, धीरता दृढ़ता, सत्यता और पराक्रमादि के लिए प्रसिद्ध थे। इनकी शासन प्रणाली, संगठन, रीति-रिवाज, धर्म आदि सभी उत्तम थे और इनका शरीर अत्यन्त तेज एवं ओज से परिपूर्ण था। एक दूसरे के सुख-दुख में काम आने वाले थे। ये एकता एवं न्याय प्रियता के कारण अजेय बने हुए थे। इस गणतंत्र के प्रधान राजा चेटक थे। इनकी रानी का नाम भद्र था जो कि महाविदुषी और शीलादि गुणों से परिपूर्ण थी। राजा चेटक के सात पुत्रियाँ – प्रियकारिणी (त्रिशला), सुप्रभा, प्रभावती,

मृगावती, ज्येष्ठा, चेलना और चन्दना तथा सिंह भद्र, धन दत्त, धन भद्र, उपेन्द्र, सुदत्त सुकुम्भोज, अकम्पन, पतंगक, प्रभंजन और प्रभास दस पुत्र थे। इनमें प्रियकारिणी (त्रिशला) का विवाह कुण्डपुर के नाथवंशीय राजा सिद्धार्थ, सुप्रभा का विवाह दशार्ण देश के कच्छ नगर के सूर्यवंशीय राजा दशरथ, प्रभावती का विवाह कच्छ देश देश के रोरु का नगर के राजा उदायन, मृगावती का विवाह कौशाम्बी के चन्द्रवंशीय राजा शतानीक से हुआ था। प्रभावती का दूसरा नाम शीलवती भी प्रसिद्ध हुआ है। गान्धार देश के महीपुर नगर के राजा सत्यक ने ज्येष्ठा के न मिलने पर युद्ध किया और युद्ध में हार जाने पर दिगम्बर मुनिराज से दीक्षा ग्रहण की। ज्येष्ठा ने अपनी मामी यशस्वती आर्यिका से दीक्षा ग्रहण की। चेलना का विवाह मगध देश के राजा बिम्बसार (श्रेणिक) से हुआ। चन्दना ने यशस्वती आर्यिका से श्रावक व्रत ग्रहण किये।

एक दिन अशोक वन से चन्दना को विजयार्द्ध पर्वत की दक्षिण श्रेणी के सुवर्त नगर का राजा मनोवेग विद्याधर उठा ले गया। उधर मनोवेग की रानी ने आलोकनी विद्या द्वारा अपने पति की चेष्टा को जान कर क्रोधित हुई। मनोवेग ने अपनी स्त्री के डर के कारण चन्दना को पर्ण लघ्वी नामक विद्या के द्वारा भूत रमण बन में ऐरावती नदी के दाहिने किनारे छोड़ दिया। प्रातः काल कालक नाम भील ने चन्दना को भील कूट नामक पर्वत के पास भयंकर नामक पल्ली के स्वामी सिंह नामक भीलों के सरदार को सौंप दी। भीलों के सरदार ने चन्दना को वत्स देश के कौशाम्बी नगर के वृषभसेन सेठ के कर्मचारी मित्रवीर को दे दी। मित्रवीर ने भारी धन के साथ चन्दना अपने सेठ को सोंप दी वहाँ सेठानी भद्रा ने शंका वश चन्दना को सिर मुढ़ा कर सांकल में बाँधकर खराब भोजन और तांडन मारन आदि के द्वारा निरन्तर कष्ट पहुँचाए।

एक दिन भगवान महावीर के आहार के लिए आने पर दर्शन मात्र से सारे बंधन टूट गये और शरीर सुन्दर दिखने लगा तब चन्दना ने नवधा भक्ति पूर्वक आहार दिया। चन्दना को मृगावती अपने साथ ले गई। यही चन्दना दीक्षा लेकर गणिनी बनी।

सिंहभद्र वज्जिसंघ की सेना के सेनापति थे। इस प्रकार से राजा चेटक का परिवार खूब सम्पन्न था। वज्जिसंघ में 9 गणतंत्र सम्मिलित थे जिनमें वज्जि, लिच्छवि, ज्ञात्रिक, विदेह, उग्र, भोग और कौरवादि आठ जातियाँ शामिल थी। वज्जि लोगों में प्रत्येक गाँव का सरदार राजा कहलाता था। सभी राजा अपने-अपने गाँव के स्वतंत्र शासक थे। परन्तु राज्य का संचालन एक सभा (परिषद्) द्वारा होता था। यही परिषद् लिच्छवियों की प्रमुख शासन शक्ति थी। शासन प्रबन्ध के लिए नौ राजा चुने जाते थे।' इनका राज्याभिषेक एक पोखर के जल से होता था।

वैशाली गणतंत्र के अधिकांश निवासी अर्हन्त के उपासक थे उनमें तेइसवें तीर्थंकर भगवान पार्श्वनाथ का धर्म प्रचलित था। वैशाली के पश्चिम में गण्डक नदी के तट पर स्थित क्षत्रिय कुण्ड पुर, ब्राह्मण कुण्डपुर आदि उपनगर एवं शाखा नगर में क्षत्रिय कुण्डपुर के अधिनायक राजा

सिद्धार्थ थे। राजा सिद्धार्थ राजा सर्वार्थ और रानी श्रीमती के धर्म प्रवृत्ति के पुत्र थे। इनके दूसरे नाम श्रेयांस और यशांश का उल्लेख भी आता है। काश्यप वंशीय राजा सिद्धार्थ का विवाह वैशाली गणतंत्र के अध्यक्ष राजा चेटक की पुत्री प्रियकारिणी (त्रिशला) से सम्पन्न हुआ था। प्रिय कारिणी का नाम विदेहदत्ता भी मिलता है। राजा सिद्धार्थ नाथ क्षत्रियों के प्रमुख नेता शस्त्र व शास्त्र विद्या में पारगामी और भगवान पार्श्वनाथ के उपासक थे।

जम्बूद्वीप के विदेह क्षेत्र में सीता नदी के तट पर पुष्कलावती देश के पुण्डरीकिणी नगरी के मधुवन में पुरुरवा भील राजा था। उसकी स्त्री कालिका थी। एक दिन पुरुरवा भील ने सागर सेन मुनिराज से मद्य मांस मधु का त्याग कर दिया। नियम पालन कर अन्त में मरकर वह सौधर्म स्वर्ग में देव हुआ। वहाँ एक सागर की आयु पूर्ण कर जम्बूद्वीप भरत क्षेत्र की अयोध्या नगरी के राजा भरत की रानी अनन्त मति से मारिचि नामक पुत्र हुआ। बड़ा होकर अपने दादा आदिनाथ के साथ मुनि हो गया। उस समय आदिनाथ के साथ के चार हजार राजा दीक्षित होकर भूख प्यास की बाधा से भ्रष्ट हो गये। उनमें मारिचि ने कपिल आदि शिष्यों के साथ सॉख्य मत का उपदेश दिया जो कि आयु के अन्त में मरकर पाँचवे स्वर्ग में देव हुआ। वहाँ दस सागर की आयु पूर्ण करके साकेत नगर के कपिल ब्राह्मण की काली नामक स्त्री से जटिल नाम का पुत्र हुआ। तब परिव्राजक साँख्य साधु की दीक्षा लेकर साँख्य तत्वों का प्रचार किया और आयु के अन्तमें मरकर सौधर्म स्वर्ग में देव हुआ और वहाँ की दो सागर की आयु पूर्ण करके भरत क्षेत्र के स्थूणागार नगर में भारद्वाज ब्राह्मण की स्त्री पुष्प दत्ता से पुष्प मित्र नाम का पुत्र हुआ। फिर साँख्य मत का प्रचार करके आयु के अन्त में सौधर्म स्वर्ग का देव हुआ। वहां एक सागर की आयु पूर्ण कर जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र के सूतिका नगर में अग्निभूत ब्राह्मण की पत्नी गौतमी से अग्निसह नाम का पुत्र हुआ। फिर परिव्राजक दीक्षा लेकर साँख्य मत का प्रचार कर आयु के अन्त में सनतकुमार स्वर्ग में देव हुआ। वहाँ पर सात सागर की आयु पूर्ण करके इसी भरत क्षेत्र के मन्दिर नामक नगर के गौतम ब्राह्मण की स्त्री कौशाम्बी (कौशिकी) के अग्निमित्र नामक पुत्र हुआ। वहाँ भी साँख्य मत का प्रचार कर आयु के अन्त में मरण कर माहेन्द्र स्वर्ग में देव हुआ। वहाँ पर सात सागर की आयु पूर्ण करके अनेक योनियों में भ्रमण करता हुआ मगध (विहार) देश के राजगृह नगर के शाण्डिल्य ब्राह्मण की स्त्री पारशरी से स्थावर नाम का पुत्र हुआ। यहाँ भी सॉख्य मत का प्रचार कर आयु के अन्त में माहेन्द्र स्वर्ग में देव हुआ तत्पश्चात् सात सागर की आयु पूर्ण करके उसी राजगृह नगर के राजा विश्वभूति की रानी जैनी के गर्भ से विश्वनन्दी नामक पुत्र हुआ।

राजा विश्वभूति के छोटे भाई विशाखभूति के स्त्री लक्ष्मणा से विशाखनन्द मूर्ख पुत्र हुआ। राजा विश्वभूति ने छोटे भाई को राज्य सौंपकर तीन सौ राजाओं के साथ श्रीधर मुनिराज से दीक्षा ग्रहण कर ली। विश्वनन्दी युवराज ने चाचा के कपट को जानकर सम्भूत नामक मुनिराज से दीक्षा ग्रहण की। राजा विशाखभूति ने भी विशाखनन्दी को राज्य देकर दीक्षा ग्रहण कर ली। विशाख

नन्दी की मूर्खता के कारण उसे राज्य से निकाल दिया। विशाख नन्दी ने राजा के पास नौकरी कर ली। एक दिन राजा के कार्य से मथुरा नगरी गया वहाँ एक वेश्या के महल पर बैठा था कि मुनिराज विश्वनन्दी को आहार चर्या के लिए जाते हुए एक नव प्रसूता गाय के धक्का देने पर जमीन पर पड़े देखकर विशाखनन्दी के हंसने पर क्रोध आ गया। मन में बोले तुझे इस हंसी का फल अवश्य मिलेगा सो निदान बंध से मरण करके महाशुक्र स्वर्ग में देव हुए। मुनिराज विशाखभूति भी आयु के अन्त में महाशुक्र स्वर्ग में देव हुए। सोलह सागर की आयु पूर्ण करके विशाखभूति का जीव जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र के सुरम्य देश के पोदनपुर नगर के राजा प्रजापति की रानी जयावती से विजय नामक पुत्र हुआ। विश्वनन्दी का जीव उसी राजा की दूसरी रानी मृगावती के गर्भ से त्रिपृष्ठ नामक पुत्र हुआ। विजय ने बलभद्र और त्रिपृष्ठ ने नारायण पद प्राप्त किया। विशाखनन्दी का जीव अनेक कुयोनियों में भ्रमण करता हुआ विजयार्द्ध पर्वत की उत्तर श्रेणी की अलका नगरी के राजा मयूरग्रीवा की रानी नीलांजना से अश्वग्रीवा नामक पुत्र हुआ। इसने तीन खण्ड का राज्य तथा प्रतिनारायण पद प्राप्त किय।

विजयार्द्ध पर्वत के दक्षिण श्रेणी के रथनूपुर चक्रवाल नगर के राजा विद्याधर ज्वलन जटी की रानी वायुवेगा (द्युतिलक नगर के राजा विद्याधर एवं रानी सुभद्रा की पुत्री) के अर्ककीर्ति नामक पुत्र एवं स्वयंप्रभा नामक पुत्री हुए। पुत्री स्वयं प्रभा का विवाह त्रिपृष्ठ से हुआ इस कारण अश्वग्रीव और त्रिपृष्ठ में युद्ध हुआ। त्रिपृष्ठ ने अश्वग्रीव का बध करके तीन खण्ड का राज्य प्राप्त करके चक्रवर्ती और नारायण दोनों पद प्राप्त किये। आयु के अन्त में त्रिपृष्ठ मरकर सातवें नरक गया वहाँ की 33 सागर की आयु पूर्ण करके भरत क्षेत्र में गंगानदी के किनारे सिंह गिरी पर्वत पर सिंह हुआ वहाँ से पहले नरक गया। फिर जम्बूद्वीप में सिंह कूट के पूर्व में हिमवान् पर्वत पर सिंह हुआ। वहाँ पर दो चारण ऋद्धिधारी मुनिराजों अजितंजय और अमितगुण द्वारा संबोधन पाकर अहिंसा व्रत का पालन करते हुए आयु के अन्त में सौधर्म स्वर्ग में देव हुआ दो सागर की आयु पूर्ण करके धातकी खण्ड के पूर्व मेरु के पूर्व विदेह क्षेत्र के मंगलावती देश के विजयार्द्ध पर्वत की उत्तर श्रेणी में कनकप्रभ नगर के राजा कनकपुंख्य तथा महारानी कनक माला के कन्कोज्वल नाम का पुत्र हुआ। एक दिन अपनी स्त्री कनकवती के साथ प्रियमित्र अवधिज्ञानी मुनिराज से धर्मोपदेश सुन जिनदीक्षा धारण की और आयु के अन्त में सातवें स्वर्ग में देव हुआ। तेरह सागर की आयु पूर्ण करके जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र के कौशल देश में साकेत नगर में राजा वज्रसेन की रानी शीलव्रती के हरिषेण नामक पुत्र हुआ। आयु के अन्त में श्रुतसागर मुनिराज से दीक्षा लेकर महाशुक्र स्वर्ग में देव हुआ। वहाँ सोलह सागर की आयु पूर्ण करके धातकी खण्ड के पूर्व मेरु

के पूर्व विदेह क्षेत्र के पुष्कलावती देश की पुण्डरीकिणि नगर के राजा सुमित्र की रानी सुव्रता (मनोरमा) के प्रियमित्र नामक पुत्र हुआ।

प्रियमित्र ने आयु के अन्त में सर्वमित्र पुत्र को राज्य सौंपकर दीक्षा ग्रहण की और आयु के अन्त में बारहवें स्वर्ग में देव हुआ। वहाँ पर 18 सागर की आयु पूर्ण करके जम्बूद्वीप के छत्रपुर नगर के राजा नन्दिवर्द्धन की रानी वीरवती के नन्दनाम का पुत्र हुआ। प्रोष्ठिल गुरु से संयम धारण कर ग्यारह अंगों का ज्ञान प्राप्त किया। सोलह कारण भावनाओं का चिन्तन करके तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध कर आयु के अन्त में अच्युत स्वर्ग के पुष्पोत्तर विमान का इन्द्र हुआ।

अच्युत स्वर्ग की 22 सागर की आयु पूर्ण करके आषाढ़ शुक्ल षष्ठी के दिन उत्तराषाढ़ नक्षत्र में रात्रि के रौद्र, राक्षस और गन्धर्व नामक तीन पहर बीतने पर मनोहर नामक चौथे पहर में राजा सिद्धार्थ की रानी प्रियकारिणी के गर्भ में आया। रानी प्रियकारिणी ने उसी रात्रि को सोलह स्वप्न देखे। रानी ने उन स्वप्नों का फल राजा सिद्धार्थ से ज्ञात किया। तब से राजा सिद्धार्थ के घर तथा राज्य में धन-धान्य की वृद्धि होने लगी।

नौ माह आठ दिन व्यतीत होने पर चैत्र शुक्ला त्रयोदशी को रात्रि में अर्यगा शुभ योग में उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र शुभ लग्न में भगवान महावीर का जन्म हुआ। समाचार देने वालों को खूब पारितोषिक दिया गया पूरा नगर सजाया गया खूब खुशियाँ मनाई गयी।

इस प्रकार आज के दिन चैत्र शुक्ल त्रयोदशी को भगवान महावीर स्वामी ने इस मध्य लोक की भूमि पर पदार्पण किया तभी से आज का दिन पावन पर्व के रूप में मनाया जाने लगा। बन्धुओ भगवान महावीर ने **'अहिंसा परमो धर्मः'** का नारा दिया था। आप सभी अपने जीवन में अहिंसा धर्म अपना कर आज के दिन को सार्थक बनावें।

जिस प्रकार रत्नों में हीरा और वृक्षों के समूह में चन्दन सर्वश्रेष्ठ है। उसी प्रकार समस्त धर्मों में संसार को नष्ट करने वाला जिनधर्म सर्वश्रेष्ठ है।

– कुन्दकुन्द

वीरशासन जयन्ती

प्रत्येक श्रावण कृष्णा प्रतिपदा को वीरशासन जयन्ती मनाई जाती है।

आज से लगभग 2600 वर्ष पूर्व भगवान महावीर स्वामी के जीव ने चैत्र शुक्ला त्रयोदशी को माता प्रियकारिणी (त्रिशला) की पावन कुक्षि से वैशाली में जन्म लिया था। सौधर्म इन्द्र ने इस बालक को पाण्डुक शिला पर ले जाकर अभिषेक करके आनन्द मनाया था और दिव्य वस्त्राभूषणों से अलंकृत किया था।

बालक वर्द्धमान बाल्यकाल से ही प्रतिभा सम्पन्न, पराक्रमी, वीर, निर्भय तथा मति-श्रुत-अवधि तीन ज्ञान के धारक थे। उनका मधुर संभाषण भद्र और लोक हितकारी था। उनका शरीर दूज के चाँद की भाँति वृद्धि को प्राप्त कर रहा था।

एक बार जयसेन और विजय नामक दो चारणऋद्धिधारी मुनियों को सन्देह हो गया कि मृत्यु के बाद जीव किसी दूसरी पर्याय में जन्म लेता है या नहीं। उन चारण ऋद्धिधारी मुनियों का सन्देह बालक वर्द्धमान को देखने मात्र से दूर हो गया। तब उन मुनियों ने भक्तिवश इनका नाम सन्मति रख दिया। इनका शरीर अत्यन्त रूपवान् तथा जन्म के दस अतिशयों से सम्पन्न था। एक दिन इन्द्रकी सभा में देवों में यह चर्चा होने लगी कि इस समय सबसे अधिक शक्तिशाली शूरवीर वर्द्धमान हैं। तब संगम नामक देव इनकी परीक्षा लेने भयंकर सर्प का रूप धरकर आया। बालक वर्द्धमान अपने समवयस्क अनेक बालकों के साथ एक पेड़ पर चढ़कर क्रीड़ा कर रहे थे। तब वह संगम देव सबको डराने के उद्देश्य से साँप बनकर जड़ से स्कन्ध तक लिपट गया। सभी बालक पेड़ से कूंद-कूंद कर भाग गये परन्तु बालक वर्द्धमान् जरा भी भयभीत नहीं हुआ और उस सर्प के फण पर चढ़कर क्रीड़ा करने लगे। तब संगम देव उनकी वीरता से प्रभावित होकर अपने असली रूप में प्रकट हुआ और उन्हें नमस्कार करके भक्तिपूर्वक स्तुति करने लगा इस महान् वीरता के कारण उनका नाम महावीर पड़ा।

कश्यप गोत्री भगवान् महावीर के तेज से वैशाली का राज्य चमक उठा। वैशाली और कुण्ड ग्राम की शोभा इन्द्रपुरी से कम नहीं थी।

भगवान महावीर का युवावस्था की ओर उत्तरोत्तर बढ़ते हुए भी भोग-उपभोग की सामग्री के प्रति कोई आकर्षण नहीं था। उनका राज्य कार्य में भी मन नहीं लगता था। राजा सिद्धार्थ और माता त्रिशला उन्हें गृहस्थ मार्ग की प्रेरणा देते रहते। एक दिन कलिंग देश का राजा जितशत्रु अपनी पुत्री यशोदा का संबंध लेकर आया परन्तु कुमार वर्द्धमान ने विवाह से साफ इन्कार कर दिया।

कुमार वर्द्धमान राज-वैभव में पलते हुए जल में कमलवत् रहकर राज-वैभव को कारागार समझ रहे थे। उनके मन में दीन-दुखियों के दुखों को अन्त करने की लहरें हिलोरें मारती रहती थी। इस प्रकार 28 वर्ष 7 माह 12 दिन की अवस्था में कुमार वर्द्धमान बारह भावनाओं का चिन्तन कर वैराग्य की दिशा में बढ़ गये। उनकी भावना को जानकर लौकान्तिक देवों ने अभिनन्दन किया। इस प्रकार राज्य-विभूति से विरक्त होकर कुमार वर्द्धमान चन्द्रप्रभा पालकी पर सवार होकर ज्ञातखण्ड नामक वन में पहुँच गये। वहाँ मार्गशीर्ष कृष्णा दशमी के दिन अपराह्न में जब चन्द्रमा हस्तोत्तरा नक्षत्र के मध्य स्थित था षष्ठोपवास ग्रहण कर जिनदीक्षा ग्रहण की। उन्होंने सिद्ध परमेष्ठी को नमस्कार करके अशोक वृक्ष के नीचे बहुमूल्य वस्त्राभूषणों को उतार कर पंचमुष्ठि केशलोंच कर दिगम्बर मुद्रा धारण की और आत्मध्यान में लीन हो गये। दीक्षा लेते ही उन्हें मन:पर्यय ज्ञान हो गया। उपवास का समय व्यतीत होने पर कूल ग्राम के कूल नामक राजाने नवधा भक्तिपूर्वक प्रथम आहार परमान्न (खीर) का दिया। दान के माहात्म्य से उनके घर पंचाश्चर्य हुए। महामुनिराज महावीर स्वामी आहार लेकर वापस वन में जाकर ध्यान में लीन हो गये। मौन रहकर तपस्या करते 28 मूलगुणों को पालते हुए नगर-नगर, ग्राम ग्राम विहार करते रहे।

भगवान महावीर दीक्षा लेकर भयानक जीव जन्तु से भरी अटवी में जहाँ सिंह दहाड़े भारते, हाथियों की चिंघाड, हवा की सॉय-सॉय, सनसनाहट, नदी नालों की कलकलाहट, भंयकर सर्पों की फूत्कार से युक्त दिल को दहला देने वाले रात्रि के भयानक सन्नाटे में आत्मध्यान में लीन होकर तपस्या करने लगे और उपसर्गों की परवाह न करके निर्भय, निर्द्वन्द होकर श्मशान हो या भयानक अटवी, निर्जन बंजर भूमि हो या मानवों की बस्ती सभी जगह प्राणी मात्र के कल्याण की भावना से मौन विचरन करने लगे। इस प्रकार विचरण करते हुए एक दिन भगवान महावीर श्मशान भूमि में प्रतिमा योग धारण कर अपनी आत्मा का ध्यान कर रहे थे, तभी एक देव ने उनकी परीक्षा लेने के लिए उपसर्ग किया। उपसर्ग परिषहों को सहते हुए तपस्या में लीन रहते और निर्भय होकर भयानक हिंसक जन्तुओं से भरी अटवी में विहार करते थे। निरन्तर बारह वर्षो तक मौन साधना करते हुए विहार करते रहे। महामुनि महावीर साधु जीवन में वर्षा ऋतु को छोड़ कर तीन दिन से अधिक कभी एक स्थान पर स्थिर नहीं हुए। भगवान महावीर ने श्रमण-अवस्था में श्रावस्ती, कौशाम्बी वाराणसी, राजगृह, नालन्दा, वैशाली आदि नगरों में विहार करते हुए अनेक जीवों को अभयदान देकर उनका उद्धार किया। कौशाम्बी में चन्दना की बेड़ी टूटी थी। उसे सेठानी की कैद से छुटकारा मिला था और उसके दु:ख का अवसान हुआ था।

महामुनि महावीर विहार करते हुए उज्जयिनी की अतिमुक्तक श्मशान भूमि में प्रतिमायोग ध्यान में विराजमान हुए उन्हें देखकर महादेव नामक रुद्र ने उनकी धैर्य की परीक्षा लेने के लिए रात्रि में बड़े-बड़े बेतालों का रूप बनाकर उपसर्ग किया वे तीक्ष्ण चमड़ा छीलकर एक दूसरे के

उदर में प्रवेश करना चाहते थे। वे खौलते हुए मुखों से अत्यन्त भयंकर दीखते थे। इनके अतिरिक्त सर्प, हाथी, सिंह, अग्नि और वायु के साथ भीलों की सेना बनाकर उपसर्ग किया इस तरह रुद्र ने अपनी विद्या के बल से भीषण उपसर्ग किये परन्तु उन्हें ध्यान से डिगा नहीं पाया अन्त में उनका महावीर नाम रखकर स्तुति की और अपने स्थान पर चला गया। इस प्रकार उपसर्ग विजेता कहलाये।

श्रमण महावीर के मौन रूप में ग्राम, खेट, कर्वट और वन मटम्बादि अनेक स्थानों पर विहार करते हुए बारह वर्ष पाँच माह और पन्द्रह दिन व्यतीत हो गये। इतने समय तक उनकी वृत्ति के कारण उनका कभी संभाषण अथवा उपदेशादि नहीं हो पाया। वे उपसर्ग और परीषहों को समभाव रखकर सहन करते रहे। विहार करते हुए अन्त में जृम्भिक ग्राम के समीप ऋजुकूला नदी के किनारे शाल वृक्ष के नीचे वैशाख शुक्ला दशमी को तीसरे पहर षष्ठोपवास ग्रहण करके क्षपक श्रेणी पर आरूढ हुए। उस समय चन्द्रमा हस्तोत्तर नक्षत्र के मध्य में स्थित था। भगवान महावीर ने ध्यानाग्नि द्वारा चार घातिया कर्मों को नष्ट कर दिया और केवलज्ञान की प्राप्ति की। तब वे केवलज्ञान, केवलदर्शन और अनन्तवीर्य सहित होकर सर्वज्ञ और सर्वदर्शी हो गये तथा सयोगी जिन कहलाये।

ऐसा नियम है कि सयोगीजिन प्रति समय असंख्यात गुणित श्रेणी से निर्जरा करते हुए धर्म रूप तीर्थ प्रवर्तन के लिए धर्म-क्षेत्र में महा विभूति (समवशरण) के साथ अधर गमन करते हैं।

केवलज्ञान होने पर विश्व के सभी पदार्थ युगपत् (एक साथ) प्रतिभासित होते हैं और उनके समीप विरोधी जीव अपना बैर विरोध छोड़ कर शान्त हो जाते हैं। इसीलिए समन्तभद्र स्वामी ने स्वयंभूस्तोत्र में उन्हें परमब्रह्म कहा है।

इन्द्रादि देवों ने भगवान महावीर के केवलज्ञान कल्याणक की पूजाकी परन्तु उनकी दिव्य ध्वनि नहीं खिरी, उनका धर्मोपदेश नहीं हुआ। 66 दिन तक गणधर के अभाव में दिव्यध्वनि नहीं खिरी। सौधर्म इन्द्र को चिन्ता हुई कि भगवान की ध्वनि क्यों नहीं खिर रही है तब उसने अपने ज्ञान से जाना कि गणधर के अभाव में दिव्यध्वनि नहीं खिर रही है तब उपयुक्त पात्र की खोज में प्रयत्नशील हुआ और उसका ध्यान इन्द्रभूति ब्राह्मण की ओर गया। इन्द्र ब्राह्मण का रूप धरकर इन्द्रभूति के पास पहुँचा और अभिवादन करके बोला हे विद्वान्! मेरे गुरु ने मुझे एक गाथा सिखाई थी उस गाथा का अर्थ मेरी समझ में नहीं आ रहा है। मेरे गुरु इस समय मौन हैं, कृपया आपही इसका अर्थ समझा दीजिए। तब इन्द्रभूति बोला- मैं गाथा का अर्थ इस शर्त पर बता सकता हूँ कि गाथा का अर्थ समझकर तुम मेरे शिष्य बन जाओगे। देवराज इन्द्र ने शर्त स्वीकार करके गाथा पढ़ दी।

पंचैव अस्तिकाया छज्जीवणिकाया महव्वया पंच।
अट्ठय पवयणमादा सहेउओ बंध-मोक्खो य।।

गाथा सुनते ही वह असमंजस में पड गया उसकी समझ में नहीं आया कि पाँच अस्तिकाय, षट् जीव निकाय और अष्ट प्रवचन मात्राएं कौन सी होती हैं? तब इन्द्रभूति ने आगन्तुक से कहा– तुम मुझे अपने गुरु के पास ले चलो मैं उनके सामने ही इस गाथा का अर्थ समझाऊँगा इन्द्र अपना मनोरथ सिद्ध होता देखकर बड़ा प्रसन्न हुआ और इन्द्रभूति को उसके भाइयों तथा उनके पाँच-पाँच सौ शिष्यों को लेकर समवशरण में पहुँचा।

छयासठ दिन तक मौन विहार करते हुए भगवान महावीर स्वामी जिस प्रकार सूर्य उदयाचल पर आरुढ होता है उस प्रकार विपुलाचल पर्वत पर पहुँचकर आरूढ हुए। देवताओं ने एक योजन विस्तार के समवशरण की रचना की। जो कोटो, द्वारों, गोपुरो, अष्टमंगलद्रव्यों, ध्वजाओं मानस्तम्भों, स्तूपों, महावनों, वापिकाओं, कमल समूहों, तथा लता गृहों से अलंकृत था। इस समवशरण में देव, मनुष्य, तिर्यंचादि सभी जीव अपने-अपने विभाग में शान्त बैठे थे और भगवान महावीर स्वामी आठ प्रातिहार्य और चौतीस अतिशयों सहित विराजमान थे। वे अहिंसा की पराकाष्ठा को पारकर परम ब्रह्म परमात्मा बन गये थे। उनकी मोह-क्षोभ रहित वीतराग मुद्रा अत्यन्त प्रभावक थी। जनता ने जाति विरोधी जीवों देव और मनुष्यों के अतिरिक्त सिंह-हिरण, सर्प-नकुल, चूहा-बिल्ली आदि का विपुलाचल गिरि पर एकत्र मिलाप अर्थात् शान्तभाव से बैठे देखा तो उनके आश्चर्य का ठिकाना न रहा। वे बार-बार कहले लगे कि यह सब उस क्षीणमोही योगीन्द्र महावीर का ही प्रभाव है। समवशरण में सौधर्म और ऐशान इन्द्र चमर ढोल रहे थे और शेष इन्द्र जय-जय कर रहे थे। फिर भी भगवान उस विभूति से चार अंगुल ऊपर अन्तरिक्ष में विराजमान रहे।

इन्द्रभूति ने अपने भाइयों और शिष्यों सहित उस समवशरण के महत्त्व को समझा। उसे अपनी विद्या का बड़ा अभिमान था परन्तु मानस्तम्भ को देखते ही उसका सारा अभिमान गल गया। मन मार्दव भावना से ओत-प्रोत हो गया तथा भगवान महावीर के प्रति आदर भाव जागृत हो गया और अन्दर समवशरण में पहुँच कर भगवान महावीर को भक्तिपूर्वक नमस्कार कर तीन प्रदक्षिणा दी। उसका अन्तःकरण विशुद्धि से भर गया। अन्तरंग में वैराग्य जागृत हुआ और उसने पाँच मुट्ठी केशलोंच कर वस्त्राभूषण त्याग कर अपने भाईयों तथा शिष्यों सहित दिगम्बर मुद्रा धारण की। वह गौतम गोत्री इन्द्रभूति भगवान महावीर का प्रथम गणधर बना और अग्निभूति, वायुभूति भी गणधर बने। दीक्षा लेते ही इन्द्रभूति मति, श्रुत, अवधि तथा मनःपर्यय ज्ञान के धारी हो गये। इनका जीव विषयक संदेह भी दूर हो गया और उन्हें अनेक ऋद्धियाँ प्राप्त हो गयीं। वे प्रथमानुयोग, करणानुयोग चरणानुयोग, द्रव्यानुयोग रूप चार वेदों में पारंगत उन्होंने भावश्रुत रूप

पर्याय से बुद्धि की परिपक्वता प्राप्तकर इन्द्रभूति गणधर ने एक मुहूर्त में बारह अंगों और चौदह पूर्वों का रचना की।

इन्हें सर्वार्थसिद्धिके देवों से भी अनन्तगुणा बल प्राप्त हुआ जो एक मुहूर्त में बारह अंगों का अर्थ और द्वादशांग रूप ग्रन्थों के स्मरण तथा पाठ करने में समर्थ थे। आकाश चारण गुण से सब जीव समूहों की रक्षा करने वाले, वचन एवं मन से समस्त पदार्थों का संपादन करने में समर्थ, अणिमादि आठ गुणों के द्वारा सब देव समूहों को जीतने वाले और परोपदेश के बिना अक्षर-अनक्षर रूप सब भाषाओं में कुशल ग्याहर गणधर थे। भगवान महावीर के समवशरण में थे।

मगधनरेश बिम्बसार (श्रेणिक) ने वनपाल से विपुलाचल पर भगवान महावीर के समवशरण आने का समाचार सुनते ही सात कदम चलकर भगवान को परोक्ष नमस्कार किया और समस्त वैभव तथा रानी चेलना के साथ विपुलाचल पर्वत पर जाकर समवशरण में भगवान की वन्दना करके तीन प्रदक्षिणाएं दीं और भक्तिभाव से गद्‌गद् होकर स्तवन करते हुए कहा- हे नाथ! मुझ अज्ञानी ने हिंसा, झूठ चोरी कुशील और परिग्रह के संचय में आरम्भादि द्वारा घोर पाप किये हैं और मुझ मिथ्यादृष्टि पापी ने मुनिराज का वध करने में बड़ा आनन्द माना था, उन पर मैंने उपसर्ग किया था जिससे मैंने नरकायु का बंध किया जो छूट नहीं सकता। आपकी वीतराग मुद्रा का दर्शन करके मैं सफल हुआ और मुझे विश्वास हो गया है कि मैं इस संसार समुद्र से पार हो जाऊँगा। हे भगवान! आपके दर्शन से मुझे ऐसा सामर्थ्य प्राप्त हो कि इस भवसागर से पार हो सकूँ। इस प्रकार भगवान का स्तवन कर मनुष्य के कोठे में बैठकर उसने उपदेशामृत का पान किया।

उसी दिन वैशाली के राजा चेटक की पुत्री चन्दना दीक्षा लेकर आर्यिकाओं की प्रमुख गणिनी हुई। उस समय अनेक राजाओं, राजपुत्रों तथा सामान्य जनों ने देशना से प्रभावित होकर दिगम्बर मुद्रा धारण की। अनेक ने श्रावकादि के व्रत धारण किये। राजा श्रेणिक के अक्रूर, वारिषेण, अभय कुमार, मेघकुमार आदि पुत्रों ने राज वैभव का परित्याग कर जिनदीक्षा धारण कर आत्मसाधना की और उनकी माताओं तथा अन्य स्त्रियों ने शील, दान, प्रोषध और पूजन आदि के नियम ग्रहण किये।

इस प्रकार श्रावण कृष्ण प्रतिपदा को प्रातःकाल सूर्योदय के समय अभिजित नक्षत्र और रुद्र मुहूर्त में भगवान महावीर की प्रथम देशना हुई। एक योजन तक दिव्यध्वनि के द्वारा शासन की परम्परा चलाने का उपदेश दिया। भगवान महावीर का यह धर्मोपदेश एक योजन तक बैठे हुए सभी देव-देवांगनाओं, मनुष्य स्त्रियों, तिर्यंचों तथा नाना देश के संज्ञी जीवों की अक्षर, अनक्षर रूप अठारह महाभाषा और 700 लघुभाषा में परिणत हुआ। तालु, ओष्ठ दन्त और कण्ठ के हलन-चलन रूप व्यापार से रहित तथा न्यूनाधिकता से रहित मधुर मनोहर और विशद रूप भाषा

के अतिशयों से युक्त एक ही समय में भव्य जीवों को उपदेश हुआ उससे समस्त जीवों का संशय दूर हुआ। भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिषि, कल्पवासी देवों के द्वारा तथा नारायण, बलभद्र, विद्याधर, चक्रवर्ती, मनुष्य, तिर्यंच और अन्य महर्षियों से पूजित भगवान महावीर अर्थागम के कर्ता तथा गणधर इन्द्रभूति ग्रन्थकर्ता हुए।

वीरशासन में शूद्रों और स्त्रियों को अपनी योग्यतानुसार आत्मसाधना का अधिकार मिला। महावीर के संघ में बड़े-बड़े राजा, सेठ, युवराज, मंत्री आदि सभी ने दीक्षा ग्रहण की। राजा उद्दायन, उनकी माता मृगावती, रानी प्रभावती चेटक की पुत्री ज्येष्ठा आदि अन्य नारियों ने दीक्षा ग्रहण की। उस समय महावीर के संघ में चौदह हजार मुनि, चन्दनादि बत्तीस हजार आर्यिकाऐं, एक लाख श्रावक, तीन लाख श्राविकाएं, असंख्यात देवी-देवता, तथा संख्यात तिर्यंचों की अवस्थिति थी। महावीर का यह शासन सर्वोदयतीर्थ के रूप में प्रसिद्ध हुआ, जो स्याद्वाद के समुन्नत सिद्धान्त से अलंकृत है। जिसमें समता और उदारता का रस भरा हुआ है। वस्तुतत्त्व में एकान्त की कल्पना स्व-पर के बैर का कारण है। उससे न अपना ही हित होता है और न दूसरे का ही हित होता है। वह तो सर्वथा एकान्त के आग्रह में अनुरक्त हुआ वस्तु तत्त्व से दूर रहता है।

महावीर का शासन अहिंसा से ओत-प्रोत है। इसमें पाँच इन्द्रियों के दमन के लिए संयम का विधान किया गया है प्रेम और वात्सल्य की शिक्षा भी दी गयी है, जिसमें विश्व-बन्धुत्व की लोक कल्याणकारी भावना निहित है। भगवान महावीर के सिद्धान्त मैत्री, प्रमोद, कारुण्य और माध्यस्थ की भावना से ओत-प्रोत हैं। भगवान महावीर ने विश्व को अहिंसा, अनेकान्त स्याद्वाद और अपरिग्रह ये महान् सिद्धान्त दिये।

इस तरह भगवान महावीर ने 29 वर्ष, 5 माह, 20 दिन केवली जीवन में काशी, कोशल, वत्स, चम्पा, पांचाल, मगध, राजगृह, वैशाली, अंग, बंग, कलिंग, ताम्रलिप्ति, सौराष्ट्र, मिथिला, मथुरा, नालंदा, पुण्ड्रवर्धन, कोशाम्बी, अयोध्या, पुरिप्रभालपुर, उज्जयिनी, मल्लदेश, दशार्ण, कैकयदेश, कोलागसन्निवेश, किरात, श्रावस्ती, कुमारगिरी और नेपाल आदि विविध देशों में विहार कर कल्याण कारी सन्मार्ग का उपदेश दिया। अन्याय अत्याचार को रोका, पतितों को उठाया, हिंसा का विरोध किया, बहमों को दूर कर संयम की शिक्षा दी। दया, दम, त्याग और समाधि का स्वरूप बताकर यज्ञादि क्रियाकाण्डों में होने वाली भारी हिंसा को समाप्त किया और तड़पते पशुओं को अभय दान दिलाया। बन्धुओ! इस वीर-शासन जयन्ती पर किसी भी प्राणि को न सताने की प्रतिज्ञा लेकर अहिंसा को अपने जीवन में अपनायें और इस वीरशासन जयन्ती को सार्थक बनायें।

पुण्यार्जक

1.	मैसर्स मिठ्ठन लाल चन्द्रभान जैन, चौपला गाजियाबाद	39,000
2.	श्री डी.के. जैन, विनयकुमार जैन, 223 गांधी नगर गाजियाबाद	32,500
3.	श्रीमती प्रेमवती जैन ध० प० श्री वी. रत्न जैन, आर. एस. स्टील्स नवयुग मार्केट, गाजियाबाद	32,500
4.	श्रीमती उमा जैन ध० प० श्री जीवेन्द्र जैन, KC-68/9 कविनगर, गाजियाबाद	32,500
5.	श्री मदन लाल जैन, श्री पवन कुमार जैन, 116 बाहुबली एंक्लेव, दिल्ली	32,500
6.	श्री सुरेन्द्र पाल जैन, अध्यक्ष जैन समाज, शंकर नगर एक्सटेनसन, दिल्ली	32,500
7.	श्री जगदीश प्रसाद, दिनेश कुमार जैन (करनावल वाले), धर्मपुरा गांधी नगर ने ब्र० गुणामाला जैन की स्मृति में	32,500
8.	श्री विनयकुमार, अशोककुमार जैन, C-6/9 कृष्णा नगर, दिल्ली	21,000
9.	दिगम्बर जैन महिला समिति, तीरगरान मेरठ	13,500
10.	श्री सुनील कुमार जैन, B-K-19 पश्चिमी शालीमार बाग, दिल्ली	13,000
11.	श्री सुधीर चन्द जैन, R-14/127 राजनगर, गाजियाबाद	13,000
12.	श्रीमती सुमित्रा जैन धर्मपत्नी श्री सुधीर कुमार जैन, KB-90 कविनगर, गाजियाबाद	13,000
13.	श्री सुषमा जैन सुपुत्री श्री आर.वी. जैन, 38C दुर्गा नगर, अम्बाला कैंट	11,000
14.	श्रीमती उर्मिला जैन, 11/755 दयालपुरा, करनाल	9,945
15.	श्री ज्ञान चन्द संजय कुमार जैन (रामपुर मनिहारान वाले), C-6 यमुना विहार, दिल्ली	6,565
16.	श्री बी.डी. जैन, II-A-128 नेहरु नगर, गाजियाबाद	6,500
17.	श्री सुन्दर लाल जैन, KL-158 कविनगर, गाजियाबाद	6,500
18.	श्री संदीप जैन सुपुत्र श्री एन.सी. जैन, III-D-59 नेहरु नगर, गाजियाबाद	6,500
19.	श्री अरुण कुमार. जैन सुपुत्र श्री जगजोत प्रसाद जैन, KL-155 कविनगर, गाजियाबाद	6,500
20.	श्री विपिन जैन, विकास जैन, KI-40 कविनगर, गाजियाबाद	6,500
21.	श्री जे.डी. जैन (प्रिंसीपल), KK-145 कविनगर, गाजियाबाद	6,500
22.	श्री शालभद्र जैन सुपुत्र स्व० श्री गुलशन राय जैन (कैरानावाले), II-A-20 नेहरु नगर, गाजियाबाद	6,500
23.	श्री जगरोशन लाल ऋषभ कुमार जैन, B-51 लोहिया नगर, गाजियाबाद	6,500
24.	श्री सुनील कुमार, सुधीर कुमार जैन, KI-156 कविनगर, गाजियाबाद ने अपनी पूज्य माता जी स्व. श्रीमती केला देवी जैन व पूज्य पिता जी स्व. श्री जगदीश प्रसाद जैन (रि. कानूनगो) की पुण्य स्मृति में	6,500

25. श्री अम्बुज जैन, मेरठ	6,500
26. श्री रमेश चन्द जैन, रघुवरपुरा, गांधीनगर	6,500
27. श्री किशन जैन c/o पी.टी.सी. ट्रैक्टर कम्पनी 2766/1 हेमिल्टन रोड़, मोरी गेट, दिल्ली	6,500
28. श्री प्रद्युमन कुमार जैन, c/o मै० मोती राम अनिल कुमार जैन, हांसी, हरियाणा	5,100
29. श्री इलम चन्द जैन, कमल कुंज, बड़ौत	5,100
30. श्रीमती प्रेमवती जैन, 118 बाहुबली एंक्लेव, दिल्ली	5,000
31. श्रीमती रेखा जैन, J-118 पटेल नगर, गाजियाबाद	3,315
32. श्रीमती पुष्पा जैन धर्मपत्नी श्री धनपाल सिंह जैन, KI-20 कविनगर, गाजियाबाद	3,250
33. श्री लक्ष्मी चन्द जैन, जाम्बियां, अफ्रीका	3,100
34. श्रीमती उषा जैन ध.प., श्री ओम प्रकाश जैन, अधिशासी अभियन्ता, हाईड्रिल आफिसर्स कॉलोनी, मुजफ्फरनगर (उ० प्र०)	2,100
35. श्री महीपाल जैन, B-189 अशोक नगर, गाजियाबाद	2,100
36. श्रीमती चन्द्रमोहनी जैन धर्मपत्नी श्री नेमचन्द जैन, सोनीपत	2,001
37. श्रीमती रेनू जैन धर्मपत्नी श्री प्रद्युम्न कुमार जैन, 156 रणजीतपुरी, शहर मेरठ	2,001
38. श्री डी.के. जैन, सुशीला जैन, KB-156 कविनगर, गाजियाबाद	1,100
39. श्री राजेन्द्र जैन एवं सुधा जैन, K-678 दिलशाद गार्डन, दिल्ली	1,000
40. श्री ज्योति प्रसाद जैन, SA-5 शास्त्री नगर, गाजियाबाद	1,000
41. श्रीमती सुधा जैन ध.प. इन्जी., श्री प्रदीपकुमार जैन, 588, तिलक रोड़, मेरठ	1,000
42. श्रीमती रूपवती जैन धर्मपत्नी श्री प्रेमचन्द जैन, छपरौली	501